संत हृदय श्रीपोद्दारजी



संतहृदय श्रीपोद्दारजी

द्वितीय भाग

संकलन : संयोजन

राधेश्याम बंका

: प्रकाशक :

हनुमान प्रसाद पोद्दार स्मारक समिति
पो. गीतावाटिका
जि. गोरखपुर - २७३००६

: प्रकाशन तिथि :

संवत २०४८ आश्विन कृ. १२ (५ अक्टूबर १९९१)

: मूल्य :

पच्चीस रुपये

: प्रथम संस्करण :

चार हजार

: मुद्रक :

न्यू जैक प्रिंटिग वर्क्स प्रा. लि.,
पाण्डुरंग बुधकर मार्ग,
बम्बई - ४०००१३

।। श्रीहरिः ।।

वाटिकाके चाँद

यदि अपना परिचय देनेकी चाह तुम्हारे अन्तरमें नहीं हो तो कौन तुझे जान सकेगा? किसमें सामर्थ्य है, जो तुझे समझ सके? तुम्हारे स्वरूपको तभी दूसरा जान सकेगा, तुम्हारा स्वरूप तभी दूसरेकी पहुँचकी परिधिके अन्दर आ सकेगा, जब तुम स्वयं ही स्वयंका यत्किंचित् परिचय प्रदान करो। सब कुछ तुम्हारी रुचि-सापेक्ष है। चकोर चाँदको तभी देख पाता है, जब चाँद स्वयंको दिखा देना चाहे। चाँद अपनी केवल एक कला दिखाये अथवा दो कला दिखाये अथवा सम्पूर्ण कला दिखाये, किन्तु चकोर उतना ही देख पाता है, जितना चाँद दिखाना चाहता है और सोलहों कलासे उदित होकर भी यदि अपने ऊपर मेघका आवरण डाल ले तो क्या चकोर देख सकेगा?

हे भावविधु! यह सब कुछ तुम्हारी चाहपर निर्भर है। स्वयंको न दिखाओ, न जनाओ, थोड़ा जनाओ, अधिक जनाओ, पूर्णतः जनाओ अथवा पूर्णतः प्रकट होकर भी अपने ऊपर आवरण डाल लो, रह-रह करके छिपो, यह सब तुम्हारी इच्छापर निर्भर है। हे रसालय! यह सब कुछ तुम्हारी चाह और कृपाके आश्रित हैं। तुम्हारी चाह जब होगी, तभी तुम्हारे चकोर तुम्हें देख पायेंगे और जितने अंशमें दिखानेकी चाह होगी, उतने ही अंशका दर्शन सम्भव है।

हे रसार्द्र भावज्ञ! स्वरूप-दर्शन-पिपासु चकोरकी मनोकामनाको पूर्ण करनेकी चाह तुम्हारे अन्तरमें कभी उदित होगी क्या?

अरे! यह क्या हो गया? स्वरूपावरण कहाँ तिरोहित हो गया? संगुप्तकी अभिव्यक्ति तो एक आश्चर्य है।

आज सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

तुमने स्वयंको कितना छिपाया, कितना चुराया, कितना दुराया, पर संगोपनीयता रह न सकी। आवृत्त अनावृत्त हो ही गया। तुम्हारी अनजानी बातोंको तुम्हारे अधरोंके हास्यने, तुम्हारे अनगाये रागोंको तुम्हारे नयनोंके लास्यने अनजाना-अनगाया नहीं रहने दिया। चाँदके अतुल सतत विलासने और विपुल रजत प्रकाशने चाँदको अनावृत्त कर ही दिया। मेघोंके आवरणोंमें चाँद छुपता रहा, लुकता रहा, पर कब तक? अब तो तुम्हारे राग, तुम्हारी बात चुपचाप फैल चुकी है। तभी तो सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

आज सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

पपीहेके कूजनने तेरी कहानी बेलाके फूलसे कही, पर कही किस प्रकार? कही डरते-डरते मनसे कि कोई सुन न ले, कही आधी रातके अँधेरेमें कि कोई देख न ले, कही उपवनके एकान्तमें कि कोई झाँक न ले, पर तेरी कहानीका प्रभाव अनोखा है, अद्भुत है। कहानीको सुनते ही बेलाका फूल सिहर उठा, निखर उठा। और देखो न! भाव-विभोर बेलासे अनजाने

ही तेरी गाथाकी गंध बिखर रही है। उस सुगंधको तनमें लपेटता जा रहा है पवन और अव-शिष्टांशको समेटती जा रही है दुर्वा-दलावली। पवन कानो-कान कुछ कह जाता है और सुन लेती हैं लताएँ। लताएँ झूम-झूमकर कुछ गुनगुना रही हैं और विटपोंकी डालियाँ झुक-झुककर कुछ सुन रही हैं।

आज प्रकृतिके प्रांगणमें तेरा गीत गुनगुनाया जा रहा है।

अरे यह क्या ? आम्र-वृक्षोंकी पत्रावलियोंका समूह भी तेरी ही चर्चा कर रहा है। लताएँ फूलती जा रही हैं और तेरी चर्चा फैलती जा रही है। लताओंके सुमन निखरते जा रहे हैं और तेरा अनजाना सौरभ अनजाने बिखरता जा रहा है। प्रकृतिका प्रत्येक दल प्रत्येक पल तेरा ही गीत गा रहा है। प्रत्येक स्पन्दनमें तेरा ही गीत है। तेरा अनजाना गीत आज सभीके अधरोंने जान लिया है। तेरा अनगाया राग आज सभीके कण्ठोंमें गूँज रहा है।

आज सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

सभी गा रहे हैं, परन्तु गीत कभी पूरा हो ही नहीं पाता है। भला वह कौन है, जो भली प्रकारसे अपने गीतोंको गा पायी हो अथवा गा पाया हो ? कभी स्मृतियोंकी असीमता, कभी उमड़नकी अनन्तता, कभी भावोंकी प्रबलता, कभी विचारोंकी अधिकता, कभी वाणीकी विह्वलता- इस प्रकार कभी कोई अवरोध और कभी कोई विवशता पदे-पदे, क्षणे-क्षणे बाधा उपस्थित कर ही देती है। यह अवरोध और विवशता भी अपार है। तब विथकित हो उठता है गायनका सारा प्रयास। फिर असफल प्रयासके मूक स्वर बार-बार वन्दन करने लगते हैं तुम्हारे युगल चरण-कमलको।

गीत न पूरा हो पाता है।
भाव उमड़ते रह-रह इतने, अधरोंका स्वर थक जाता है।।
गान अधूरा रहता नित ही, विह्वल स्वर जब-जब गाता है।
रहा प्रयास सदा ही कुण्ठित, असफल अन्तर अकुलाता है।।
कैसे कहूँ हृदयकी बातें, सोच न चिन्तन कुछ पाता है।
करूँ चरण वन्दन आजीवन, बस, आकुल स्वरको भाता है।।

सचमुच, गीतोंके अंकुरोंको खुलने-खिलनेका अवसर मिल ही नहीं पाया। कण्ठ-कण्ठ द्वारा गीत गाये जानेका प्रयास भले असफल रहा हो, पर अनुरागी कण्ठकी राग-रागिनी रही है अंगूरी। अंगूरी राग-रागिनीमें अल्पालापित गीतांकुरोंके अस्फुट गुञ्जनकी कतिपय स्वर-लिपियाँ ही प्रस्तुत हैं इस पुस्तकके आगामी पृष्ठोंपर।

अर्चनाके ये गीत अधूरे ही रहे और सदा अधूरे ही रहेंगे। सम्पन्नता प्रदान करनेवाले सामर्थ्यका अभाव जो है। बस, सम्पन्नता प्रदान कर पायेगी तुम्हारी परमोदार स्वीकृति ही।

मेरी वाटिकाके चाँद ! लो, इन अधूरे गीतोंको स्वीकार करो।

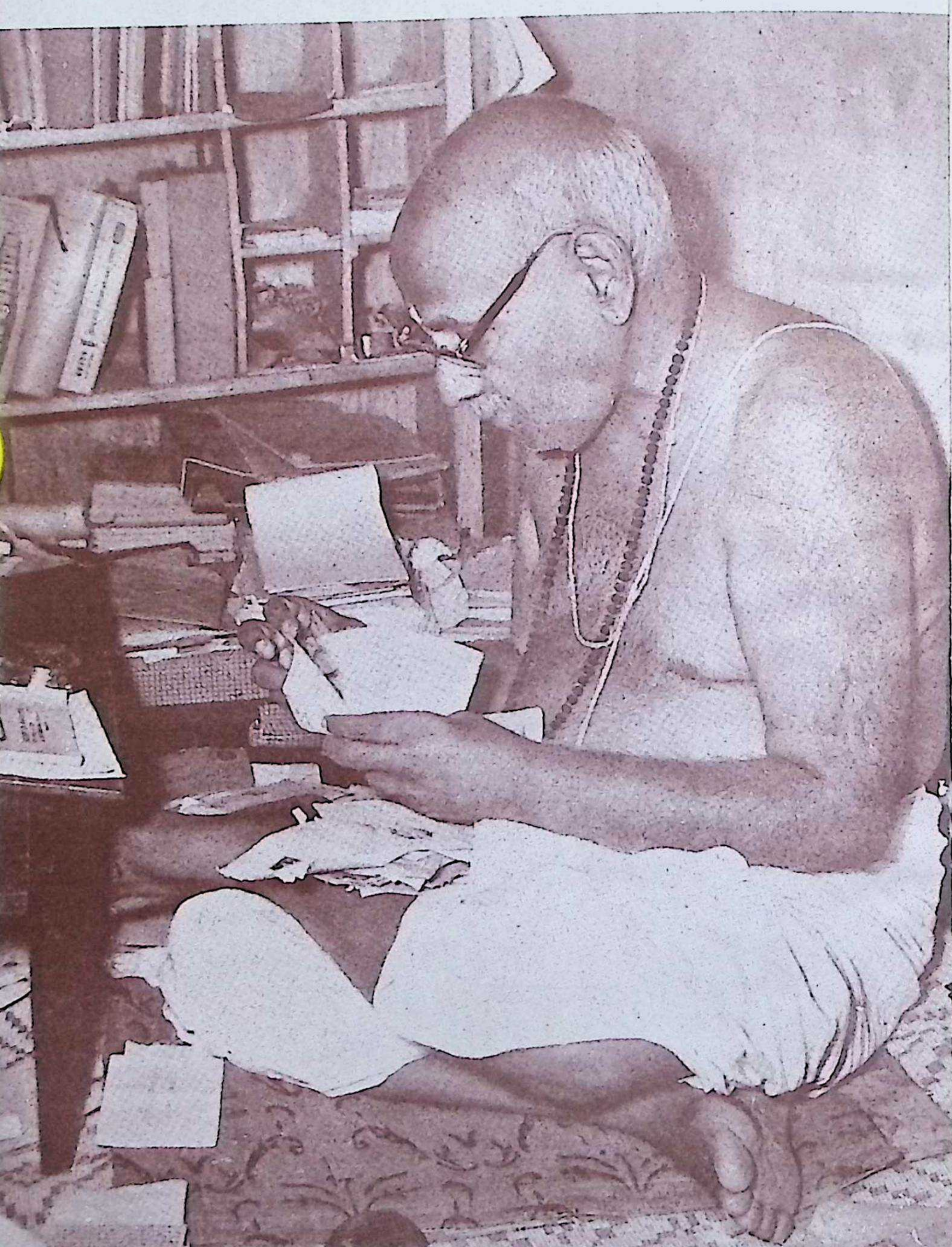
निवेदक

राधेश्याम बंका

अनुक्रमणिका



संत हृदय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार



‘वे स्वयंमें एक संस्था थे’

॥ श्रीहरिः ॥

संत हृदय श्रीपोद्दारजी

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी (पूर्वसम्पादक 'कल्याण')

मेरे जीवन सर्वस्व

पहली बार मुझे श्रीभाईजीका दर्शन सन १९२८ के प्रारम्भमें बीकानेरमें हुआ था। वे नाम-प्रचारके उद्देश्यसे विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण करते हुए दो दिनके लिये वहाँ पधारे थे। उनका सर्वप्रथम भाषण सुननेपर मेरे मनमें ऐसी छाप पड़ी कि वे जो कुछ कहते हैं, अनुभवके आधारपर कहते हैं, केवल पढ़ी-पढ़ायी अथवा सुनी-सुनायी बात नहीं कहते। जबतक वे बीकानेरमें रहे, व्याख्यानके बाद भी मैं घंटों उनके पास बैठता और उनके साथ भगवद्विषयक चर्चा होती रहती। उनके इस प्रथम समागमका मनपर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि स्वाभाविक ही उनके निकट सम्पर्कमें कुछ दिन रहनेकी प्रबल भावना जाग्रत हुई। यह लालसा क्रमशः बढ़ती गयी और सन् १९२९ के ग्रीष्ममें मुझे उनके साथ गोरखपुरमें लगभग डेढ़ महीने रहनेका दुर्लभ सुयोग प्राप्त हुआ। इस छोटी-सी अवधिमें उनके भगवत्सम्बन्धी प्रौढ़ विचारों एवं अनुभवोंको जानने तथा उनके भगवन्मय जीवनको अत्यन्त निकटसे देखनेका अवसर मुझे प्राप्त हुआ। उनके लोकोत्तर व्यक्तित्वका मनपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि दस-पन्द्रह दिनके बाद ही बुद्धिने यह निर्णय ले लिया कि सब कुछ छोड़कर इन्हींके चरणोंमें रहा जाय और शेष जीवन इन्हींकी छत्रछायामें बिताया जाय। यह निर्णय लेना मेरे लिये जितना सहज था, उसे कार्यान्वित करना उतना ही कठिन सिद्ध हुआ। मुझे बीकानेर छोड़नेमें चार वर्ष लग गये और जनवरी सन् १९३३ में ही मैं अपने इस मनोरथको पूर्ण कर पाया।

मेरा श्रीभाईजीके साथ यह चालीस वर्षके ऊपरका सम्पर्क मेरे जीवनकी एक अमूल्य निधि है, जो मुझे अपने अनेक जन्मार्जित सुकृतोंके फलरूपमें उन्हींकी अहैतुकी कृपासे अनायास प्राप्त हुई थी। इस अवधिमें उन्होंने जैसा अद्भुत स्नेह मुझे दिया और जिस प्रकार मेरा लाड़ रखा, उसे शब्दोंद्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके इस ऋणसे मैं जन्म-जन्मान्तरमें भी उऋण नहीं हो सकता और न होना ही चाहता हूँ। भव-सरिताकी प्रबलधारामें बहते हुए मुझ पामरको उन्होंने अपनी सहज कृपासे उबार लिया और भगवत्कृपाका अधिकारी बना दिया। मेरी त्रुटियोंकी ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया और मेरे द्वारा उन्हींकी प्रेरणासे हुए तनिक-से भी अनुकूल आचरणकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे मेरे बड़े भाई, सखा एवं स्वामी ही नहीं थे, मेरे पथप्रदर्शक, जीवन-सर्वस्व थे और हैं। ■

पं. श्रीतारादत्तजी मिश्र (पूज्य श्रीराधाबाबाके पूर्वाश्रमके सहोदर भाई)

अद्‌भुत विनयशीलता

परमपूज्य श्रीभाईजीके साथ मेरा क्या सम्बन्ध था, इसे मैं स्वयं ही ठीक-ठीक नहीं समझता। हाँ, इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि मुझ जैसा एक तुच्छ प्राणीं उन्हें जितना अपना मान सका, उससे अनन्तगुना अधिक उन्होंने मुझे अपनाया। मैं श्रीभाईजीको अपना बड़ा भाई मानता हूँ और संतके रूपमें अपना आराध्य। सन् १९७० की फरवरीमें मैं गोरखपुर श्रीभाईजीके दर्शनार्थ गया। उन दिनों उनका स्वास्थ्य ढीला था। जब मैं वहाँसे लौटने लगा, तब श्रीभाईजीने मेरा पैर छूना चाहा। मैंने कहा– भाईजी आप बड़े हैं तथा मैं आपको आराध्य मानता हूँ।

श्रीभाईजी न माने। उन्होंने कहा– आप पण्डित हैं, पूज्य हैं।

अन्तमें विवश होकर मुझे उनका प्रणाम स्वीकार करना पड़ा। ऐसी थी उनकी ब्रह्मण्यता, ऐसी थी उनकी विनयशीलता। ■

श्रीविष्णुहरिजी डालमिया

[१] ताऊजीका अनोखा वात्सलय

परम पूज्य ताऊजी (परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के वात्सल्य भरे हृदयकी जो एक परम मधुर छवि मेरे मानस-पटलपर अंकित है, उसे ही लिखनेका प्रयास कर रहा हूँ। सन् १९५७ के फरवरी मासकी बात है। मेरे पूज्य पिताजी (पूज्य श्रीजयदयालजी डालमिया) राजगंगपुर स्थित सीमेंट फैक्ट्रीमें किसी कार्यसे गये हुए थे। वहाँ उनके पैरपर ट्राली गिर पड़ी। ट्राली बोझिल और भारी थी। पैरमें बड़ी चोट आयी। चोट तो बहुत गहरी लगी थी, पर खूनकी नस कटी नहीं थी, इससे बहुत बचाव हो गया, अन्यथा जीवनपर ही आँच आ जाती। तुरन्त प्राथमिक उपचार किया गया और चिकित्साके लिये राजगंगपुरसे कलकत्ता ले जाया गया। कलकत्तेमें घावका आपरेशन करके पट्टी बाँध दी गयी।

इन दिनों परम पूज्य ताऊजी रतनगढ़में रह रहे थे। ताऊजीको ज्यों ही पिताजीके दुर्घटनाग्रस्त हो जानेका समाचार मिला, वे बहुत चिन्तित हो उठे। वे तो रतनगढ़से कलकत्ते आनेके लिये तैयार थे, परंतु हमलोगोंने ही उनको मना कर दिया। प्रायः प्रतिदिन ही पिताजीकी स्थितिका समाचार फोनसे उन्हें रतनगढ़ दे दिया जाता था।

मार्च मासमें पिताजीको कलकत्तेसे अपने घर दिल्ली ले आया गया। ताऊजी भी एक बार रतनगढ़से दिल्ली आये पिताजीको देखनेके लिये। डाक्टरोंका कहना था कि पैरके घावमें कोई खास खराबी तो नहीं है, परंतु घावके भरनेमें थोड़ा समय लग सकता है। डाक्टरोंसे ऐसी सान्त्वना मिलनेके बाद भी घावकी हालत ठीक नहीं लगती थी। दर्द और दोष घटनेके स्थानपर

बढ़ ही रहा था। सम्मान्य श्रीघनश्यामदासजी बिड़लाने तो बम्बई जाकर इलाज करानेका सुझाव दिया। पुनः घावका आपरेशन करना पड़ा और मवाद निकाल कर घावको साफ कर दिया गया।

आशा थी कि अब तो कष्ट दूर हो ही जायेगा, पर यह दूसरी बारका ऑपरेशन भी असफल रहा। दर्दकी हालत बता रही थी कि घावमें पुनः मवाद पड़ गया था। मवाद पड़नेका कारण डाक्टरोंकी समझमें नहीं आ रहा था। जैसा ऑपरेशन हुआ था और जो दवाएँ दी गयी थी, उसको देखते हुए ऐसा होना नही चाहिये था। हारकर डाक्टरोंने कहना आरम्भ कर दिया कि शायद पैरका पूरा पंजा काटना पड़ जाय।

यह सुनते ही परिवारके हम सभी लोग घबरा उठे। घावकी स्थितिको देखकर डाक्टरोंने जो कहना आरम्भ कर दिया था, उससे घरमें चिन्ता होने लग गयी। यह तो याद नहीं, परंतु परिवारके किसी व्यक्तिने सुझाव देते हुए पिताजीसे कहा– पैरको कटवानेसे पहले एक बार विदेश जाकर किसी कुशल डाक्टरको दिखवा लेना चाहिये।

इस बातको सुनकर पिताजीने कहा– यदि चिकित्साके लिये विदेश जाना होगा तो मैं तभी विदेश जा सकता हूँ, यदि श्रीभाईजी (अर्थात् पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भी साथ-साथ चलें।

पिताजीकी बात सुनकर हमलोगोंका मन निराशासे भर गया। विदेश जानेकी शर्त बड़ी कठिन थी कि ताऊजी साथ-साथ चलें। प्रथम, ताऊजीपर बहुत अधिक कार्य-भार था 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादक होनेके नाते। उस उत्तरदायित्वके प्रति उनके द्वारा उपेक्षा अथवा उदासीनताकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। द्वितीय, बाबाका इन दिनों कठोर काष्ठ मौन व्रत चल रहा था और ताऊजीके साथ बाबा जायेंगे ही, अतः बाबाकी सेवा तथा भिक्षा आदिकी व्यवस्थाका प्रश्न था। काम-चलाऊ व्यवस्थाके लिये भी कई लोगोंको साथ ले जाना पड़ेगा। और क्या इस सहयोगियोंकी 'बरात' लेकर चलना ताऊजीको स्वीकार होगा? मनमें बड़ी दुविधा मची हुई थी, इसके बाद भी सारी परिस्थितिका निवेदन करते हुए मैंने ताऊजीको सारी बात बतलायी। मुझे अब यह स्मरण नहीं कि मैंने सब बातें टेलीफोन द्वारा बतलायी थी अथवा पत्र द्वारा।

उन सब बातोंको जानते ही ताऊजीने विदेश चलनेके लिये अपनी सहमति प्रदान कर दी। इससे ताऊजीके परिचितजनोंको तथा परिकरोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। विदेश-यात्रा करनेमें पद-पदपर परेशानी-ही-परेशानी थी और कई लोगोंको साथ ले जानेमें व्ययकी भी सीमा नहीं थी। कितनी ही परेशानी हो और कितना ही व्यय हो, वह सब नगण्य था ताऊजीके लिये पिताजीकी इच्छाको पूर्ण करने हेतु। पिताजीके प्रति वात्सल्यके इस अनोखे ज्वारको देखकर क्या छोटे क्या बड़े, सभी आश्चर्य करने लगे।

ताऊजीसे सहमतिका समाचार मिलते ही हमलोगोंके मनमें सान्त्वना और आशाका संचार हुआ यह देखकर कि अब विदेश-यात्राकी सम्भावना बन गयी है। ताऊजीने अपनी सहमति प्रदान करते हुए यह भी कहा कि विदेश जानेके पहले अन्तिम प्रयोगके रूपमें घावका एक बार और ऑपरेशन यहाँ करवा लेना चाहिये। यह सुझाव हमलोगोंको जँचा और पुनः, अर्थात् तीसरे ऑपरेशनकी तैयारी की जाने लगी।

रतनगढ़में ताऊजीने एक कार्य और किया। विदेश-यात्रा-सम्बन्धी अपनी सहमति प्रदान करनेके बाद तुरन्त उन्होंने एक श्रेष्ठ विप्रवरको बुलाकर पिताजीके स्वास्थ्यलाभके लिये एक अनुष्ठान आरम्भ करवा दिया। उस अनुष्ठानमें जपके लिये ताऊजीने अपनी निजी रुद्राक्षमाला दी थी। ताऊजीने जो संकल्प, जो मन्त्र, जो विधि और जो नियम बतलाये थे, उसके अनुसार वे विप्रवर देवाराधन करने लगे। देवाराधनको आरम्भ करनेके समय विप्रवरको जो शुभ शकुन हुए, उसको उन्होंने परम-परम मंगलमय माना एवं अनुष्ठानकी सफलताके प्रति उनकी आस्था बहुत बढ़ गयी।

वे विप्रवर जो अनुष्ठान कर रहे थे, उन्हें कोई दिव्यानुभव हुआ, जो शुभका सूचक था। उन्होंने अपने अनुभवकी जानकारी ताऊजीको दी, जिसे सुनकर ताऊजीने हल्की-सी मुस्कान बिखेर दी। इस रहस्यभरी मुस्कानका उन विप्रवरने उस समय यही अर्थ लगाया कि उन शुभ शकुनों तथा इस दिव्यानुभवके पीछे ताऊजीकी ही कोई भावना परोक्ष रूपसे क्रियाशील है। जब तीसरी बार ऑपरेशन हुआ तो घावके अन्दरसे कोयलेका एक बहुत छोटा-सा टुकड़ा निकला। इसी विजातीय वस्तुके अन्दर रह जानेके कारण घाव पक जाया करता था। उसके निकलते ही घाव क्रमशः अच्छी प्रकारसे भर गया और पिताजी स्वस्थ हो गये।

ताऊजीके उस अपार वात्सल्य, सफल देवाराधन, सतत हितचिन्तन और परोक्ष-प्रियताकी बात जब याद आती है तो हृदय भर-भर आता है।

[२] श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीका जीर्णोद्धार

शताब्दियोंसे चली आती हुई जनश्रुतियों, पुरातत्त्व-विभागद्वारा समय-समयपर की गयी खोजों, उत्खननसे मिलनेवाले अति प्राचीन अवशेषों तथा इतिहासज्ञोंके गहन अध्ययनपूर्ण अनुसन्धानोंसे यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि मथुराका आधुनिक केशव कटरा ही वह स्थान है, जहाँ मथुरापति कंसका कारागार था और जहाँ देवकीनन्दन-वसुदेवसुवन भगवान श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव हुआ था। इस स्थानपर सबसे पहला मन्दिर भगवान श्रीकृष्णके प्रपौत्र श्रीवज्रनाभने अपने कुलके अवतंस एवं आराध्यकी अर्चना हेतु श्रद्धापूरित हृदयसे बनवाया। यह निर्दिष्ट कर सकना कठिन है कि किस समय और किन कारणोंसे इस मन्दिरका अस्तित्व विलुप्त हो गया, किन्तु उपलब्ध तथ्योंके आधारपर ऐसा ज्ञात होता है कि फिर ईसा-पूर्व ८०-५७ की अवधिमें महाक्षत्रप सोडाषके राज्यकालमें श्रीवसु नामक एक व्यक्तिने श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर एक मन्दिर, तोरणद्वार और वेदिकाका निर्माण करवाया था। कालान्तरमें यह मन्दिर भी काल-कवलित हो गया।

इसके उपरान्त तीसरा बड़ा मन्दिर सन् ४०० ई. के लगभग सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके शासन कालमें बना। इस विशाल मन्दिरके समीप बौद्ध एवं जैनियोंके विहार एवं मन्दिर बने हुए थे। इससे स्पष्ट है कि भगवान श्रीकृष्णका मन्दिर बौद्ध एवं जैन मतानुयायियोंके लिये भी आदरणीय एवं सम्माननीय था। उन दिनों वैष्णव मतके साथ-साथ हिन्दू धर्मके अंगभूत बौद्ध एवं जैन मत भी उत्कर्षको प्राप्त थे।

सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यद्वारा निर्मित इस भव्य मन्दिरको सन् १०१७ ई. में महमूद गजनवीने लूटा और तोड़ा। फिर सन् ११५० ई. में श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर पुनः एक नवीन

विशाल मन्दिरका निर्माण हुआ। तब मथुरापर महाराज विजयपाल देवका शासन था। यह विशाल मन्दिर पुनः विधर्मियोंद्वारा सोलहवी सदीमें सिकन्दर लोदीके शासनकालमें विनष्ट कर दिया गया। इस विध्वंशके लगभग १२५ वर्ष बाद मुगल बादशाह जँहागीरके शासनकालमें ओरछा नरेश राजा बीरसिंहजूदेव बुन्देलाने उस स्थानपर तैतींस लाख रुपयोंकी लागतसे बहुत विशाल मन्दिर बनवाया। भगवान श्रीकृष्णकी प्राकट्यस्थलीपर निर्मित इस विशाल मन्दिरकी कल्पनातीत भव्यता धर्म-मदान्ध औरंगजेबसे देखी नहीं गयी। अपने मजहबी जुनूनके वशीभूत होकर अन्य-धर्म-असहिष्णु औरंगजेबने सन् १६६९ ई. में ओरछा नरेश निर्मित उस मन्दिरको तुड़वाकर नष्ट कर दिया और उस मन्दिरकी बड़ी कुर्सीके एक भागपर मन्दिरके मसालेसे ही एक ईदगाह बनवा दी, जो अब तक खड़ी है। औरंगजेबद्वारा की गयी विध्वंस-लीलाके बादसे श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थली खण्डहरोंके रूपमें ही पड़ी रही। किसीने भी उसके उद्धार हेतु प्रयत्न नहीं किया।

सन् १९४३ ई.के आस-पासकी बात है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके संस्थापक एवं हिन्दुत्व-निष्ठाके मूर्तिमान स्वरूप महामना पण्डित श्रीमदनमोहनजी मालवीयने जब अत्यधिक उपेक्षित श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीके खण्डहरोंको देखा तो उनका तन-मन सिहर उठा। मस्जिदके आसपास घोसियोंकी बसावट थी। हिन्दुओंकी परमपवित्र परमपूज्य भूमिका ऐसा दुरुपयोग हो रहा था कि वहाँके वातावरणमें भीषण दुर्गन्ध व्याप्त थी और आहार-विहार-रत शूकर यहाँ-वहाँ डोल रहे थे। श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलींकी भूमिपर जहाँ-तहाँ गन्दगी दिखलायी दे रही थी। गिरे हुए परकोटेका मलवा चारों ओर फैला हुआ था। भूमि ऊँची-नीची तो थी ही, वहाँके गड्ढे बरसातमें पोखरे बन जाते थे। नित्य वन्दनीय भूमिकी नितान्त उपेक्षापूर्ण दुर्दशा देखकर पूज्य श्रीमालवीयजीका हिन्दू हृदय कराह उठा और उन्होंने वहीं श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीके पुनरुद्धारका संकल्प किया।

लगभग इसी समय धर्मप्राण श्रीजुगलकिशोरजी बिड़ला मथुरा पधारे और हिन्दू जातिकी धार्मिक-पौराणिक-ऐतिहासिक भूमि श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीकी दयनीय दशा देखकर उनका धर्म-प्रवण-हृदय अत्यधिक प्रपीड़ित हो उठा। मथुरासे लौटकर श्रीबिड़लाजीने श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीकी दुर्दशाके बारेमें पूज्य श्रीमालवीयजीको पत्र लिखा। श्रीबिड़लाजीका पत्र पहुँचे, इसके पहले ही पूज्य श्रीमालवीयजी बिड़लाजीको इस सम्बन्धमें पत्र लिख चुके थे।

दो महान विभूतियोंके हृदयमें श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीके पुनरुद्धारके पावन एवं दृढ़ संकल्पका उदय हुआ और एतदर्थ प्रयासका आरम्भ हो गया। ७ फरवरी १९४४ के दिन दानवीर श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाने राजा पटनीमलके तत्कालीन उत्तराधिकारियोंसे केशवदेव कटरा खरीद लिया। पुनरुद्धारके कार्यकी योजना बन ही रही थी कि पूज्य श्रीमालवीयजीका निधन हो गया और बड़े खेदके साथ लिखना पड़ रहा है कि उनके जीवनकालमें योजना पूर्ण नहीं हो सकी। पूज्य श्रीमालवीयजीकी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये श्रीबिड़लाजीने ऐडवोकेट श्रीद्वारकानाथजी भार्गवके परामर्शके अनुसार दि. २१ फरवरी १९५१ को 'श्रीकृष्ण जन्मभूमि ट्रस्ट' नामक एक न्यासकी स्थापना की, जिसका उद्देश्य है कि भगवान श्रीकृष्णकी पवित्र प्राकट्यस्थलीका सर्वांगीण विकास करके उसको ऐसा रूप प्रदान किया जाय जो भारतीय नीति, संस्कृति, धर्म और दर्शनका केन्द्र बन जाय, जिसके द्वारा देश-विदेशमें श्रीमद्भागवत

एवं श्रीमद्भगवद्गीताका संदेश प्रचारित होता रहे और जनताका आध्यात्मिक, सामाजिक एवं शारीरिक विकास हो।

श्रीकृष्ण जन्मभूमि ट्रस्टकी स्थापना सन् १९५१ में हुई थी, किन्तु सन् १९५३ तक कोई कार्य नहीं किया जा सका। मुसलमानोंकी ओरसे सन् १९४५ में किया गया अधिकार-प्राप्तिका एक मुकदमा इलाहाबाद हाईकोर्टमें निर्णयाधीन था। ७ फरवरी १९५३ को यह मुकदमा खारिज कर दिया गया। इतना ही नहीं, मुसलमानोंकी ओरसे अदालत दीवानी, फौजदारी, माल, कस्टोडियन एवं हाईकोर्ट- सभी न्यायालयोंमें एवं नगरपालिकामें मुकदमें चलाये जा रहे थे। श्रीकृष्ण जन्मभूमि ट्रस्टको अपने सतत्त्व एवं अधिकारकी पुष्टि एवं रक्षाके लिये बहुत व्यय एवं परिश्रम करना पड़ा। भगवानकी कृपासे सभी मुकदमोंके निर्णय श्रीकृष्ण जन्मभूमि ट्रस्टके पक्षमें हुए।

अब सबसे पहला कार्य था भूमिको स्वच्छ एवं समतल करनेका। १५ अक्टूबर १९५३ को विशाल श्रम-दान-यज्ञका शुभारम्भ हुआ। इस महान श्रमदान-यज्ञमें प्रथम आहुति दी पूज्य स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजने। मथुरा नगरके युवकों एवं विद्यालयोंके छात्रोंके सहयोगकी जितनी सराहना की जाय, वह अल्प ही रहेगी। भूमिको स्वच्छ एवं समतल करनेका कार्य तत्परतापूर्वक बड़ी लम्बी अवधितक चलता रहा।

भूमिके कुछ भागके स्वच्छ और समतल हो जानेपर यहाँपर किसी मन्दिरके निर्माणकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। भगवानके मंगलमय विधानसे सन् १९५६ ई. में 'कल्याण' के प्रवर्तक-सम्पादक संतप्रवर श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार छः सौ भक्तोंके साथ रेल द्वारा भारतके तीर्थोंके दर्शनके उपक्रममें मथुरा पहुँचे। अपने परिवारके साथ वे मथुरा स्थित श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर अपने श्रद्धासुमन अर्पण करनेके लिये गये। अपने जीवनाराध्य भगवान श्रीकृष्णकी उस पावनतम प्राकट्यस्थलीकी उपेक्षित दशाको देखकर उनके कोमल हृदयमें कितनी व्यथा हुई, इसकी कल्पना एक साधारण मानव कर ही नहीं सकता। सं. २०१२ वि. माघ कृ. १० सोमवार, ६ फरवरी १९५६ के दिन मथुराके 'लक्ष्मीदास भवन' में तीर्थयात्रियोंके सम्मानमें एक समारोहका आयोजन किया गया था। इस समारोहमें भाषण देते समय उनकी व्यथा उमड़ पड़ी थी। मथुराके नागरिकोंके समक्ष श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने कहा—

श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीकी दुर्दशा देखकर आँखोंमें आँसू आ गये। श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर बनी हुई यह मस्जिद तो राक्षसी अत्याचारका 'स्मारक' है, जो स्वतन्त्र भारतके लिये और भारतके अच्छे मुसलमानोंके लिये भी कलंक है। मुसलमानोंको चाहिये कि वे हिन्दुओंका यह परम पवित्र स्थान हिन्दुओंको सौंपकर अपना ऐतिहासिक कलंक धो डालें और हिन्दुओंसे सहानुभूति तथा सच्चा प्रेम प्राप्त करें। हमारी धर्मनिरपेक्ष सरकारका भी यह परम आवश्यक कर्तव्य है कि वह किसी एक धर्म-विशेषपर किये हुए घोरतम अत्याचारकी इस घृणित स्मृतिको मिटाकर यहाँके सब निवासियोंको धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करें। हिन्दुओंका तो यह परम पुनीत कर्तव्य और धर्म है ही कि वे अपने इस महान पवित्र, धार्मिक तथा ऐतिहासिक स्थानका सर्वांगीण उद्धार करके इसे पुनः ऐसा विशाल और सुन्दर बना दें कि जिससे शताब्दियोंतक यह स्थान भगवान श्रीकृष्णकी मधुर और गौरवमयी स्मृति दिलाकर विश्ववासियोंके मनोंको महान

आध्यात्मिक तथा विश्वकल्याणमयी प्रेरणा देता रहे। हिन्दुमात्रको यथासाध्य पूरे मनसे इसकी सहायता करनी चाहिये।

उस समय वहाँ मेरे पूज्य श्रीपिताजी (पूज्य श्रीजयदयालजी डालमिया) भी थे। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके विशेष स्वजन एवं परम कृपापात्रके रूपमें पिताजीकी गणना की जा सकती है। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीकी आँखोंमें अश्रुओंको देखकर समर्पित-जीवन पिताजी अत्यधिक भाव-विह्वल हो उठे और उन्होंने प्राकट्यस्थलीकी उत्तरी दीवालके मरम्मत करवानेके लिये तथा भगवान केशवदेवका मन्दिर बनवानेके लिये तत्काल घोषणा कर दी। मथुराके नागरिकोंने तथा व्रजमण्डलके सभी संतों-महन्तोंने, पण्डितों-विद्वानोंने भावभरे हृदयसे इसकी सराहना करते हुए कहा था कि श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीका आगमन एवं श्रीमंत श्रीडालमियाजीकी घोषणा आगामी महान कार्यकी शुभ-भूमिका एवं भावी महान उत्कर्षकी पूर्व-सूचिका है।

मन्दिर-निर्माणकी घोषणासे प्रसन्नता सभी को हुई, परंतु मेरा विश्वास है कि सर्वाधिक प्रसन्नता हुई पूज्य श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाको। पूज्य श्रीपोद्दारजीके उद्‍बोधक भाषण एवं पिताजीके पुनीत निश्चयका संवाद जब पूज्य श्रीबिड़लाजीको मिला, उनका मन अत्यधिक प्रफुल्लित हो उठा। पिताजीके प्रति पूज्य श्रीबिड़लाजीके हृदयमें बड़ी आत्मीयता थी तथा वे पिताजीके धर्मकार्यके प्रति उत्साह एवं अभिरुचिसे भी पूर्ण परिचित थे, अतएव पिताजीको उन्होंने बुलाया और कहा— जयदयाल! भगवान श्रीकृष्णकी प्राकट्यस्थलीके जीर्णोद्धार एवं उसके विकासका कार्य साधारण नहीं, महान ऐतिहासिक एवं अतिश्रेष्ठ धार्मिक कार्य है। इस संपूर्ण कार्यको तुम सँभाल लो। मेरी हार्दिक कामना है कि इस महान गौरवपूर्ण कार्यके सम्पन्न होनेका श्रेय तुमको प्राप्त हो। इस कार्यमें तुम्हें भगवानकी कृपा, संतोंका अनुग्रह और गुरुजनोंका शुभ आशीर्वाद मिलेगा।

पूज्य श्रीबिड़लाजीके उद्‍गारोंको सुनकर पिताजीका हृदय अत्यधिक उर्मिल हो उठा। पुलकित-हृदय पिताजीने उनकी प्रेरणाको अपने जीवनका मुख्य कार्य बना लिया। शीघ्र ही मन्दिर-निर्माणका कार्य आरम्भ हो गया। मन्दिर बन जानेके बाद गर्भ-गृहमें पधरानेके लिये भगवानके बाल-स्वरूपकी मूर्ति सम्मान्‌नीय श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाने प्रदान की। मन्दिरमें भगवद्‌विग्रहकी प्राण-प्रतिष्ठा सं. २०१४ वि. आषाढ़ शु. २ शनिवार, २९ जून १९५७ को रथ-यात्राके शुभ दिन हुई और इसका उद्‌घाटन भगवान श्रीकृष्णके प्राकट्य-दिवस श्रीकृष्णजन्माष्टमीके पुनीत अवसरपर सं. २०१५ वि. भाद्र कृ. ८ शनिवार, ६ सितम्बर १९५८ को श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने किया। इस श्रीकृष्णजन्माष्टमीके दिन श्रीकेशवदेव मन्दिरके उद्‌घाटन-महोत्सवके अवसरपर भाषण देते हुए श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने भगवान श्रीकृष्णकी भगवत्ता-महत्ता-पौराणिकता-ऐतिहासिकता-गुणगणनिलयता आदि अनेक पक्षोंपर प्रकाश डालते हुए उनके परमोज्ज्वल लोकोत्तर महादिव्य स्वरूपका जो प्रस्तुतीकरण किया, वह अपने ढंगका अनूठा था। जिन महापुरुषोंके संकल्प एवं सहयोगसे तथा जिन कार्यकर्ताओंकी कर्मठता एवं तत्परतासे श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीका जीर्णोद्धार हो सका, उनके प्रति आभार प्रकट हुए श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने कहा— हम कृतज्ञ हैं प्रातः स्मरणीय महामना श्रीमालवीयजीके तथा आदर्श चरित्र धर्म-हृदय श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाके, जिनके उत्साह, लगन, सदाग्रह, अध्यवसाय, प्रयत्न तथा उदारतासे यह श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थली पुनः श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीके

गौरवको प्राप्त कर सकी। आरम्भसे लेकर अबतकके इसके कार्यसंचालक, इसकी समितिके उत्साही तथा कर्मठ सदस्य भी समस्त देशवासियोंकी कृतज्ञताके पात्र है।

अपने इसी भाषणमें उन्होंने मुसलमान भाइयोंसे अनुरोध करते हुए कहा— *किसी एक पद्धतिसे होनेवाली पूजास्थलीको तथा किसी अवतार अथवा महापुरुषके जन्म या लीला-स्थलको बलात्कारसे हस्तगत करके उसपर अपना अधिकार जमाना पाप है और ऐसा अधिकार जबतक रहता है, तबतक वह कलंक, वह पाप, उस पापकी स्मृति तथा तज्जन्य राग-द्वेष बना रहता है। हमारे मुसलमान भाइयोंको चाहिये कि वे इन पाप-कलंकोंके जितने 'स्मारक' हैं, जैसे श्रीकाशीके पवित्र मन्दिर (श्रीविश्वनाथ मन्दिर), अयोध्यापुरीके पावन स्थल (श्रीराम प्राकट्यस्थली), सिद्धपुरके मन्दिर तथा अन्यान्य सभी पवित्र स्थान, उन सबको पुण्य दर्शन बना दें।*

भगवान श्रीकेशवदेवके मन्दिरका कार्य हो जानेके बाद संतों-भक्तोंका ध्यान श्रीकृष्ण-चबूतरेके जीर्णोद्धारकी ओर गया और सभी स्वजनोंने एतदर्थ श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीसे अनुरोध किया। उन्होंने इस अनुरोधको महदनुकम्पा ही माना। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीकृष्णचबूतरेके जीर्णोद्धारके सम्बन्धमें मेरे पिताजीसे परामर्श किया। यह कार्य आवश्यक तो था ही। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी एवं पूज्य श्रीपिताजीकी प्रेरणासे परमादरणीय श्रीरामनाथजी गोयन्दकाने यह शुभ कार्य अपने हाथमें लिया। अपनी दिवंगत धर्म पत्नीकी स्मृतिमें उन्होंने श्रीकृष्णचबूतरेका जीर्णोद्धार करवाया। सन् १९६२ में यह कार्य सम्पन्न हुआ।

श्रीकृष्णचबूतरेके जीर्णोद्धारके समय एक विशेष मंगल प्रसंग सामने आया। नींवके लिये खुदाई करते-करते भूमिके नीचे वह विशाल कक्ष दिखलायी दिया, जो पहले श्रीओरछा-नरेश-निर्मित मन्दिरका गर्भ-गृह था। इस गर्भ-गृहको यथावश्यक मरम्मत कराकर ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रखा गया। गर्भ-गृहके उस प्राचीन सिंहासनपर ही देवकी-वसुदेव-सहित श्रीकृष्णजन्मकी झाँकियाँ चित्रित कर दी गयी हैं।

भगवान श्रीकृष्णका वाङ्मय स्वरूप श्रीमद्भागवत है और श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके नित्य सहचर पूज्य श्रीराधाबाबा (पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज) के मनमें यह भाव स्फुरित हुआ कि व्रजमण्डलमें कहीं एक ऐसे मंदिरका निर्माण होना चाहिये, जिसकी दीवालोंपर सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतके श्लोक अंकित हों। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने इस स्फुरणाका उल्लसित अन्तरसे अनुमोदन किया। इसका परिज्ञान पूज्य श्रीपिताजीको होते ही उन्होंने परम पूज्य श्रीबाबा एवं परम श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीकी भावनाको साकार रूप प्रदान करनेके लिये मन-ही-मन तुरन्त संकल्प कर लिया और वे कार्य-प्रवृत्त हो गये। यह भी निश्चित हो गया कि इस मन्दिरका नाम 'भागवत भवन' होगा।

जब यह योजना लोगोंके सामने आयी तो पारस्परिक विचार विनिमय, इसमें भी मुख्यतः पं. श्रीदेवधरजी शर्माके सुझावके उपरान्त पूज्य श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाकी प्रेरणासे यही निर्णय लिया गया कि भागवत भवनका निर्माण भगवान श्रीकृष्णकी प्राकट्यस्थलीपर ही होना चाहिये। निर्णयके अनुसार इस दिशामें तत्काल कार्य आरम्भ कर दिया गया और सं. २०२१ वि. माघ शुक्ल १०, बृहस्पतिवार ११ फरवरी १९६५ के शुभ दिवस संतप्रवर

श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके कर-कमलोंसे शिलान्यासका कार्य सम्पन्न हुआ।

शिलान्यास महोत्सवका एक विशिष्ट दृश्य यहाँ मुख्य रूपसे उल्लेखनीय है। यह महोत्सव २० दिनोंतक चलता रहा। इस अवधिमें रासलीला हुई, श्रीमद्भागवतकी कथा हुई, संतों-विद्वानोंके प्रवचन हुए, प्राकट्यस्थलीकी बड़ी सजावट हुई और रात्रिमें विद्युत्शृंगारकी जगमगाहट बड़ी दर्शनीय रही। यह सब हुआ, किन्तु इनके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतके मूल संस्कृत श्लोकोंका जो सस्वर पाठ लगभग ३५० भागवती पण्डितों द्वारा सप्ताह पर्यन्त हुआ, वह दृश्य स्थानीय एवं आगन्तुक सभी भक्तोंके लिये विशेष आकर्षण एवं आदरका केन्द्र-बिन्दु बना हुआ था। श्रीमद्भागवतका यह सामूहिक सप्ताह-परायण श्रीकृष्णचबूतरेपर बने हुए एक अति विस्तृत-सज्जित पंडालके नीचे हो रहा था। भागवती पण्डितोंके सामूहिक सस्वर पाठसे सारा वायुमण्डल गूँज उठता था। मेरा अनुमान है कि इस प्राकट्यस्थलीपर भगवान श्रीकृष्णके यशोगानका ऐसा विशद आयोजन शायद ही कभी भूतकालमें हुआ हो। संध्याकालमें श्रीमद्भागवत पुराणकी आरतीके समयका दृश्य तो और भी भावोद्वेलक एवं प्रभावोत्पादक होता था। आरती-गायनके साथ-साथ जब श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी श्रीमद्भागवतपुराणका नीराजन करते थे, उस दृश्यको देखनेके लिये सारा भक्त-समुदाय उमड़ पड़ता था। आरती हो चुकनेपर विप्रमण्डल वेद-मंत्रोंके तुमुल एवं ललित उच्चारणद्वारा जब देव-स्तवन करता और स्तवनोपरान्त श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी जब पुष्पाञ्जलि अर्पित करते, उस समय कण्ठ-कण्ठसे जय-नाद फूट पड़ता था। पन्द्रह वर्ष पहले जो श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थली अति उपेक्षितावस्थामें दुर्गन्ध एवं मलिनताका आगार बनी हुई थी, आज वही स्थान अति सुसज्जितावस्थामें सौरभ और श्रेष्ठताका भण्डार बनकर जन-जनके द्वारा समादृत हो रही थी।

यहींपर प्रसंगानुरोधसे एक तथ्यका रहस्योद्घाटन समुचित रहेगा।

श्रीमद्भागवत-परायणके इतने विशद एवं विशाल आयोजनके पीछे एक विशेष हेतुका आभास स्पष्ट रूपसे मिल रहा है। श्रीमद्भागवतके ३५० सस्वर पाठके द्वारा श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीकी संशुद्धीकरणकी प्रक्रिया ही सम्पन्न की है। भगवान श्रीकृष्णकी प्राकट्यस्थली होनेके कारण त्रिकालमें भी इस भूमिके अपवित्र होनेकी सम्भावना है ही नहीं, किन्तु विधर्मियोंद्वारा समय-समयपर जो कुत्सित कृत्य हुए हैं, उससे इस पावन भूमिके वातावरणपर पाप-पंकिलताका आवरण तो यत्किंचित् रूपमें आ ही गया था, उस आवरणका निवारण आवश्यक था। भागवत-पाठके द्वारा इस उद्देश्यकी सिद्धि हुई है। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके कार्य करनेकी शैली ऐसी थी कि न कहीं विज्ञापन, न तनिक प्रचार, न कुछ चर्चा और बड़ी सहज रीतिसे भूमि-संशुद्धिका महान कार्य स्वतः सिद्ध हो गया। सारा कार्य स्पष्ट रूपसे हुआ, फिर भी सब कुछ अस्पष्ट रहा। इस प्रच्छन्न हेतुका, इस सफल संयोजनका, इस महान सिद्धिका और इन ऋषि-सूत्रधारका बार-बार अभिनन्दन।

श्रीपोद्दारजीकी प्रेरणा-प्रोत्साहन-प्रयास-प्रवृत्तिसे श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीका जो वर्तमान रूप उभरकर जगतके सामने आया, उस उज्ज्वल रूपको देखकर पूज्य श्रीमालवीयजीकी दिवंगत आत्माको अवश्य ही परम प्रसन्नता हुई होगी। इस प्राकट्यस्थलीकी उन्नतिके रूपमें अपनी अभिलाषाको पूर्ण होते देखकर वे श्रीपोद्दारजीको न जाने कितना शुभाशीर्वाद दे रहे होंगे।

इतना ही नहीं, इस प्राकट्यस्थलीकी जीर्णावस्थासे उद्धार एवं उत्कर्षकी ओर बढ़ते चरणोंको देखकर श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाकी दिवंगत आत्माको भी न जाने कितना परितोष हो रहा होगा और वे भी परम पूज्य श्रीपोद्दारजीको न जाने कितना साधुवाद अदृश्य रूपमें दे रहे होंगे।

भागवत भवनके निर्माणका भव्य स्वप्न ऐसा श्रेष्ठ था कि इसमें युग-युगतक धर्म-भावके संपोषण एवं जन-जनमें भक्ति-भावके प्रसारण करनेकी कल्याणमयी समर्थ संभावना संनिहित थी। इसीलिये तो पूज्य श्रीबाबाके मानसमें उदित इस श्रेष्ठ स्वप्नका श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने उन्मुक्त स्वरमें अनुमोदन किया था। इस युगल विभूतिके धर्म-संपोषक एवं भक्ति-प्रसारक श्रेष्ठ स्वप्नको साकार करनेके लिये श्रद्धामूर्ति मेरे पिताजीने अपना तन-मन-धन-जीवन सारा लगा दिया। श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर जो-जो भी कार्य हुए, इन सबके सम्बन्धमें पूज्य पिताजी प्रत्येक निर्णय श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीसे परामर्श करके ही लिया करते थे। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीकी कार्य-प्रक्रिया भी अद्‌भुत थी। वे ध्वंसात्मक नहीं, रचनात्मक प्रक्रियामें विश्वास रखते थे। प्रहार प्रति-प्रहारको जन्म देता है, अतः प्रहार नहीं, प्रगति करो। धैर्य खोकर प्रहार करनेसे अपनी शक्तिका क्षय होता है तथा पथमें बाधा आती है। धैर्य रखकर निष्ठापूर्वक प्रगति करनेसे अपनी शक्तिका सदुपयोग होता है तथा लक्ष्यकी सिद्धि होती है। प्रहार ध्वंसात्मक प्रक्रिया है, प्रगति रचनात्मक। श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी बार-बार यही कहते थे कि निष्ठापूर्वक अपने पथपर प्रगति करो। यदि कोई रेखा छोटी करनी हो तो उस रेखाको मिटानेकी चेष्टा मत करो, अपितु उसके समानान्तर एक बड़ी रेखा खींच दो, स्वतः ही पहले वाली रेखा छोटी पड़ जायेगी। इस कार्य-प्रक्रियाका सुन्दर परिणाम आगे चलकर हिन्दू समाजको मिला। भागवत-भवनके बन जानेपर सबने देखा कि डेढ़ सौ फीटकी ऊँचाईपर मन्दिरके स्वर्ण-मण्डित-कलशकी दिव्याभा प्रत्येक दर्शनार्थीकी दृष्टिको स्वतः आकृष्ट कर लेती है। इस ऊँचाईके समक्ष ईदगाह ओछा लगता है। वास्तविकता यह है कि स्वर्णकलशकी दिव्याभाके माध्यमसे सत्य एवं श्रद्धाकी गरिमा ही उद्‌भासित हो उठी है। सत्य एवं श्रद्धाको तपना अवश्य पड़ता है, परंतु अन्तमें विजय सत्य एवं श्रद्धाकी ही होती है और अत्याचारको मस्तक झुकाना पड़ता है।

पूज्य पिताजीने श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके महान स्वप्नको सकार करनेके लिये जिस तत्परतासे जितना परिश्रम किया, वह सदा ही स्मरणीय रहेगा। ढलती आयुवाले पिताजीके श्रमको देखकर एक युवककी क्षमता भी लजा जाती थी। पके केश एवं साधारण वेश वाले पिताजीका स्वास्थ्य प्रायः शिथिल ही रहता था, इसके बाद भी उन कार्यरत पिताजीके साथ स्वस्थ व्यक्ति भी कदमसे कदम नहीं मिला पाते थे। सच्ची बात यह है कि महान उद्देश्यके लिये जीवनोत्सर्गकी भावना अमित क्षमता, अतुल योग्यता और असीम पात्रता प्रदान कर देती है। पिताजीने स्वयं खड़े होकर पूरा निर्माण कार्य करवाया। उस अनोखी तत्परता एवं अनवरत परिश्रमका ही परिणाम था कि भागवत भवनके निर्माणका महान आध्यात्मिक स्वप्न १७ वर्षोंमें मूर्तिमान हो उठा। भागवत भवनकी दीवालोंपर श्रीमद्‌भागवतके श्लोकोंको अंकित करनेके लिये बारहों स्कन्धोंके सभी श्लोकोंको पिताजीने ताम्र-पत्रोंपर उत्कीर्ण करवाया। ये ताम्र-पत्र भागवत भवनके परिक्रमा-पथमें लगाये जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त मेरी परम पूजनीया माताजीके नामसे एक विशाल अन्तराष्ट्रीय अतिथि-गृहका भी निर्माण हुआ है, जो आवासकी आधुनिक सुविधाओंसे युक्त है और जहाँ देश-विदेशके पर्यटक एवं तीर्थयात्रीगण ठहरा करते हैं।

इस विशाल ऐतिहासिक मन्दिर 'भागवत-भवन' की प्राण-प्रतिष्ठाका कार्य सं. २०३८ वि. फाल्गुन कृ. ४ शुक्रवार, १२ फरवरी १९८२ को सम्पन्न हुआ। मेरा अपना आन्तरिक विश्वास है कि प्राण-प्रतिष्ठा-महोत्सवमें श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी अप्रत्यक्ष रूपसे विद्यमान थे, तभी तो सारा कार्य सानन्द-सोत्साह सम्पन्न हो गया। हाँ, एक बात और है। यदि वे इस अवसरपर प्रत्यक्ष रूपसे होते तो हम लोगोंको अतीत आनन्द होता। भागवत-भवन-निर्माणके कार्यकी पूर्णताको देखकर उन्हें जो प्रसन्नता होती, उनके उस प्रसन्न मुख मण्डलको देखकर हमलोगोंका आनन्द अनन्त गुणा विवर्धित हो जाता। भले वे आज हमारे सामने नहीं हैं, परंतु यही हमारे लिये परमाह्लाद-प्रदायक है कि उनका महान स्वप्न उनकी अनुपस्थितिमें अपूर्ण नहीं रह पाया।

प्राण-प्रतिष्ठाके कई मास पूर्वकी बात है। पूज्य पिताजीको रह-रह करके भागवत-भवनके शिलान्यासका वह १७ वर्षपूर्व वाला शुभ दिवस याद आ रहा था, जब भवनकी नींव डाली गयी थी। शिलान्यासका वह सारा दृश्य पिताजीकी आँखोंके सामने नाच रहा था। नींव रखनेके लिये अति विस्तृत एवं बहुत गहरा गड्ढ़ा खोदा गया था। उस गहरे गड्ढ़ेमें, जहाँसे नींव उठनी थी, वहाँ आसनपर महाशक्तिस्वरूपा पूज्या श्रीमाँ (श्रीपोद्दारजीकी धर्मपत्नी) बैठी हैं धर्मविभूति श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके पार्श्वमें और इस महान पोद्दारदम्पतिने वास्तु-देवताका पूजन करके अपने कर-कमलोंसे इस भवनकी नींव रखी। जिस भवनकी नींव उस समय रखी गयी थी, उसी स्थानपर निर्मित भागवत भवनमें अब भगवद्विग्रहोंकी प्राण-प्रतिष्ठा होनेवाली है। पूज्य पिताजीके हृदयमें अभिलाषा जाग उठी कि प्राण-प्रतिष्ठा पूज्या श्रीमाँके द्वारा हो। पूज्या श्रीमाँ आज हमारे मध्य विराजित हैं। जिस प्रकार शिलान्यासके समय सारा देवार्चनकार्य पूज्या श्रीमाँके द्वारा हुआ था, उसी प्रकार वे ही अब प्राण-प्रतिष्ठाके अवसरपर भी करें।

पूज्या श्रीमाँसे अनुरोध करनेके लिये एवं परम पूज्य श्रीबाबासे शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये पिताजी गीतावाटिका (गोरखपुर) गये। प्राण-प्रतिष्ठाके शुभ संवादको सुनकर पूज्या श्रीमाँको अतीव आह्लाद हुआ, परंतु वे मथुरा जा सकनेकी स्थितिमें नहीं थी। वृद्धावस्था एवं दुर्बलताके कारण विवशता थी। इस विवश परिस्थितिमें पूज्या श्रीमाँसे जो शुभ संदेश मिला तथा परम पूज्य श्रीबाबासे जो शुभाशीर्वाद प्राप्त हुआ, इसीमें पिताजीने अपना अहोभाग्य समझा। पूज्या श्रीमाँने शुभ संदेश दिया :-

जयदेव,

तुम्हारे भाईजीने जिस 'भागवत-भवन' की नींव डाली थी, उस कार्यको आज सम्पन्न होते देखकर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। तुमने जिस लगन और निष्ठासे इस कार्यको सम्पन्न किया है, उसे देखकर मेरा मन अत्यन्त प्रफुल्लित है।

- रामदेई पोद्दार

परम पूज्य श्रीबाबाने शुभाशीर्वाद दिया-

यह 'भागवत-भवन' कालके प्रवाहमें असंख्य प्राणियोंके परम मंगलका द्वार उद्घाटित करेगा, यह मेरा संशयहीन अचल विश्वास है।

श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर निर्मित श्रीकेशवदेवमन्दिर, श्रीकृष्ण-चबूतरा, श्रीभागवत-भवन प्रतीक हैं, जो श्रद्धाभावनाकी संजीवनी शक्तिके परिचायक हैं। वह संजीवनी शक्ति कालातीत

है। अन्य मतावलम्बियोंकी धार्मिक असहिष्णुताने इस पावन भूमिपर खड़े श्रद्धाके प्रतीकोंको कई बार अपना ग्रास बनाया, किन्तु इतिहासके पृष्ठ साक्षी हैं कि श्रद्धा-भावकी वह सनातन शक्ति समय-समयपर स्वतः ही अभिव्यक्त हो उठी। निष्ठावानके हृदयकी सच्ची श्रद्धाके समक्ष परिस्थितिकी प्रतिकूलता परास्त हो जाती है। जब-जब और जहाँ-जहाँ ऐसी श्रद्धा व्यक्त हुई है, सदैव ही श्रद्धाभिभूत जन-मानसने भावभरे मनसे उन श्रद्धा-प्रतीकोंकी वन्दना की है। वर्तमान युगमें जिन तीन प्रधान महापुरुषोंके सत्य संकल्प एवं प्रबल प्रयाससे हिन्दू हृदयकी श्रद्धा-भावना अभिव्यक्त होकर श्रीकृष्ण-प्राकट्यस्थलीपर मूर्तिमान हो उठी, उनकी प्रतिमाएँ भागवत-भवनमें मुख्य-स्थानपर प्रस्थापित की गयी हैं। ये प्रतिमाएँ प्रस्थापित हुई है पूज्य पिताजीकी कोमल भावनाओंके अनुसार ही। महच्चरणाराधनमें जीवनकी वास्तविक सार्थकता माननेवाले पिताजीके द्वारा प्रतिमा-प्रस्थापनका यह मंगल कार्य उनके स्वभावके अनुरूप ही हुआ है। जिनकी ये प्रतिमाएँ हैं, वे तीन महापुरुष हैं:—
(१) महामना पं. श्रीमदनमोहनजी मालवीय (२) उदार हृदय श्रीजुगलकिशोरजी बिड़ला और (३) धर्म-विभूति श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार।

इस त्रययुगपुरुषोंके श्रीचरणोंमें बार-बार वन्दन। ■

श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र'

[१] सच्चे अर्थमें महापुरुष

'कल्याण'के प्रधान सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार लोगोंमें 'भाईजी' नामसे प्रसिद्ध थे और सचमुच वे सभीके भाई— स्नेहशील भाई थे। मुझे तो निजी अग्रजका-सा स्नेह उन्होंने दे रखा था।

श्रीभाईजीके साथ मेरा सम्पर्क बहुत पुराना है और वर्षों मैं उनके पास रहा हूँ। इस सम्पर्कमें मैंने उन्हें जो देखा और जाना है, उस विषयमें कुछ कहनेसे पूर्व मुझे एक-दो बातें दूसरी कहनी हैं। मैंने संतों-महापुरुषोंकी बहुत-सी जीवनियाँ देखी-पढ़ी हैं, किन्तु श्रीचैतन्य-चरितावलीको छोड़कर शेषसे मुझे प्रायः निराशा ही मिली है। महापुरुषोंकी जीवनियोंके लेखकोंने प्रायः महापुरुषकी महापुरुषताको गौण कर दिया है और महत्त्व जिन चमत्कारोंको दिया है, वे महापुरुषके जीवनमें भी महत्त्वहीन होते हैं और साधक के लिये भी व्यर्थ हैं।

बचपनसे ही मुझे सिद्धियों-चमत्कारोंके होने-घटनेमें विश्वास रहा है, किन्तु उनसे वितृष्णा रही है। अनेक प्रख्यात सिद्ध मिले भी, किन्तु सिद्धियोंके प्रति कुतूहल ही नहीं जागा।

महापुरुषता क्या है? यह है क्लेशकी आत्यन्तिक निवृत्ति। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश— ये पाँच क्लेश हैं। इनमेंसे अविद्या निवृत्त हुई या नहीं, यह स्वसंवेद्य है। इसे कोई दूसरा जान नहीं सकता। अभिनिवेश अर्थात् शरीरको ही सब कुछ मानना, यह साधारण साधकमें भी नहीं होता। अतः दूसरेके लिये अस्मिता अर्थात् सम्मान-सुयश-पदप्रतिष्ठाकी वासना और राग-द्वेष देखना ही सम्भव है और ये जिसमें न दीखें, वही 'महापुरुष' है।

महापुरुषके जीवनमें यह देखा जाना चाहिये कि वह राग-द्वेषसे कितना ऊपर है, कितना सहिष्णु है, कितना निरपेक्ष है। सर्वत्र भगवद्भाव उसमें कितना है। साथ ही उसके संगसे, उसकी प्रेरणासे लोगोंमें कितने सद्गुण, कितना भगवद्भाव आया और कितने दुर्गुण छूटे। चमत्कार ही देने हों तो वे किसी महापुरुषकी जीवनीके परिशिष्ट मात्र हो सकते है।

सहस्रों लोग श्रीभाईजीद्वारा लाभान्वित हुए हैं और उनके सम्पर्कमें रहे हैं। सबको वे अपने लगे हैं। उनके सम्बन्धमें बहुत अधिक गहराईमें जाकर कुछ कहनेकी स्थिति मेरी नहीं है।

मुझ-जैसे व्यक्तिको भी अपना लेना, सह लेना और उसे निर्बाध स्नेह देते रहना, यह मुझे श्रीभाईजीकी महापुरुषताका सबसे बड़ा प्रमाण लगता है, क्योंकि स्वभावसे ही मैं रुक्ष, उद्धत और जो मनमें आये– उचित या अनुचित सो कर बैठनेवाला था। ऐसा निःशंक, निरंकुश, उद्धत व्यक्ति साथ रहे तो उसे निभा लेना क्या सहज है, पर श्रीभाईजीने मुझे निभाया है। कुछ उदाहरण देख लें–

एक सज्जन मुझसे बहुत रुष्ट हो गये। उनका रोष उचित था। श्रीभाईजीको उन्होंने पत्र लिखे, वे लिखते गये। जो भी लिख सकते थे, लिखा। उन्हें क्या पता कि वे पत्र लिखकर कुएँमें डाल रहे हैं। कोई और न सूचित करता कि उन्होंने श्रीभाईजीको पत्र लिखे हैं तो मुझे पता भी नही लगता। श्रीभाईजीके पास किसीकी शिकायत गयी तो वह कुएँमें नहीं, अगाध समुद्रमें डूब गयी। उसकी छाया भी उपर झलकनेवाली नहीं थी।

अब मैं दूसरा प्रसंग बता रहा हूँ। श्रीभाईजीकी ओरसे उनके नाम आये पत्रोंके उत्तर मैं जब भी गोरखपुर रहा, प्रायः देता रहा था। एक बार उनके कमरेमें गया तो देखा कि मेरा लिखा कोई उत्तर बिना भेजे रखा है, पुराना हो गया है। तब पता लगा कि किसीका लिखा कोई उत्तर या दूसरा कोई काम श्रीभाईजीको ठीक नहीं लगता था तो वे स्वयं लिखते थे, किन्तु जिससे त्रुटि हुई है, उसे कुछ बतलाते नही थे। उनका कहना था– इससे उन्हें दुःख होगा।

बहुत पहलेकी बात है। घरमें लौकीका शाक बना। श्रीभाईजीको पहले भोजन करानेको बैठाया गया। उन्होंने अचानक कहा– शाक बहुत अच्छा बना है। मैं शाक ही खाऊँगा। सब मुझे दे दो।

लौकीका जितना शाक बना था, सब वे खा गये। भाभीजी (श्रीभाईजीकी धर्मपत्नी) जब उनकी थालीमें भोजन करने बैठी तो देखा जहाँ लौकीका शाक पड़ा था, वहाँ पड़ा भात कड़वा हो गया था। तब कही पता लगा कि शाक कड़वी लौकीका बन गया था। पूछनेपर श्रीभाईजीने भाभीजीसे कहा– मैं तो चाहता था कि महाराजिनको दुःख न हो किंतु तुमने बतलाकर मेरा उद्देश्य ही नष्ट कर दिया।

उन दिनों गीतावाटिकामें बिजली नहीं थी। मैं दूर कुटियामें सो गया था। अचानक सावित्री (श्रीभाईजीकी सुपुत्री) ने आकर जगाया– बाबूजी मानते नहीं, वे अभीतक जागकर काम कर रहे हैं। आप उन्हें मना कीजिये।

मैंने घड़ी देखी तो रात्रिके ग्यारह बजे थे। उठकर कोठीमें छतपर गया तो देखता हूँ कि श्रीभाईजी कार्बाइडका बदबूदार लैंप जलाये कागजोंको उलटने-पलटने और लिखनेमें लगे हैं। मैंने बिना कुछ कहे लैंप बुझा दिया तो वे चौंके। मुझे देखकर बोले– आप क्यों उठ आये ? दो

पृष्ठ ही और लिखने है। सबेरे अवश्य प्रेसको देने हैं।

मैंने तनिक दृढ़ स्वरमें कहा– अब दो अक्षर भी नहीं। आप उठिये और सो जाइये। मैं सबेरे लिख दूँगा।

कागजोंको समेटते हुए बोले– अच्छा, मैं सोता हूँ। आप जाकर सोइये।

अपने सहकारियों, सेवकों, परिकरों आदि सबके बदले वे स्वयं काम करते थे– करते रहे। किसीको किसी प्रकार भी संकोच या दुःख न हो इसके लिये उनका मन रात-दिन सावधान रहा।

सन् १९५५ की बात है। मैं कैलाश-मानसरोवरकी यात्रा करके लौटा था। थकावटके स्थानपर मनमें उत्साह था। चाहता था कि लगे हाथ मुक्तिनाथ-दामोदरकुण्डकी भी यात्रा हो जाय तो उत्तराखण्डके प्रायः सब तीर्थोकी मेरी यात्रा पूरी हो जाय। मैंने श्रीभाईजीसे मुक्तिनाथ जानेकी अनुमति माँगी और वह मिल गयी।

सितम्बरके दूसरे सप्ताहसे अक्टूबरतक यात्रा होनी चाहिये थी। यही सबसे उपयुक्त मौसम था। सब तैयारी हो ही चुकी थी। सोचा कि गोरखपुरसे ऐसी बस पकड़ेंगे कि उसी दिन हवाई जहाज मिल जाय भैरहवामें और रात्रि व्यतीत करके दूसरे दिन पैदल यात्रा प्रारम्भ कर दें।

सामान बाँध लिया गया। बस-अड्डेके लिये रिक्शा बुला लिया गया। अब मैं श्रीभाईजीको प्रणाम करने उनके कमरेमें गया। श्रीभाईजी गीतावाटिकाके सम्पादन-कार्यालयवाले अपने कमरेमें चटाईपर बैठे थे। कागज देख रहे थे। मैंने जाकर प्रणाम किया। वे बोले– आप जा रहे हैं ?

अचानक श्रीभाईजीने मुख लटका लिया। उनका स्वर भारी और उदास हो गया। वे बोले– जाइये। 'कल्याण'के विशेषांक (सत्कथांक) के लिये अभी चित्र निश्चित नहीं हुए, चित्रकारोंको निर्देश नही दिये गये। मैं खटूँगा- करूँगा ही किसी प्रकार।

सर्वथा अकल्पित बात थी। मैंने बहुत पहले इस यात्राके सम्बन्धमें उनसे पूछ लिया था। उन्होंने प्रसन्न होकर अनुमति दी थी। आवश्यक प्रमाण-पत्र मँगानेमें सहायता की थी। चित्रोंका चुनाव, उनके सम्बन्धमें चित्रकारोंको निर्देश श्रीभाईजी ही सदा करते थे। मैंने बहुत अल्प सहायता ही इसमें कभी-कभी की थी।

सबसे विशेष बात यही थी कि श्रीभाईजीको इस प्रकार बोलते हुए सुननेका यह मेरे लिये पहला अवसर था। आगे भी कभी मैंने उनको इस स्वरमें बोलते हुए नही सुना। मेरे लिये उनका यह स्वर असह्य था। अतः मैंने कह दिया– आप ऐसे क्यों बोलते है ? मना करना है तो सीधे मना कर दीजिये।

इतना सुनते ही उल्लास-भरे स्वरमें पूरे जोरसे श्रीभाईजीने उस समयके सम्पादन-विभागके व्यवस्थापक दूलीचन्दजी दुजारीको पुकारकर कहा– भाया, रिक्शा लौटा दे। सुदर्शनजी नहीं जा रहे हैं।

अब मेरे कहनेको कुछ रह ही नहीं गया था। मैं चुपचाप उठ आया। रिक्शा लौट गया। बिस्तर खोल दिया गया। मनमें कुछ दुःख भी हुआ ही।

दूसरे दिन मैं अपने नित्य कर्मसे निवृत्त हुआ ही था कि श्रीभाईजी मेरे कमरेके द्वारपर आ

खड़े हुए और बोले— सुदर्शनजी ! बड़ी दुर्घटना हो गयी।

मैंने पूछा— क्या हुआ ?

उन्होंने बताया— अभी जिलाधीशका फोन आया था। उन्होंने पूछा था कि आपके यहाँसे जो मुक्तिनाथ जानेवाले थे, वे कल गये या नहीं। मैंने कह दिया कि नहीं गये। उन्होंने बतलाया कि कल जानेवाला हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया। उसके सब यात्री मर गये।

पीछे समाचारपत्रोंमें छपा कि आँधी-तूफान और भयानक ओला-वृष्टिसे हवाई जहाज तो नष्ट हुआ ही, वह मोटर-मार्गकी सड़क भी कई मीलतक टूट गयी। पन्द्रह-बीस दिनसे पहले मार्गके खुलनेकी सम्भावना नहीं रही थी। मुझे उसी हवाई जहाजसे जाना था और श्रीभाईजीने मेरी वह यात्रा, वह महायात्रा भी रोकी थी।

जिन लोगोंने उनको सामने गालियाँ दी, फटकारा, उलटा-सीधा कहा ही नहीं, लिखकर, नोटिसें छपवाकर बँटवायी, उन सबका भी वे सदा अत्यन्त आदरसे स्वागत करते रहे। उनकी धनसे, मनसे, सेवा करते रहे।

सबमें भगवान, सब रूपोंमें भगवान, यही उनका मुख्य उपदेश, मुख्य प्रेरणा, मुख्य जीवनव्रत था।

स्वयं भगवन्मय, जगतको भगवन्मय देखनेवाले और कर्ममात्रको भगवत्सेवा समझकर करनेवाले ऐसे महापुरुषका मुझे स्नेह-सम्पर्क मिला, यह मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य था।

[२] आर्दश गृहस्थ

अच्छे संयमी, सद्‌गुणी विवेकशील लोग भी कह देते हैं— बच्चोंको तथा अपने आश्रितोंको सँभालने, सुधारने, शिक्षित करनेका दायित्व तो हमपर है ही। यह तो कर्तव्य है।

यह कर्तव्य है या मोह ? आपके ही बच्चे क्यों सुधरें या शिक्षित हों ? आपके आसपास जो अनाथ, असहाय बच्चे हैं, वे आपके नहीं हैं क्या ? लेकिन अपनोंकी ममता, यह मोह छोड़ देना बहुत कठिन है। अपनी मान्यता, अपनी समझके अनुसार चलनेका आग्रह अपने आश्रितोंपर लादनेमें कौन कितना सावधान रह पाता है।

श्रीभाईजीके माता-पिता जब जीवित रहे होंगे, उस समय उनसे मेरा परिचय नही था। मेरा परिचय जब हुआ, तब श्रीभाईजीकी एकमात्र सन्तान उनकी पुत्री थी और उस सुपुत्रीके दो पुत्र और दो कन्याएँ थी। ये सब श्रीभाईजीके साथ ही रहते थे। दूसरे भी अनेक लोग श्रीभाईजीके साथ ही रहते थे। ये लोग भी श्रीभाईजीके परिवारके अभिन्न अंग हो गये थे। अब सब उस परिवारके अंग है। ये सब लोग कैसे रहें, क्या करें, इसपर श्रीभाईजीने कोई अंकुश कभी नहीं रखा। कभी देखा भी नहीं कि कौन क्या करता है। इसके लिये उन्हें अनेकोंने दोष दिया कि वे अपने आश्रितोंको ठीक चलानेकी ओर ध्यान ही नहीं देते।

किसीकी-अपने दौहित्रों तककी कोई बात श्रीभाईजीको ठीक नहीं लगती तो एकाध बार केवल सम्मति देनेके ढंगसे अपनी बात कह देते थे। उसपर ध्यान दिया गया तो ठीक, न भी दिया जाय तो कोई आग्रह नहीं।

घर, परिवारके लोग जो करनेको कहते थे, जो माँग करते थे, उसे उनकी इच्छानुसार पूरा

करनेका वे प्रयत्न करते थे। इसका एक उदाहरण स्मरण आता है।

बाई सावित्री (श्रीभाईजीकी पुत्री) को कर्णमूलग्रन्थि शोध (मम्स) हो गया। ज्वर था, पीड़ा थी। घरके लोगोंने डाक्टर बुलवानेको कहा। श्रीभाईजीने डाक्टर बुलवा दिया। चिकित्सा चलने लगी।

यह संक्रामक रोग है। गीतावाटिकाका चौकीदार भवानीसिंह भी इस रोगसे पाँच-सात दिन बाद ग्रस्त हुआ। उसका भाई जीवबोधन सिंह दवाके लिये श्रीमाधवशरणजीके पास आया। माधवशरणजीने होम्योपैथिक दवाकी तीन पुड़िया बनायी, किन्तु हिचक गये। वे बोले— घरसे पुस्तक देखकर दवा दूँगा।

यह कहकर वे घर चले गये। जीवबोधन सिंहने मुझसे कहा— भैयाको बहुत कष्ट है। आप उन्हें देख लें।

मैंने जाकर देखा कि भवानीसिंहको तेज ज्वर है। कर्णमूल ग्रन्थिमें शोध एवं पीड़ाके कारण वह कुछ पेय भी नहीं ले सकता था। श्रीमाधवशरणजीने मेरे सामने ही दवाकी पुड़ियाँ बनायी थी। मुझे लगा कि उनका पहिला निदान ही ठीक था। मैंने वहीं पुड़ियाँ जीवबोधन सिंहको दे दी और कहा— आधे-आधे घंटेपर रोगीको दे दो।

प्रातःकाल जब मैं अपने नित्यकर्मसे निवृत्त हो चुका, श्रीभाईजी मेरे कमरेके द्वारपर आकर बड़े उत्साहसे बोले— आप चमत्कार कर सकते हैं, यह आज पता लगा। भवानी सिंह रात्रिमें ही स्वस्थ हो गया। वह स्नान करके दूध लाने चला गया है।

मैंने कहा— इस रोगकी औषधि तो आप भी जानते हैं।

श्रीभाईजी होम्योपैथिक चिकित्साके अच्छे जानकार थे। उन्होंने दवाका नाम लेकर पूछा— आपने यही दी थी।

मैंने स्वीकार करके पूछा— सावित्री सप्ताह भरसे कष्ट पा रही है। उसे आपने दवा क्यों नहीं दी ? ऐसे तो उसे अभी और आठ-दस दिन स्वस्थ होनेमें लगेंगे।

श्रीभाईजीका उत्तर मुझे कभी भूला नहीं। उन्होंने कहा— औषधि मैं दे सकता था या आपसे कहता तो आप दे देते, किन्तु तब सबका सन्तोष नही होता। स्वस्थ तो वह हो जाती, पर सब यही समझते कि मैंने पैसे बचानेके लिये डाक्टर नही बुलवाया। रोगको तो प्रारब्ध पूरा करके जाना है। कुछ दिन और थोड़ा कष्ट हो लेगा तो कोई विशेष बात नहीं, किन्तु उसको, उसकी माँको और दूसरोंको भी अब संतोष तो है कि चिकित्सा ठीक चल रही है।

सावित्रीको ठीक होनेमें लगभग बीस दिन लगे, किन्तु श्रीभाईजीने न स्वयं दवा दी और न मुझे देनेको कहा।

गीतावाटिकाके समीप रहनेवाले तथा गोरखपुर नगरके मारवाड़ी परिवारोंके लोग अपनी घरेलू समस्याएँ लेकर आते थे, उनके परस्पर-विवादको सुनना तथा उनको समझाकर, सन्तुष्ट करके विदा करना सरल काम नहीं था। यह पञ्चायत प्रायः जुटी रहती थी और कई-कई घंटे लगते थे इसमें। श्रीभाईजीके निकट रहनेवाले लोग जानते है कि श्रीभाईजी ऐसे लोगोंके आनेपर एस्प्रो अथवा सोरोडीनकी गोलियाँ खा-खाकर यह काम करते रहे कई वर्षोतक, क्यों कि वे

लगातार कई वर्षोंसे अस्वस्थ थे। उनके स्वास्थ्यकी स्थिति यह थी कि उन्होंने 'हिन्दू संस्कृति अंक' के सम्पादनके समय सन् १९४९ ई. में मुझसे कहा था— नेत्रोंके पलक खोलनेमें भी कष्ट होता है। चुपचाप पड़े रहनेको जी करता है।

अपने शरीरके प्रति भी कितने निर्मम थे वे, यह इसीसे समझा जा सकता है कि पीड़ा-शामक गोलियाँ लेकर वे लोगोंका विवाद ही नहीं सुलझाते रहे, तीर्थयात्रा ट्रेनमें सबके आग्रहके कारण साथ गये। 'कल्याण' का सम्पादन करते रहे। साथ-साथ सहायताके, गोरक्षाके जो कार्य ले रखे थे, उनको भी करते रहे।

गृहस्थका प्रधान कर्म है अतिथि-सत्कार। इस सम्बन्धमें मैं कुछ नहीं कहूँगा। जिनको भी श्रीभाईजीके समीप जानेका कभी अवसर मिला है, वे उनके आतिथ्यकी तत्परतासे अवगत हैं।

'गृहेष्वतिथिवद् वसन्', आदर्श गृहस्थ वह जो घरमें अतिथिके समान तटस्थ रहे। इस प्रकार रहने वाले गृहस्थ मुझे केवल श्रीभाईजी ही मिले थे।

[३] उनकी सहनशीलता

गीतावाटिकामें मैं जिस कोठरीमें रहता था। मेरे कार्यालय चले जानेपर श्रीभाईजीके प्रियजन उस कोठरीमें फोटोग्राफीका कुछ काम सीखते। पुरानी पुस्तकोंकी फोटो-प्रति बनाते। उनसे अपेक्षा थी कि मेरे कोठरीमें आनेसे पूर्व वे काम समाप्त करके, सब सामान तख्तेके नीचे रख करके चले जाया करें। बड़ी सावधानीसे वे इस अपेक्षाका निर्वाह करते थे।

एक दिन उनमेंसे किसीसे थोड़ी भूल हुई। इन्लार्जर वे तख्तेके नीचे थोड़ा कम खिसका गये। मैं रात्रिमें सोकर उठा तो मुझे ठोकर लगी। चोट तो नहीं लगी, किन्तु झल्लाकर मैंने इन्लार्जर उठाकर बाहर फेंक दिया। उसके शीशे टूट गये, कैमरा दूर जा गिरा। मैं तो समयपर कार्यालय चला गया, किन्तु उन लोगोंने बाहर पड़े शीशेके टुकड़े चुनकर उठाये। मेरी कोठरीसे सब सामान उठा ले गये।

बात श्रीभाईजी तक न जाय, यह सम्भव नहीं, किन्तु कुछ हुआ भी, इनकी चर्चा मेरे कानतक कभी नहीं आयी।

एक बार ही नहीं, तीन या चार बार मेरे औद्धत्यसे, मेरी उच्छृंखलतासे, मेरे असंयमसे वहाँके लोगोंको बहुत क्षोभ हुआ। उनका क्षोभ उचित था। श्रीभाईजीके पास जानेके अतिरिक्त उनके पास उपाय नहीं था, किन्तु परिणाम ? वे श्रीभाईजीके पास गये और कुछ कहा, यह बात भी मुझे पता नहीं लगती, यदि कोई दूसरा मुझे वह न बतलाता।

[४] मुझसे झगड़िये

मेरी कहानियोंके कुछ संग्रह गीताप्रेसने छापे। 'कल्याण' में उनकी सूचना देखकर मैंने खूब कड़ा पत्र श्रीभाईजीको लिखा। मेरे पास उनका उत्तर आया। बीमार चलते हुए स्वयं उन्होंने ही उत्तर दिया था— आपकी कहानियोंको मैंने सहज भावसे वैसे ही छपनेके लिये भेज दिया, जैसे अपनी कोई रचना भेजता हूँ। आपसे पूछना भी चाहिये, यह स्मरण नहीं आया। अब झगड़ना हो तो मुझसे झगड़िये। ■

पं. श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री

स्वजनकी प्रतिष्ठा

गीताप्रेससे प्रकाशित है 'देवर्षि नारद' और इस पुस्तकके लेखक हैं श्रीइन्द्रनारायणजी द्विवेदी। श्रीद्विवेदीजीके पास धनाभाव था और एक बार ये तीन सौ रुपया नहीं चुका सके। पानेवालेने न्यायालयमें मुकदमा दायर कर दिया। मुकदमेंमें श्रीद्विवेदीजी हार गये। बात तो सच्ची थी ही। इलाहाबादमें शनिवारको फैसला सुना दिया गया कि यदि आगामी सोमवारतक तीन सौ रुपया नहीं जमा किया गया तो श्रीद्विवेदीजीको साधारण जेल हो जायेगी।

श्रीभाईजीको मुकदमेका विवरण शनिवारकी शामको गोरखपुरमें मालूम हुआ। मालूम होते ही श्रीभाईजी विह्वल हो गये कि क्या तीन सौ रुपयोंके लिये श्रीद्विवेदीजी जेल चले जायेंगे और उनकी इज्जत नहीं रहेगी। रातभर उनको नींद नहीं आयी। गीतावाटिकामें सबेरे सत्संग होता था। गीताप्रेसके श्रीशुक्लाजी सत्संगमें आये। वे कचहरीके कामके जानकार थे। आते ही श्रीशुक्लाजीको तीन सौ रुपया देकर विदा करते हुए श्रीभाईजीने कहा— ट्रेनके पहुँचनेका समय और कोर्टका समय कुछ इस प्रकार है कि आप इलाहाबाद उस समय पहुँचेंगे जब कि कोर्टका समय हो चुकेगा। गाड़ीसे उतरते ही आप सबसे पहले कोर्ट चले जाइयेगा और पता लगा लीजियेगा कि श्रीइन्द्रनारायणजी द्विवेदीका केस किस कोर्टमें है। ज्यों ही उनके नामकी आवाज लगे, त्यों ही उनके रुपये आप जमा कर दीजियेगा। ऐसा न हो कि रुपयोंके न पहुँचनेसे उनकी इज्जतमें बट्टा लग जाय।

श्रीशुक्लाजी तत्काल चले गये और हुआ भी ऐसा ही जैसा श्रीभाईजीने कहा था। इधर श्रीद्विवेदीजीके नामकी आवाज लगी और उधर श्रीशुक्लाजी कोर्टके द्वारपर पहुँचे। श्रीशुक्लाजीने तीन सौ रुपये जमा कर दिये। अपने जनकी प्रतिष्ठाका प्रश्न श्रीभाईजीका अपना प्रश्न होता था। ■

श्रीचन्द्रदीपजी

उदारमना श्रीभाईजी

श्रीभाईजीके निकट-सम्पर्कमें दो-ढाई वर्ष रहनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं सम्भवतः सन् १९३४ के मई-जून मासमें उनके पास गया था। सबसे पहले मुझे उनके व्यक्तिगत पत्रोंका उत्तर देनेका कार्य सौंपा गया। उनके कार्यका यह विभाग बड़ा महत्त्वपूर्ण विभाग था। उनके पत्रोंको देखनेसे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि उनके व्यक्तित्वका कितना अधिक प्रभाव जन-मानसपर था और किस तरह भारतके अनेक प्रान्तोंके लोग जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें उनसे पथ-प्रदर्शनकी अपेक्षा रखते थे। उस कार्यकी गम्भीरता, पवित्रता और उत्तरदायित्वका ख्याल करके ही सम्भवतः वे चाहे जिससे उस कार्यमें मदद नहीं लेते थे और पत्र इतने आते थे कि उनका उत्तर देना अकेले उनके लिये सम्भव नहीं होता था।

इस कार्यको करते हुए मुझे उनके अगाध ज्ञानका थोड़ा-सा परिचय मिला। वे हिन्दी भाषाके अतिरिक्त बँगला, गुजराती और मराठीपर पूरा अधिकार रखते थे। संस्कृतका भी वे बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे। अँग्रेजी वे इतनी अच्छी समझते थे कि कभी-कभी 'कल्याण-कल्पतरु'के लिये अनूदित लेखोंमें संशोधनके ऐसे सुझाव देते थे कि अँग्रेजीके अच्छे विद्वान् भी चकित रह जाते थे। हिन्दी, बँगला, गुजराती और मराठीमें धार्मिक-आध्यात्मिक पुस्तकें कौन-कौन-सी हैं, कहाँ-कहाँसे प्रकाशित हैं, किस-किसकी लिखी हैं, उनका कितना मूल्य है और उनमें किस विषयका प्रतिपादन है, यह मानो उनकी जबानपर बराबर रहता था। पूरी गीताको अच्छी तरह कण्ठस्थ कर लेना तो गीताप्रेसके सत्संगियोंके लिये एक आम बात थी, पर इसके अलावा श्रीभाईजीको सभी भाषाओंके कितने विशेष-विशेष उद्धरण याद थे, इसे देखकर चकित हुए बिना नहीं रहा जा सकता था। आज भी इसका परिचय हमें उनके प्रकाशित लेखों और भाषणोंसे मिल सकता है। यह सब देखकर मुझे ऐसी धारणा हो गयी थी कि अपने विषयका जितना अगाध और विस्तृत ज्ञान श्रीभाईजीको था, उतना शायद ही किसी दूसरे हिन्दी-सम्पादकको होता हो, जब कि तथाकथित स्कूली शिक्षा किसी भाषामें भी श्रीभाईजीको प्राप्त नहीं थी।

उनके पास रहनेपर उनके चरित्रकी एक और विशेषताकी ओर मेरा ध्यान सहज ही खिंच गया। देखा, उनकी बातोंमें अधिकारका प्राकट्य नहीं होता था। वे अपने सहकर्मियोंको प्यार करते थे और सदा उनके साथ प्यारसे ही व्यवहार करते थे। केवल कार्यालयके कामकाजके सम्बन्धमें ही नहीं, कार्यकर्ताओंकी व्यक्तिगत सुख-सुविधापर भी उनका सदा ध्यान रहता था। कब कौन कितना काम करता है, यह वे कभी नहीं देखते थे। वे अपने कार्यकर्ताओंकी ईमानदारीपर विश्वास करते थे और इस कारण उनके साथ रहनेवाले लोग काम भी कम नहीं करते थे। साधारणतया हमलोगोंका कार्य खा-पी लेनेके बाद दस बजे आरम्भ होता था। उन दिनों टेबल-कुर्सीकी बहार उनके बगीचेमें नहीं थी, चटाइयोंपर बैठकर, अधिक-से अधिक साधारण काठकी बनी छोटी-सी डेस्ककी सहायता लेकर काम किया जाता था। हमलोग अपनी-अपनी चटाई बिछाकर कार्य करने बैठ जाते। खाने-पीनेकी गर्मी और आबहवाकी गर्मीके कारण आँखें झपकने लगती और प्रायः हम सभी लोग थोड़ी देरके लिये अपनी-अपनी चटाईपर चित हो जाते। श्रीभाईजी छतके ऊपरके एक कमरेमें काम किया करते थे। कभी-कभी जरूरत होनेपर नीचे आते थे। जब भी वे उस समय नीचे आते तो दूरसे ही हमलोगोंको सोया देखकर वापस चले जाते। कभी अत्यन्त आवश्यक होता तो चुपकेसे अपना काम करके चले जाते और यदि कोई जग जाता और उठ बैठता तो बड़े ही प्रेमसे उसे पूरा विश्राम ले लेनेके लिये कहते और शीघ्र ही वहाँसे चले जाते। उन्होंने कभी किसी बातके सिलसिलेमें यह प्रकट नहीं किया कि उसके कारण कार्यमें किसी प्रकारकी असुविधा हुई या देर हो गयी। वे हमारे जगनेपर ही प्रायः नीचे आते और किसीसे कोई काम कराना होता तो उसे कराते।

सन् १९३६ में अगस्तके दर्शन-दिवसपर मैं पांडिचेरी जानेकी तैयारी करने लगा। उन दिनों गोरखपुर जिलेमें बड़ी भयंकर बाढ़ आयी हुई थी और श्रीभाईजी सहायताकार्यमें व्यस्त थे। रात-दिन उसी कार्यमें उनका सारा समय चला जाता था। उनसे मिलना-जुलना भी सम्भव नहीं होता था। एक दिन मैंने समय पाकर उनसे इतना ही कह दिया— इस बार पन्द्रह अगस्तके

दर्शन-दिवसपर मैं पांडिचेरी जाना चाहता हूँ।

फिर श्रीभाईजीसे मिलनेका मौका ही नहीं मिला। जिस दिन मैं रवाना होने जा रहा था, उसी दिन सबेरे वे मेरे रहनेके स्थानपर आ गये। उन्हें हठात् अपने यहाँ आया देख मैं चकित हो गया और थोड़ी शर्म भी लगी कि मैं ही क्यों नहीं जाकर मिल आया। मेरे बरामदेमें ही वे खड़े हो गये और मेरे कंधेपर हाथ रखकर बड़े प्रेमसे कहने लगे– आपने आश्रम जानेकी इच्छा प्रकट की थी, पर फिर कभी मिले ही नहीं, मुझे बाढ़के कार्यके कारण अवकाश नहीं मिला कि आपको बुलाकर पूछूँ। आज सुना कि आप रवाना हो रहे हैं। तो आपने अपने खर्चका क्या प्रबन्ध किया ?

मेरा उत्तर सुनकर उन्होंने कहा– नहीं-नहीं, इसकी कोई जरूरत नहीं। खर्चकी कोई बात आपको नहीं सोचनी है। मैं स्टेशन भिजवा रहा हूँ। आप वापस कब आ रहे हैं ?

मैंने कहा– इच्छा है कि इस बार वहीं रह जाऊँ, पर अभी मुझे केवल दर्शनकी ही आज्ञा मिली है। वहाँ रहनेकी आज्ञा वहाँ जानेपर माँगूँगा।

उन्होंने कहा– ठीक है। यदि आज्ञा मिल जाय, तब तो कोई प्रश्न ही नहीं, यदि न मिले तो तुरन्त मुझे खबर दे दीजियेगा। आवश्यक खर्च भिजवा दिया जायगा। अभी या कभी भी, जब आश्रमसे बाहर आना हो तो आपको और कहीं जानेकी जरूरत नहीं। आपके लिये यहाँ बराबर ही जगह खाली रहेगी।

इस बातपर टिप्पणीकी कोई आवश्यकता नहीं। बस, इतना यहाँ और जोड़ दूँ कि गीताप्रेसमें रहते समय मैं शायद तीन बार आश्रम आया और हर बार उन्होंने वह खर्च अपना खर्च समझा। मुझे न माँगना पड़ा और न उसकी चिन्ता करनी पड़ी। इसका मूल्य और महत्त्व उस समय बहुत अधिक बढ़ जाता है, जब कि कोई अन्य सम्प्रदाय और अन्य साधना-मार्गसे सम्बन्ध रखता हो। यह बात उनकी धार्मिक और हार्दिक उदारताकी ओर स्पष्ट ही संकेत करती है। वहाँ रहते हुए भी मैंने स्पष्ट देखा कि हिन्दू-धर्मके प्रायः सभी सम्प्रदायों और साधना मार्गोंके विद्वानों और साधकोंकी वे खुले दिलसे सेवा किया करते थे।

केवल विद्वानों तथा साधकोंके लिये ही नहीं, वरं सभी दुःखी एवं अभावग्रस्त व्यक्तियोंके प्रति उनमें अगाध करुणा थी और सबके कष्टोंमें वे हाथ बँटानेकी कोशिश करते थे। ऐसे लोग प्रायः ही गीताप्रेसके बगीचेमें आया करते थे और दो-एक दिन मेहमान रहकर तथा यथासम्भव सहायता लेकर चले जाया करते थे। एकाध तो ऐसे भी देखे गये, जो अपने सभी कष्टों और अभावोंके समय बराबर आया करते थे और हर बार एक-सा ही दयापूर्ण व्यवहार पाया करते थे। इस दयामें भी श्रीभाईजीकी एक विशेषता थी। यह तो हम जानते ही हैं कि सारी दुनियाकी सम्पत्ति उनके ही हाथोंमें नहीं थी और इसलिये वे चाहे जिसको मुँह-माँगा दान नहीं दे सकते थे, पर इस देनेमें उनका भाव बड़ा विशाल और अनोखा रहता था। वे अपनी शक्तिको अपने ध्यानमें नहीं रखते थे, बल्कि माँगनेवालेकी आवश्यकताको अपने ध्यानमें विशेषरूपसे रखते थे। किसीके लिये कुछ करते रहनेसे वे कभी ऊबते नहीं थे। यह उन्हें ख्याल ही नहीं होता था कि मैंने बहुत कर दिया, अब करना बेकार है या अनुचित है। कई उदाहरण हमने उनसे बातचीतके सिलसिलेमें सुने हैं और देखे भी हैं, जिनमें दूसरा कोई भी व्यक्ति ऊबे बिना न रहता, पर वे

हँसते हुए और पूरी सहानुभूतिके साथ माँगें पूरी करते रहते। एक उदाहरण शायद पर्याप्त होगा, जो महात्माओंके विषयमें चर्चा करते हुए स्वयं उन्होंने बताया था। एक महात्मा बम्बईमें उनके पास आया करते और कुछ दिन उनके यहाँ ठहरा करते थे। उन महात्माका मन शायद बड़ा अस्थिर था या विचित्र ढंगका था। वे सुबह कहते कि आज हलुआ खानेकी बड़ी इच्छा है, हलुवा बनवाओ। फरमाइश अंदर घरमें चली जाती, हलुवा बनकर तैयार भी हो जाता। पर उधर खानेके समयसे थोड़ी देर पहले महात्माजी बोल उठते कि भाई हनुमान! हलुवा नहीं, खीर बनवा दो तो अच्छा।

एक मुस्कानके साथ तुरन्त हुक्म जारी होता कि महात्माजीके लिये खीर तैयार की जाय। घरमें खलबली मच जाती, पर अन्तमें खीरकी तैयारी भी हो जाती, परंतु महात्माजीका मन तो अपना ठहरा नहीं, चौकेमें किसी दिन कुछ खा लेते तो किसी दिन कुछ और किसी दिन तो बिना कुछ खाये ही न जाने कहाँ काफूर हो जाते। यह अनुभव दो-चार बार नहीं, शायद अनगिनत बार, महीनों होता रहा। गीताप्रेसमें भी हमलोगोंके सामने कई ऐसे उदाहरण आये, जिनमें किसी भी दूसरेके धैर्यकी बुरी तरह परीक्षा हो जाती, पर श्रीभाईजी सदा प्रसन्न मुद्रामें 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' ही बने रहते, उन्हें कोई शिकायत नहीं रहती।

एक उदाहरण हमने श्रीभाईजीके बगीचेमें और देखा, जो केवल थोड़े-से पैसों एवं परिश्रमको ही चुनौती देनेवाला नहीं था, बल्कि मानवीय स्वभाव और चरित्रके बहुत-से तत्त्वोंको एक साथ चुनौती देनेवाला तथा प्रचण्ड झञ्झाकी तरह झकझोर देनेवाला था। उन दिनों वहाँ महाराष्ट्र प्रान्तके एक संन्यासी रहते थे। सुना था कि वे हिमालयमें कहीं तपस्या करते थे, पर गीता-रामायणके प्रचारके कार्यमें सहयोग देनेके लिये वहाँ आ गये हैं। दैव-विधानसे उनका मस्तिष्क विकृत हो गया और वे अवाञ्छनीय चेष्टाएँ करने लगे। पीछे वे लोगोंको मारने-पीटने लगे, पर श्रीभाईजी सब सहन करते थे। एक दिन वे श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' पर, जो उस समय वहाँ कार्य करते थे, टूट पड़े। हमलोगोंने अपनी जान खतरेमें डालकर उन्हें बचाया, अन्यथा न जाने माधवजीपर क्या बीतती। शोर-गुल शान्त नहीं हुआ था कि किसीने दौड़कर श्रीभाईजीको इसकी सूचना दे दी। श्रीभाईजी तत्काल वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने संन्यासीका हाथ पकड़कर उन्हें अपने पास बिठा लिया। उनके आते ही संन्यासी बहुत कुछ शान्त हो गये। ऐसा लगा कि श्रीभाईजीके प्रति उनके मनमें बड़ा आदर-भाव था। वे उस विक्षिप्तावस्थामें भी एक अपराधीकी भाँति सिर झुकाकर श्रीभाईजीके सामने बैठ गये। श्रीभाईजीका संयम, सहन-शीलता, प्रेमपूर्ण उलाहनेका ढंग, यह सब कुछ बड़ा अनोखा था। उन्होंने संन्यासीको समझाकर कश्मीर चले जानेके लिये राजी कर लिया और सम्भवतः उसी दिन किसी समय उन्हें रवाना कर दिया गया। जबतक मैं वहाँ था, तबतक उन्हें नियमित डेढ़ सौ रुपया महीना (वह जमाना आजकी अपेक्षा बहुत सस्ता था) खर्च भेजा जाता था। श्रीभाईजी बराबर उन्हें पत्र लिखा करते थे और उनका समाचार मँगाते रहते थे। एक संघर्षशील आत्माके प्रति श्रीभाईजीका यह स्नेह और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ।

श्रीभाईजी सदा पूर्ण जागरूक थे कि धार्मिक-आध्यात्मिक जगतमें कहाँ क्या हो रहा है, उसका क्या प्रभाव जन-समाजपर पड़ सकता है और इस विषयमें उनका अपना क्या कर्तव्य है। 'कल्याण'के माध्यमसे वे अपने विचार बराबर व्यक्त करते रहे। जो श्रीभाईजी युवावस्थामें

क्रान्तिकारी आन्दोलनके साथ थे, वे पीछे एक प्रबल आध्यात्मिक आन्दोलनके सूत्रधार बन गये। हिन्दूधर्म एवं हिन्दू संस्कृतिमें उनकी आस्था अटूट और गम्भीर थी। ■

श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव'

प्रेममूर्ति श्रीभाईजी

जुलाई, १९३२ 'सनातनधर्म' (काशी) से छुटकर 'कल्याण' गोरखपुरमें आ गया था। काशीमें रहा व्यक्ति गोरखपुरमें कैसे टिके और नौकरी तो नौकरी ही है, चाहे वह स्वर्गमें हो। सोचा कि काशीका 'चना चबेना गंग जल' ही अच्छा था, कहाँ आ गया गोरखपुरके 'नरक' में।

गीताप्रेस उन दिनों गोरखपुरके सबसे गंदे और तंग मुहल्लेके दमघोंटू वातावरणमें था। श्रीपोद्दारजीने मेरी विवशता देखी और कंधेपर प्यारसे हाथ रखते हुए कहा— घबराइये नहीं, यह तो 'लोकालय' है। आप हमारे साथ शहरसे दूर गोरखनाथजीके मन्दिरके आगे बगीचेमें रहेंगे। वहाँ सारा वातावरण आपको अनुकूल मिलेगा।

कैसा है यह व्यक्ति, जो मनकी व्यथाको समझ जाता है और इतना प्यार दे सकता है, मुझ जैसे सर्वथा एक अपरिचित अदने आदमीको ! मनमें इस प्रश्नके साथ श्रीपोद्दारजीके मानवीय रसके प्रति एक सहज आस्थापूर्ण श्रद्धा जगी। यही था प्रथम साक्षात्कारका प्रथम संस्कार।

मझोला कद, भरा-पूरा शरीर, उन्नत प्रशस्त ललाट, गेहुँआ रंग, ललाटपर गोपीचन्दनकी एक बिंदी शोभा दे रही थी। प्रसन्नवदन, श्वेत-शुभ्र खादीकी धोती और खादीका ही कुर्ता, पैरोंमें 'फलाहारी' जूते, भावभीनी आँखें, सिरसे पैरतक जैसे हृदय-ही-हृदय हो। लगा कि यह व्यक्ति लाखोंमें एक है। ऐसा मधुमय-प्रेममय व्यक्ति मिलता कहाँ है ? मालवीयजी महाराजके 'पवित्रं मंगलं परं' सांनिध्यसे छूटा हुआ व्यक्ति आ गया श्रीपोद्दारजीके प्यारभरे सांनिध्यमें।

श्रीपोद्दारजी जीवनके आरम्भमें सशस्त्र क्रान्तिकारियोंके गिरोहके नेताके रूपमें लगभग दो वर्ष बंगाल सरकारके कोपभाजन होकर शिमलापालमें नजरबंद रहे और उसके बाद बंगालसे सदाके लिये निष्कासित होकर रतनगढ़ (बीकानेर) तथा बम्बई पहुँचे और वहीं श्रीमन्त सेठ जमनालाल बजाजके सहयोगमें व्यापार करने लगे, परंतु प्रभुकी पुकारपर सब कुछ रामके हवाले कर 'कल्याण'का सम्पादन करने लगे। प्रथम वर्ष 'कल्याण' बम्बईसे ही छपता और निकलता रहा। दूसरे वर्षसे उसका प्रकाशन गोरखपुरसे होने लगा। प्रभुकी पुकार और संत सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका प्यार, 'कल्याण'के मूलमें प्रेरणाके यही स्रोत थे। संत सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका और श्रीघनश्यामदासजी जालान गीताप्रेसके मस्तिष्क थे, परंतु उनके हृदय थे भाईजी श्रीपोद्दारजी, सचमुच माँका हृदय, पुरुषशरीरमें वात्सल्यमयी माँका हृदय !

'कल्याण'का दिन-दूना, रात-चौगुना बढ़ता हुआ यश उसके सम्पादकको कभी प्रभावित नहीं कर सका। 'कल्याण' डेढ़ लाखसे अधिक छपता है, परंतु श्रीभाईजी आरम्भमें जैसे अनासक्त, सेवापरायण, उदारमना थे, अन्तिम क्षणतक भी वैसे ही रहे। उन्होंने कभी अपने

नामका पैड नहीं छपने दिया, अपने निवासपर नामकी तख्ती नहीं लगने दी और उनकी सेवाएँ इतनी गुप्त थीं कि बायाँ हाथ भी नहीं जान सका कि दाहिने हाथने क्या और कितना दिया, परिवारके व्यक्तियोंको तो पता ही क्या हो सकता था!

गहराईसे विचार करनेपर यह अनुभव होता था कि श्रीभाईजी 'वासुदेवः सर्वमिति' को संसिद्ध कर चुके थे। उनका विपुल साहित्य (क्या लेख, क्या कविता, क्या पत्र और क्या टिप्पणियाँ), उनका श्वास-प्रश्वास, उनके साथ रहनेवाले व्यक्तियोंका आचरण, उनके आस-पासका समस्त वातावरण— यह सब इस सत्यका साक्षी था। जिस अनुभूतिको श्रीअरविन्दने उत्तरपाड़ामें अभिव्यक्त किया था, वही अनुभूति श्रीभाईजीको सहज रूपमें उपलब्ध थी। किसी साधनाविशेषकी अपेक्षा भगवत्कृपा ही इसमें मुख्य कारण थी, ऐसा ही मानना चाहिये। कितना आश्चर्य होता था, परंतु कितना सुखद लगता था यह देखकर कि सब-के-सब श्रीपोद्दारजीको 'भाईजी' कहते थे। गाँधीजी, मालवीयजी, लाला लाजपतराय, टण्डनजी, जमनालालजी, सम्पूर्णानन्दजी, कृष्णकान्त मालवीय, रफी अहमद किदवई, युगलकिशोर बिड़ला, सेठ गोविन्ददास, लालबहादुर शास्त्री, जैनेन्द्रकुमार, मैथिलीशरण गुप्त, शिवप्रसाद गुप्त, वासुदेवशरण अग्रवाल, बच्चनजी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, कितने नाम गिनायें, सबके वे 'भाईजी' ही थे।

जब मैं 'कल्याण'में पहुँचा, तब उसका सम्पादकीय विभाग गोरखनाथके सुप्रसिद्ध मन्दिरके पश्चिमकी ओर एक छोटेसे उद्यानमें था। मकान कहनेको नाममात्र था, चारों ओर दूर-दूरतक आम, अमरूद, नाशपाती और नारंगीके बगीचे थे। एक विशालकाय आम्रवृक्षके नीचे चटाई डालकर हमलोग काम करते थे। प्रातःकाल चार बजेसे रातके ग्यारह-बारह बजेतक कथा, कीर्तन, सत्संग, प्रवचनका प्रोग्राम चलता रहता था। कार्यालयका कोई बँधा हुआ समय न था, फिर भी औसतन सात-आठ घंटे सम्पादकीय कार्यमें हमलोग संलग्न रहते थे। मेरे जिम्मे अँग्रेजी पत्रोंका उत्तर लिखवाना, कल्याणके लिये एक लेख लिखना, 'कल्पतरु'के लिये एक अनुवाद करना और पुस्तकोंका अन्तिम प्रूफ देखना था। यह कार्य सर्वथा मेरे मन लायक था। सारा वातावरण इतना प्राकृतिक, उन्मुक्त, सहज और भक्तिरससे ओत-प्रोत था कि मालूम होता था कि मैं इसीकी तलाशमें इतने दिन भटक रहा था। श्रीभाईजीका शील-स्वभाव सहज ही किसीको भी आकृष्ट कर लेता था। वाणी इतनी मधुर, स्वभाव इतना स्नेहिल और व्यवहार इतना साधु था कि लगता था— यह व्यक्ति इस पृथ्वीका नहीं है, किसी देवलोकसे उतरकर विश्वको प्रेमका पाठ पढ़ानेके लिये, राग-द्वेषकी महावह्निमें जलती हुई मानवतापर अमृतकी वर्षा करनेके लिये ही मनुष्यका शरीर धारण किये हुए है। सम्पादकीय विभागमें हम जितने आदमी थे, उतने प्रान्तोंके थे। बिहार, बंगाल, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास और राजस्थानका एक अपूर्व संगम 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें देखनेको मिलता था। बगीचेमें ही एक किनारे चौका था, जिसमें हम सभी भोजन करते थे और उसमें अपनी-अपनी रुचि तथा आवश्यकताके अनुसार किसीको छाछ तो किसीको लाल मिर्च, किसीको केवल भात तो किसीको रोटी दी जाती थी। इस प्रकार हमलोग मिल-जुलकर 'सार्वदेशिक भोजनालय'में एक साथ भोजन करते थे और रातको बगीचेमें अपनी-अपनी चटाई बिछाकर सो जाते थे। यहाँ बड़ा ही निराला और पवित्र वातावरण था और ऐसा प्रतीत होता था कि इसके दिव्य सौन्दर्यके सामने स्वर्ग भी तुच्छ है।

छः बजे प्रातः काल हमलोग स्नान-ध्यानसे निवृत्त होकर सामूहिक कीर्तनके लिये एकत्र हो जाते थे। झाँझ, मृदंग, ढोलक, करताल, खोलके साथ करीब एक घंटेतक खूब धुआँधार कीर्तन होता था। कीर्तनके बाद गोस्वामी पं. श्रीचिम्मनलालजी शास्त्री 'विनय-पत्रिका'से या सूर या मीराका कोई मधुर पद समाधिस्थ होकर सुनाते थे। उनके सुनाने का ढंग इतना मोहक और मन-प्राणको मुग्ध करनेवाला होता था कि हम सभी एक प्रकारसे भाव-समाधिमें डूब जाते थे। इसके पश्चात् श्रीभाईजीका प्रवचन होता था। इस प्रवचनमें प्रायः भक्तिरसकी वर्षा होती थी।

'कल्याण'का वातावरण सर्वथा निराला और सबसे भिन्न था। यह इस अर्थमें कि वहाँ सम्पादकीय ठाट-बाट कुछ था ही नहीं और दफ्तर-जैसी कुछ चीज भी नहीं थीं। आमके पेड़के नीचे चटाइयाँ डालकर हमलोग काम करते और आवश्यकता पड़नेपर विचारविमर्श कर लेते थे। कहीं किसीको कोई आदेश भी देना हुआ तो उसी भाषांमें वह दिया जाता था, जिसमें आदेशकी गन्ध न हो।

श्रीभाईजी मण्डलके प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त पं. लक्ष्मणनारायण गर्दे, पं. चिम्मनलाल गोस्वामी, पं. नन्ददुलारे बाजपेई, पं. राजबली पाण्डेय, पं. शान्तनुबिहारी द्विवेदी (अब स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती), श्रीमुनिलाल (अब स्वामी सनातनदेव), पं. रामनारायणदत्त शास्त्री आदि विद्वानोंका सहज सत्संग प्राप्त हुआ और इनके संगमें आत्म-विकासके लिये पूरा अवकाश मिलने लगा। 'कल्याण'के लिये प्रतिमास एक लेख मुझे लिखना पड़ता था। वह लेख प्रायः किसी भक्तकी गाथा होती या किसी मध्यकालीन संतका जीवन-चरित्र और उनकी साधनाका विवेचन होता। पत्रोंके उत्तर लिखनेका भी कुछ काम मैं करता था। अंग्रेजी या हिन्दी पत्रोंके उत्तर लिखनेमें 'कल्याण'की एक खास शैली थी, जिससे अवगत होनेमें कुछ समय लगा। ये पत्र प्रायः किसी-न-किसी धार्मिक पहलू, आध्यात्मिक प्रश्न या साधना-सम्बन्धी शंकाओंके समाधानमें लिखे जाते थे। प्रश्न भी बड़े विचित्र और बेतुके हुआ करते थे। कभी-कभी उन्हें पढ़कर हँसी आती थी, परंतु 'कल्याण'की शैली यह थी कि चाहे जो भी पत्र हो और जैसी भी उनकी शंकाएँ हों, उनका पूरा-पूरा समाधान तथा निवारण समुचित ढंगसे होना चाहिये और किसी भी अवस्थामें अविनयका प्रदर्शन नहीं होना चाहिये। ऐसे पत्रोंके उत्तर लिखनेमें श्रीभाईजीको कमाल हासिल था।

श्रीभाईजीका हरिनाममें अखण्ड विश्वास था और वह प्रायः हर मानसिक चिन्ता, अभावकी पीड़ा, दैन्य-दुःख, ऋण-कष्ट, चारित्रिक स्खलन आदि सभीसे छुटकारा पानेके लिये नाम-जपकी अचूक विधिकी व्यवस्था दिया करते थे।

'कल्याण'की रीति-नीति और विचारोंको पूरा-पूरा हृदयंगम करनेमें लगभग छः मास लग गये। फिर भी यह नहीं कह सकता कि वहाँकी सारी बातें मेरे लिये अनुकूल ही थीं या पसंद थीं। आचार-विचार टकराये, परंतु अन्ततोगत्वा मैंने यह अनुभव किया कि इन सारी बातोंमें 'कल्याण'का आग्रह निश्चय ही स्वस्थ और सुखप्रद था, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी और साधनाकी दृष्टिसे भी।

सम्पादकीय विभागमें हम जितने व्यक्ति थे, उतने प्रान्तोंके थे और उतने ही विभिन्न रंग-ढंगके। पूज्य श्रीगर्देजी महाराज हमलोगोंमें सबसे श्रेष्ठ, अनुभवी और चुडान्त विद्वान् थे,

परंतु उनकी चुहल और जिंदादिली मुर्देको भी हँसा देती। वे शरीरसे वृद्ध, परंतु हृदयसे चिर-तरुण थे।

'कल्याण'के सम्पादकीय मण्डलके लिये कुछ आधारभूत सिद्धान्त भी थे। उन नियमोंमें दोनों समयकी संध्या, गीताका स्वाध्याय और पाठ, रामचरितमानसका पाठ, भगवन्नाम-स्मरण, सर्वत्र भगवद्भाव, अक्रोध और सत्यभाषण, अल्पभाषण, मौन और कुछ शरीरिक व्यायाम थे। इन नियमोंमें दो बड़े ही महत्त्वके थे। एक तो सर्वत्र भगवद्भाव और दूसरा प्रति आधे घंटेपर भगवानका स्मरण और स्मरण आनेपर उसे देरतक कायम रखनेकी वृत्ति। संध्याकालीन सामूहिक प्रार्थनाके बाद श्रीभाईजीकी उपस्थितिमें हमलोग नित्य-नियमोंके सम्बन्धमें परस्पर विचार-विमर्श करते और यह देखते कि कहाँ त्रुटि हो गयी है, उसे कैसे सुधारा जा सकता है। खान-पानमें संयम था। तेल-मिर्च, खटाईका व्यवहार नहींके बराबर था। सबसे बड़ी बात यह थी कि ये नियम कभी बन्धन नहीं बने। उन्हें स्वेच्छया और सहर्ष हमलोग स्वतः पालन करते थे और डायरी रखते थे।

'कल्याण'में आनेपर देशके और कभी-कभी विदेशके भी प्रसिद्ध साधु-महात्माओं, संन्यासियों, वैरागियों, तपस्वियों और आध्यात्मिक जिज्ञासुओंके दर्शन घर बैठे होने लगे। उन दिनों 'कल्याण'का उतना प्रचार नहीं हो पाया था, कुछ ही हजारोंकी संख्यामें वह छपता था, परंतु लोगोंमें 'कल्याण' और 'कल्याण'-सम्पादकके प्रति उमड़ती हुई श्रद्धाके दृश्य कई बार देखनेको मिलते थे। कुछ श्रद्धालु तो ऐसे आते थे, जो प्रेसकी मशीनोंकी आरती उतारते थे और उनपर चन्दन-फूल आदि चढ़ाते थे। इसे श्रद्धाका अतिरेक कहें या भावुकता, ऐसे-ऐसे दृश्य प्रायः रोज देखनेको मिलते, जिनपर हँसी आये बिना न रहे। रंग-बिरंगे साधुओं, संन्यासियों, वैरागियोंका काफिला जब कभी उतर आता, तब हमलोगोंके लिये मनोरञ्जनका साधन जुट जाता। अधिकांश अपनी जैसी-तैसी हस्तलिखित प्रतियोंको लेकर गीताप्रेसमें छपवाने लिये दौड़े आते थे। मुझे स्मरण है, अयोध्याके एक संन्यासी महोदय स्वरचित 'विचित्र-रामायण'की हस्तलिखित प्रतियाँ आठ-नौ बड़ी-बड़ी जिल्दोंमें लेकर आये थे। हमलोगोंमेंसे किसीके पास इतना समय और धैर्य नहीं था कि उनकी 'विचित्र-रामायण'को आद्योपान्त पढ़ें या उसे सुना जाय, परंतु श्रीभाईजीने आदिसे अन्ततक उनकी पूरी रामायण सुनी और सुनकर प्रसन्नता प्रकट की, भले ही उसे गीताप्रेससे छापा न जा सका। ऐसे ही, समय-समयपर बड़े ही अटपटे व्यक्ति आ जाया करते थे। कभी-कभी लोग यह समझते थे कि यहाँ आकर जोर-जोरसे कीर्तन करने और भावावेशमें मूर्च्छित हो जानेसे 'कल्याण'में विशेष आदरपात्र मनुष्य समझा जायगा और इसलिये भी बहुत-से लोग भावावेशमें मूर्छाका स्वाँग रचा करते थे। ये सारी बातें हमलोग समझते थे, परंतु श्रीभाईजीके उदार व्यक्तित्वमें सबके लिये उचित स्थान था, किसी वस्तुको वे विरूप नहीं होने देते थे। समय-समयपर भारतीय संस्कृति और साधनाकी तलाशमें कुछ विदेशी महिलाएँ भी आ जाया करती थी। उनकी सार-सँभाल और देख-रेखका भार मेरे ऊपर था। कुल मिलाकर 'कल्याण'का जीवन 'विविध-विषय-विभूषित' होनेके कारण काफी रंगीन और दिलचस्प था।

'कल्याण'में बिताये हुए ग्यारह वर्ष जीवनके सर्वोत्तम ग्यारह वर्ष थे और उसमें समाजसेवा, भ्रमण और संत-महात्माओंके सत्संगका अपूर्व लाभ मिला। 'कल्याण'में आनेपर अनेक

साधु-महात्माओं और संतोंके अत्यन्त निकट सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य मिला था। इन महात्माओंमें स्वामी शिवानन्दजी, श्रीभोले बाबा, श्रीउड़िया बाबा, श्रीहरि बाबा, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, श्रीस्वामी एकरसानन्दजी, माँ आनन्दमयी, स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी और स्वामी शरणानन्दजी मुख्य रूपसे सामने आते हैं।

इसके साथ-साथ गोरखपुरमें प्रतिवर्ष भयंकर बाढ़का आक्रमण हुआ करता था, जिसमें गोरखपुर-देवरिया जिलेका बहुत बड़ा भू-भाग जलमग्न हो जाता था और हजारों गाँव राप्ती और सरयूकी प्रखर धारामें आ जाते थे। ऐसे अवसरोंपर गीताप्रेस-सेवादलकी ओरसे बड़े व्यापक स्तरपर 'रिलीफ' कार्य होता था, जिसका दायित्व मुझे सँभालना पड़ता था और ऐसे अवसरोंपर महीनों नाव लेकर पानीमें रहना पड़ता था और जलमग्न गाँवोंमें घूम-घूमकर अन्न, वस्त्र, तेल, दियासलाई, दवा, साबूदाना आदिका वितरण करना पड़ता था। यह कार्य मुझे प्रिय था और ऐसा लगता था कि भक्तिके सम्बन्धमें जो कुछ भी उपदेश हमने सुना है, वह सब इस सेवाके द्वारा सार्थक हुआ है।

'कल्याण'में रहते हुए पतनके कई अवसर आये, जब मैं नरकमें पूरी तरह उतर चुका था, परंतु श्रीभाईजीने अपनी दोनों भुजाएँ बढ़ाकर वैसे ही उठा लिया, जैसे माँ अपने बच्चेको उठाती है और आश्चर्य यह है कि सब कुछ जानकर भी श्रीभाईजीके मनमें क्षण-भरके लिये भी मेरे प्रति घृणा और उपेक्षाका भाव नहीं आया। कमजोर व्यक्तियोंके प्रति उनमें विशेष स्नेह और ममता थी। क्षमामें तो वे पृथ्वीके समान थे और गम्भीरतामें समुद्रकी तरह। ऐसे व्यक्तिके साथ लगभग ग्यारह वर्ष रात-दिन रहनेका सौभाग्य किसी पूर्वजन्मके पुण्योदयसे ही हुआ होगा।

अपने सम्पादकीय जीवनकी सबसे बड़ी उपलब्धि मैं पूज्य श्रीभाईजीके सुमधुर सांनिध्यमें उनके पूर्वजोंके निवास-स्थान रतनगढ़ (राजस्थान) का प्रवास मानता हूँ। रतनगढ़-प्रवासने मुझे कितना आनन्द दिया है, वहाँके उस जीवनकी झाँकी मैंने विस्तृत रूपसे एक लेखमें दी थी, पर यहाँ उसे देना समीचीन न होगा।

रतनगढ़का श्रीभाईजीका घर बड़ा मनोरम एवं आकर्षक था। एक ओर अखण्ड हरिकीर्तन होता रहता था और दूसरी ओर सत्संगका स्थान था, जहाँ कई साधु-महात्मा, योगी-यति, उपदेशक और कथावाचक आते और अपने उपदेशोंसे नर-नारियोंको कृतार्थ करते थे। झाँझ, मृदंग, करताल आदिके साथ भगवन्नामका घोष होता रहता था और उससे वहाँके वातावरणमें एक अपूर्व पावन, दिव्य स्निग्धता आ गयी थी।

श्रीभाईजीने हरिनामका रस, लीलाका रस बरसाना शुरू किया और हजारों नहीं, लाखों व्यक्तियोंको प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपमें इस भावराज्यमें प्रवेश कराया। यह कहा जा सकता है कि श्रीभाईजीके कारण ही गीताप्रेसके साहित्यका इतना विकास हुआ और वह सभी क्षेत्रोंमें श्रद्धा और सम्मान पा सका तथा उसका इतना व्यापक प्रचार-प्रसार एवं प्रभाव हो सका।

'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें मैं ग्यारह साल रहा। १९४२ का आन्दोलन न आया होता तो शायद 'कल्याण' से मैं पृथक् न हुआ होता, परंतु पृथक् होकर भी पृथक् कहाँ हो पाया हूँ? 'कल्याण'का मेरे प्रति और मेरा 'कल्याण'के प्रति इतना घनिष्ठ और मधुर सम्बन्ध है कि आज भी मैं 'कल्याण-परिवार' का ही एक अन्यतम सदस्य हूँ। श्रीभाईजीके सम्पर्कमें जो एक

बार भी आ गया, वह जनम-जनमका उनका 'अपना', एकदम अपना हो गया।

श्रीभाईजी थे तो यद्यपि विशुद्ध सनातनी वैष्णव, तथापि सभी धर्मो एवं सम्प्रदायोंके प्रति उनके हृदयमें अपार आदर एवं श्रद्धा थी। राजनीतिसे सर्वथा मुक्त थे, इसलिये उनके मित्रोंमें सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, कॉंग्रेसी, सभी तरहके व्यक्ति थे। कुछ अपनेको नास्तिक कहनेवाले भी थे। उनका कहना था कि नास्तिक कोई होता ही नहीं, वह 'तलाश'में होता है, इतनी ही बात होती है।

साधनाका आरम्भ श्रीभाईजीने भगवान विष्णुके ध्यानसे आरम्भ किया, परंतु बादमें धीरे-धीरे वे श्रीराधाकृष्णके लीलारसमें उतरते गये, उतरते-उतरते उसीमें प्रायः खो गये। 'कल्याण'में 'मधुर' शीर्षक गद्य-पद्यात्मक लेख एवं राधाष्टमी-उत्सव-समारोह इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। वैसे भी श्रीभाईजीका राम-नाममें अखण्ड विश्वास था, अपरिमेय आस्था थी। नामानुरागसे रूपानुराग और लीलानुराग होता है और लीलानुरागसे ही लीलाप्रवेश होता है। ऐसा श्रीभाईजी मानते थे कि *'प्रेमसाधना ही मुक्तिका प्राण है और प्रेमराज्यमें सर्वस्व-समर्पण ही एकमात्र साधना है।'*

ऐसे थे परम वैष्णव प्रेममूर्ति श्रीभाईजी। जिनके परमपावन परममंगलमय चरणयुगलके सांनिध्यका अलभ्य लाभ लगभग चालीस वर्षोंतक अखण्ड भावसे बना रहा, जिनकी पवित्र गोदमें बैठकर भक्तिका ककहरा सीखनेका सौभाग्य मिला, जो मुझ जैसे भूलभरे धूलभरे शिशुको सदा अपनी अहैतुकी प्रीतिमें नहलाते और बहलाते रहे, जिन्होंने सहसा एक देवोत्थानी एकादशीकी मंगलमयी वेलामें ऋषिकेशकी गंगामें मेरा हाथ भगवानके हाथोंमें देकर *'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि'*का महामन्त्र सुनाया, जो मेरे लिये जीवन, प्राण और सर्वस्व थे, हैं और रहेंगे, जिनका पार्थिव शरीर भले ही हमसे ओझल-सा हो गया प्रतीत होता है, परंतु जो सदा-सर्वथा हमारे साथ हैं, सर्वत्र और सदैव हमारी सार-सँभाल रखते हैं, जो सचमुच मानवरूपमें साक्षात् श्रीहरि थे, अपने उन्हीं परमाराध्य, पूज्यचरण पुण्यश्लोक श्रीभाईजीके चरणोंमें सभक्ति और प्रीतिपूर्वक कोटि-कोटि प्रणति निवेदित करता हूँ।

'नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः' ■

श्रीदेवधरजी शर्मा

[१] नास्तिकसे आस्तिक

सन् ३३ या ३४ में मैं सर्वप्रथम श्रीभाईजीके सम्पर्कमें आया। इसके पहले मैं काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसीमें कार्य करता था। मैं गोरखपुर (अब देवरिया) जिलेके माधवपुर गाँवका रहने वाला हूँ और घरकी परिस्थितिके कारण मेरे लिये यह आवश्यक हो गया कि मैं गोरखपुर नगरमें ही कहीं काम करूँ।

हिन्दी साहित्यके इतिहास-निबन्ध-समालोचना आदिके विद्वान लेखक एवं विख्यात साहित्यकार आचार्य श्रीरामचन्द्रजी शुक्लसे मेरा निकट परिचय था। मैंने अपनी समस्या उनके सामने रखी। शायद आचार्य श्रीशुक्लजीका श्रीभाईजीसे निकट परिचय नहीं था, परंतु दोनों ही

अपने-अपने क्षेत्रके गण्यमान मूर्धन्य व्यक्ति थे, अतः सहज विश्वासके आधारपर आचार्य श्रीशुक्लजीने मेरे कार्यके लिये श्रीभाईजीको निजी तौरपर एक पत्र लिखा। वह निजी पत्र लेकर मैं वाराणसीसे गोरखपुर आया।

तब पूज्य श्रीभाईजी गोरखनाथ मन्दिरके पासवाली बगीचीमें रहा करते थे। वे काठकी चौकीपर पूर्णतः साधारण वेशमें बैठे हुए थे। प्रशान्त मुखमण्डलके मध्य दोनों आँखोंमें एक विचित्र तेज था। अधरोंके मन्द मुस्कानकी छवि बड़ी मोहक थी। श्यामल शरीरपर श्वेत वेश, प्रशान्त वदनके तेजस्वी नेत्र, युगल अधरोंकी मन्द मुस्कान, वह छवि मुझे कभी भूलती ही नहीं। मैंने जाकर साधारण रीतिसे वन्दन किया और उनको पत्र दिया। पत्र पढ़कर उन्होंने मेरा विस्तृत परिचय पूछा। विविध जानकारी प्राप्त करके उन्होंने कहा— अभी तुरन्त तो कोई काम सामने नहीं है, पर ज्यों ही कोई ढंग दिखलायी देगा, मैं आपको बुला लूँगा। आप अपना पता लिखकर दे दीजिये।

अपना पता देकर मैं अपने गाँव चला आया। गाँव आकर भी श्रीभाईजीका सौम्य स्वरूप तथा बगीचीका शान्त वातावरण मुझे सदा याद आता रहा और मैं चाहता था कि श्रीभाईजीके पास काम मिल जाय तो बड़ा उत्तम हो। एक मासके भीतर ही श्रीभाईजीका पत्र मुझे गाँवपर मिला। उन्होंने लिखा था कि श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी श्रीरामचरितमानसका सम्पादन कर रहे हैं। उनके कार्यमें सहयोग देनेके लिये आप आ जाइये।

पत्र मिलते ही मैं श्रीभाईजीके व्यक्तित्वके बारेमें सोचने लगा— श्रीभाईजीने आचार्य श्रीशुक्लजीके पत्रको पूर्ण महत्त्व दिया, जिसका मैं पहले अनुमान नहीं कर पाया था। काम होनेपर बुला लिया जायेगा, ऐसा टरकानेवाला उत्तर तो हर साधारण व्यक्ति अपना पिण्ड छुड़ानेके लिये दिया करता है, पर श्रीभाईजीके वे शब्द तो साधारण शब्द नहीं थे, अपितु अर्थ भरे शब्द थे और उन शब्दोंमें अर्थ भर दिया उस पत्रने। आचार्य श्रीशुक्लजीसे निकट परिचयके अभावमें भी समाजके गण्यमान व्यक्ति होनेके नाते श्रीभाईजीने उनके पत्रको सम्मान दिया था। श्रीभाईजीके प्रथम दर्शनसे तो मैं प्रभावित हुआ ही था, इस गुणने उस प्रभावको गहरा बना दिया।

पत्र मिलते ही मैं गाँवसे श्रीभाईजीके पास आया और पूज्य श्रीगोस्वामीजीके कार्यमें सहयोग देने लग गया। सहयोगके अतिरिक्त पत्रोंके उत्तर देनेका कार्य भी मुझे सौंपा गया, उत्तर उन पत्रोंके, जो सम्पादकीय विभागके नाम आते थे। पत्रोंके उत्तर श्रीभाईजी संकेत रूपमें बता या लिख दिया करते थे और उसीको पल्लवित करके उत्तर देना होता था। क्रमशः दिन बीतने लगे और पारस्परिक परिचय बढ़ने लगा।

अब मैं अपने स्वभावके बारेमें कुछ कहना चाहूँगा। वाराणसीमें मैं अपने जिन मित्रोंके संगमें रहता था, उनका रंग मुझपर चढ़ा। उनके संगके फलस्वरूप मुझे लगभग नास्तिक ही कहना चाहिये। मनमें कोई भक्ति-भाव नहीं था, भगवन्नाममें कोई निष्ठा नहीं थी और भगवानकी भगवत्ताके प्रति स्थिर आस्था नहीं थी। वाराणसीमें रहते समय मैं भगवदर्चना-वन्दनाकी भी आलोचना कर दिया करता था। ऐसा कुतर्की नास्तिकका-सा स्वभाव लिये हुए मैं श्रीभाईजीके पास कार्य करने आया था और कार्य करते हुए मैं उनके साथ रह रहा था।

थोड़े दिनों बाद ही सम्पादकीय विभाग गोरखनाथ मन्दिरके पासवाली बगीचीसे वर्तमान गीतावाटिकामें चला आया। यहाँ प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीभाईजीका सत्संग हुआ करता था। मैं सत्संगमें बैठता था, पर उस सत्संगके प्रति मनमें कोई आदर-भाव नहीं था। सत्संग आरम्भ होनेके पहले हरिनाम-कीर्तन हुआ करता था। यह भी मेरे मनको भाता नहीं था। कीर्तनमें बैठकर मैं लोगोंका मुँह देखता रहता था। एक दिन मैं बड़े संकोचमें पड़ गया। सत्संग आरम्भ होनेके पहले श्रीभाईजीने मुझे कीर्तन करानेके लिये कहा। इसे सुनते ही मेरी भावनाओंमें उथल-पुथल शुरू हो गयी। मैंने आनाकानी की। मुझे बड़ा भार-सा लगा। मैं चाहता था कि कीर्तन मुझे नहीं कराना पड़े। मेरी टालमटोलको देखकर श्रीभाईजीने मेरी ओर झाँझ सरकायी और स्नेह भरी भाषामें घुड़कते हुए कहा— देवधरजी ! क्या बात है ? कीर्तन कराइये।

मैं कीर्तन करानेसे बचना चाहता था, पर बच नहीं पाया। मैं भला बचता कैसे ? मेरे सुसंस्करणका शुभारम्भ जो होनेवाला था। श्रीभाईजीने शायद सोच लिया था कि देवधर शर्माके अन्तरमें भगवन्नामके प्रति रुचिको आज जाग्रत कर देना है। जो व्यक्ति लगभग नास्तिकके समान हो, उनके मनमें भगवन्नामके प्रति आदर या रुचि या रसके लिये स्थान कहाँ, पर वस्तुतः न विश्वास करने योग्य बात घटित हो गयी। मुझे उस दिन कीर्तनमें बड़ा आनन्द आया। मनमें भगवन्नामका महत्त्व अंकुरित हुआ। यह मुझ नास्तिकपर भक्त-हृदय श्रीभाईजीकी अनोखी अनुग्रह-वर्षा थी। मेरा मन भगवन्नाम-कीर्तनके दिव्यानन्दकी लहरोंपर लहरा रहा था और सत्संगमें बैठे हुए अन्य बन्धुओंको भी आनन्द आया। अब तो सत्संगके पूर्व मैं प्रायः कीर्तन करने लगा।

श्रीभाईजीके सांनिध्यमें मेरे जीवनका सुसंस्करण तथा निर्माण अलक्षित रूपसे होने लगा। उनके छलकते प्यारने, उनके संतोचित सद्व्यवहारने, उनकी भ्रातृत्वपूर्ण आत्मीयताने और उनके साधु जीवनने मुझ नास्तिकको मात्र आस्तिक ही नहीं बनाया, अपितु मनमें एक भावना जगा दी, इससे भी अधिक बड़ी बात यह कि मेरे चिन्तनमें ऐसी धारणा प्रतिष्ठित कर दी कि उसी मानवका जीवन श्रेष्ठ, सुन्दर और सफल है, जिसके हृदयमें ईश्वरानुरक्ति हो और जिसके आचरणमें दैवी सम्पत्ति हो। श्रीभाईजीका सांनिध्य मेरे लिये मात्र साहचर्य नहीं था, अपितु था एक दिव्य भावलोक, जिसकी मैं कभी कल्पना कर नहीं सकता था और जो बड़े भाग्यसे मिला था।

[२] अपकार और उपकार

प्रसंग एक वर्षीय अखण्ड हरिनाम संकीर्तनके बादका है। गीतावाटिकाके भोजनालयमें जो रसोइया काम करता था, उसे गीताप्रेस बुलाया गया। वहाँके भोजनालयमें उसकी अधिक जरूरत थी, पर वह गीतावाटिका छोड़कर जाना नहीं चाहता था। जब गीताप्रेसकी ओरसे कुछ जोरदार शब्दोंमें उसे गीताप्रेस आनेके लिये कहा गया तो उसका मन क्षुब्ध हो उठा। गीताप्रेसकी आवश्यकताको देखकर श्रीभाईजीने भी उसे जानेके लिये कह दिया। जब श्रीभाईजीने भी कह दिया तो अब उसको गीताप्रेस जाना ही था, पर उसके मनमें क्षोभका तूफान उठ खड़ा हुआ। क्षोभके आधिक्यमें उसने एक काम बड़ा खराब कर दिया। जाते-जाते भोजनालयकी खाद्यसामग्रीमें उसने जमालगोटा मिला दिया।

हमलोगोंको भला क्या पता कि वह भोजनालयमें क्या गड़बड़ कर गया है। उस दिन जिसने भी भोजन किया, उसे टट्टी लगने लगी। सबसे बुरी हालत श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' की थी। वे शायद पचास-साठ बार शौचालय गये होंगे। हल्ला मच गया कि गीतावाटिकामें सभीको हैजा हो गया है।

उस समय श्रीभाईजी गीताप्रेस गये हुए थे। उनको वहीं हैजेके फैलनेका समाचार मिला। वे सारे काम छोड़कर तत्काल गीतावाटिका आये और साथमें डाक्टरको भी लेते आये। क्रमशः स्थिति नियन्त्रणमें आ गयी। धीरे-धीरे बात भी खुल गयी कि उस रसोइयेने भोजनमें जमालगोटा मिला दिया था।

बात खुलते ही हर व्यक्ति उस रसोइयेपर नाराज हो उठा। कोई उसको पीटनेके लिये कहता और कोई पुलिसके हवाले कर देनेके लिये कहता। हमलोगोंकी फुँफकार श्रीभाईजीके कानतक पहुँच गयी। उसी समय श्रीभाईजी हमलोगोंके मध्य आये और कहने लगे— आपलोग अपने मनसे प्रतिहिंसाके भाव निकाल दें। गलती उस रसोइयाकी नहीं, मेरी है। मैंने ही तो उसको यहाँसे गीताप्रेस जानेके लिये कहा था। यदि उसके प्रति कोई भी प्रतिकार करना चाहते हैं तो आपलोग मेरे प्रति करें।

श्रीभाईजीने उसकी ओट ले ली। श्रीभाईजी द्वारा ओट ले लिये जानेसे उसका बचाव तो हो गया, पर सभीका मन उसके प्रति बड़ा खिन्न था। पूज्या माँको हमलोगोंकी खिन्नताका अनुमान तो था, पर जब इसकी गहराईका आभास मिला तो उन्होंने उस रसोइयाको अपने पास बुलाया और अपने पाससे कुछ द्रव्य और कुछ वस्त्र देकर उसको गीतावाटिकासे विदा कर दिया। माँको आशंका थी कि हमलोगोंके मनकी खिन्नता कभी क्रियामें उतरकर उस रसोइयाको कहीं कोई हानि न पहुँचा दे। कोई अनचाही घटना घटे, उसके पहले ही उसको हटा देना उत्तम रहेगा, ऐसा सोचकर माँने उसको विदा कर दिया। अपकार करनेवालेका किस प्रकार पहले बचाव और फिर हित-सम्पादन किया गया, यह तो मेरे आँखोंके सामनेकी बात है।

[३] उनकी क्षुब्ध वाणी

बाँध बननेके पहले गोरखपुरका क्षेत्र प्रायः बरसातके दिनोंमें बाढ़से आक्रान्त हो जाया करता था और तब गाँव-के-गाँव तबाह हो जाया करते थे। बाढ़-पीड़ित लोगोंको गीताप्रेसकी ओरसे अन्न-वस्त्र-औषधिकी सहायता दी जाया करती थी। गीताप्रेसके सहायता-कार्यकी व्यवस्था, तत्परता एवं सेवाभावनासे केन्द्रीय एवं प्रादेशिक सरकार इतनी अधिक प्रभावित थी कि वह भी राहतके लिये दिया जानेवाला अनुदान श्रीभाईजीको दे दिया करती थी। स्वाधीन भारतमें दिल्लीसे गृहमंत्री पण्डित श्रीगोविन्दवल्लभजी पन्तने तथा लखनऊसे मुख्यमंत्री डा. श्रीसम्पूर्णानन्दजीने अनुदानकी धनराशिका ड्राफ्ट श्रीभाईजीके पास भेजा था।

गीताप्रेसके द्वारा जो सेवाकार्य हुआ, उसके लिये गोरखपुरके जिलाधीश महोदयने लिखा था— मुझे सन् १९३८ की बाढ़के संकटकालमें विशेष रूपसे गीताप्रेसके कार्यको देखनेका शुभ अवसर मिला जब कि वह पीड़ितोंकी सेवामें संलग्न था और उससे मुझे अमूल्य सहायता प्राप्त हुई। यदि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार तथा प्रेसकी निःस्वार्थ उदारताके फलस्वरूप धन एवं वस्तुओंके रूपमें जो सहयोग मिला, वह न मिलता तो इस जिलेके तथा अन्य जिलोंके

बाढ़-पीड़ित ग्रामोंके सहस्रों व्यक्तियोंको जो सहायता दी गयी, वह असम्भव ही थी। जो कुछ भी इन लोगोंने किया है, उसके लिये कृतज्ञता-ज्ञापन तथा अभिशंसा करनेके लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं।

उस साल राप्ती नदीकी बाढ़से बड़ी हानि हुई थी। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। गीताप्रेसकी ओरसे एक सहायता शिविर पासके एक गाँवमें खोला गया था और प्रतिदिन लगभग दस हजार व्यक्तियोंको अन्न दिया जाता था। इस कार्य-व्यवस्थाका भार गोरखपुरके एक व्यवसायी सज्जनके जिम्मे था और अन्नको वितरित करनेका कार्य काशीके एक पण्डितजी कर रहे थे। उन पण्डितजीको सहयोग देनेके लिये उनके साथ कई उत्साही स्वयंसेवक थे।

व्यवस्था अच्छी-से-अच्छी की गयी थी, पर फिर भी कुछ गड़बड़ी हो ही जाया करती थी। कुछ लोग ऐसे थे कि घुसपैठ करके दुबारा-तिबारा अन्न ले जाया करते थे और कुछ भाई-बहिन ऐसे असमर्थ थे कि पात्र होकर भी उनको अन्न मिल ही नहीं पाता था। घुसपैठ करनेवाले लोग पकड़ लिये गये और माँफी माँगनेपर उनको छोड़ भी दिया गया, पर लोभ पुनः उनसे वैसा कार्य करवा दिया करता था।

उनकी ऐसी चेष्टा देखकर व्यवस्था सँभालनेवाले व्यवसायी सज्जनको बड़ा बुरा लगा और उन्होंने रोषमें भरकर अन्नका वितरण ही बन्द करवा दिया। शिविरके पासवाले गाँवोंमें बड़ी निराशा फैल गयी और गाँवके लोग उन घुसपैठियोंको बड़ा कोसने लगे। वे व्यवसायी सज्जन वितरण-प्रमुख पण्डितजीको साथ लिये हुए गीतावाटिका आये वस्तुस्थितिकी सूचना देनेके लिये। उस समय गीतवाटिकाके पंडालमें श्रीभाईजीका सत्संग चल रहा था। सत्संगके बीचमें ही उन्होंने संक्षेपमें सब कह सुनाया तथा श्रीभाईजीने चुपचाप सुन लिया। सत्संग समाप्त होनेके बाद श्रीभाईजीने सारी बात पुनः सुननेकी इच्छा व्यक्त की, जिससे विस्तृत जानकारी मिल सके। गड़बड़ीका वृत्त बताकर ज्यों ही उन्होंने सहायता-कार्य बन्द कर देने वाले आदेशको बताया, श्रीभाईजीके चेहरेका रंग एकदम बदल गया और उन्होंने क्षुब्ध वाणीमें उन व्यवसायी सज्जनसे कहा— हमलोग, आपलोग और व्यापारीलोग व्यापार करके केवल एक दिन या दो दिनके लिये नहीं बल्कि कई सालके लिये धन संग्रह कर लेते हैं। इसमें भी केवल अपने लिये नहीं बल्कि अपने बेटे और पोतेतकके लिये संग्रह कर लेते हैं, पर क्या इससे भी अधिक संग्रह वे आफतके मारे हुए दुःखी लोग कर रहे थे ? आपका यह संग्रह आपको नहीं चुभता और उस संकटग्रस्त बाढ़पीड़ित भाईने भले चोरीसे ही सही, यदि दो-तीन बार छिपे-छिपे सहायता लेकर दो दिनके लिये अन्न-संग्रह कर लिया तो वह संग्रह आपको चुभ गया और ऐसा चुभा कि आपने वितरण-कार्य ही बन्द कर दिया। यह आपका कौन-सा विवेक है? गड़बड़ी करनेवाले ऐसे दो-चार व्यक्तियोंको दण्ड देनेके विचारसे आपने शिविर बन्द कर देनेका आदेश दे दिया और इस आदेशसे आपने हजारों असहाय लोगोंको वस्तुतः मिलनेवाली राहतका रास्ता ही बन्द कर दिया। मैं आपके आदेशके लिये और आपके विचारके लिये आपको अब क्या कहूँ ?

श्रीभाईजी शायद और भी कुछ कहते कि उन व्यवसायी सज्जनको तत्काल अपनी भूल समझमें आ गयी। उसी समय कुछ रुँआसे-से होकर उन्होंने श्रीभाईजीसे कहा— यह तो मुझसे बड़ी गलती हो गयी। वैसा तो मैंने रोषमें आकर कर दिया, पर अब सचमुच समझमें आ रहा है

कि यह आदेश देकर मैंने बड़ी भूल की। यदि आपके पास नहीं आता तो यह भूल मेरे ध्यानमें आती ही नहीं। मैं तुरन्त जाकर वह सहायता-कार्य शुरू करवा देता हूँ।

सहायता-कार्य शायद एक ही दिन रुका होगा, पर फिर वह चालू हो गया। भले थोड़ी गड़बड़ी हो जाया करती थी, पर श्रीभाईजीकी दृष्टि उस गड़बड़ीकी ओर थी ही नहीं। श्रीभाईजीको इसी बातसे बड़ी आन्तरिक प्रसन्नता होती थी कि थोड़ी-बहुत गड़बड़ीके बाद भी अनगिनत आर्त भाइयोंको राहत मिल रही है।

[४] 'बदमाशी'का खेल

प्रसंग बहुत पुराना है। सम्भवतः सन् ३७, ३८ के आसपासका होना चाहिये। उस समय कल्याणके सम्पादकीय विभागमें हमलोगोंके साथ श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' भी कार्य करते थे। सम्पादकीय विभागमें श्रीभाईजीके बाद वरिष्ठतम व्यक्ति थे पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी और कनिष्ठतम कहे जा सकते हैं चौकेके नौकर या वाटिकाके माली आदि। सबके साथ रहनेसे परस्परमें मतभेदके प्रसंग भी प्रस्तुत हो ही जाया करते थे, परंतु कभी भी कोई व्यक्ति श्रीभाईजीसे शिकायत नहीं करता था। किसी न्यायालयके जजके सामने जानेमें एक बार डर नहीं लग सकता है, परंतु श्रीभाईजीके सामने जानेमें बड़ा भय लगता था। भय इस माने कि जो शिकायत लेकर जायेगा, वही श्रीभाईजीकी दृष्टिमें हीन समझा जायेगा। श्रीभाईजीके मनमें किसी हीन धारणाका निर्माण न हो जाय, इस कारण कोई भी शिकायत करते हुए डरता था, अतः परस्परकी शिकायतके प्रसंग परस्परमें ही निपटा लिये जाते थे। निन्दा-स्तुतिके, मतभेदके, इस प्रकारके अनेक प्रसंगोंकी बात श्रीभाईजीतक पहुँच ही नहीं पाती थी।

कृष्णजन्माष्टमीके उत्सवके मनानेकी तैयारी हो रही थी। कोठीके हॉलमें ही झाँकी सजायी जाती थी। झाँकीमें समग्र ब्रजकी झाँकी होती थी, मथुरा, गोकुल, यमुना, वृन्दावन आदि। झाँकीको सजाते थे गीताप्रेसके प्रसिद्ध चित्रकार श्रीजगन्नाथजी। वह झाँकी दर्शनीय होती थी और दर्शकोंकी भीड़ लगी रहती थी। उन दिनों कृष्णजन्माष्टमीका उत्सव एकादशीसे ही आरम्भ हो जाता और कई दिनोंतक रहता।

एकादशीके दिन बासे (अर्थात् भोजनालय) के रसोइया श्रीपूरन महाराजपर बड़ा भार पड़ता। अन्नहार करनेवालोंको दोनों समय भोजन बनाकर खिलाना और फलाहार करने वालोंको फलाहारी भोजन तैयार करके खिलाना, इस प्रकार दिनभर कार्यमें लगे रहनेसे श्रीपूरन महाराजको बड़ा श्रम पड़ता। इतनेपर भी यह श्रीपूरन महाराजकी विशेषता थी कि वे इस श्रमको सोत्साह स्वीकार करते तथा सानन्द सभीकी सेवामें संलग्न रहते।

कृष्णजन्माष्टमीके उत्सवका शुभारम्भ एकादशीसे था। गोरखपुर नगरके गाँधी आश्रम खादी भण्डारके प्रधान व्यवस्थापक श्रीहरिभाईजी मेरे और श्रीमाधवजीके घनिष्ठ मित्रोंमेंसे थे। हमारे अनुरोधपर श्रीहरिभाईजी झाँकीका दर्शन करनेके लिये गीतावाटिका आये। झाँकीके अनावरणके बाद कीर्तनका कार्यक्रम था। कीर्तनमें श्रीहरिभाईजीको आनन्द आया, अतः श्रीमाधवजीने श्रीहरिभाईजीसे कहा— कीर्तनका कार्यक्रम तो आधी राततक चलेगा, तबतक इसका आनन्द लीजिये, परंतु लौटते-लौटते आपलोगोंको बहुत देर हो जायेगी, अतः आपलोग यहीं भोजन कर लीजियेगा।

यह प्रस्ताव मैं भी कर सकता था, पर मुझे ऐसा ज्ञात था कि बासेका चौका उठ चुका है और आज एकादशीके कारण श्रीपूरन महाराजपर अधिक श्रम पड़ा है। श्रीहरिभाईजीको आमन्त्रित करनेका अर्थ होगा श्रीपूरन महाराजपर अत्यधिक भार पड़ना, जो पहलेसे ही थकानसे चूर हो रहे हैं। यह सब सोचकर इच्छा होते हुए भी मैंने श्रीहरिभाईजीको आमन्त्रित नहीं किया, परंतु यह बात श्रीमाधवजीके ध्यानमें नहीं आयी और उन्होंने अपने अतिथियोंको आमन्त्रित कर दिया। श्रीहरिभाईजीने भी कुछ संकोचके साथ भोजनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। श्रीपूरन महाराज भी पास ही बैठे थे। उन्होंने सारी बात सुनी और ज्यों ही श्रीहरिभाईजीने भोजनका आमन्त्रण स्वीकार किया, श्रीपूरन महाराज उठकर भोजन बनानेके लिये चले गये। वे जानते थे कि अन्ततोगत्वा मुझे ही भोजन बनाना है।

मध्य रात्रिमें कीर्तनका कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। श्रीमाधवजी अपने मित्रोंसहित बासेकी ओर गये। उधर भोजन तैयार था ही। सारी तैयारी देखकर श्रीमाधवजीका मन कृतज्ञतासे भर गया और बासेमें खड़े-खड़े श्रीपूरन महाराजको धन्यवाद देते हुए उन्होंने कहा— महाराज! किन शब्दोंमें आपको धन्यवाद दूँ और अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँ? आज तो आपने बड़ा परिश्रम किया।

श्रीहरिभाईजी अपने साथियोंसहित चौकेके बाहर हाथ धो रहे थे। सम्भवतः श्रीपूरन महाराजको इसका ज्ञान नहीं था। ज्यों ही श्रीमाधवजीने अपनी कृतज्ञता प्रकट की, श्रीपूरन महाराज, जो अन्दर-ही-अन्दर झुँझलाये हुए थे और झुलसे हुए थे, अपने विशेष लहजेके साथ एक साथ बोल पड़े— दिनभर काम करना पड़ा, वह तो अलग बात है, कीर्तनमें भी सम्मिलित नहीं हो पाया। हमारे भाग्यमें कीर्तनका सुख भी नहीं बदा था। आज भगवन्नाम कीर्तनसे भी वंचित हो गया। आपलोग इस बातपर ध्यान नहीं देते। मेरी तो यही प्रार्थना है कि मुझ गरीब ब्राह्मणका भी ख्याल रखा करिये।

इतना सुनकर श्रीमाधवजीको दुःख होना स्वाभाविक था। दुःखकी अधिकताका विशेष कारण यह भी था कि श्रीमाधवजीको यह सन्देह हो गया कि श्रीपूरन महाराजकी बातको श्रीहरिभाईजीने सुन लिया है, अतः वे अतिथि अब कैसे भोजन करेंगे। श्रीमाधवजीको भी श्रीहरिभाईजीके साथ भोजन करना था, पर उन्होंने दुःखके मारे भोजन किया नहीं। श्रीहरिभाईजीने अपने साथियोंसहित भोजन किया। भोजनके बाद वे लोग गीतावाटिकासे शहर जाने लगे। उन लोगोंको विदा करनेके लिये श्रीमाधवजी, गीतावाटिकाके द्वारतक आये। श्रीभाईजी भी द्वारतक आये। मैं तो आया ही था। मैंने श्रीभाईजीको किनारे ले जाकर बता दिया— आज इस प्रकारसे एक अवांछित प्रसंग घटित हो गया है और यदि श्रीहरिभाईजीने बात सुन ली है तो एक प्रकारसे उनका अपमान हो गया है। अतिथियोंने तो भोजन कर लिया है, किन्तु श्रीमाधवजी भूखे हैं। दुःख और रोषके मारे भोजन नहीं किया है।

श्रीभाईजीने कहा— ठीक किया, आपने बता दिया। कोई बात नहीं।

जब श्रीहरिभाईजी जाने लगे, तब श्रीभाईजीने हाथ जोड़कर क्षमा याचना की— आज हमारे रसोइयाद्वारा आपके प्रति थोड़ा अभद्र व्यवहार हो गया है। यह उसकी बहुत बड़ी गलती है। मैं आप लोगोंसे इसके लिये क्षमा-याचना करता हूँ।

श्रीहरिभाईजीने न श्रीपूरन महाराजकी बात सुनी थी और न इन सब बातोंकी जानकारी थी। उन्होंने तुरन्त श्रीभाईजीसे कहा– भाईजी ! आप यह क्या कह रहे हैं ? हमें तो यह सब पता ही नहीं। हम तो यही जानते हैं कि आपके यहाँ खूब बढ़िया रसोई भोजन करनेको मिली और बड़े स्नेहके साथ भोजन कराया गया, फिर आप क्षमा किस बातके लिये माँग रहे हैं ?

श्रीभाईजीने कहा– तब कोई बात नहीं। फिर तो आपलोग पधारें।

श्रीहरिभाईजी शहरकी ओर चले गये और श्रीभाईजी वाटिकामें आये। आते ही श्रीभाईजीने श्रीपूरन महाराजको बुलवाया। श्रीपूरन महाराजको तबतक अपनी गलतीका ज्ञान हो चुका था। आवेशमें व्यक्ति भूलकर जाता है, पर बादमें पश्चात्ताप भी बहुत होता है। रात्रिके लगभग एक बज चुके थे। श्रीपूरन महाराजने तुरन्त अनुमान लगा लिया कि श्रीभाईजी क्यों बुला रहे हैं। श्रीपूरन महाराज श्रीभाईजीके अपने व्यक्ति हैं। उनकी श्रीभाईजीमें श्रद्धा है। वे भक्त हृदय हैं। उनकी भगवन्नामपर बड़ी आस्था है तथा संकीर्तन एवं रामचरितमानसके बड़े प्रेमी हैं। श्रीभाईजीके बड़े विश्वास पात्र हैं एवं निजी परिकर हैं। जब श्रीभाईजी १९५६ में तीर्थयात्रा ट्रेनमें गये तो तार देकर विशेष रूपसे श्रीपूरन महाराजको राजस्थानसे बुलाया गया था। श्रीभाईजीके सामने जाते ही श्रीपूरन महाराजने कहा– भाईजी ! मैं समझ रहा हूँ आपने क्यों बुलाया है। मेरे द्वारा आज बड़ी भूल हुई। आवेशमें कह गया। अपनी भूलके लिये माफी माँगनेके अतिरिक्त और क्या कहूँ ?

श्रीभाईजीको कुछ कहनेका अवसर ही नहीं मिला। श्रीपूरन महाराजने क्षमा माँग ली, पर श्रीमाधवजीका क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। श्रीमाधवजीके मुखसे निकल गया– भाईजी ! कसूर इनका नहीं है, बदमाशी हमलोगोंकी है जो समय-कुसमय अपने अतिथियोंको बुलाते रहते हैं और अपना घर समझकर रात-बेरात खानेके लिये अतिथियोंसे कहा करते हैं।

इतना कहते ही श्रीभाईजीका रुख बदला। अबतक तो श्रीभाईजी श्रीपूरन महाराजपर नाराज हो रहे थे, परंतु अब अपनेपर, अपने सहयोगियोंपर, अपने और अपने सहयोगियोंके कार्योंपर, गीतावाटिकाके सारे कार्य-व्यापारपर नाराज होकर व्यंग्यात्मक वाणीमें अपने क्षोभको व्यक्त करने लगे– अच्छा, अबतक आपलोग गीतवाटिकाको अपना घर समझते रहे, अपना घर समझकर अपने अतिथियोंको बुलाते रहे, बुलाये हुए अतिथियोंको जिमाते रहे, यह सब बदमाशी थी और इस बदमाशीकी अब अनुभूति होने लगी है। अच्छा, सब ठीक है। जब यह आपका घर नहीं है तब तो बदमाशी है ही। आपकी भी बदमाशी है, मेरी भी बदमाशी है। अबतक सारा खेल आपकी हमारी बदमाशीका था, तो अब तो तुरन्त इस बदमाशीका अन्त कर देना चाहिये। 'कल्याण'के द्वारा बदमाशीके प्रसारसे क्या लाभ ? इस 'कल्याण'को भी बन्द कर देना चाहिये। आप लोग भी अपने घर पधारें। मैं भी अपना रास्ता लूँगा। जहाँ जाना होगा, चला जाऊँगा। यह सब पाखण्ड है, वितण्डावाद है। यह सब कुछ नहीं, सब व्यर्थ है। इस आडम्बरमें क्या रखा है ? यह सब दिखावा है, प्रदर्शन है, इन सबको बन्द कर देना चाहिये।

इसी आवेशके प्रवाहमें श्रीभाईजीने श्रीमाधवजीसे विशेष रूपसे कहा– आपने बारह घंटेका उपवास किया तो इसके बदलेमें मैं चौबीस घंटेका उपवास करूँगा। अब तो मैं भोजन कर चुका हूँ, इसलिये लाचारी है, पर चौबीस घंटे उपवास करनेके बाद मेरा आपसे और सभीसे कोई

सम्बन्ध नहीं, कोई सम्पर्क नहीं।

इतना कहकर श्रीभाईजी, जो आन्तरिक व्यथाके मारे कुछ रुँआसे-से हो रहे थे और जो क्षोभके मारे काँप रहे थे, कोठीके दक्षिणी द्वारसे भीतर चले गये और अन्दरसे दरवाजा बन्द करके चारपाईपर सो गये।

परिस्थिति बिगड़ गयी। पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी आये। पूज्य बाबाजी भी आ गये। कई लोग इकट्‌ठे हो गये। श्रीभाईजीके उद्‌गार, क्षोभ तथा उपवासकी बातसे सभी सचिन्त हो गये। मैं तथा अन्य लोग श्रीमाधवजीको कोसने लगे– आपने यह क्या किया? आपके कारण ही यह विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गयी।

श्रीमाधवजीने कहा– मैं क्या करूँ? यदि मैं नहीं कहता तो मेरा सिर फट जाता। मैं इस स्थितिमें नहीं था कि अपने आवेशको सँभाल सकूँ? अपने अतिथियोंका अनादर कैसे सहा जाय?

सभी इकट्‌ठे लोग सोच रहे थे कि अब क्या किया जाय। अनचाहे रूपसे परिस्थिति विषम बन गयी थी। यही तय हुआ कि चलकर श्रीभाईजीको मनाया जाय। रातको लगभग दो बज चुके हैं। पूज्य बाबाके नेतृत्वमें लोग गये। दरवाजेको खटखटाया गया, पर सारा खटखटाना व्यर्थ गया। उस समय घरमें थे ही दो-तीन व्यक्ति। श्रीभाईजीने दरवाजा बन्द किया था और श्रीभाईजी ही खोलते। फिर पूज्य गोस्वामीजीने कहा– मैं चिम्मनलाल गोस्वामी खड़ा हूँ।

उनके बाद पूज्य बाबाने भी कहा– मैं भी खड़ा हूँ।

बहुत अनुनय-विनय करनेके बाद श्रीभाईजीने दरवाजा खोला और फिर बिन-देखे, बिन-बोले, बिन-बतलाये अपनी खाटपर जाकर सो गये। पूज्य बाबा, पूज्य गोस्वामीजी, श्रीदुजारीजी, श्रीमाधवजी, मैं आदि-आदि सभी जाकर श्रीभाईजीकी खाटको घेरकर बैठ गये। अबतक श्रीमाधवजीका रोष शान्त हो चुका था, अपितु वे अन्दर-ही-अन्दर गल रहे थे, अपनी भूलकी स्मृतिसे वे स्वयं ही स्वयंमें गड़ते जा रहे थे। यह बात श्रीमाधवजीको चुभ रही थी कि इस विषम परिस्थितिका कारण मैं हूँ। उनके नेत्र अभी तरल तो नहीं हो पाये थे, किन्तु उनके नेत्रोंमें आँसू-भरे बादल घुमड़ रहे थे। श्रीमाधवजीने जाकर श्रीभाईजीके चरणोंको पकड़ लिया और कहा– आपके अतिरिक्त मेरा और कौन है? यदि आप इन बातोंको नहीं सुनेंगे तो और कौन सुनेगा? दूसरा कौन है जो सहेगा? यदि मैं नहीं कहता तो आज मैं विक्षिप्त हो जाता। यदि मेरी विक्षिप्तता ही आपको स्वीकार है, तो मुझे अब कहना ही क्या है? मेरे पास इसके अलावा और कोई रास्ता ही नहीं था कि आपके सामने बरसकर मैं खाली हो जाऊँ और अपने मनको शान्त कर लूँ। मेरी इस चेष्टासे आपको दुःखित होना स्वाभाविक है, पर अब जैसा ठीक समझें, करें।

इतना कहकर श्रीभाईजीके चरणोंसे लिपटकर श्रीमाधवजी खूब रोये। वातावरणमें अतिशय करुणा व्याप्त हो गयी। कौन नहीं रोया? पूज्य गोस्वामीजी रोये, पूज्य बाबा रोये, सभी उपस्थित जन रोये, और तो और स्वयं श्रीभाईजी रोये। भावाधिक्यमें एक अजीब-सा दृश्य अकारण ही उपस्थित हो गया था। सभीके आँसुओंके प्रवाहमें श्रीभाईजीका सारा रोष बह गया। श्रीभाईजीने अपनी हार स्वीकार की और कहा– ठीक है, कोई बात नहीं। चौबीस घंटेका

उपवास नहीं करूँगा, पर साथ ही कहे हुए शब्द व्यर्थ न जायें, इसलिये चौबीस घंटेको दो भागमें तोड़कर दो एकादशीके व्रतके रूपमें शब्दोंका निर्वाह कर लूँगा, पर अब श्रीमाधवजीको भोजन करवाना चाहिये।

इस समय रातको लगभग तीन बज रहे होंगे। श्रीपूरन महाराज तो जाकर सो चुके थे। श्रीमाधवजीने कहा— इस समय तो वहाँ नहीं खाऊँगा, हाँ, आपके घरमें कुछ हो तो खा लूँगा।

इस सारे प्रसंगके द्रष्टाके रूपमें श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी वहाँ उपस्थित थे। श्रीदुजारीजीसे श्रीभाईजीने कहा— जाकर कुछ लाओ।

पूज्या माँ ऊपर छतपर सो रही थीं। भागे-भागे श्रीदुजारीजी ऊपर गये। माँको जगाया और कहा— कुछ खानेको दो।

माँ अभी ठीकसे जग नहीं पायी थी। उसी उनींदी स्थितिमें कहा— घरमें खानेके लिये इस समय कुछ नहीं है।

आजकल तो श्रीभाईजीकी गृहस्थीमें, दिनके चौबीस घंटोंमें सम्भवतः बारह-तेरह घंटे चौकेका चूल्हा जलता रहता है और जलपान आदिके लिये जो दूसरा चूल्हा जलता है, वह तो अलग है ही, पर उन दिनों इस प्रकार चूल्हा नहीं जलता था। अत्यधिक संक्षिप्त एवं सुव्यवस्थित व्यय था, सादा एवं संयमित जीवन था और साधनामय एवं सात्त्विक वातावरण था। 'घरमें खानेके लिये इस समय कुछ नहीं है' पूज्या माँके इस उत्तरको श्रीभाईजीने नीचे आँगनमें ही सुन लिया। सुनते ही श्रीभाईजीने कहा— अब देखिये, हमारे घरमें कुछ भी खानेको नहीं है। अब तो यह गृहस्थी भी बेकार है। सब व्यर्थ है। एक आदमीके खानेके लायक सामग्री भी घरमें नहीं है।

सभी उपस्थित लोग घबड़ाये। बिगड़ी परिस्थिति बड़ी कठिनाईसे तो सुधरी थी, अब फिर कहीं बिगड़ न जाये। पूज्या माँने दुजारीजीको उत्तर तो दे दिया, जो सही भी था, परंतु उत्तर देनेके एक-दो क्षणोंके बाद ही उन्हें पूर्ण चेतना हो आयी। वे उठकर खड़ी हो गयीं। उन्होंने देखा, नीचे आँगनमें कुछ भीड़ है, तभी उनके कानोंमें पड़े श्रीभाईजीके शब्द 'अब देखिये, हमारे घरमें कुछ खानेको भी नहीं है। अब तो यह गृहस्थी भी बेकार है। सब व्यर्थ है।' इतना सुनते ही पूज्या माँने ऊपरसे ही कहा— कौन कहता है कि नहीं है। घरमें अँगीठी है, अचार है, आटा है। भोजन बनते क्या देर लगती है? आप लोग थोड़ी देर बात करिये। तुरन्त भोजन बन जाता है। मैं अभी आयी।

ऐसा कहते ही पूज्या माँ सीढ़ियोंसे झमकती हुई नीचे उतरीं। उनके पैरोंके पायजेबकी गम्भीर ध्वनि सारे वायुमण्डलमें बिखर गयी। मुझको ऐसा लगा मानो देवलोकसे लक्ष्मी ही अवतरित हो रही है। सचमुच विष्णुप्रिया भगवती लक्ष्मीके समान ही माँकी शोभा थी, हृदय था, वाणी थी, और उदार कर-पल्लव थे। गृह-लक्ष्मी माँ झटपट उतर कर नीचे आयीं और आश्चर्यकी बात कि दस मिनटमें परौठे तैयार हो गये। अँगीठीमें आग पहलेसे रही होगी। आटा सानकर परौठा बनानेमें क्या देर लगी? निशान्त बेलामें श्रीमाधवजीने छककर भोजन किया। प्रसादके रूपमें अन्य सभीने परौठेका एक-एक टुकड़ा खाया। श्रीमाधवजीके भोजन कर लेनेसे श्रीभाईजीको और पूज्य बाबाको परम संतोष हुआ। गृहलक्ष्मी पूज्या माँके हाथका वह परौठा,

अपने अनोखे स्वादकी एक स्थायी छाप सबके मानस-पटलपर छोड़ गया।

[५] पारिवारिकतापूर्ण ममता

गीताप्रेसके प्रकाशनोंकी छपवायी-जिल्दसाजी-बिक्री-वितरण आदिका सारा कार्य गीताप्रेसमें होता था और है, जो शहरके मध्यमें है, पर पहले उन समस्त प्रकाशनोंका सम्पादन-कार्य गीतावाटिकामें होता था, जो शहरके बाहर स्थित है। गीतावाटिकामें सम्पादित सामग्री ही गीताप्रेससे प्रकाशित होती थी, पर इन दोनों स्थानोंकी कार्य-पद्धतिमें बड़ा अन्तर था। गीताप्रेसमें कार्य करने वाले कर्मचारियोंके लिये यह आवश्यक था अमुक बजेसे अमुक बजेतक कार्यालयमें बैठकर कार्य करना है, पर ऐसा प्रतिबन्ध श्रीभाईजीके सम्पादकीय विभागके कार्यालयमें नहीं था। किसी कार्यालयमें कार्य करनेका ऐसा प्रतिबन्ध-विहीन वातावरण शायद ही कहीं देखनेको मिलेगा। श्रीभाईजीके सम्पादकीय विभागको विभाग न कहकर परिवार कहना चाहिये। इस सम्पादकीय परिवारमें किसी प्रकारका बन्धन नहीं था। सभीको पूर्ण छूट थी। सभी अपनी-अपनी सुविधाके अनुसार कार्य करें। न समयका बन्धन था और न स्थानका बन्धन। कोई चाहे कार्यालयमें बैठकर कार्यको करे अथवा अपने निवासस्थानपर रहते हुए। जिसके जिम्में जो काम है, वह कर देना चाहिये। उस कार्यको कर देनेके बाद फिर तो पूर्ण स्वतन्त्रता थी। गीतावाटिकाके सम्पादकीय विभागकी स्नेहसनी पारिवारिकता कई लोगोंको चुभ जाया करती थी और कभी-कभी कोई टिप्पणी भी कर देता था कि गीतावाटिकामें सम्पादकीय विभागके लोग काम कम और मौज-मस्ती ज्यादा करते हैं। हमलोगोंको तो इस टिप्पणीका उत्तर देनेका अवसर नहीं मिल पाता था। हमलोग कुछ कहें, इसके पहले ही श्रीभाईजी कह दिया करते थे— हमारे कार्यालयके व्यक्ति कितना काम करते हैं, यह मैं जानता हूँ। यदि ये लोग काम नहीं करते तो क्या प्रकाशनके लिये सामग्री प्रेस जा पाती ?

श्रीभाईजी ही जब ऐसा कह रहे हैं, तब फिर किसीको साहस नहीं होता था कि हमलोगोंकी ओर कोई अँगुली उठा सके। हाँ, एक अवसरपर श्रीभाईजी अवश्य सावधान करते हुए कह दिया करते थे— कल पूज्य श्रीसेठजी और उनके साथ कुछ लोग गीतावाटिका आयेंगे, अतः आप सबलोग उस समय कार्यालयमें रहें।

हम सभी लोग तब कार्यालयमें रहते ही थे और बैठकर काम करते थे, पर गीतावाटिकासे श्रीसेठजीके सहित सबलोगोंके जाते ही हमलोग बन्धनमुक्त होकर अपने-अपने ढंगसे अपने-अपने काममें लग जाया करते थे।

जहाँ इतनी स्वतन्त्रता श्रीभाईजीने हमलोगोंको दे रखी थी, वहीं हमलोगोंका दायित्व बहुत अधिक बढ़ जाया करता था और सभी इतना अधिक सचेष्ट रहते थे कि दिया हुआ कार्य समयसे पूर्ण करके श्रीभाईजीके सामने रख दें। कभी-कभी ऐसा होता था कि कामको पूरा करनेके लिये सूर्यास्त होनेके बाद भी हमारी कलम कागजपर चलती रही है। उसी समय श्रीभाईजी हमारे पास आते, हमारा हाथ थाम लेते, अँगुलियोंकी कलमको पकड़कर एक किनारे रख देते और प्यारकी अधिकतामें झिड़कते हुए कहते— ये समय भला क्या काम करनेका है ? उठिये, जाइये, शौचसे निवृत्त होकर भोजन-विश्राम करिये।

यह कितनी उलटी बात हुई ? अन्य स्थानोंपर मालिकलोग ऐसी कार्य-तत्परताको

प्रोत्साहन दिया करते हैं और वे चाहते हैं कि मातहत कर्मचारी इस प्रकारसे अधिकसे अधिक कार्य करें, पर यह कितनी विचित्र बात है कि हमलोगोंको श्रीभाईजीकी फटकार सुननी पड़ती थी कि आपने भोजन नहीं किया, आपने दवा नहीं ली, आपने विश्राम नहीं किया और अब काम छोड़िये।

उन्होंने जो भी काम बतलाया, कभी हुकूमतकी भावनासे नहीं। उन्होंने कभी किसी कामके लिये आदेश नहीं दिया। वे मात्र इतना कहते थे कि यह काम हो जाय तो उत्तम है। उस निर्दिष्ट कार्यको करके जब हमलोग ले जाते थे तो वे सदा सराहना ही किया करते थे। उसमें जो न्यूनता होती थी, वे स्वयं सुधार कर देते थे। हमारी कलमसे जिस अपेक्षित स्तरकी भावाभिव्यक्ति नहीं हो पाती थी, वह उनकी लेखनीसे तुरन्त अवतरित हो उठती थी। उनकी लेखनीपर विद्याकी अधिष्ठात्रीदेवी भगवती सरस्वतीका वास जो था। इस प्रकार हमारी सामग्रीको प्रकाशनकी दृष्टिसे सजा दिया करते थे, पर सामने तो वे सदा सराहना ही किया करते थे।

श्रीभाईजीके इस 'भाव-दरबार' की हवा ही कुछ दूसरे प्रकारकी थी। सारा वातावरण किसी दिव्य भाव-लोकका था। ऐसा भाव-लोक तो अपने घरपर भी नहीं मिलेगा। इस 'भाव-दरबार' की पारिवारिक-भावना अन्यत्र कहीं भी सर्वथा दुर्लभ है। सम्पादकीय विभागके जितने भी सदस्य थे, उनके दूधकी, दवाकी, खानेकी, पीनेकी, सोनेकी, रहनेकी सारी चिन्ता श्रीभाईजी किया करते थे। भविष्यमें लोग विश्वास नहीं करेंगे कि क्या ऐसा 'कार्यालय' भूतलपर हो सकता है, पर यह सर्वथा सत्य तथ्य है। श्रीभाईजी मात्र प्रधान सम्पादक नहीं थे, बल्कि सच्चे अर्थमें हमारे बड़े भाई थे और माताकी तरह, पिताकी तरह, भाईकी तरह, बहनकी तरह हमलोगोंकी सँभाल किया करते थे। कल्याण परिवारके वरिष्ठ सदस्य सम्मान्य श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदीने जब संन्यास लिया तो वे विख्यात हुए श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वतीके नामसे। अपने संन्यासी जीवनमें उन्होंने कहा था— मेरा कोई घर था तो वह श्रीभाईजीका घर था, मेरी ममता कहीं थी तो वह श्रीभाईजीकी सुपुत्री सावित्रीमें थी और मैंने संन्यास लिया है तो वह मैंने अपने पितृकुलसे नहीं लिया, लिया श्रीभाईजीके ममता भरे परिवारसे। मेरी उस पितृकुलसे मोह-ममता तो बहुत पहले ही दूर जा चुकी थी। मैंने वस्तुतः संन्यास लिया ही श्रीभाईजीके घरसे। श्रीभाईजीके उस अकारण-अविरल स्नेहकी मधुर स्मृति मुझ संन्यासीको भी सदा भावार्द्र बनाती रहती है।

सचमुच श्रीभाईजीकी यह ममता विभागके प्रत्येक सदस्यके प्रति थी। उस पारिवारिकतापूर्ण ममताकी जब-जब याद आती है, आँखें भर-भर जाती हैं।

[६] प्रकाशनके प्रति उपरामता

कुछ दिनोंके लिये गीताप्रेसके मैनेजर रहे श्रीरामनृसिंहजी हरलालका। वस्तुतः वे बड़े बुद्धिमान, बड़े कार्य-दक्ष और बड़े सेवातत्पर थे, अतः सभी उनको सम्मान देते थे। पहली बात तो यह कि वे सुयोग्य थे और फिर दूसरे वे प्रेसके मैनेजर थे, अतः उनको सम्मान मिलना ही था, पर उनको जो सम्मान मिला, उससे उनका मन बढ़ गया। बुद्धिमत्ता एवं दक्षताके कारण उनका बढ़ता हुआ वर्चस्व गीताप्रेसके कार्यमें बात-बातपर दखलन्दाजी करने लगा। प्रेसके लोगोंको यह दखलन्दाजी कभी-कभी चुभती तो थी, पर गीताप्रेस और धर्मकी सेवाके नामपर होनेवाली

इस दखलन्दाजीको सब सह भी लेते थे। ऐसा लगता है कि श्रीहरलालकाजीको अपनी योग्यताका ज्यादा एहसास हो गया था और एक बार उनकी दखलन्दाजीने श्रीभाईजीकी कृतिके प्रकाशनपर भी अंकुश लगानेमें संकोचका अनुभव नहीं किया।

मुझे उस पुस्तिकाका नाम याद नहीं है, पर श्रीभाईजीकी एक छोटी-सी पुस्तिका गीतावाटिकासे गीताप्रेस छपनेके लिये गयी थी। आदरणीय श्रीगंगाबाबूने उसकी कम्पोजिंग शुरू करवा दी थी। लगभग आधी कम्पोजिंग हो गयी थी कि श्रीहरलालकाजीने उसकी कम्पोजिंगको बंद कर देनेका आदेश दे दिया। श्रीहरलालकाजीको उसका प्रकाशन उचित नहीं लगा। आदेशके अनुसार पुस्तिकाकी कम्पोजिंग बन्द हो गयी।

श्रीभाईजी उस पुस्तिकाके प्रूफकी प्रतीक्षा गीतावाटिकामें कर रहे थे, पर प्रूफके पहुँचनेके बदले पहुँचा कार्यको बन्दकर दिये जानेका समाचार। दूसरेकी भावनाओंको सदैव महत्त्व देनेवाले तत्सुखसुखी-भावापन्न श्रीभाईजीने यही सोचा— उस पुस्तिकाकी इस समय कोई उपयोगिता नहीं होगी, अतः प्रकाशनका विचार छोड़ दिया गया होगा।

दूसरे दिन श्रीभाईजी गीताप्रेस गये। मैं भी उनके साथ था। मुझे कुछ पता नहीं था कि किसी पुस्तिकाके मुद्रण-प्रकाशनका विचार विसर्जित कर दिया गया है। श्रीभाईजी तो कई काम इकट्ठे होनेपर गीताप्रेस जाया करते थे। उन्होंने कई काम सम्पन्न किये, फिर मुद्रण-विभागके प्रमुख श्रीगंगाबाबूसे कहकर पुस्तिकाकी प्रेस-कापी मँगवायी। श्रीगंगाबाबू प्रेस-कापी लेकर आये और उसको श्रीभाईजीने हाथमें ले लिया। फिर श्रीभाईजीने नितान्त निर्विकार भावसे पूर्णतः प्रसन्न मुद्रामें उसको फाड़कर रद्दीकी टोकरीमें डाल दिया। फाड़ते समय न कोई टिप्पणी और न कोई प्रतिक्रिया, अपितु ऐसे सहज ढंगसे किया मानो कोई व्यर्थ अनुपयोगी कागज फाड़कर एक किनारे फेंक दिया गया हो।

श्रीभाईजी निर्विकार थे, पर श्रीगंगाबाबू तो निर्विकार नहीं रह सके। उन्होंने तो उस पुस्तिकाकी प्रेस-कापीको कम्पोजमें देनेके पहले पढ़ी थी। श्रीगंगाबाबूके मनके भाव विह्वल हो रहे थे, पर उनके श्रद्धालु अधर कुछ बोल नहीं पाये। श्रीभाईजी शान्त भावसे प्रेससे वाटिका चले आये। धीरे-धीरे वरिष्ठ लोगोंमें यह चर्चा फैलने लगी और सभी श्रीहरलालकाजीको कहने लगे— आपने निर्णय उचित नहीं लिया।

श्रीहरलालकाजीको बुद्धिमत्ता तथा दक्षताका जो एहसास था, उस एहसासको भी महसूस होने लगा कि मुझसे यह गलती हुई है। वे गीतावाटिका आये, बड़े विनम्र स्वरोंमें क्षमा-याचना की। श्रीभाईजी तो स्नेहकी मूर्ति थे और वहाँ तो याचनासे पहले ही क्षमाका दान मिल जाया करता था, पर अब उस पुस्तिकाके प्रकाशनमें श्रीभाईजीको कोई रुचि नहीं रह गयी थी। जब श्रीहरलालकाजीने बड़ी विनय की तो फिर वह पुस्तिका छपनेके लिये गीताप्रेस गयी।

अपनी कृतिके प्रकाशनके प्रति ऐसी घोर उपरामता अनेक बार श्रीभाईजीके जीवनमें देखनेको मिलती है। एक बार श्रीभाईजीके पदोंका संग्रह गीताप्रेसमें नहीं छप पाया तो अन्य श्रद्धालुओंने उसे प्रयागमें छपवाया। इसी प्रकार श्रीभाईजी द्वारा लिखित श्रीरास पञ्चाध्यायीकी टीका कलकत्तेसे छपी। मुझे तो एक बार और बड़ी विचित्र बात सुननेको मिली है। श्रीभाईजीने श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ अंशपर भक्ति-भाव-पोषिणी कोई सरस टीका लिखी थी। इस टीकाको

देखकर-पढ़कर यह टिप्पणी की जाने लगी कि यदि यह प्रकाशित हो गयी तो गीताप्रेससे प्रकाशित श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका 'गीतातत्त्व विवेचिनी' को कौन पढ़ेगा ? इस टिप्पणीको सुनते ही श्रीभाईजीने अपनी वह टीका स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में भगवती श्रीभागीरथीके पावन लहरोंको सदाके लिये समर्पित कर दी। यह तो श्रीनिमाई पण्डित (अर्थात् महाप्रभु श्रीचैतन्य देव) के द्वारा अपने न्याय-ग्रन्थको श्रीगंगाजीकी धारापर प्रवाहितकर दिये जानेवाले प्रसंगकी आधुनिक नवलीलाके रूपमें आवृत्ति हो गयी। अपनी कृतियोंके प्रकाशनके प्रति ऐसी उपरामता श्रीभाईजी जैसे महान निर्विकार संतके अन्तरमें ही हो सकती है।

[७] भागवतांकका प्रकाशन

पूज्य श्रीसेठजी सदैव ही श्रीभाईजीके लिये श्रद्धास्पद रहे। पूज्य श्रीसेठजीका श्रीभाईजीके जीवनमें बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रारम्भिक साधनावस्थामें श्रीभाईजीको श्रीसेठजीसे बड़ी प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन मिला था। शिमलापालके नजरबन्दी जीवनमें श्रीसेठजीने उनकी और उनके परिवारकी बड़ी सँभाल की थी। अन्तरमें आत्यन्तिक विरक्ति होते हुए भी श्रीभाईजी गोरखपुरमें गीताप्रेसके कार्यके लिये जीवनके अन्त तक अटके रहे मात्र श्रीसेठजीकी रुचिका पालन करनेके लिये। कोई भी श्रीभाईजीको श्रीसेठजीका एक आज्ञाकारी जन कह सकता है, पर मुझे परम आश्चर्य हुआ तब, जब ऐसे आज्ञाकारी जनने भी सैद्धान्तिकताके आधारपर श्रीसेठजीसे अपना मत-वैभिन्न्य व्यक्त किया। यह मतान्तर था बड़ा प्रबल और था श्रीमद्भागवत महापुराणके विशेषांकके प्रकाशनके सम्बन्धमें।

पूज्य श्रीसेठजी एक सिद्ध संत थे और आचार्य कोटिके महापुरुष थे। उनके जीवनमें आचार-विचार-व्यवहारकी मर्यादाका अत्यधिक महत्त्व था। मर्यादावादी दृष्टिकोण होनेके कारण किसी भी निर्णय पर पहुँचनेके पूर्व वे लोक-भावनाको ध्यानमें रखा करते थे तथा विचारा करते थे कि इस निर्णयका जन-मानसपर क्या प्रभाव पड़ेगा। कोई भी निर्णय लिया जाय और तदनुसार कोई भी कार्य किया जाय, वह लोक-संग्रहकी कसौटीपर खरा उतरना चाहिये। समाज- हितैषिताका निखरा दृष्टिकोण होनेके कारण श्रीसेठजीके निर्णयानुसार न जाने कितने सरस ग्रन्थोंका प्रकाशन गीताप्रेससे नहीं हो पाया और इसी कारण श्रीसेठजीको श्रीमद्भागवत सम्बन्धी विशेषांकके प्रकाशनपर थोड़ी आपत्ति थी।

सन् १९३८ में श्रीरामचरितमानसपर 'कल्याण' पत्रिकाका विशेषांक मानसांक प्रकाशित हो चुका था और इसी प्रकार प्रकाशित हो चुका था सन् १९३९ में गीतातत्त्वांक, जो है श्रीमद्भगवद्गीताकी एक विस्तृत टीका। श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भगवद्गीतापर आधारित विशेषांकोंके प्रकाशित हो जानेके बाद यह विचार जोर पकड़ने लगा कि अब श्रीमद्भागवत महापुराणपर आधारित विशेषांक प्रकाशित होना चाहिये। श्रीसेठजी भी श्रीमद्भागवत महापुराणके महत्त्वको भलीभाँति जान रहे थे, पर उनके मनमें आशंका थी कि समाजके अभद्र तत्त्व रासपञ्चाध्यायी वाले अंशका मनमाना अर्थ लगाकर अनुचित लाभ उठा सकते हैं और गम्भीर अर्थ वाले तथ्यकी आन्तरिक गम्भीरताको हृदयंगम न करके समाजमें अनर्थ एवं अनर्थकारी वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं। लोक-मंगलकी भावनासे प्रेरित होनेके

कारण श्रीसेठजी चाहते थे कि यदि श्रीमद्भागवत महापुराणपर आधारित विशेषांकका प्रकाशन हो तो दशम स्कन्धके महारासवाले पाँच अध्यायोंको विशेषांकमें नहीं छापना चाहिये।

इसी बातपर श्रीभाईजीका उनसे मतान्तर था। श्रीभाईजीकी गहरी आस्था और सुदृढ़ मान्यता थी– श्रीरासपञ्चाध्यायी तो श्रीमद्भागवत महापुराणका प्राण है। रासपञ्चाध्यायीको निकाल देनेसे फिर भागवत भागवत नहीं रह जायेगा। इन पाँचों अध्यायोंको निकाल करके और इस प्रकार पुराणको प्राण-विहीन करके प्रकाशित करनेसे क्या लाभ ? भले श्रीमद्भागवतका प्रकाशन न हो, पर यदि हो तो उसमें श्रीरासपञ्चाध्यायी वाला अंश अवश्य रहे। हम लोगोंको भगवान वेदव्यासकी वाणीपर अविश्वास करना उचित नहीं। श्रीरासपञ्चाध्यायीके अन्तमें फलश्रुतिके रूपमें स्पष्ट कहा गया है कि इससे हृद्रोगका नाश होता है। इस कथनपर विश्वास करके श्रीरासपञ्चाध्यायी सहित ही श्रीमद्भागवतका प्रकाशन होना चाहिये।

अपनी आस्थाकी अभिव्यक्ति कर देनेके बाद भी श्रीमद्भागवतके प्रकाशनके प्रति श्रीभाईजीका तटस्थ-भाव रहा। तटस्थता इसलिये कि आजकल श्रीभाईजीकी उपराम-वृत्ति बड़ी प्रबल हो उठी थी। श्रीभाईजी उन दिनों यही सोचते थे कि मैं बम्बईसे गोरखपुर आया था कल्याणके सम्पादन-कार्यके दायित्वसे मुक्त होनेके लिये, न कि उससे अधिकाधिक सम्बद्ध होनेके लिये। उनका मन इतना अधिक उचट गया कि वे अलग होनेकी तैयारीमें लग गये। अन्ततोगत्वा वे सितम्बर १९३९ में एकान्त-वासके लिये दादरी (हरियाणा) चले गये और फिर तीन मास बाद वहाँसे चले गये रतनगढ़। श्रीसेठजीने देखा कि श्रीभाईजीके बिना कल्याणका सम्पादन और प्रकाशन सम्भव नहीं है, अतः वे एक दिन गीतावाटिका आये और हमलोगोंसे कहने लगे– आप सभी लोग यहाँसे रतनगढ़ चले जायें और हनुमानको लेकर यहाँ आयें। वह शायद मेरी बातपर ध्यान न दे, पर आप लोगोंकी बात तो वह सुनेगा ही। आपलोग उसे यहाँ अवश्य ले आयें, जिससे कल्याणका काम होता रहे। यदि आनेकी बात नहीं बन पाये तो आप सब लोग वहीं रह जायें तथा वहींसे कल्याणके सम्पादनका काम होता रहे।

श्रीसेठजीके कथनके बाद सारा सम्पादकीय विभाग गीतावाटिकासे रतनगढ़ गया। पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, पं. श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदी, दादा कृष्णदास आदि-आदि कई लोग गये और फिर वहाँसे आना हो पाया तत्काल नहीं, जुलाई १९४५ में। पाँच वर्ष सभी लोग रतनगढ़में ही रहे।

हमलोग रतनगढ़ गये थे सन् १९४० में और इस वर्ष कल्याणका साधनांक विशेषांक प्रकाशित हुआ। इन दिनों श्रीभाईजीकी निवृत्ति-भावना, एकान्त-साधना, मौन-साधना, नाम-साधना, भाव-साधना आदिका प्रकर्ष रूप हमलोगोंको दिखलायी देता था और यह मेरा निजी अनुमान है कि इसीके फलस्वरूप कल्याणका साधनांक प्रकाशित हुआ।

कल्याणके विशेषांकके रूपमें समाजके सामने आया साधनांक, पर वह तो प्रतीक्षा कर रहा था भागवतांककी। कल्याणके पाठकोंकी आशा यही थी कि श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भगवद्गीताके बाद अब श्रीमद्भागवत महापुराणपर विशेषांक प्रकाशित होगा, जो भक्ति-पथ-पथिकोंके लिये परम उपयोगी सिद्ध होगा और इनमें भी श्रीकृष्ण-भक्तोंके लिये। भक्तोंकी इस आशा और आवश्यकताको श्रीसेठजी भली प्रकार समझ रहे थे, पर वे चाहते थे

कि विशेषांकमें श्रीरासपञ्चाध्यायी न छपे। वे यह भी भली प्रकार समझ रहे थे कि इस विचार-विन्दुपर हनुमान मुझसे सहमत नहीं है, पर इसीके साथ वे यह तो बड़ी भली प्रकारसे जान रहे थे कि बिना हनुमानके अन्य कोई भी भगवतांककी तैयारी कर नहीं सकता। श्रीसेठजीके विचारोंमें बड़ा मन्थन-चिन्तन चल रहा था, पर कोई हल निकल नहीं रहा था।

सन् १९४१ में जब चूरू स्थित ऋषिकुलका वार्षिकोत्सव हुआ तो श्रीसेठजी रतनगढ़ भी आये और श्रीभाईजीसे मिले। उस समय हमलोग भी वहीं थे। हमलोगोंके सामने ही अपनी मारवाड़ी भाषामें श्रीसेठजीने श्रीभाईजीसे मुस्कुराते हुए स्नेह सने स्वरमें कहा— हनुमान ! एक रकम सेती मँ हार्यो तू जीत्यो। इब भागवतांक प्रकाशित कर। (एक प्रकारसे मैं हारा और तुम जीते। अब भागवतांकको प्रकाशित करो।)

भागवतांकको प्रकाशित करनेके लिये सहमति प्रदान करके श्रीसेठजीने यह भी कहा कि उसमें रासपञ्चाध्यायी तो रहेगी ही, पर तुम चीरहरणलीला और महारासलीला, इन दो लीलाओंपर अपनी ओरसे टिप्पणी अवश्य दे देना।

श्रीसेठजीकी अनुमति मिलते ही श्रीभाईजी तो प्रसन्न हुए ही, हम सभी लोग एकदम खिल उठे। सारे सम्पादकीय परिवारमें परमानन्द व्याप्त हो गया। अनुमति देकर श्रीसेठजी चले गये और श्रीभाईजी चाहने लगे कि आगामी विशेषांक श्रीमद्भागवत महापुराणपर हो, पर इतने बड़े विशेषांककी तैयारीके लिये अपेक्षित समय था ही नहीं। अट्ठारह हजार श्लोकोंवाले महापुराणका अनुवाद साधारण काम नहीं है। प्रथम, सारे महापुराणका अनुवाद और दूसरे, श्रीमद्भागवतसे सम्बन्धित कतिपय मुख्य विषयोंपर लेखोंका संकलन-सम्पादन, इस सारे कार्यकी विशालताका अनुमान श्रीभाईजीको हो गया और अनुमान होनेके बाद भी इस विशेषांकके कार्यको सम्पन्न करनेके लिये वे प्रस्तुत हो गये। उन्होंने अपने पास श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदीको बुलाया और कहा— पण्डितजी ! अपने पास कुल अढ़ाई-तीन मासका समय है और इस अवधिमें श्रीमद्भागवतका अनुवाद लिखकर विशेषांकके लिये तैयार करना है और यह गुरुतर कार्य आपके अतिरिक्त और कौन कर सकता है ? श्रीसेठजीने अन्तिम समयमें अनुमति प्रदान की और अब मेरी और सम्पादकीय विभागकी लज्जा आपके हाथ है।

दूसरेको सम्मान देना तो श्रीभाईजीके स्वभावमें था और मानप्रदायिनी भाषामें ही उन्होंने श्रीद्विवेदीजीसे निवेदन किया था। बात सुनकर श्रीद्विवेदीजीने जिज्ञासा व्यक्त की— कल्याणकी और विशेषांककी बात आप मुझसे न कहें। यह सब बात तो आप जाने। मुझे तो यह कहिये कि आप क्या चाह रहे हैं ? आपकी इच्छा क्या है ?

श्रीभाईजीने कहा— आप श्रीमद्भागवत महापुराणका अनुवाद कर दें।

श्रीद्विवेदीजीने कहा— आपकी इच्छा ही मेरे लिये आज्ञा है और शीघ्र ही यह कार्य आरम्भ हो जायेगा। आप श्रीदेवधरजीको लिखनेके लिये मुझे दे दीजिये। मैं अनुवाद बोलता जाऊँगा और वे लिखते जायेंगे।

श्रीभाईजीने उसी समय मुझे बुलाया और पुचकारते हुए, प्यारमें नहलाते हुए, पीठपर हाथ फेरते हुए कहा— देवधरजी ! आजसे आप पण्डितजीके साथ काम करें और भागवतके

अनुवादको लिखें। आप लोग अपनी सुविधानुसार खायें, पीयें, सोयें, बैठें, चाहे जो करें।

बस, श्रीमद्भागवत महापुराणके अनुवादका कार्य आरम्भ हो गया। श्रीद्विवेदीजी अपने सामने अनेक टीकाएँ रखकर श्लोकोंके अर्थ बोलते जाते थे और मैं लिखता जाता था। सबेरे तीन बजे उठकर और स्नानादिसे निवृत्त होकर हमलोग चार बजे तक लिखनेके लिये बैठ जाते थे और घंटों अनुवादका लेखन कार्य होता रहता था। श्रीमद्भागवत महापुराणका अनुवाद-कार्य अढ़ाई मासमें पूर्ण हो गया। एक सर्वथा असम्भव कार्य वस्तुतः सम्भव हो गया। मुझे पण्डितजीके साथ रहनेका अवसर मिला है। जब वे श्रीशान्तनुविहारी द्विवेदी थे, तब तो मैं उनके पास ही था और संन्यास ले लेनेके बाद जब वे स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती कहलाये, तब भी उनके पास उठने-बैठनेका भरपूर अवसर मिला है। मुझे उनके जीवनको पाससे देखनेका खूब अवसर मिला है और मैं कह सकता हूँ कि वे बड़े अलमस्त थे। समयकी पाबन्दीका पालन वे बहुत कम कर पाते थे। कार्यको नियमित रूपसे करना तो उनके स्वभावमें ही नहीं था और कुछ-कुछ ऐसा ही हिसाब-किताब मेरा भी समझना चाहिये, पर यह सारी अलमस्ती और सारी बेपरवाही उन दिनों कहाँ चली गयी, कुछ पता नहीं। वैसी नियमितता, वैसी संलग्नता, वैसी तत्परता, वैसा परिश्रम न पहले कभी हुआ और न कभी भविष्यमें हो पाया। वैसा परिश्रम हम दोनोंके द्वारा कभी सम्भव था ही नहीं। इस विशाल अनुवाद-कार्यको सम्पन्न करनेकी शक्ति कहाँसे आयी, हमें पता नहीं। मैं तो यही मानता था और मानता हूँ और यही मान्यता स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजकी भी है कि इस शक्तिका संचार श्रीभाईजीने किया। यह पूर्णतः सही बात है कि उस शक्ति-संचारके बिना यह कार्य हो ही नहीं पाता। शक्ति-संचारके अतिरिक्त इन दिनों श्रीभाईजीकी आध्यात्मिक शक्तिका वैभव भी देखनेको मिला, जो आगामी विवरणसे स्पष्ट है।

अनुवाद करके हमलोग श्रीभाईजीको दे दिया करते थे और उस अनुवादको अन्तिम रूप प्रदान करनेके लिये श्रीभाईजी एक बार उसको देखते ही थे और देखकर यथास्थान ठीक करते ही थे। इसके बाद वह अनुवाद छपनेके लिये रतनगढ़से गोरखपुर भेज दिया जाता था। इधर श्रीमद्भागवतका अनुवाद तैयार हो रहा था और उधर श्रीभाईजी विशेषांकके लिये आवश्यक लेख और चित्र तैयार करवा रहे थे। श्रीमित्रा बाबू, श्रीजगन्नाथजी आदि चित्रकारोंको बतलाने और समझानेमें तथा निर्देशानुसार रंगीन चित्र, सादे चित्र, रेखा चित्र, मुख पृष्ठ आदि तैयार करवानेमें श्रीभाईजीका पर्याप्त समय लगता था। चित्रोंके अतिरिक्त लेखोंको आमन्त्रित करनेकी दृष्टिसे देशके विभिन्न विद्वानोंसे सम्पर्क स्थापित करना साधारण कार्य नहीं था। विद्वानोंसे लेख मँगवाने और उनका सम्पादन करनेका दायित्वपूर्ण कार्य श्रीभाईजीने अपनी लेखनीसे किया। लेखनीसे सम्पादन करनेके अलावा उन्होंने स्वयं भी टिप्पणी लिखी श्रीसेठजीके कथनानुसार श्रीचीरहरणलीला और श्रीमहारासलीलापर। इन दो लीलाओंके अतिरिक्त श्रीभाईजीने श्रीमाखनचोरीलीलापर भी टिप्पणी लिखी और इन मार्मिक टिप्पणियोंमें, जिन्हें वस्तुतः विस्तृत लेख ही कहना चाहिये, इन अति विस्तृत लेखोंमें उन्होंने ऐसा लिखा, जिसमें युग-युगके साधकों-भक्तों-विचारकों-विद्वानोंके लिये एक महान आलोक है, वह आलोक, जिससे सत्यके मर्मका दर्शन हो सके। ऐसे आलोकका दान वही कर सकता है, जिसके अन्तरमें आध्यात्मिक आलोकका पुञ्ज हो। श्रीभाईजीके ये लेख भागवतांकके

आरम्भमें छपे हैं। चित्र-लेख-अनुवादयुक्त ग्यारह सौ पृष्ठों वाला यह विशेषांक ठीक समयपर प्रकाशित हो गया। प्रायः कल्याणके विशेषांक सात सौ पृष्ठोंके हुआ करते हैं, पर इतना विशाल विशेषांक न कभी पहले और न कभी बादमें प्रकाशित हो पाया। सुसज्जा और सुन्दरताकी दृष्टिसे इस विशेषांककी बड़ी ख्याति हुई और ऐसा महान एवं विशाल विशेषांक श्रीभाईजीने तैयार कर दिया चार मासके अन्दर सम्पादन-दायित्वके साथ-साथ अन्य दायित्वोंका निर्वाह करते हुए। मैं उन अन्य दायित्वोंको एक जागतिक झमेला-झंझट कहा करता हूँ। रतनगढ़ पूर्वज भूमि होनेके कारण श्रीभाईजीका परिचय-क्षेत्र अति विस्तृत था और सभी लोग अपनी-अपनी समस्या लेकर श्रीभाईजीके पास आते ही रहते थे। बेटी-बेटेके सम्बन्धकी समस्या, पारस्परिक मनमुटावकी समस्या, घरेलू झगड़ोंकी समस्या, रोग और चिकित्साकी समस्या, नौकरी और सिफारिशकी समस्या, संस्था-संचालनकी समस्या, कोर्ट-कचहरीकी समस्या, इन समस्याओंका कहीं अन्त नहीं है, पर ये समस्याएँ सामने आती थीं और उनका न्यूनाधिक समाधान श्रीभाईजीके द्वारा आनेवालेको मिलता ही था। इन समस्याओंमें उलझे हुए सांसारिक लोगोंकी दुनियासे साधकों-साधुओंकी साधनापरक दुनिया एकदम अलग होती है और साधना जगतके लोग भी श्रीभाईजीके समयपर अपना अधिकार मानते थे। इनके लिये सत्संगमें प्रतिदिन प्रातःकाल या सायंकाल श्रीभाईजीका प्रवचन एक घंटा हुआ करता था। रतनगढ़के साधकोंकी साधन-कमेटीकी बैठकमें भाग लेनेमें जो समय लगता था, वह इससे अलग है।

सांसारिकोंको समस्याओंका समाधान देना, साधकों-साधुओंके लिये प्रवचन करना, अपने सम्पादकीय परिवारको सँभालना, इस प्रकार इन विभिन्न दायित्वोंका भली प्रकार निर्वाह करते हुए भागवतांकका सम्पादन करना और चार मासमें सम्पूर्ण प्रकाशनोचित सामग्रीको तैयार कर देना, क्या यह कार्य कोई साधारण मानव कर सकता है ? सर्वथा असम्भव। तभी तो मैं कहता हूँ कि इस विशेषांककी सामग्रीको तैयार करनेमें आदिसे अन्ततक पद-पदपर श्रीभाईजीकी अद्‌भुत और अव्यर्थ आध्यात्मिक शक्तिका प्रभाव और वैभव देखनेका मुझे अवसर मिला।

[८] गुरुजनाभिलाषानुवर्तन

सन् १९४२ में रतनगढ़से मैं अपने गाँवपर चला आया। गाँवपर आकर घरको सँभालना भी जरूरी था। अपने घरपर सभी लोगोंसे मिल कर मैं पुनः रतनगढ़ जानेके लिये गाँवसे गीताप्रेस आया। गीताप्रेसमें मुझे एक नया आदेश सुननेको मिला।

ऐसा कौन सा हिन्दू है जिसने महादानी मन्दिर-निर्माता बिड़ला-बन्धुओंकी ख्याति न सुन रखी है ? इन बिड़ला-बन्धुओंमें सम्मान्य श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाका श्रीभाईजीसे बड़ा घना आत्म-भाव था। श्रीबिड़लाजीके मनमें गीताप्रेस, श्रीसेठजी और श्रीभाईजीके लिये अमित सराहना भरी पड़ी थी। श्रीबिड़लाजी मथुरा और वृन्दावनके मध्यमें श्रीगीतामन्दिरका निर्माण करवा रहे थे। श्रीगीतामन्दिरमें श्रीगीताजी आदिके उद्‌बोधक शिलालेख लगवानेके लिये इन्हें विश्वसनीय एवं सुयोग्य व्यक्तिकी आवश्यकता थी। अपनी विवशता और आवश्यकताका निवेदन पत्रके द्वारा श्रीबिड़लाजीने श्रीभाईजीके सामने किया। जो पत्र श्रीभाईजीको लिखा गया, वही पत्र उन्होंने श्रीसेठजीके पास भी लिखा। मैं ज्यों ही गाँवसे गीताप्रेस आया, श्रीसेठजीने कहा— आप रतनगढ़ नहीं, मथुरा चले जायें और श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लासे

मिलकर उन्हें श्रीगीतामन्दिरमें शिलालेख लगवानेके कार्यमें सहयोग दे दीजिये।

मैंने विनम्र शब्दोंमें कहा– पर मुझे तो रतनगढ़ जाना है श्रीभाईजीके पास।

श्रीसेठजीने कहा– श्रीबिड़लाजीका जो पत्र मेरे पास आया है, वैसा ही हनुमानके नाम है और यदि हनुमान यहाँ होता तो वह भी मथुरा जानेके लिये ही कहता। केवल तीन-चार माहकी बात है। आपके ऊपर हमारा विश्वास है। आप गीताप्रेसकी प्रतिष्ठाको बनाये रखेंगे। वहाँ जाकर शिलालेख लगवानेवाले कार्यको पूरा करवा दें। फिर तो श्रीभाईजीके पास ही काम करना है।

मैं गोरखपुरसे चला गया मथुरा। वहाँ जाकर मैं कार्यमें सहयोग देने लगा। फिर तो श्रीभाईजीका भी पत्र मुझे मिल गया कि वहाँका कार्य कर देना चाहिये। कार्य हो रहा था, पर तीन-चार माहमें पूरा नहीं हो पाया। श्रीबिड़लाजीने पुनः श्रीभाईजीसे अनुरोध करके मुझे तीन मासके लिये और माँग लिया। उदारात्मा श्रीभाईजी भला कब ना कहने वाले थे? तीन मासके बाद फिर कुछ समयके लिये माँग की गयी और फिर मुझे वहाँ रुक जाना पड़ा। नौ मासमें शिलालेख लगवानेका कार्य पूर्ण हो गया।

जब मैं मथुरासे प्रस्थान करने लगा तो पुनः एक नयी बात सामने आ गयी। उसी समय श्रीकृष्णजन्मस्थानके पुनरुद्धारका कार्य आरम्भ हो चुका था और श्रीबिड़लाजी चाहते थे कि मैं उस कार्यके लिये मथुरा रहूँ, पर अब वे किस रूपमें मुझसे कहें या श्रीभाईजीसे कहें। उन्होंने उसी समय वाराणसी टेलीफोन करके काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके संस्थापक परम पूज्य श्रीमदनमोहनजी मालवीयको कहा– मैं दो बार तो माँग चुका और अब फिर श्रीभाईजीको कुछ कहनेकी स्थितिमें मैं नहीं हूँ, पर आप देवधरजीके लिये श्रीभाईजीको पत्र लिख दें तो बड़ा अच्छा रहे।

टेलीफोनसे समाचार मिलते ही पूज्य श्रीमालवीयजीने श्रीभाईजीको पत्र लिखकर कहा– मैं श्रीदेवधरजीको श्रीकृष्णजन्मभूमिके पुनरुद्धार-कार्यके लिये आपसे माँग रहा हूँ। यह कार्य भी तो हिन्दू धर्मके उत्कर्षको लेकर ही है।

पूज्य श्रीमालवीयजीका पत्र पाकर श्रीभाईजीका मन दुविधामें कुछ पड़ा और नहीं भी पड़ा। मैं तो चाहता ही नहीं था कि सम्पादकीय विभाग छोड़कर मुझे मथुरा जाना पड़े। मेरे साथी लोग भी यही चाहते थे कि मैं उनके पास ही रहूँ, पर पूज्य मालवीयजी जैसे गुरुजनकी उपेक्षा सम्भव थी ही नहीं। पूज्य मालवीयजीकी अभिलाषा और अनुरोधको श्रीभाईजीने अपने लिये आदेश ही माना और यही निश्चय किया कि उस अभिलाषाका अनुवर्तन ही मेरा परम धर्म है। तत्काल श्रीभाईजीने पूज्य मालवीयजीके पत्रकी नकलको अपने पत्रके साथ संलग्न करते हुए मेरे पास लिखकर भेजा– श्रीकृष्णजन्मभूमिके पुनरुद्धारका कार्य भी मेरा ही कार्य है और उस कार्यके पूर्ण होनेमें आप अपना सहयोग सर्व प्रकारसे दें।

मैं श्रीभाईजीके इस पत्रपर सचमुच विस्मय करने लगा। जैसे मैं और मेरे साथी नहीं चाहते थे, वैसे ही श्रीभाईजी भी नहीं चाहते थे कि मैं उनसे दूर जाऊँ, परंतु पूज्य गुरुजनके वचनको सम्मान देनेके लिये उन्होंने अपनी चाहनाका स्वरूप ही बदल दिया। अब वही हो, जो पूज्य गुरुजनकी अभिलाषा है। गुरुजनोंकी अभिलाषाका अनुवर्तन करनेकी भावना श्रीभाईजीके

जीवनमें पदे-पदे मिलती है और उनकी यह अभिलाषानुवर्तन-भावना मेरे लिये सदैव वन्दनीय रही है। न जाने कितने प्रसंग मेरे सामने घटित हुए हैं, जो श्रीभाईजीके व्यक्तित्वके इस महान पक्षके परिपोषक हैं।

[९] पिताजीको जीवन-दान

मैं मथुरामें था कि एक दिन गाँवसे समाचार आया कि पिताजीको लकवा मार गया है। यह तीसरा दौरा था। मैं भागकर मथुरासे अपने गाँव माधवपुर आया। पिताजीकी हालत देखकर मैं भी एक बार घबरा गया। गाँवमें न तो कुशल चिकित्सक होते थे और न आवश्यक दवाएँ मिल पाती थीं। मैं अपने गाँवसे गोरखपुर श्रीभाईजीके पास आया। श्रीभाईजीको अपने पिताजीकी गम्भीर स्थितिसे अवगत कराया। श्रीभाईजीने मुझसे पूछा– आपका गाँव यहाँसे कितनी दूर है?

मैंने बतलाया– लगभग साठ मील होगा, पर आप यह क्यों पूछ रहे हैं? आपको मेरे गाँवपर नहीं चलना है। आपको जो भी करना हो, यहीं गीतावाटिकामें बैठे-बैठे ही करें।

श्रीभाईजीने प्यार भरी भाषामें कहा– क्या मैं चलूँगा? मैं तो बैठा रहूँगा। चलेगी कार और उसमें हम बैठे रहेंगे।

श्रीभाईजीके स्वरमें प्यार तो प्रमुख था ही, चलनेका निश्चय भी प्रबल था। इसके तुरन्त बाद श्रीभाईजीने मुझसे कहा– एक बार आप बाबासे पूछ आयें कि वे कारमें चल सकनेकी स्थितिमें हैं क्या?

पूज्य बाबाकी पसलीमें बड़ा दर्द था, इतना दर्द कि बेचैनीके गहरे चिह्न चेहरेपर थे। श्रीभाईजीके कहनेके बाद मैंने जाकर बाबासे पूछा तो एकदम स्वस्थ व्यक्तिकी भाँति बाबाने कहा– अवश्य चलूँगा। मेरे कारण श्रीभाईजीके कार्यमें कोई बाधा क्यों उत्पन्न हो।

बाबाकी स्वीकृति मिलते ही शामको श्रीभाईजी नैश कारसे मेरे गाँवके लिये गीतावाटिकासे चले। कारमें मैं तथा पूज्य बाबा तो थे ही, श्रीभाईजीने डाक्टर चक्रवर्तीजीको भी ले लिया। पिताजीकी जो हालत मैंने बतलायी थी, उसके हिसाबसे आवश्यक दवा तथा इंजेक्शन भी ले लिये गये। तीन घंटेके बाद रातको नौ बजे हमलोगोंकी कार गाँवपर पहुँची। जब घरके द्वारपर गया तो वहाँ बुरी तरह रोना-धोना चल रहा था। मैं सशंक हो उठा कि क्या पिताजीका निधन हो गया। मैं कुछ पूछूँ, इसके पहले ही घरवाले और गाँववाले मुझे कटु वचनमें उलाहना देने लगे– तुम कैसे बेटे हो, जो पिताजीको ऐसी गम्भीर हालतमें छोड़कर चले गये? वे सर्वथा चेतना शून्य पड़े हैं। नाड़ीकी गति नहीं के बराबर है। अन्तिम समय जानकर उनको नीचे ले लिया गया है।

मैं यह सब चुपचाप सुनता रहा। इसके बाद श्रीभाईजी, बाबा एवं डाक्टर चक्रवर्तीजीको साथ लेकर मैं पिताजीके पास आया। वे भूमिपर बेहोश पड़े थे। श्रीभाईजी मेरे पिताजीको पण्डितजी कहा करते थे। पहले एक-दो बार भेंट-मुलाकात हो चुकी थी। श्रीभाईजी पिताजीके कानके पास मुहँ सटाकर कहने लगे– पण्डितजी! मैं हनुमान हूँ। मैं हनुमान गोरखपुरसे आया हूँ। आप देखिये। मैं गीताप्रेससे चलकर आपके पास आया हूँ।

पासमें खड़े हुए गाँवके एक प्रौढ़ व्यक्तिने समीपस्थ एक अन्य व्यक्तिसे कहा– क्या पण्डितजी इनकी आवाज सुनेंगे, जो घंटोंसे बेहोश पड़े हैं ?

गाँवके खड़े लोग अपने ढंगसे हास्यास्पद टिप्पणी करते रहे, पर उन्हीं टिप्पणीकरने वालोंने अपनी आँखसे देखा कि मेरे पिताजीने धीरेसे अपनी पलकें खोली। श्रीभाईजीको देखते ही पिताजीके नेत्र सजल हो उठे और मेरे विश्वासके अनुसार श्रद्धामें-सम्मानमें-कृतज्ञतामें कुछ बूँदें ढुलक भी गयीं। श्रीभाईजीने डाक्टर चक्रवर्तीजीको दवा देनेके लिये कहा। डाक्टर साहबने दवा दी तथा इंजेक्शन लगाया।

उधर डाक्टर साहब पिताजीको सँभाल रहे थे और इधर मैंने श्रीभाईजीसे कहा– श्रीभाईजी मेरी एक बात सुन लें। मेरा निवेदन यह है कि या तो पिताजी अभी आपके सामने ही 'चले' जायें या जीवित रहें तो स्वावलम्बी बनकर रहें। मैं रहता हूँ मथुरा और मेरे पीछे कौन मल-मूत्रकी, दवा-पानीकी सेवा करेगा ? आपके सामने ही चले जायें तो इससे बड़ी बात और क्या होगी ?

श्रीभाईजीने सान्त्वना देते हुए कहा– आप इतने अधीर न हों। डाक्टर साहब दवा दे रहे हैं। अब यह बतायें कि क्या आप अपने यहाँ चौबीस घंटेका अखण्ड कीर्तन करवा सकते हैं ?

मैंने कहा– क्यों नहीं हो सकता ?

श्रीभाईजीने बताया– तो आप मानसकी चौपाई *'दीन दयाल बिरिदु सँभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी'* का कीर्तन करवा दीजिये।

मैंने और मेरे पास जो गाँव वाले खड़े थे, सबने इस बातको तुरन्त स्वीकार कर लिया। श्रीभाईजीके सामने ही भगवान श्रीसीतारामजीका चित्रात्मक श्रीविग्रह स्थापित करके उक्त चौपाईका कीर्तन आरम्भ कर दिया गया।

श्रीभाईजी, बाबा तथा डाक्टर चक्रवर्तीजी कुछ घंटों बाद गाँवसे वापस गोरखपुर चले आये। कीर्तन लगातार चौबीस घंटे होता रहा। दवा भी दी जा रही थी। तीन दिनमें पिताजी ठीक हो गये और आश्चर्य यह कि चार वर्ष ठीक प्रकारसे जीवित रहे। लकवाके कारण वे बोल नहीं पाते थे, पर अपना आवश्यक कार्य वे स्वयं कर लिया करते थे। किसी अन्यपर निर्भर नहीं थे। चार वर्ष बाद निधनके एक दिन पहले संध्यावन्दन उन्होंने ठीक प्रकारसे किया और बीस घंटे बीतते-बीतते वे 'चले' गये। यह चमत्कार तो मेरे साथ घटित हुआ और जैसा मैंने निवेदन किया था, श्रीभाईजीने ठीक वैसा ही मेरे पिताजीके लिये कर दिया।

[१०] सद्भावकी सृष्टि

मैं १९६६ के अप्रैल मासमें श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये गीतावाटिका गया। मुझे कई विषयोंमें श्रीभाईजीसे परामर्श लेना था। मुख्य विषय था– श्रीकृष्णजन्मभूमिपर भागवत भवनके निर्माणके लिये अर्थ-व्यवस्था। इस बारेमें श्रीभाईजीसे विस्तार पूर्वक बातचीत हुई। इस बातचीतमें श्रीभाईजीने तो श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाकी सीमातीत प्रशंसा की। श्रीभाईजीने श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाके बारेमें कहा– वे एक ऐसे व्यक्ति हैं जो हिन्दू भूमि, हिन्दू धर्म, हिन्दू

समाज, हिन्दू जगत, हिन्दू साहित्य, हिन्दू हितके बारेमें सतत सोचते रहते हैं।

इस बात-चीतके बीच मैंने श्रीभाईजीको एक उपालम्भ भी दिया। वह उपालम्भ था उनके एक पत्रको लेकर। १६ मार्च १९६६ को अपने पत्रमें श्रीभाईजीने लिखा था– संयोगकी बात थी। पक्का विचार होनेपर भी मैं मथुरा, चूरू नहीं जा सका। 'करी गोपालकी सब होय'। इधर शरीर बहुत कमजोर हो गया। दिनभर प्रायः लेटा रहता हूँ। कुछ भी काम-काज कर नहीं पाता। आपके कई पत्र मिले थे। सोचा था, मिलनेपर सारी बातें होंगी, पर मनुष्यका सोचा क्या होता है। शरीरकी अस्वस्थता ही यात्रामें बाधक बन गयी। शरीर तो जाने वाला है ही, फिर मेरा शरीर तो आयुकी दृष्टिसे नदी-तटका खोखली जड़ वाला पेड़ है। एक झोंकेमें जा सकता है। इसकी कोई चिन्ता नहीं। चित्त बहुत प्रसन्न रहता है। बीमारीके निमित्तसे एकान्त मिल जाता है, जो बहुत ही अनुकूल प्रतीत होता है। आपसे एक विनीत प्रार्थना है। मेरे द्वारा जानमें-अनजानमें, पता नहीं, कितनी बार आपके साथ बुरा व्यवहार-बर्ताव हुआ होगा। आपको तो स्मृति ही नहीं होगी, पर मैं चाहता हूँ, आप मुझे सर्वथा क्षमा कर दें। मैं अपने उन सभी गुरुजनों-बन्धुओंसे, जिनसे मेरा व्यवहार पड़ा है, बड़ी दीनताके साथ क्षमा प्रार्थना करता हूँ। सभी भगवद्‌स्वरूप हैं, मुझ तुच्छपर दया करेंगे ही।

इस पत्रको पढ़कर मुझे बड़ी व्यथा हुई। श्रीभाईजी जैसे महानात्माकी लेखनीसे लिखे हुए इन शब्दोंको नेत्र न पढ़ना चाहते थे और कान न सुनना चाहते थे। उपालम्भ देते हुए मैंने श्रीभाईजीसे कहा– आप यह कैसा पत्र लिखने लगे कि पता नहीं कब शरीरका अवसान हो जाय। ऐसा लिखनेसे स्वजनोंको बड़ी निराशा होती है, हृदय व्यथासे भर जाता है और आँसू भी बह पड़ते हैं। ऐसे उद्‌गार तो आत्मीयजनोंको हतोत्साहित ही कर देते हैं।

मैं अभी और भी अपने व्यथित हृदयके खिन्न भाव व्यक्त करना चाहता था, पर श्रीभाईजी बीचमें ही बोलकर कहने लगे– मेरे लिखनेका भाव न यह था कि मेरा शरीरान्त शीघ्र होने वाला है और न यह था कि मेरे स्वजन निराशाच्छन्न हो जायँ। मैं तो विगत दो वर्षोंसे इस प्रकारके भाव लिखकर या बोलकर व्यक्त कर रहा हूँ। इन भावोंको व्यक्त करनेका उद्देश्य है कि किसीसे कोई द्वेष नहीं रह जाय। जहाँतक मुझे स्मरण है, कोई मुझसे नाराज नहीं है, फिर भी लिख देता हूँ और क्षमा माँग लेता हूँ, इसीलिये कि किसीके भी मनमें मेरे प्रति कुभावका अस्तित्व रंचमात्र न रह जाय।

मैंने तत्काल कहा– किसीके मनमें आपके प्रति लेश मात्र द्वेष या कुभाव होगा, यह सोचना ही हास्यास्पद है।

श्रीभाईजीने कहा– व्यवहारमें अनेक प्रकारके और भिन्न स्तरके लोगोंसे मिलना पड़ता है। न जाने कोई कब और क्या सोच ले ? किसीके मनमें द्वेष या कुभावका लेशांश भी रहना उचित नहीं, अतः योग्य यही है कि सभीसे अपनी ज्ञात-अज्ञात भूलोंके लिये क्षमा- याचना कर लेनी चाहिये।

श्रीभाईजीके इन शब्दोंको सुनकर मैं मन-ही-मन आत्म-विश्लेषण कर रहा था कि व्यवहारमें मैं कितना लापरवाह और श्रीभाईजी कितने सावधान हैं। उनकी सतत सावधानी तथा विनम्र

क्षमा-याचना समाजमें सद्भावकी ही सृष्टि करती है।

श्रीगिरिधारी बाबा

[१] वह प्रथम दर्शन

मैं घरसे निकला संतों-महात्माओंके दर्शनके लिये। तब मेरी आयु २४ वर्षके लगभग थी। मैं जा रहा था नैपालकी ओर। ट्रेनमें किसीने मुझसे कह दिया कि साधु-महात्माओंका दर्शन करना हो तो गोरखपुरके गीताप्रेस जाओ। इतना सुनते ही मैंने मन-ही-मन तय किया कि पहले गीताप्रेस ही जाना है। गोरखपुर स्टेशनपर उतर कर मैं सीधे गीताप्रेस पहुँचा। यह बात सन् १९३३ के अगस्त मासकी है। तब गीताप्रेसका रूप बहुत छोटा था। उन दिनों शायद चार-पाँच ट्रेडिल मशीनें मात्र थीं। वहाँ मुझे मिले श्रीगंगा बाबू, जो सादगी-सेवा-सरलता-समर्पणके मूर्तिमान स्वरूप थे। उनके सादे वेषको देखकर कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता था कि आप गीताप्रेसके प्रमुख व्यक्तियोंमें से एक हैं। मैंने उनसे कहा— मैं तो संतोंका दर्शन करनेके लिये गीताप्रेस आया हूँ।

उदार-हृदय श्रीगंगा बाबूजीने कहा— आप पहले स्नान करके भोजन तो कर लें, फिर आप जिस उद्देश्यसे आये हैं, उसकी भी पूर्ति होगी।

ज्यों ही मैं स्नान-भोजनादिसे निवृत्त हुआ, पूज्य श्रीभाईजी (नित्य वन्दनीय प्रातः स्मरणीय परम पवित्रात्मा श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) गीताप्रेस पहुँचे। हम दोनोंकी आँखोंके चार होते ही सहज स्नेहके एक ऐसे उद्रेकका उद्भव हुआ कि उन्होंने मुझे अपने आलिंगनमें कसकर ले लिया। यह पस्परालिंगन ऐसा था कि मेरा अंग-अंग रोमांचित हो उठा।

मानव पूर्व जन्मके संस्कारोंसे प्रेरित होकर व्यवहार जगतमें क्रियाशील होता है। अलग-अलग परिवारोंमें जन्म होनेपर भी देखा जाता है कि एक व्यक्तिका दूसरेके प्रति सहज आकर्षण होता है। इसका हेतु यही है कि पूर्व जन्ममें वह अवश्य अपना सगा-सम्बन्धी रहा है। भावी जीवनमें श्रीभाईजीसे मेरे सम्बन्धका जो स्वरूप रहा, उसके आधारपर मैं अनुमान करनेको बाध्य हूँ कि वे पूर्व जन्ममें अवश्य ही मेरे कोई आत्मीय रहे होंगे। इस प्रथम मिलनके बादसे मेरा उनका स्नेह-सम्बन्ध सदैव अक्षुण्ण रहा। यहींपर एक तथ्य और भी स्पष्ट रूपसे मैं स्वीकार करता हूँ कि इस मिलनके बादसे मेरे जीवनके सुसंस्करणका शुभारम्भ हुआ।

[२] साधनामें सँभाल

गीताप्रेसमें प्रथम दर्शन होनेके बाद मैं श्रीभाईजीकी छत्र-छायामें रहने लगा। इन दिनों श्रीभाईजी गोरखनाथ मन्दिरके पास वाले बगीचेमें रहा करते थे। मुझ अल्हड़ अज्ञानी और भूलभरे शिशुको उन्होंने अपने वात्सल्य-स्नेहसे पाला-पोसा। मेरी भूलोंको सुधारनेमें उनकी अहैतुकी कृपा जिस प्रकार एकरस बरसती रही, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता। भगवानकी ओर मेरी रुचि बढ़ानेमें उन्होंने जो साधन मेरे लिये प्रस्तुत किये, क्या कोई सगा-सम्बन्धी भी वैसा करेगा? अपने अनूठे अनुभवोंद्वारा मुझमें भगवद्भक्तिकी लालसा बढ़ायी और मुझ गँवारको परिष्कृत करनेमें तीर्थरूप श्रीभाईजीने कोई कमी नहीं की।

श्रीभाईजी उन दिनों खादीके बड़े मोटे कपड़े पहना करते थे। भोजन बड़ा सादा होता था। थालीमें दाल-शाक-रोटी आदिके रूपमें अधिक-से-अधिक तीन या चार वस्तुएँ रहा करती थीं। मिर्च-खटाई-चटपटेपनका तो नाम भी नहीं था। यहाँ साथ रहनेवालोंका जीवन साधनात्मक होता था। सभीने स्वेच्छासे साधनात्मक जीवन स्वीकार किया था। सभी साधना-डायरी रखते थे। मनमें कोई विकृति आती तो उसे डायरीमें लिखना होता था। श्रीभाईजी कहा करते थे कि विकृतिके आते ही भगवानका स्मरण और हरिनामका जप करो। साधनाके नियमोंका पालन कठोरतापूर्वक करना होता था।

यह कठोर साधना हम लोगोंको कभी भी कठोर नहीं लगी। वस्तुतः साधनाकी कठिनता तनिक भी ध्यानमें आयी ही नहीं। यह केवल इसीलिये कि हमारे बीच एक पूर्ण विकसित फूल था। उस खिले हुए फूलकी सुगन्ध इतनी मोहक और मादक थी कि कठोरता और कठिनताका आभास तक नहीं हो पाया। यह विकसित फूल था श्रीभाईजीका वह मधुमय व्यक्तित्व, जिसका निर्माण हुआ था सम्मोहन मन्त्रके मृदुल अक्षरोंसे।

बगीचेमें प्रतिदिन भगवन्नामका सामूहिक संकीर्तन हुआ करता था। मैंने श्रीभाईजीको संकीर्तनमें नृत्य करते हुए देखा है। उस नृत्यका भाव और प्रभाव विचित्र होता था। जिस कमरेमें यह कीर्तन होता था, उसके कपाट बन्द कर दिये जाते थे। विलम्बसे आनेवालोंको कमरेमें प्रवेश नहीं मिल पाता था, अतः सभीका प्रयास रहता था कि समयसे पूर्व ही संकीर्तन-कक्षमें पहुँच जायें। कमरेमें भावभरे आह्लादकारी संकीर्तनको देखकर यही लगता मानो श्रीगौरांग महाप्रभुका हरिनाम-संकीर्तन पुनः गोरखपुरमें अवतरित हो उठा है।

बगीचेका वातावरण बड़ा अलौकिक था। उस वातावरणमें आध्यात्मिकता-सात्त्विकता-सेवापरायणताके सशक्त परमाणु व्याप्त थे। उस वातावरणके सम्पर्कमें आनेवाले और बगीचेमें सदा रहने वाले, सभी लोगोंको उन परमाणुओंकी दिव्यताकी अनुभूति होती थी। सच बात यह है कि श्रीभाईजीका दिव्य व्यक्तित्व उस वातावरणपर छाया हुआ था। उस वातावरणका ही प्रभाव था कि मुझमें भजन करनेका चाव जगा और मैं श्रीभाईजीसे आज्ञा लेकर श्रीअयोध्या धाम आ गया।

मैं अयोध्यामें अपने गुरूदेव परम पूज्य परमहंस श्रीराममंगलदासजी महाराजके पास रहता अवश्य था, पर वहाँ भी श्रीभाईजीकी छाया मुझे सदा प्राप्त रही। श्रीभाईजी सदा मेरा समाचार मँगवाते रहते थे और हर प्रकारसे मेरी सँभाल करते रहते थे। श्रीभाईजीकी वह आत्मीयता क्या कभी भुलायी जा सकती है ? उसे स्मरण करके हृदय कृतज्ञतासे भर जाता है।

[३] उन्होंने परौठे बनाये

मैं अयोध्यामें अपने परम पूज्य गुरूदेव महाराजके पास सात वर्षों तक रहा, परंतु समय-समयपर गोरखपुर जानेका कार्यक्रम बन ही जाया करता था। श्रीभाईजीके प्यारका आकर्षण था ही ऐसा। कभी श्रीभाईजी मुझे बुला लेते और कभी मैं स्वतः पहुँच जाता। उनकी संनिधिका अर्थ ही था स्नेह-सिन्धुमें संतरण।

एक प्रसंग लिख रहा हूँ। यह प्रसंग देखनेमें भले छोटा-सा हो, परंतु इसके माध्यमसे उनके वात्सल्यपूर्ण स्नेहकी अनूठी झाँकी देखनेको मिलती है। घटना सम्भवतः अक्टूबर सन् १९३७

की है, मुझे गोरखपुरसे अयोध्या जाना था। ट्रेन प्रातःकाल सात बजे छूटती थी। मैं छः बजे नहा-धोकर उनके पास विदाई लेनेके लिये पहुँचा तो एक विचित्र दृश्य देखकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ। घरके आँगनमें बैठे हुए एक अँगीठीपर वे स्वयं अपने हाथोंसे परौठे बना रहे थे। घरमें बेटी सावित्रीकी माँ थी, इतना ही नहीं अनेक सेवक भी थे, यह सब होनेपर भी वे स्वयं परौठे क्यों बना रहे हैं। इस बातका मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मैंने उनसे पूछा— भाईजी ! यह आप क्या कर रहे हैं ?

कितना मीठा उत्तर था उनका ! उसे स्मरण करके भी आँखें सजल हो उठती है और पुलकावली छा जाती है। उन्होंने कहा— तुम्हें जाना है न ! इतने प्रातःकाल किसको जगाता, किसको उठाता ? मैंने सोचा कि मैं ही तुम्हारे लिये प्रातराश बना दूँ। तुम्हें खिलाकर विदा करूँगा तो मुझे संतोष रहेगा।

सचमुच, उनके स्नेहमें कितना अपनापन था, यह भाषामें बतलाया नहीं जा सकता। कहाँ मैं एक अति साधारण स्तरका अकिंचन प्राणी और कहाँ वे स्वयंकी गरिमासे महिमान्वित आध्यात्मिक महापुरुष, किन्तु यह सत्य है कि उस महापुरुषके हृदयमें वात्सल्यका सागर सदा उमड़ता ही रहता था।

[४] पण्डित श्रीनेहरूको कार

सन् १९३६-३७ में गीतावाटिकामें साल भरका अखण्ड हरिनाम संकीर्तन हो रहा था, उस समयकी बात है। पं. श्रीजवाहरलालजी नेहरूको बरहज जाना था। वहाँ एक सार्वजनिक सभामें उनका भाषण होने वाला था। दुर्भाग्यसे बरहज जानेवाली ट्रेन छूट गयी। अब जानेका यही साधन शेष रह गया था कि किराये या मँगनीकी कारसे चला जाय। सम्मान्य बाबा श्रीराघवदासजीने बहुत प्रयत्न किया, पर न तो कहींसे मोटर किरायेपर मिली और न किसीने अपनी मोटर श्रीनेहरूजीके लिये दी। जो भी मोटर देता, वही अँग्रेजी सरकारकी कोप-दृष्टिका भाजन बनता। सरकार द्वारा कारको ही जब्त कर लिये जानेकी आशंका थी।

हारकर बाबा श्रीराघवदासजी गीतावाटिकामें श्रीभाईजीके पास आये और सारी स्थितिका निवेदन करके कहा— हमारी इज्जतका सवाल है। नेहरूजीको बरहज ले जाना बहुत जरूरी है। कहींसे भी मोटर नहीं मिल रही है। आपसे विनम्र प्रार्थना है कि आप मोटरकी व्यवस्था करा दें।

श्रीभाईजी तो सदा दूसरोंकी सुख-सुविधाके लिये सदा तत्पर रहते थे, चाहे उनको बड़ी-से-बड़ी हानि क्यों न उठानी पड़े। श्रीभाईजीने तुरंत अपनी मोटर दे दी, जिसे लेकर बाबा श्रीराघवदासजी चले गये।

पंडित नेहरू उपयुक्त अवसरपर बरहज पहुँच गये। वहाँसे लौटनेके बाद वे गीतावाटिकामें आये तथा श्रीभाईजीके यहाँ जलपान किया। बहुत दिनों बाद श्रीनेहरूजीका पत्र श्रीभाईजीको मिला था, जिसमें उन्होंने गीतावाटिकामें पहुँचने और जलपान करनेका विवरण लिखा था।

श्रीरामप्रसादजी सी.आई.डी. इन्स्पेक्टर श्रीभाईजीके पास प्रायः आते रहते थे। उन्होंने उसी रातको कहा— भाईजी ! आज हमने आपका नाम नोट कर लिया।

श्रीभाईजीने पूछा— कैसे ?

श्रीरामप्रसादजीने कहा— आज आपने पंडितजीको मोटर दे दी।

श्रीभाईजीने कहा– वह तो खुली चीज थी। चोरीकी कोई चीज तो थी नहीं। नाम लिख लिया तो क्या और नहीं लिख लिया तो क्या?

उस समय गोरखपुरमें शायद मिस्टर रोज नामके कलेक्टर थे। उन्होंने कहा था– हमें मालूम है कि श्रीभाईजीने श्रीनेहरूजीको कार दी, पर हम उनपर कोई कारवाही नहीं करेंगे।

श्रीभाईजी ऐसे निर्भीक थे तथा उनका सरकारी अधिकारियोंपर भी इतना प्रभाव था। उस समय सब नेता श्रीभाईजीके पास ठहरते थे, लेकिन उनको कभी किसी कलक्टरने टोका तक नहीं कि आपके यहाँ ये लोग क्यों आते हैं? क्यों ठहरते हैं? क्या बात है? उन्हें विश्वास था कि ये राजनीतिक आदमी नहीं हैं और प्रेमसे सबको ठहराते हैं।

[५] उनका उपदेश और उनका वरदहस्त

श्रीभाईजीकी सन्निधिमें बहुत कुछ सीखनेको मिला, परंतु उनकी एक बात मेरी नस-नसमें समा गयी। श्रीभाईजी कहा करते थे– सर्वव्यापक भगवान सर्वदा हमारे साथ हैं और हमारे परम सुहृद है, फिर हम चिन्तित और भयभीत क्यों हों?

श्रीभाईजीके इस उपदेशसे मेरे मनमें बड़ी ही निश्चिन्तता और निर्भयता समा गयी थी। यही कारण है मैं जीवनमें कई बार कठिन-से कठिन परिस्थितियोंको सहज ही पार कर गया। कलकत्तेमें जब डाइरेक्ट ऐक्शन हुआ, तब श्रीभाईजीने मुझे वहाँ भेजा। बंगालके नोआखालीका कुख्यात काण्ड जगतप्रसिद्ध है। वहाँ अनेक भाइयोंके जान-मालकी हानि हुई और अनेक बहिनोंके शील-संकोचका अपहरण हुआ। अपनी बहिनों एवं अपने भाइयोंके साथ जितना और जैसा अनाचार-अत्याचार हुआ, उससे श्रीभाईजीका हिन्दू-हृदय रो उठा। उनके अश्रुओंकी संतप्तता व्यक्त हो उठी थी कल्याण पत्रिकाके परिशिष्टांकके रूपमें। सरकारने यह परिशिष्टांक तुरंत जप्त कर लिया। श्रीभाईजीने मुझे वहाँ नोआखाली भी भेजा। वहाँ मुझको अकेले नहीं जाने दिया। उन्होंने साथमें भेजा अपने निजीजन श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल को। भेजनेमें निमित्त बना गोरखपुरका एक रेलवे कर्मचारी। उसका परिवार नोआखालीमें घिर गया था। वह श्रीभाईजीके पास आकर रोने लगा। उसकी आर्तिसे द्रवित होकर उस परिवारको बचा लानेका कार्य श्रीभाईजीने मुझे सौंपा और प्रभुकृपासे उस उद्धार कार्यमें मुझे सफलता मिली।

श्रीभाईजीने वहाँ चाँदपुर सब-डिविजनमें दंगा पीड़ित लोगोंके लिये ऐसी व्यवस्था की, जिससे उन लोगोंको पुनर्वासमें पर्याप्त सहायता मिल सकी। इसी निमित्तसे मुझे नोआखालीमें नौ-दस महीने सहायता-कार्य करनेका अवसर मिला।

महामना मालवीयजी जब अन्तिम दिनोंमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रोग-शय्यापर पड़े थे, मैं नोआखाली जाते हुए चरण-स्पर्श-हेतु उनके पास गया। उनके कमरेके बाहर एकने पूछा– कहाँसे आये हो?

मैंने कहा– गोरखपुरसे, भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके पाससे।

वे सज्जन तुरंत अन्दर गये और महामनासे कहा– एक सज्जन पोद्दारजीके पाससे आये हैं और आपके दर्शन करना चाहते हैं।

उनकी आज्ञा हुई– उन्हें अन्दर बुलाइये।

मैं नतमस्तक उनके चरणोंकी ओर बढ़ा और माथा टेक दिया। महामना मालवीयजीने पूछा— भाईजी ठीक हैं न ? कैसे आये हो ?

मैंने कहा— नोआखाली जा रहा हूँ। भाईजीने लोगोंकी सहायतार्थ वहाँ एक स्थानपर कैम्प खुलवा दिया है।

वे बोले— भाईजी तो हिन्दूधर्मके प्राण है। वे ऐसे पुण्यात्मा हैं, जिनसे हम सबको बहुत बल मिलता है।

मेरे माथेपर उन्होंने अपना हाथ रखा और मैं उनके चरण स्पर्श करके बाहर आ गया।

जो कुछ यत्किंचित् सेवा-कार्य हमारे द्वारा वहाँकी परिस्थितिके मध्य हो सका, उसे देखकर लोग आश्चर्य करते थे। उन आश्चर्य करनेवाले लोगोंको विश्वास करा सकना कठिन हो गया कि श्रीभाईजी जैसे संतके उपदेश एवं आशीर्वादके फलस्वरूप जन-सेवाका वह महान कार्य हो सका, जों हम जैसे साधारण व्यक्तियोंके लिये असम्भव था। इसमें गरिमा मुझ यन्त्रकी नहीं, अपितु उन यन्त्री श्रीभाईजीकी है।

इसी बीच मैं प्रातः स्मरणीय महात्मा गाँधीजीके सम्पर्कमें आया और उन्हें समीपसे जाननेका स्वर्ण-अवसर मुझे मिला। कष्ट-पीड़ित मानवताके आँसू पोंछनेके लिये वे दयार्द्र हो स्वयं कष्ट सहते हुए नोआखाली चले आये थे। पूज्य श्रीभाईजीसे उनका बहुत पुराना परिचय था। हो सकता है, उसी कारण बापूने मुझे अपना स्नेह-भाजन बनाया हो। श्रीभाईजीके बारेमें बापू चर्चा किया करते थे और कहते थे— हनुमान आदमी बहुत बढ़िया है। दीन-दुःखियोंकी सेवामें दत्तचित्त हो, लगा रहता है। भगवानका भक्त है, इसलिये दूसरोंका दुःख वह अपना दुःख मानता है। मैं उसे बहुत वर्षोंसे जानता हूँ, उससे किसीका अनिष्ट नही हो सकता। जब गोरखपुर जाओ, मेरा उसे स्नेह देना।

एक दिन बापू बोले— तुम्हें पता है, जब देवदास गोरखपुर जेलमें बंद था, तब हनुमानने उसकी बहुत देख-भाल की थी। मैं तो निश्चिन्त था कि हनुमान सब देख लेगा।

मैंने अनुभव किया कि श्रीभाईजीका प्रभाव कहाँ-कहाँ और कितना गहरा है।

देश-विभाजनके समय पंजाबमें सब ओर मार-काटकी विभीषिका फैल गयी। मैं नोआखालीसे लौटा ही था कि भयानक घटनाओंके समाचार आकाशवाणी और दैनिक पत्रोंद्वारा आने लगे। बहुत दुःख हुआ, मैं भोजन करते समय रो पड़ता, भोजन बीचमें ही छोड़ देता। जी चाहता कि भाग जाऊँ उन कष्ट-पीड़ित लोगोंमें। एक दिन न रह सका। श्रीभाईजीके चरणकमलोंपर गिरकर प्रार्थना की— मुझे पंजाब जानेकी अनुमति दें।

उनका हृदय भर आया। कौन पिता अपने बच्चेको अग्निमें झोंकेगा ? उन्होंने कहा— अकेले ही जाओगे क्या ?

मेरा क्रन्दन बढ़ा और रोते हुए मैंने कहा— आपने सदैव मुझे एक मन्त्रसे दीक्षित किया है कि मेरे साथ भगवान सदा है और इसको कभी भी न भूलूँ। आशीर्वाद दीजिये कि भगवान मुझे यन्त्रवत् जनता-जनार्दनकी सेवामें लगाये रखें, जिससे मेरा जीवन सफल हो।

श्रीभाईजीने स्नेहभरे हाथको मेरे सिरपर रखा और मैं पंजाबके लिये चल पड़ा। मैं लौकिक

दृष्टिसे सर्वथा साधनहीन था। मार्गमें गोली चली, बम फटे, पर मै किसी प्रकार अमृतसर पहुँच गया। वहाँ भगवानने मुझसे काम लिया, 'मारवाड़ी रिलिफ सोसाइटी' और सरकारी कोषसे मुझे उन दुःखी विस्थापित लोगोंकी सहायताके लिये काफी मदद मिली। मुझे सदैव ऐसा लगता था— जैसे श्रीभाईजी मेरे संग-संग अपना वरदहस्त लिये चल रहे हों। उन्होंने पत्रोंद्वारा मेरा साहस बढ़ाया। सचमुच उनका बल मेरा बल था।

[६] मैं उनका संदेश-वाहक

मुझे श्रीभाईजीका संदेश-वाहक कहा जा सकता है। देशके महान व्यक्तियोंके पास अपने विचारोंको बतलाने-समझानेके लिये श्रीभाईजी कई बार मुझे व्यक्तिगत रूपसे भेजा करते थे। मेरे साथमें रहता था उनका पत्र। जिनके नाम पत्र रहता था, उनको अनेक बातें मौखिक रूपसे बतलानी पड़ती थी, पक्ष-विपक्षकी कई बातें कह करके कथ्य-विषयसे सम्बन्धित कई बातोंको खोल-खोलकर रखना पड़ता था। हिन्दू कोड बिलके समय तो कई बार कई जगह जाना पड़ा था।

सन् १९४८-४९ में हिन्दू कोड बिल सारे भारतमें चर्चाका एक गम्भीर विषय बन गया था। केन्द्रीय सरकार इस बिलको पास करके हिन्दुओंकी समाज-व्यवस्थामें परिवर्तन लाना चाहती थी। उस परिवर्तनके रूपको देखकर श्रीभाईजी बड़े दुखित थे। श्रीभाईजीकी स्पष्ट धारणा थी— भारतकी नवोन्नतिके कर्णधार बनकर जो लोग धारासभामें यह हिन्दू कोड बिल ला रहे हैं, उन्होंने ऋषियोंद्वारा प्रणीत हिन्दू शास्त्रोंको देखा नहीं है और वे लोग पाश्चिमात्य संस्कृति और सभ्यताके बहकावेमें आकर बिना समझे-बूझे हिन्दू जातिका विनाश करनेमें तत्पर हो रहे हैं। प्रस्तावित 'हिन्दू कोड' हिन्दू जाति और सनातन धर्मपर क्रूर प्रहार है।

सन् १९४९ में जब कानून मंत्री डा. अम्बेडकर महोदयने बिलको कानूनका रूप देनेके लिये धारा-सभामें उपस्थित कर दिया तो हिन्दू समाजकी भावी हानिकी कल्पना करके श्रीभाईजीका हृदय कराह उठा। श्रीभाईजीके आन्तरिक विचार यही थे कि यह कोड हिन्दुओंकी शास्त्रीय समाज व्यवस्थाके सर्वथा विरुद्ध है। यदि यह कानून बन गया तो हिन्दुओंकी परम्परागत धार्मिक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाका मूलोच्छेद हो जायेगा और सारा समाज दुखी हो जायेगा। इससे हिन्दुओंका सुखी जीवन सदाके लिये संतप्त बना दिया जायेगा।

उन दिनों श्रीभाईजी 'कल्याण' के माध्यमसे हिन्दू कोड बिलका प्रबल विरोध कर रहे थे। स्वयं लिखते थे और लेखकोंके लिखे हुए लेखोंको छापते थे। इतना ही नहीं, श्रीभाईजीने जगह-जगह मुझे भेजा। अजातशत्रु डा. राजेन्द्रप्रसाद, पण्डित गोविन्द वल्लभ पंत, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, डा. कैलाश नाथ काटजू, श्रीहृदय नारायण कुंजरू, श्रीचन्द्रभानु गुप्ता इस प्रकार न जाने कितने गणमान्य व्यक्तियोंसे मिलनेका अवसर मुझे मिला।

एक बातसे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा था। ऐसा कोई भी व्यक्ति नही मिला, जिससे श्रीभाईजीका अति घनिष्ठ और अति निकट सम्पर्क न हो। श्रीभाईजीके परिचय-क्षेत्रके विस्तारको देखकर वस्तुतः आश्चर्य होता था। बाहर जानेपर पता चला कि श्रीभाईजीका आध्यात्मिक व्यक्तित्व उन महान नेताओंके ऊपर भी कितना अधिक छाया हुआ था। जिन-जिनसे मिला, सभीने श्रीभाईजीके संदेशवाहकके नाते मेरी बातें ध्यान पूर्वक सुनी।

सर्वोत्तम होता यदि यह बिल कानून बनता ही नहीं, पर अब इतनेसे संतोष करना चाहिये

कि श्रीभाईजीके इस प्रबल विरोधसे हिन्दू कोड बिल अपने मूल रूपमें पारित नहीं हो पाया और कानूनका रूप प्रदान करनेके पूर्व सरकारको कई स्थानपर उसमें परिवर्तन करना पड़ा। ■

श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय

उनकी मधुर छाप

'कल्याण' तथा गीताप्रेसकी जो इतनी अधिक उन्नति हुई है, इसका श्रेय निश्चित रूपसे श्रीभाईजीको ही है। उन्होंने आरम्भमें ही निश्चय किया था कि 'कल्याण'के सम्पादन अथवा ग्रन्थ-प्रणयनके लिये वे एक पैसा भी पारिश्रमिक न लेंगे, भोजन-वस्त्र भी नहीं, 'यह कार्य अवैतनिक है, इसलिये जितना काम सरलतासे हो सके, उतना ही काम करो'— इस प्रकारकी भावना क्षणमात्रके लिये भी श्रीभाईजीके मनमें नहीं आयी। वे घोर परिश्रम करते थे और भोजन-शयनके घंटोंको छोड़कर निरन्तर कार्यरत रहते थे।

'कल्याण'के प्रारम्भिक वर्षोंमें श्रीभाईजीके निवास-स्थानपर बिजली नहीं थी, अतः पंखे नहीं थे। गर्मीमें उत्तर प्रदेशकी विकट गर्मीका अनुमान वही लगा सकता है, जो उन दिनों वहाँ कभी रहा हो। मैं भी सम्पादन विभागमें था। कामके सिलसिलेमें जब-जब मैं श्रीभाईजीके पास गया, मैंने देखा कि उनका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ है, पर वे पसीनेकी ओर तनिक भी ध्यान दिये बिना लिख-पढ़ रहे हैं। आँखोंमें जलन होने लगती तो पासमें रखी कटोरीका पानी आँखोंमें लगा लेते थे।

सचमुच श्रीभाईजी तो, बस, 'भाईजी' ही थे। उनकी सभी बातें विलक्षण थी, अलौकिक थी। कहलाते तो वे श्रीभाईजी थे, किंतु बड़े भाई, संरक्षकके साथ-साथ माताकी ममता और पिताके स्नेहसे भी उनका हृदय परिपूर्ण था। उनके सम्पर्कमें आनेवालोंको यही लगता था, जैसे वह अपने परिवारके परम प्रिय एवं परम आदरणीय व्यक्तिके समीप है।

स्मरण आते हैं मुझे वे दिन, जब 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें काम करते हुए मैं गौरवका अनुभव कर रहा था। कार्य ही लक्ष्य था। कोई निश्चित स्थान नहीं, कोई निश्चित समय नहीं। जीवनमें बस, उतना ही समय आया, जब मैं देश-कालके बन्धनसे परे था। सन् १९४२ की बात है। 'गो-अंक' की तैयारी हो रही थी। एक गुजराती विद्वान, जिनका इस विषयपर अच्छा अधिकार था, बुलाकर रखे गये। वे लेख तैयार करने लगे, परंतु उन्हें हिन्दी ठीक नहीं आती थी, वे गुजराती-प्रधान हिन्दी लिखते थे और वह भी गुजराती लिपिमें। नागरी लिपिका अभ्यास उन्हें बिलकुल न था। आवश्यकता थी, उन लेखोंका प्राञ्जल हिन्दीमें अनुवाद करनेकी। श्रीभाईजी यदि चाहते तो सरलतासे कुछ ऐसे व्यक्तियोंको बुलाकर रख लेते, जिन्हें गुजराती और हिन्दी, दोनों लिपियों एवं भाषाओंका ज्ञान हो, किन्तु अपने सहयोगियोंका विचार करके उन्होंने ऐसा नहीं किया। श्रीभाईजीने हमें बड़े स्नेहसे गुजराती वर्णमाला सिखलायी और उन लेखोंको हिन्दीमें अनुवाद करनेका भार सौंप दिया। अयोग्यतावश हमलोगोंसे इस कार्यमें भूलें होती थी, जिन्हें श्रीभाईजी स्वयं शुद्ध करते थे। इसमें उनका समय एवं शक्ति दोनों लगते थे, पर श्रीभाईजीको इसीमें प्रसन्नता थी। अपने सहयोगियोंके साथ

ऐसा स्नेह-व्यवहार करनेवाले और कहाँ मिलेंगे! यह उनकी आत्मीयताका सांकेतिक निर्देशनमात्र है, वह तो अनुभवकी वस्तु थी। देश-विदेशके असंख्य भाग्यशाली व्यक्तियोंके हृदयपर श्रीभाईजीकी आत्मीयताकी मधुर छाप अंकित है। ■

पं. श्रीशिवनाथजी दुबे

[१] सत्य

बात है कई वर्ष पूर्वकी। उस समय श्रद्धेय श्रीभाईजीकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। मध्यप्रदेशके एक सज्जन उनसे मिलने आये। उन्हें अपने पत्रमें श्रद्धेय श्रीभाईजीने दो सौ रुपये सहायता देनेकी बात लिखी थी। मैंने श्रद्धेय श्रीभाईजीके समीप जाकर उनके आनेका कारण बताया और उनसे यह भी कह दिया कि मुझे स्मरण है कि आपने उन्हें दो सौ रुपये देनेकी बात लिखी थी।

श्रद्धेय श्रीभाईजीने तुरन्त कहा— मुझे तो स्मरण नहीं कि मैंने उन्हें दो सौ रुपये देनेकी बात कभी लिखी थी, पर आप कह रहे हैं तो मैंने अवश्य लिखा होगा। आप दूलीचन्दसे कहकर रुपये दिलवा दें।

रुपये उन्हें दे दिये गये— उस समय जब कि उनकी आर्थिक दशा अत्यन्त दयनीय थी, केवल सत्यकी रक्षाके लिये उन्होंने तत्काल रुपये दे दिये।

[२] दया

अत्युक्ति नहीं, सर्वथा सत्य है कि श्रीभाईजी मूर्तिमान दया थे। किसीका कष्ट देखकर सह लेना उनके वशकी बात नहीं थी। उन दिनों गीतावाटिकामें एक वृद्धा मेहतरानी शौचालय साफ किया करती थी। जाड़ेके दिन थे। मेहतरानी शौचालय साफ करके लौट रही थी और श्रीभाईजी वाटिकामें टहल रहे थे। उसे देखते ही अत्यन्त प्यारसे भोजपुरीमें श्रीभाईजीने उससे पूछा— कहा माई, मजेमें बाटू न ?

मेहतरानीने उत्तर दिया— हाँ बचवा, जीयत हई। आजकल जाड़ा लगत बा बेटा। अब सर्दी ना सहात।

'अच्छा, तनी रुका माई'— ऐसे स्नेह-सने शब्दोंको मेहतरानीसे कहकर श्रद्धेय श्रीभाईजीने तुरन्त एक कम्बल और एक धुस्सा (गरम सूती चादर) मँगवाकर उसे दिलवा दिये।

मेहतरानीने गद्‌गद कण्ठसे आशिष दी— जुग-जुग जिया बेटा।

श्रीभाईजी प्रायः कहते— मैं तो सर्वथा अकिंचन हूँ और सबमें परमात्मा विद्यमान हैं। कहींसे कुछ आ जाता है तो उनकी वस्तु उनको समर्पित कर देता हूँ। 'तेरा तुझको सौंपते का लागे है मोर', पर जब इसमें मेरी प्रशंसा होती है तो मैं लज्जासे गड़ जाता हूँ।

[३] परनिन्दा-असहिष्णुता

श्रद्धेय श्रीभाईजी अपने प्रवचनमें प्रायः कहते— *दोष देखने हों तो अपने देखो, दूसरोंके तो गुण ही देखने चाहिये।*

उनके सामने कोई किसीकी निन्दा करे, उन्हें सह्य नहीं था। यही कारण था कि उनके समीप रात-दिन रहनेवाले भी किसीपर अत्यन्त असन्तुष्ट होकर भी श्रीभाईजीके सामने उसकी निन्दा नहीं कर सकते थे। हम सब जानते थे कि इनसे शिकायत करनेपर अपनी ही फजीहत होने लगेगी।

एक बारकी बात है। श्रीभाईजी सत्संगसे उठे तो एक आगन्तुक उनसे भारतके राष्ट्रपति देशरत्न डा. श्रीराजेन्द्रप्रसादजीकी चर्चा करने लगे। श्रीभाईजीने श्रीराजेन्द्र बाबूकी बड़ी प्रशंसा की। इसपर उक्त सज्जनने कहा— आप डाक्टर साहबको नहीं जानते भाईजी, उन्होंने एक. . . ।

वे श्रीराजेन्द्र बाबूके चरित्रपर लाञ्छन लगाना चाहते थे और यह श्रीभाईजीके स्वभावके सर्वथा विपरीत था। उन्होंने उक्त सज्जनका वाक्य पूरा होनेके पहले ही उत्तर दे दिया— एक डिठौना रहना चाहिये, नहीं तो उनमें इतने सद्‌गुण हैं कि नजर लग जायेगी।

वे सज्जन आगे नहीं बोल सके, चुप हो गये।

परदोष-दर्शन तो दूर, किसीकी निन्दा भी सह लेना आपके वशकी बात नहीं, किन्तु अपना दोष बतानेवालेका उपकृत होना, उसका आभार स्वीकार करना इनका सहज गुण ही नहीं, स्वभाव भी है। बहुत वर्ष पूर्व आपको अपने एक मित्रके द्वारा सूचना मिली कि किसीने एक पुस्तकमें इनकी कुछ आलोचना की है। आपने उक्त मित्रको तुरन्त लिखा— आपके कथनानुसार पुस्तकमें यदि मुझपर कटाक्ष किये गये हैं तो इसमें आपत्तिकी कौन-सी बात है? यदि आलोचकने कोई सच्चा दोष दिखलाया होगा तो वह मुझपर उसका उपकार ही मानना चाहिये। . . . . यदि उसने कहीं अनुचित और मिथ्या आक्षेप किया हो तो बेचारा भ्रममें है। परमात्मा उसकी भ्रम-भरी बुद्धिको शुद्ध करें।

[४] प्रेम-व्यवहार

डा. मुहम्मद हाफिज सैयद प्रयाग विश्वविद्यालयके दर्शन अध्यापक थे। हाफिज साहब भगवान श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे। अपने घरपर श्रीकृष्णका एक भव्य चित्र रखते थे और चन्दन-पुष्प, धूप-दीपसे बड़े भावके साथ उसकी पूजा करते थे। एक बार श्रीभाईजी प्रयाग गये थे, तब हाफिज साहब अपने इष्टदेवके दर्शन करानेके लिये उन्हें अपने घर ले गये। भगवान श्रीकृष्णके नाते हाफिज साहबके साथ श्रीभाईजीकी बड़ी ही आत्मीयता थी। हाफिज साहब 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु'के लिये लेख बराबर लिखते थे। उन लेखोंमें भारतीय दर्शन, धर्म एवं संस्कृतिके प्रति उनका प्रगाढ़ प्रेम दर्शनीय है।

एक बार हाफिज साहब गोरखपुर पधारे। श्रीभाईजीके घरपर ही वे ठहरे। भाईजीने बड़े स्नेहसे उनका आतिथ्य किया। अतिथि भगवानका स्वरूप होता है, फिर वे तो भगवान श्रीकृष्णके भक्त थे, अतएव उनके प्रति ममत्व होना स्वाभाविक था। हाफिज साहबने आग्रह किया— आज आपके पास बैठकर आपके इष्टदेवका प्रसाद लूँगा।

श्रीभाईजीने भगवानके भोगके लिये विशेष व्यवस्था करवायी। भोजनका समय हुआ। बरामदेमें पास-पास दो कम्बलके आसन लगाये गये और सामने काठके बने पीढ़े रखे गये। दोनोंके लिये स्टीलकी थाली-कटोरीमें प्रसाद परोसकर आया। श्रीभाईजी बड़े प्रेमसे

पूछ-पूछकर उनको खिला रहे थे तथा स्वयं भी प्रसाद पा रहे थे। हाफिज साहब श्रीभाईजीकी आत्मीयतासे आप्यायित थे।

प्रसाद ग्रहण करनेके पश्चात् तौलियासे हाथ पोंछते हुए नेत्रोंमें आँसू भरकर डा. सैयद हाफिजसाहबने श्रीभाईजीसे कहा— मुसलमानोंके सबसे बड़े शत्रु तुम हो।

श्रीभाईजीने पूछा— वह कैसे ?

डा. सैयद हाफिजसाहबने कहा— यदि तुम्हारी तरह सब हिन्दू हो जायँ तो भारतमें मुसलमानोंके दर्शन भी न हों।

कुछ दिनों बाद जब श्रीभाईजी गीता-भवन, (स्वर्गाश्रम) सत्संगके लिये गये, तब सैयद साहब भी वहाँ पहुँचे। मैंने देखा श्रीभाईजीने उन्हें अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने समीप, जहाँ कई संन्यासी महात्मा बैठे थे, बैठाया। श्रीभाईजीके अनुरोधपर डा. सैयद हाफिज साहब श्रीमद्भगवदगीतापर लगभग एक घंटा बोले भी।

[५] गोवध-विरोधी आन्दोलनके सेनानी

धर्मप्राण श्रीभाईजी गायोंकी रक्षा एवं अकाल-पीड़ित गो-वंशकी सेवा करनेमें अपनी ओरसे कुछ उठा नहीं रखते थे। 'गो-वध-विरोधी आन्दोलन'के समय उन्होंने जिस तत्परता, लगन एवं कुशलतासे आन्दोलनके लिये अर्थ-व्यवस्था की तथा आन्दोलनके संचालनमें सहयोग दिया, उससे सभी धर्माचार्य एवं गो-प्रेमी परिचित हैं। यहाँ मैं उनके कुछ पत्रोंके कुछ अंशमात्र दे रहा हूँ—

पूज्य विनोबाजीके पत्रमें भाईजीने लिखा था— *यह सर्वथा स्वीकृत है कि गायोंके साथ हिन्दूका आत्मा और प्राणका सम्बन्ध है। आज यदि पूज्य बापूजी होते तो इस प्रकारके आन्दोलनकी कोई आवश्यकता ही नहीं होती, इससे पहले ही सर्वथा गोवंशका वध बन्द हो जाता। अब तो आपपर ही सबकी आँख लगी है। आप संत है और गायके सम्बन्धमें आपने यहाँतक कह दिया था कि 'भारतमें गो-वध बन्द नहीं होगा तो क्रान्ति हो जायगी' भारतमें गो-वध सर्वथा बन्द हो जाय- इसी उद्देश्यसे आपसे करबद्ध प्रार्थना कर रहा हूँ।. . .*

श्रीजयप्रकाशनारायणको श्रद्धेय श्रीभाईजीने लिखा था— *आप गोवधका सर्वथा निवारण चाहते हैं, यह मेरा विश्वास है। देशमें बहुत बड़े-बड़े साधु-महात्मा गोवध निवारणार्थ प्राण-त्याग करनेके लिये तैयार हो गये हैं।. . . अतएव मैं आपसे साग्रह अपील करता हूँ कि आप अपने प्रभावसे केन्द्रीय सरकारद्वारा आवश्यक हो तो संविधानमें उचित परिवर्तन करके तुरन्त सर्वथा गो-वंशके वधका निषेध करनेकी घोषणा करवा दें।*

श्रीगुलजारीलालजी नन्दाके पत्रमें श्रीभाईजीने लिखा था— *स्व. सम्मान्य श्रीशास्त्रीजीसे मेरी व्यक्तिगत बात हुई थी और उन्होंने यह कहा था कि मेरे नामका प्रचार तो नहीं करना चाहिये, पर मैं स्वयं गोवधसे दुःखी हूँ और मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिसमें अगले सालतक गोवध सर्वथा कानूनन बन्द हो जाय। इसके लिये संविधानमें परिवर्तन करना होगा तो वह भी किया जायगा। हमारा दुर्भाग्य है कि श्रीशास्त्रीजीका अकस्मात् देहावसान हो गया।. . . पता नहीं क्यों, मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास है कि और देशोंकी बात चाहे जो हो, पर भारतवर्षमें जबतक रक्तकी एक भी बूँद गोवधके द्वारा गिरती रहेगी, भारतका और भारतवासियोंका कल्याण और सुख-साधन*

नहीं होगा। . . .

इस प्रकार श्रद्धेय श्रीभाईजीने गो-वंशकी रक्षाके लिये अकेले जितना सहयोग प्रदान किया, उतना अनेक व्यक्तियों एवं संस्थाओंके सम्मिलित प्रयत्नसे भी सम्भव नहीं हो सका।

[६] सफल सम्पादन

'कल्याण'के विशेषांकों एवं साधारण अंकोंको देखकर सुविज्ञ पाठक स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि श्रद्धेय श्रीभाईजीमें सम्पादन-कला कितनी उच्च कोटिकी थी। उनकी लेखनीमें माधुर्य था, रस था, पर वह लेखनी देश और धर्मपर आँच आनेपर आग भी उगल सकती थी। पूर्व बंगके नोआखाली जनपदमें निरीह हिन्दूओंपर भीषण अत्याचार हुए। उसे वृद्धावस्थामें सह न सकनेके कारण वन्दनीय मालवीयजी चल बसे। उनके श्राद्धोपलक्षपर श्रद्धेय श्रीभाईजीने 'कल्याण'का एक विशेष अंक प्रकाशित किया, उसके मुख्य पृष्ठपर शंख एवं कोड़ेका चित्र था। पूरा अंक श्रीभाईजीने स्वयं लिखा था, पर उक्त सत्य तथ्यको सह न सकनेके कारण भारत सरकारने उक्त अंक जप्त कर लिया।

'कल्याण'में लेखोंको सुधारकर, उनके क्रम बैठाकर और सुन्दर लेख लिखकर ही उन्होंने सम्पादनमें सफलता नहीं प्राप्त की थी, अपितु 'कल्याण' जैसे पवित्र पत्रके सर्वथा अनुकूल, ऋषितुल्य उनका जीवन था।

'कल्याण'के लेखकोंका वे बड़ा सम्मान करते थे और प्रत्येक रीतिसे सन्तुष्ट रखते थे। अपने कार्यमें सहयोग देनेवालोंको वे सदा प्रोत्साहन देते रहते थे। यहाँ मैं उनके दिनांक ३-६-६८ के गीताभवन, स्वर्गाश्रमसे लिखे पत्रका कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूँ, जिससे उनके अपने सहयोगियोके प्रति भाव एवं उनकी उस समयकी मानसिक स्थितिकी सहज ही कल्पना हो सकती है। उन्होंने लिखा था—

प्रिय श्रीदुबेजी,

सादर प्रणाम।

आपके पत्र मिल गये थे। सूची ठीक करके 'कल्याण'में प्रकाशनार्थ भेज दी है। आपने बड़ा ही परिश्रम किया। पू. श्रीगोपीनाथ कविराजजीका तो परम अनुग्रह है ही। विशेषांककी सूची छपनेको तो भेज दी है, पर आजकल मेरे मस्तिष्ककी जो स्थिति है और जो उत्तरोत्तर बढ़ रही है, उसे देखते सम्पादनका कार्य मैं कर सकूँगा, यह नहीं कहा जा सकता। प्रतिदिन ही पाँच-सात घंटे बाह्य चेतना सर्वथा लुप्त रहती है। चेतनाके समय भी बार-बार यहाँका सब कुछ लुप्त होता रहता है। पता नहीं, क्या होता है? कामकाज प्रायः बन्द है। . . मैं तो अधिक समय बन्द रहता हूँ।

श्रीभगवानमें उनकी तन्मयता उस स्थितिमें पहुँच गयी थी कि उन्हें प्रायः बाह्य-विस्मृति रहने लगी थी। उस स्थितिमें मैंने 'कल्याण'के लिये उनके पास 'कः पन्थाः' शीर्षक एक लेख भेजा था। उक्त लेखमें अनेक घटनाओंके साथ लिखा गया था कि बुढ़ापेसे आक्रान्त होनेपर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इनमेंसे किसीका भी साधन नहीं कर सकता। इसलिये युवावस्थामें ही धर्मका आचरण कर लेना चाहिये।

'कल्याण'में जब मैंने अपना लेख देखा, तब आश्चर्यचकित रह गया। अत्यधिक व्यस्तता,

अस्वस्थता एवं प्रभु-तल्लीनताकी उच्चतम अवश स्थितिमें जब उनकी बाह्य चेतना प्रायः लुप्त होती रहती थी, वे सम्पादन-कार्यमें कितने सजग रहते थे और अपने सिद्धान्तपर किस प्रकार दृढ़ रहते थे, यह उनकी जोड़ी हुई पंक्तियोंसे स्पष्ट हो जाता है। मेरे उक्त लेखके अन्तमें श्रद्धेय श्रीभाईजीने इतना अपनी ओरसे लिख दिया था–

भक्तराज प्रह्लाद तो युवावस्थाकी प्रतीक्षा भी नहीं करना चाहते। वे अपने बालक बन्धुओंसे कहते हैं– इस संसारमें मानव-जन्म दुर्लभ है। इसीमें परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है, पर पता नहीं इसका कब अन्त हो जाय, इसलिये बुद्धिमान पुरुषको बचपनमें ही भागवत धर्मका आचरण कर लेना चाहिये–

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थमद्॥ (श्रीभागवत/७/६/१)

'आप मेरी आत्मा और मेरे प्राण हैं'– एक बार आवेशमें इस वाक्यका प्रयोग श्रद्धेय श्रीभाईजीने मेरे लिये किया था और श्रीभाईजीके अन्य स्वजनोंकी भाँति मेरा हृदय भी कहता है– 'भाईजी मेरे थे और मेरे हैं'।

'श्रीभगवान एवं उनके भक्तोंके चरित्रके अतिरिक्त सांसारिक चर्चासे बचना चाहिये'– श्रद्धेय श्रीभाईजी कहते थे और इस लेखके द्वारा निश्चय ही मैंने भक्त-गुण-गान कर समयका सदुपयोग एवं श्रीभाईजीकी ही आज्ञाका पालन किया है।

उन्हींके मतलबकी कह रहा हूँ, जबान मेरी है, बात उनकी।
उन्हींकी महफिल सँवारता हूँ, चिराग मेरा है रात उनकी।
फकत मेरा हाथ चल रहा है, उन्हींका मतलब निकल रहा है।
उन्हींका मजमूं, उन्हींका कागज, कलम उन्हींका, दवात उनकी।

■

श्रीरामलालजी श्रीवास्तव

[१] सत्संगकी मर्यादा

घटना सम्भवतः १९३५ ई. की है। गीतावाटिकामें कोठीके बाहरी बरामदेमें प्रतिदिनकी तरह श्रीभाईजी सत्संगमें प्रातःकाल आठ बजे प्रवचन कर रहे थे। बगीचेके बाहरी फाटकके सामने सड़कपर एक अँग्रेज साहबने घोड़ेकी लगाम रोक ली। वे नित्य सबेरे घोड़ेपर सवार होकर टहलने निकला करते थे। वे बगीचेमें तो नहीं आये, पर शान्त भावसे चार-पाँच मिनटतक ठहरकर सत्संगके वातावरणका आनन्द लेकर चले गये। श्रीभाईजीका प्रवचन चलता ही रहा। सत्संग समाप्त होनेपर पता चला कि घोड़ेपर सवार अँग्रेज साहब गोरखपुर मण्डलके आयुक्त कमिश्नर श्रीहोबर्ट थे।

श्रीभाईजीने उनको उसी दिन पत्र लिखा– मैं जानता था और मैंने देखा कि आप फाटकके निकट ही घोड़ेपर सवार रहकर सत्संगके प्रति ध्यानमग्न थे, पर हमारे शास्त्रोंमें सत्संगकी यह मर्यादा है कि बीचमें न उठा जाय और न किन्हीं सज्जनके सत्संगके बीचमें उपस्थित होनेपर

उनसे बात की जाय। आशा है, आपके मनमें किसी भी तरहका विचार न होगा।

श्रीहोबर्ट साहबने श्रीभाईजीका पत्र पढ़ा और वे बहुत प्रभावित हुए। ऐसे भी वे पूर्वाञ्चलमें हिन्दू धर्म और सभी सम्प्रदायके संत-महात्माओंके प्रति अपनी सद्भावना और उदार दृष्टिके लिये प्रख्यात थे। मगहरमें कबीरकी समाधि-स्थलीसे सटे आमी नदीके तटपर एक शिव-मन्दिरके निर्माणमें भी उनका योगदान बड़ा सराहनीय रहा है। वे इस घटनाके बाद श्रीभाईजीसे कभी-कभी मिलकर अध्यात्म, धर्म तथा संस्कृतिपर बात किया करते थे।

[२] आत्मश्रेय

श्रीभाईजीने सदा अपने जीवनमें आत्मश्रेयका ही वरण किया। श्रेय और प्रेय दोनों ही मनुष्यके सामने आते हैं। सद्विवेकी उन दोनोंके स्वरूपपर विचार करके परम कल्याणके साधन आत्मश्रेयको ही महत्त्व देता है। जो मन्द बुद्धिवाला है, वह भोग और विषय सुखके पीछे भ्रमित और सम्मोहित रहता है।

सन् १९३६ ई. का प्रंसग है। उत्तर प्रदेश (तत्कालीन संयुक्त प्रान्त) के गवर्नर सर मालकम हेलीके इंगलैण्ड जानेके बाद सर हैरी हेग उनके उत्तराधिकारी हुए। सर हेगकी दृष्टिमें श्रीभाईजी बड़े ही सम्मानित व्यक्ति थे। उन्होंने श्रीभाईजीको सूचित किया— मैं आपको 'सर' की उपाधिसे सम्मानित करनेके लिये वाइसरायको लिखना चाहता हूँ।

यह उपाधि ब्रिटिश साम्राज्यमें बड़े गौरवकी बात समझी जाती थी। श्रीभाईजीने विनम्र उत्तर लिखकर भेज दिया 'सर' की प्रस्तावित उपाधिके लिये मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ, पर मुझे इसकी तनिक भी न आवश्यकता है और न मनमें इसके प्रति किसी भी तरहकी आसक्ति है। मैं क्षमा चाहता हूँ।

सर हैरी हेग श्रीभाईजीके नकारात्मक उत्तरसे चकित हो गये। इस उपाधिके लिये भारतके बड़े-बड़े राजा-महाराजा और श्रेष्ठ विद्वान तरसा करते थे। सर हैरी हेगने मन-ही-मन श्रीभाईजीकी त्याग-वृत्ति और पारमार्थिक जीवनकी बड़ी सराहना की।

सर हैरी हेगसे एक बार इलाहाबादमें भेंट होनेपर श्रीभाईजीने उनसे पूछा था— आप 'सर' की उपाधिसे सम्मानित होने वालोंको क्या समझते हैं ?

गवर्नर सर हैरी हेगने बताया— इस उपाधिको हम कुत्तेके गलेमें सोनेका पट्टा समझते हैं।

भगवानकी कृपासे 'सर' की बला श्रीभाईजीके सिरसे टल गयी। कितने आत्म-विवेकी थे वे !

[३] अयाचित सहायता

श्रीभाईजीसे उनके कमरेमें जाकर श्रीनागरमलजी अजीतसरियाकी धर्मपत्नीने पूछा— भाईजी ! आपके कमरेसे सिसकते हुए कौन सज्जन अभी-अभी निकलकर बाहर गये हैं।

वे कलकत्तेसे राजस्थान जा रही थीं। उन्होंने सुना था कि दिल्लीमें श्रीभाईजी बीमार हैं। वे उन्हें देखने आयी थीं।

श्रीभाईजीने उन सज्जनकी विवशता बतायी— ये बड़े दुखी हैं। इन्होंने अपनी लड़कीके गहने सत्ताइस सौ रुपयोंमें बन्धक रख दिये हैं। लड़कीको ससुराल जाना है। बड़ी चिन्तामें पड़

गये हैं। रुपयोंका कोई प्रबन्ध है नहीं।

श्रीनागरमलजीकी धर्मपत्नीने कहा— मैं कलकत्तेसे किसी अच्छे काममें लगानेके लिये ठीक इतने ही रुपये लेकर चली हूँ। इससे अच्छा दूसरा काम क्या हो सकता है ?

भगवत्कृपासे प्राप्त इस आकस्मिक और अयाचित सहायतासे उन दुखी भाईकी बात बन गयी। उनका हृदय सद्भावनासे भर उठा। यद्यपि यह घटना बहुत समय पहलेकी है, तथापि सम्भवतः १९६४-६५ ई. के मध्य एक दिन सत्संगमें श्रीभाईजीने इस प्रसंगका उल्लेख करते हुए कहा था— जो लोग दूसरोंके हित और दुःख दूर करनेमें तत्पर रहते हैं, भगवानके विधानसे अयाचित दैवी सहायता पहलेसे उनके लिये सुनिश्चित रहती है।

[४] प्लेटफार्मका टिकट

संत-महात्मा, वैष्णव जन स्वभावसे ही सरल होते हैं। सादगी बाहरसे नहीं आती, यह अपने ही भीतर रहने वाली अद्भुत शक्ति है। संतोष और शान्ति तो जीवनकी सच्ची निधि है।

सम्भवतः सन् १९५१ ई. के ग्रीष्म कालकी बात है। उन दिनों पण्डित श्रीगोविन्दवल्लभजी पन्त उत्तर प्रदेश प्रशासनके मुख्य मन्त्री थे। वे एक दिन सबेरेकी आठ बजे वाली गाड़ीसे गोरखपुर स्टेशनपर उतरे। स्वागतमें आये हुए लोगोंकी खासी भीड़ थी। यह मात्र संयोग था कि मैं भी किसी आवश्यक कामसे स्टेशन गया हुआ था। स्टेशनके पोरटिकोमें श्रीभाईजीकी मोटर खड़ी थी। मैंने देखा कि श्रीभाईजी भीतर प्लेटफार्मपर न जाकर वहाँ खड़े थे, जहाँ पहले दरजेका बाहर-भीतर आने-जानेका दरवाजा था। मैं बड़े अचरजमें पड़ गया। मैं समझ गया कि वे श्रीपन्तजीसे मिलने आये हैं। श्रीपन्तजी और उनमें एक-दूसरेके लिय बड़े स्नेह और सम्मानका भाव था, दोनोंमें प्रगाढ़ मैत्री थी। मैंने भाईजीसे कहा— गाड़ी अभी आई है, प्लेटफार्मपर चलिये।

भाईजीने कहा— रामलालजी ! मेरे पास तो प्लेटफार्मकी टिकट ही नहीं है। वाटिकासे चलते समय जेबमें रुपये-पैसे रखनेकी याद ही नहीं थी।

उन्होंने यह बात बहुत सहज सीधे ढंगसे कही। मैं प्लेटफार्मका टिकट लेने वाला ही था कि इतनेमें अनेक शासनाधिकारियों और कांग्रेसी स्थानीय नेताओंसे घिरे हुए पन्तजी पहले दरजेके निकास-द्वारपर आ गये। श्रीभाईजीको देखते ही उन्होंने हाथ जोड़कर सादर प्रणाम किया। बड़े ही विस्मयकी बात तो यह थी कि दोनों-के-दोनों एक-दूसरेका हाथ पकड़े-पकड़े मुस्कुराते हुए एक ही मोटरमें बैठकर डाकबँगले चले गये। लोग देखते रह गये।

[५] अनन्यता

अनन्य वह है, जिसमें अन्यसे किसी भी तरहकी आशा पूरी होनेकी कामना न रह जाय, जिसके सर्वस्व भगवान हों, जिसके बल और आश्रय भगवान ही हों, जिसे भगवानका ही भरोसा हो। श्रीभाईजीकी ऐसी अनन्यताकी अनुभूति उस समय मुझे हुई, जब गीताप्रेस (गोरखपुर) के नवनिर्मित भव्य द्वार तथा गीताप्रेसके ही लीला-चित्र-मन्दिरका उद्घाटन करनेके लिये भारतके प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न श्रीराजेन्द्रप्रसादजीने गोरखपुर आनेके लिये अपनी स्वीकृति भेज दी थी। श्रीराजेन्द्र बाबूकी श्रीभाईजीसे प्रगाढ़ मैत्री थी और बहुत अच्छा आत्मसम्बन्ध था। दोनोंका एक-दूसरेमें दृढ़ विश्वास था। श्रीभाईजीने उन्हें सादर आमन्त्रित किया था। आमन्त्रणके स्वीकृत होते ही सरकारी स्तरपर राष्ट्रपतिके स्वागत-सत्कारकी तैयारी

आरम्भ हो गयी तथा सजावट आदिमें गीताप्रेसकी ओरसे भी प्रचुर धनराशिका सदुपयोग हुआ था। समूचे नगरमें बड़ा उत्साह था। अब दो-चार दिनोंमें ही राष्ट्रपतिका आगमन होने वाला था।

एक दिन गीतावाटिकामें प्रभातकालीन सत्संगमें श्रीभाईजीका प्रवचन समाप्त होते ही किन्हीं सज्जनने पूछा— सुना जा रहा है कि अभी श्रीराजेन्द्र बाबू नही आ रहे हैं। क्या उनके आनेका कार्यक्रम स्थगित हो गया है ?

श्रीभाईजीने कहा— हाँ, बात तो कुछ ऐसी ही है। अभी कुछ देर पहले जिलाधीशने मुझे भी फोनपर बताया है कि राष्ट्रपतिजीका निकट भविष्यमें गोरखपुर आना सम्भव नहीं है। उनके कार्यक्रममें परिवर्तन हुआ है।

श्रीभाईजीने बड़ी निःस्पृहता और अनासक्ति पूर्वक यह सब बतलाया था। ऐसा स्पष्ट लगता था कि राष्ट्रपतिके आनेके सम्बन्धमें न उनके मनमें आकर्षण है और न उनके न आनेसे विषाद है। साधारण और असाधारण व्यक्तिके स्वभावमें यही तो विशेष अन्तर है।

दैवयोगसे सात-आठ दिनोंके बाद ही श्रीराजेन्द्र बाबूके गोरखपुर आनेका कार्यक्रम निर्धारित हो गया। वे स्वयं श्रीभाईजीके प्रति इतना अधिक अपनापन रखते थे कि न आनेमें विलम्ब उनके लिये असह्य हो गया और समय निकालकर २९ अप्रैल १९५५ को गोरखपुर पधारकर उन्होंने गीताप्रेसके द्वार और लीला-चित्र-मन्दिरका उद्‌घाटन किया। मैंने देखा था कि ये दोनों एक-दूसरेसे मिलकर कितने अधिक प्रसन्न और संतुष्ट थे।

श्रीभाईजीका मैंने यह परम प्रसन्न और सन्तुष्ट रूप देखा और वह निःस्पृह तथा अनासक्त रूप भी देखा। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियोंमें ऐसी सम दृष्टि भगवदनन्य व्यक्तिकी ही हो सकती है। अनन्यता ही श्रीभाईजीके जीवनकी अमूल्य निधि थी। ऐसे लोगोंका लोक जीवन हर्ष और विषादसे परे होता है।

[६] पारस्परिक स्नेह

हिन्दी जगतके महारथी सम्पादकाचार्य पण्डित श्रीलक्ष्मणनारायणजी गर्देका श्रीभाईजी हृदयसे सम्मान करते थे। दोनोंका उसी समयसे ही एक दूसरेके प्रति पारस्परिक स्नेह और सद्भाव था, जब श्रीभाईजी अपनी तरुणावस्थामें कलकत्तेमें रहते थे। बादमें श्रीगर्देजी सपरिवार वाराणसीमें ही रहने लगे और इधर श्रीभाईजी गोरखपुरमें निवास करते हुए 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादन सँभालने लगे। 'कल्याण'के विशेषांकोंके सम्पादनमें तथा ऐसे भी साधारण अंकोंमें योगदानके लिये श्रीगर्देजीको श्रीभाईजी सम्मानपूर्वक गोरखपुर बुलाया करते थे। इस तरह वे बीच-बीचमें वाराणसीसे आकर थोड़े बहुत समयके लिये वे ठहर जाया करते थे।

एक समयकी बात है। उन दिनों मैं सम्पादन विभागमें आ गया था। सम्भवतः सन् १९५५-५७ के बीचकी घटना है। उस समय कुछ लोगोंके आग्रहपर श्रीभाईजीका शामको भी एक घंटे सत्संग चला करता था। मैं सायंकालीन सत्संगमें भी जाया करता था। एक बार श्रीगर्देजी ज्वरग्रस्त हो गये। सम्भवतः १०१ डिग्रीसे अधिक ज्वर रहा होगा। सत्संग पूर्ण होते ही मैं श्रीगर्देजीसे मिलने गया। वे मुझसे बड़ा स्नेह करते थे। वे चारपाईपर लेटे-लेटे धीरे-धीरे मुझसे बात कर रहे थे तभी मैंने देखा कि श्रीभाईजी उनके सिरहाने खड़े थे। उनके एक हाथमें दवा थी,

दूसरेमें दूधसे भरा गिलास।

उन्हें देखकर मैं खड़ा हो गया। ज्यों ही श्रीगर्देजीने श्रीभाईजीको सिरहाने खड़े हुए देखा, त्यों ही वे उठ बैठे और मुस्कराते हुए कहा— घरमें और लोग भी तो हैं। आप कभी-कभी बड़ी ज्यादती कर बैठते हैं।

श्रीभाईजीने विनोदमें कहा— महाराज! यह ज्यादती तो आप जैसे बड़े लोगोंके ही साथका परिणाम है।

श्रीभाईजीने उन्हें दवाई खिलाई और जब दूधका गिलास दिया तो श्रीगर्देजीने मेरी ओर इशारा किया— रामलालजी, आप ही बतायें, हम दोनोंमें भाईजी ही तो बड़े हैं।

मैं क्या कहता? श्रीभाईजीके शब्द थे— महाराज! मुझे स्नेह देते रहिये।

श्रीगर्देजीने कहा— स्नेह तो मुझे चाहिये।

[७] द्वन्द्वातीत

सम्भवतः सन् १९५६-५७ की घटना है। फैजाबादके नगरक्षेत्रमें विधान-सभाकी सदस्यताके लिये उपचुनाव था। उसमें एक प्रत्याशी थे समाजवादी नेता आचार्य श्रीनरेन्द्र देव। उनके विरोधमें त्याग-वैराग्यकी तपोमयी मूर्ति बाबा श्रीराघवदास खड़े थे। बाबाजीके स्नेहपात्र शिष्य श्रीसत्यव्रतजीकी बड़ी इच्छा थी कि श्रीभाईजी एक बार अयोध्या चल चलें और महात्मा श्रीरामपदार्थदास वेदान्ती तथा अन्य प्रभावशाली संत-महात्माओंसे इस उप चुनावमें बाबाजीकी सहायताके लिये संकेत कर दें। श्रीभाईजीने जाना अस्वीकार कर दिया। यद्यपि बाबा श्रीराघवदास कई बार इस अवधिमें उनसे बरहज आश्रमसे गोरखपुर मिलने भी आये थे, परंतु इस सम्बन्धमें श्रीभाईजीसे कुछ नहीं कहा। तथापि सत्यव्रतजीके बार-बार आग्रह करनेपर श्रीभाईजी अयोध्या गये। मेरी भी उनके साथ अयोध्या जाकर संत-महात्माओंका दर्शन करनेकी इच्छा थी, इसलिये मैं भी उनके साथ गया। सत्यव्रतजीके शिष्य श्रीमोहनलालजी देवरियावाले अयोध्यामें ही उन दिनों सपरिवार रहकर भगवानका भजन करते थे। उन्हींके निवास स्थान पहाड़ी कोठीमें श्रीभाईजी ठहरे थे। मैं उनके साथ वेदान्तीजी श्रीरामपदार्थदासके मन्दिरमें गया। मैंने उनसे श्रीभाईजीको बात करते हुए सुना। श्रीभाईजीने बड़ी विनम्रतासे कहा— महाराज! मेरी इच्छा न रहते हुए भी मुझे आना पड़ा। आप लोग जैसा उचित हो कीजियेगा। मेरे लिये तो बाबाजी और आचार्य नरेन्द्र देव, दोनों ही अपने हैं।

शायद पाँच बजेका समय था। श्रीभाईजीने मोटर छोड़ दी, उसमें अन्य लोग पहाड़ी कोठी गये। फिर उन्होंने मुझसे कहा— रामलालजी! चलिये कनक भवन चलें।

मैं और वे पैदल चल पड़े। मैं उनके पीछे-पीछे था। उस समय कनक भवनमें उनके प्रवेश करते ही अनेक संत-महात्मा, जो दर्शन करने आये थे, उनके पास आ गये। अनेक परिचित थे। उनमेंसे अनेक एक-दूसरेसे कह रहे थे— ये 'कल्याण'के सम्पादक श्रीपोद्दारजी हैं। कितने सादे वेषमें हैं!

श्रीभाईजी भगवान श्रीसीतारामका खड़े-खड़े दर्शन करनेमें अत्यधिक तन्मय हो गये। थोड़े समयके बाद वे बोल पड़े— कितने सुन्दर हैं श्रीसीताराम!

वे कुछ और कहना चाहते थे कि उनका गला भर आया। वे वहाँसे चल पड़े। हनुमान गढ़ीतक आते-आते उन्होंने कहा— चलिये नयाघाट चलें। भगवती सरयूकी इस समय आरती होती है। दर्शन कर आयें।

मुझे संकोच हो रहा था। मैंने निवेदन किया— नयाघाट तो बहुत दूर है। टाँगा (घोड़ा गाड़ी) कर लें।

श्रीभाईजीको बात पसन्द नहीं आयी। उन्होंने कहा— पैदल चलेंगे।

आधे घंटेके बाद हमलोग नयाघाट पहुँचे। अब अँधेरा होनेवाला था। वहाँ सरयूजीकी आरती हो रही थी। आरतीका दर्शन कर वे पहाड़ी कोठी आ गये। उस समय उनकी द्वन्द्वातीत अवस्था देखकर मुझे बार-बार श्रीमद्भागवतका श्लोक स्मरण हो रहा था—

प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः।
न व्यथन्ति न हृदष्यन्ति यत आत्मागुणाश्रयः॥

(भागवत/१/१८/५०)

[८] 'जे पीड़ पराई जाणे रे'

सम्भवतः १९५६-५७ ई. की बात है। एक बार श्रीभाईजीके ज्वर-ग्रस्त होनेपर उन्हें गोरखपुरके जाने-माने डाक्टर श्रीलाहिड़ी साहब देखने आये। बात-ही-बातमें उन्होंने कहा— पण्डित गौरीशंकरजी मिश्रकी हालत बहुत चिन्ताजनक है। मैं उन्हें देखने गया था। लम्बे अरसेसे बीमार हैं।

डाक्टर श्रीलाहिड़ी साहबके जाते ही श्रीभाईजीने अस्वस्थ होते हुए भी मुझसे कहा— मेरे साथ चलिये।

किसीने उनसे पूछनेका साहस नहीं किया कि आप इस हालतमें कहाँ जा रहे हैं। रास्तेमें उन्होंने बताया— गौरीशंकरजी मिश्रकी हालत ठीक नहीं है। उनको देखना आवश्यक है।

मोटर बेतियाहाताकी ओर चल पड़ी। पण्डित श्रीगौरीशंकरजी तपे-तपाये कांग्रेसी नेता थे। गाँधीजीके आह्वानपर वकालतपर लात मारकर सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलनमें सम्मिलित हो गये। वे उच्च कोटिके साहित्यकार भी थे। उनके 'जीवन-क्रान्ति', 'बलिदान-मन्दिर' आदि उपन्यास प्रकाशित हैं। बड़े स्वाभिमानी और पुरुषार्थी थे। उन दिनों बेतियाहाता प्रायः जंगल था। अँग्रेजी शासनमें वहाँ जिलाधीश एक बँगलेमें रहता था। धीरे-धीरे दो-चार बँगले बनते जा रहे थे। पण्डित श्रीगौरीशंकरजी मिश्र उसी जंगलके मध्यमें एक शान्त रमणीय उपवनमें एक छोटे-से मकानमें रहते थे। कभी-कभी श्रीभाईजीसे मिलने गीतावाटिका भी आया करते थे। भाईजी उनका बड़ा सम्मान करते थे। श्रीभाईजीकी मोटर सड़कपर ठहर गयी। वे थोड़ी दूर पैदल चलकर मिश्रजीके निवास-स्थानपर आ गये। गोधूलि वेला थी, धीरे-धीरे अंधकार बढ़ रहा था। मिश्रजीके कमरेमें एक दीप मन्द गतिसे जल रहा था। श्रीभाईजीको देखते ही वे चारपाईपर बैठ गये। श्रीभाईजीके संकेतपर वे मसनदके सहारे लेट गये। बड़ा करुण दृश्य था। मिश्रजीके नेत्र अश्रुकणसे बोझिल थे। दो-तीन मिनट तक बात करते रहे। श्रीभाईजीने उन्हें प्रणाम किया, कमरेसे बाहर निकलने वाले ही थे कि मिश्रजी कह पड़े— आप कितने सहृदय हैं, कितने महान हैं!

श्रीभाईजीने दोनों हाथ जोड़ लिये। कमरेसे बाहर निकलते ही मुझसे कहा– रामलालजी, यह लिफाफा तकियेके नीचे रख आइये।

उसे मैंने तकियेके नीचे रखा ही था कि मिश्रजी सिसकने लगे। उनके शब्द अस्पष्ट थे, *'वैष्णव जन तो तेने कहिये . . . '*। मैं कमरेसे बाहर आ गया। भाईजीने रास्तेमें कहा– इस लिफाफेकी गन्ध किसीको भी न लगे।

वैष्णव दूसरेकी पीड़ा समझते हैं, उनको दूर करना उनका स्वभाव है।

[९] संत-मिलन

बंगालके भगवन्नाम-प्रचारक संत महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराजने अयोध्या होते हुए गोरखपुर आकर गीताप्रेस देखने और श्रीभाईजीसे मिलनेकी सूचना भेजी। श्रीभाईजीसे उनका बड़ा घनिष्ठ आत्मसम्बन्ध था। दोनोंके हृदयमें एक दूसरेके प्रति अगाध स्नेह और सम्मानका भाव था। वे रेलगाड़ीसे गोरखपुर पधारने वाले थे। श्रीभाईजीने उनके ठहरनेकी व्यवस्था गोरखनाथ मन्दिरमें की थी। स्टेशन पहुँचनेपर उनका तथा उनके साथ पधारे हुए परिकरोंका स्वागत कर उन्हें गोरखनाथ मन्दिर ले जाने तथा उनसे सम्बन्धित व्यवस्थाकी देख-रेख करनेका भार मुझे सौंपा गया था। उन दिनों गोरखनाथ मन्दिरके परिसरमें मठका नव निर्माण चल रहा था। उसमें ऊपर-नीचेके अनेक कमरे बन चुके थे। उत्तरकी ओरका बरामदा बन रहा था। महन्त श्रीदिग्विजयनाथजी महाराज उस समय बाहर गये हुए थे। उनके उत्तराधिकारी श्रीअवैद्यनाथजी महाराजने महात्मा श्रीसीतारामदासजी महाराजका जीपसे बाहर निकलते ही बड़ी सहृदयतासे स्वागत किया। श्रीसीतारामदासजी महाराजके साथ बारह-तेरह सेवक थे। वे सब उच्च कोटिके विद्वान और साधक थे। मैंने देखा श्रीसीतारामदासजी और उनके सभी परिकर श्रीअवैद्यनाथजी महाराजकी प्रबन्ध-कुशलता और व्यवस्थासे बहुत प्रसन्न और प्रभावित थे। गोरखनाथ मन्दिरमें झाँझ और पखावज बजा-बजाकर श्रीसीतारामदासजीके परिकरोंने–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

महामन्त्रके सस्वर गायन द्वारा सम्पूर्ण वातावरणको भगवन्नामकी ध्वनिसे संप्लावित कर दिया।

भोजन आदिके उपरान्त दो जीपोंमें संतमण्डली नाम-संकीर्तन करती हुई गीताप्रेसके मुख्य द्वारपर आ पहुँची। सावनका महीना था। आकाशमें श्याम-श्वेत बादल छाये हुए थे। हलकी-हलकी बूँदें पड़ रही थी। इस सरस रिमझिममें गीताप्रेसके द्वारपर उतरते ही श्रीसीतारामदासजी महाराजने श्रीभाईजीको अपनी भुजाओंमें भर लिया और इसके बाद सड़कके पंकिल बरसाती जलमें श्रीसीतारामजी लोटने लगे। अपार जन समूह यह दृश्य देखकर आश्चर्य कर रहा था। श्रीभाईजीने उन्हें उठाकर अपने अंकसे लगा लिया। इस दिव्य मस्तीका और ऐसे आनन्दोन्मादका रसास्वादन कोटि-कोटि पुण्योंका फल है। श्रीसीतारामजीने श्रीभाईजीसे कहा– आपकी इस तपोभूमिके रजकणकी प्राप्ति मनुष्यको बड़े सौभाग्यसे होती है।

श्रीभाईजीने विनम्र निवेदन किया— आप जैसे संतोंकी चरण-धूलिसे ही ऐसे स्थान पवित्र हो जाते हैं।

[१०] लोकमान्य तिलकका पश्चात्ताप

एक दिन सत्संगमें किसी प्रसंगवशात् लोकमान्य तिलककी बात चल पड़ी। अपने बम्बई-निवास-कालमें श्रीभाईजी लोकमान्य तिलकसे कभी-कभी मिला करते थे। श्रीभाईजीने बताया कि तिलकजी बीमार थे। उनकी हालत चिन्ताजनक थी। अन्तिम समय निकट ही था। मैं उन्हें देखनेके लिये गया। मुझे देखते ही उनके नयनोंमें अश्रु-कण आ गये। तिलकजीके मनमें एक बात बहुत दिनोंसे चुभ रही थी। उनके जीवनमें एक महान भूल हो गयी थी।

श्रीभाईजी द्वारा पूछे जानेपर पता चला कि लोकमान्य तिलकने अपनी पुस्तक 'आर्यन' किंवा 'आर्कटिक होम आफ दि वेदाज' (वेदोंकी प्रणयन-भूमि आर्कटिक) में यह सिद्ध किया था कि आर्योंका आदि देश आर्कटिक प्रदेश है। ऋग्वेदमें कुछ नक्षत्रोंकी स्थितिके वर्णनसे प्रभावित होकर ही उन्होंने ऐसा मत व्यक्त किया था। अँग्रेजी इतिहासकारोंने तो भारतको अनार्यों और द्रविड़ोंका देश बतलाया और इस आशयकी पुस्तकें लिखी थीं कि आर्य ईसाके जन्मसे २००० वर्ष अथवा १५०० वर्ष पूर्व भारतमें आये थे। लोकमान्य तिलकने इस मतका खण्डन तो किया था और स्वीकार किया था कि आर्यसभ्यताका विकास ईसाके जन्मसे ६००० वर्ष पहलेसे ही था। यद्यपि उन्होंने ऐसा लिखकर अँग्रेजों तथा पाश्चात्य विद्वानोंको मुहतोड़ जवाब दिया था, तथापि आर्योंको भारतके बाह्यका निवासी बताना उनकी दृष्टिमें भूलका विषय था। उनके हृदयमें यह बात काँटेकी तरह गड़ रही थी।

उन्होंने मृत्यु-शैय्यापर पड़े-पड़े अपने मनकी व्यथा श्रीभाईजीसे कही और इसी स्वीकृतिके द्वारा अन्त समयमें उन्होंने अपनी महान भूलका प्रायश्चित भी कर लिया। इस पश्चात्तापसे भारतके स्वर्णिम इतिहासका एक आरम्भिक पृष्ठ निष्कलंक हो उठा।

[११] मूलतः स्वरूपतः हिन्दू

एक बार शीतकालमें मैं गोरखपुर रेलवे स्टेशनपर श्रीभाईजीके आनेकी प्रतीक्षा कर रहा था। अनेक लोग उन्हें प्रणाम करने आये थे। वे रातवाली गाड़ीसे वाराणसी जाने वाले थे। गाड़ीके छूटनेका समय हो रहा था, रातके आठ बजनेको थे। प्रथम श्रेणीके प्रवेश द्वारसे श्रीराहुलजी प्लेटफार्मपर आ गये। मुझे देखते ही महापण्डित श्रीराहुल सांस्कृत्यायनने प्रश्न किया— रामलालजी ! आप मेरी वस्तु तो लाये हीं होंगे।

मैंने तुरन्त कहा— जी ! आप आज्ञा दें और मैं न लाऊँ ? ऐसी क्या बात है ? गीतावाटिकामें आपका फोन आते ही मैंने तत्काल गीताप्रेससे पुस्तकें मँगा ली थी।

मैंने प्रणति पूर्वक उनके करकमलोमें गीताप्रेससे प्रकाशित सात-आठ भक्त गाथाओंका बण्डल रख दिया। वे भक्तोंके चरितका अध्ययन करना चाहते थे। वे प्रसन्न हो उठे। महापण्डित उसी गाड़ीसे इलाहाबाद जाने वाले थे। वे किसी साहित्यिक कार्यक्रममें सम्मिलित होनेके लिये तीन दिनोंके लिये गोरखपुर आये थे। उनका मुझपर बड़ा स्नेह रहा करता था। उनसे बात हो ही रही थी कि श्रीभाईजी आ गये। श्रीभाईजीका चरणस्पर्श कर, मैंने दोनोंका मनोरंजन करना चाहा और मैं बोल पड़ा— यह उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुवका मिलन है। दुनियाके लोगोंकी

दृष्टिमें एक महान आस्तिक हैं तो दूसरे शायद नास्तिक कहकर सम्मानित किये जाते हैं।

कहनेके लिये तो मैं कह गया, पर तत्काल ही मेरे मनमें आशंकाकी बिजली कौंध गयी कि दोनों क्या सोचेंगे। दोनों-के-दोनों ठहाका मारकर हँस पड़े।

श्रीराहुलजी बोल पड़े— नास्तिकता न रहे तो यह आस्तिकता ठहरेगी किसपर ?

इतना कहकर श्रीराहुलजी श्रीभाईजीकी ओर देखने लगे। श्रीभाईजीने मुस्कुराकर कहा— नास्तिक भी तो परमात्माका ही अंश है। परमात्मा तो सबमें हैं, सब जगह हैं। बौद्ध धर्म तो हिन्दू धर्मका ही एक रूप है। हमारे शंकराचार्य प्रच्छन्न बौद्धके रूपमें कहीं-कहीं वर्णित हैं।

श्रीराहुलजीने गम्भीर स्वरमें कहा— तो मैं प्रच्छन्न हिन्दू तो हूँ ही।

श्रीभाईजीने बात सँभाली— नहीं, नहीं, आप मूलतः और स्वरूपतः हिन्दू हैं।

इतना कहकर श्रीभाईजी मुस्कराने लगे और श्रीराहुलजीने भी मुस्कुराकर सहमति ही प्रकट की। मैंने प्रत्यक्ष देखा कि श्रीराहुलजी प्रणत थे।

[१२] उदारता

एक समयकी बात है। उन दिनों लखनऊसे गोरखपुरतक रेलवेकी बड़ी लाइन नहीं थी। लखनऊसे चलने वाली एक्सप्रेस गाड़ी धड़धड़ाती हुई अपने नियत समयसे ठीक नौ बजे रातको गोरखपुर स्टेशनपर आ पहुँची। मैं बस्तीसे गोरखपुर आ रहा था, मैं गाड़ीसे उतर पड़ा। मैंने देखा कि पहले दरजेके डिब्बेसे श्रीभाईजी उतर रहे हैं। उनके साथ उतर रहे थे स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज (पूज्य श्रीराधा बाबा), निजी परिकर श्रीराधेश्यामजी धानुका तथा श्रीरामसनेहीजी। इधर गीतावाटिका और गीताप्रेसके किसी भी सज्जनको स्टेशन पर न देखकर मैं बड़ा विस्मित था कि बात क्या है। मैंने श्रीभाईजी और स्वामीजी महाराजके चरण छुए। श्रीभाईजीने बताया— दूसरे दिन सबेरे पहुँचनेका कार्यक्रम था, पर आज ही आनेका विचार हो गया। टेलीफोनकी लाइन ठीन न होनेसे सूचना नहीं दी जा सकी।

श्रीभाईजीके साथ ही मैं स्टेशनसे बाहर आ गया। कुलीने सामान ताँगेपर रख दिया। श्रीभाईजी और स्वामीजी ताँगेपर बैठ गये। रामसनेहीजीने कुलीके हाथपर दस रुपयेका नोट रखा और वे ताँगेपर बैठने ही जा रहे थे कि कुली झनझनाते हुए बोल पड़ा— मेरे पास दसके फुटकर कहाँ ? कहाँसे लौटाऊँ ?

श्रीभाईजी ताँगेसे उतर पड़े और बड़े स्नेहसे उसकी पीठको हाथसे सहलाते हुए कहा— भैया ! पैसा किसीने माँगा तो नहीं। यह तुम्हारा है।

कुलीका मुख विस्मय और प्रसन्नतासे खिल उठा। श्रीभाईजीके मीठे वचनसे उसके नेत्रोंमें अश्रुकण आ गये। उसने श्रीभाईजीका चरण स्पर्श किया। ताँगा अपनी रफ्तारसे चल पड़ा। कितनी सहज स्नेह भरी उदारता थी यह ! मैं बार-बार सोचता रह गया।

[१३] श्रीजहूर बख्श

सम्भवतः सन् १९६३-६४ की बात है। एक दिन वाराणसीसे निकलने वाले दैनिक 'आज'में मध्यप्रदेशके हिन्दीके कथाकार और रहीम-रसखानकी परम्पराके भागवत कवि श्रीजहूर बख्शकी लम्बी बीमारी और दयनीय आर्थिक स्थितिका अत्यन्त दुखद समाचार पढ़कर

सारा हिन्दी जगत क्षुब्ध और चिन्तित हो उठा। इसके पहले वे दो-तीन बार अखिल भारतीय कवि-सम्मेलनमें गोरखपुर आ चुके थे। भगवान कृष्णकी लीला-सम्बन्धी उनकी रचनाओंको सुननेका हमें सौभाग्य मिला था। वे मधुर कोमल पदावलीसे ललित व्रजभाषामें बड़ी भावपूर्ण भक्तिमयी कविताएँ भी लिखते थे। एक बार वे गोरखपुर पधारनेपर भाईजीसे मिलनेके लिये गीतावाटिका भी आये थे।

उनकी चिन्ताजनक अस्वस्थताके समाचारसे 'कल्याण' के सम्पादन विभागमें हमारे साथ कार्य करने वाले पण्डित श्रीशिवनाथजी दूबे बहुत चिन्तित थे। हम दोनों श्रीजहूर बख्शकी हिन्दी साहित्य साधनाके हृदयसे प्रशंसक थे। उनकी इच्छा थी कि हम दोनों साथ-साथ श्रीभाईजीके पास चलें और श्रीजहूर बख्शकी आर्थिक सहायता करनेके लिये निवेदन करें।

हमलोग श्रीभाईजीसे 'आज'में प्रकाशित समाचारके आधारपर संकोचके साथ बात कर ही रहे थे कि श्रीभाईजीने बताया– यह समाचार तो प्रयागसे निकलने वाली 'नार्दन इण्डिया पत्रिका'में कल ही आ गया था और मैंने कल ही मनीआर्डरसे रुपये भेज दिये।

मैं कुछ कहना ही चाहता था कि श्रीभाईजीने संकेत किया– रामलालजी! यथेष्ट पैसे भेजे हैं।

[१४] जीवकी सेवा

जीवमात्रपर दया तो परमात्माका स्वभाव है। वैष्णव साधक तो जीवकी सेवाका अधिकारी है। *'जीवे सेवा नामे रुचि'* का सत्संगमें श्रीभाईजी प्रायः उल्लेख किया करते थे। निःसन्देह उनकी सेवावृत्ति असाधारण थी। सम्भवतः सन् १९६४ ई. की बात है। उन्होंने मुझसे कहा– रामलालजी! आप सदर अस्पताल चले जाइये। आजकी डाकमें लालसाहब, गोला गोपालपुरकी एक चिट्ठी मिली है। उनके परिवारका एक नवयुवक बहुत बीमार है। उसकी हालत गिरती जा रही है। इतने रुपये लेते जाइये और उस बीमारकी दवा, दूध, फल आदिके लिये लालसाहबको दे देजियेगा।

उन्होंने रुपये सादे लिफाफेमें रखकर मुझे दे दिया। मैं यथाशीघ्र अस्पतालमें मरीजकी शय्याके पास पहुँच गया। सिरहाने कुरसीपर एक अधेड़ सज्जन बैठे किसीकी राह देख रहे थे। मैंने उन्हींसे कहा– मुझे श्रीभाईजीने भेजा है।

इतना सुनते ही वे मुझसे लिपटकर बालककी तरह फूट-फूट कर रोने लगे। मुझे समझनेमें देर न लगी कि वे ही सज्जन गोला गोपालपुरके लालसाहब हैं। मरीज तकियेके सहारे बिस्तरेपर बैठ गया। लालसाहबने कहा– बेटे, अब मृत्यु कुछ नहीं बिगाड़ सकती। तुम बच गये।

मरीजके शरीरमें नया प्राण आ गया। मैंने लालसाहबके हाथमें वह सादा लिफाफा रख दिया। मैंने उनसे कहा– श्रीभाईजीने आपको प्रणाम कहा है और सेवा सूचित करते रहनेका आपसे आग्रह किया है।

[१५] स्नेहोपहार

लगभग १९६४-६५ ई. की बात है। गोरखपुरके सम्मान्य नागरिकों और साहित्यकारोंकी एक समिति द्वारा गोरखपुर विश्वविद्यालयके तत्कालीन ट्रेजरार पण्डित

श्रीसूरतनारायणमणिजी त्रिपाठीके अभिनन्दनका आयोजन किया गया था। उनके सम्मानमें राजस्थानके तत्कालीन राज्यपाल तथा उत्तर प्रदेशके भूतपूर्व मुख्य मन्त्री डा. श्रीसम्पूर्णानन्दजी द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थके विमोचन और समर्पणका कार्यक्रम था। उत्तर प्रदेशके अनेक प्रशासक, साहित्यकार तथा अनेक विशिष्ट जन इस अवसरपर पधारे हुए थे। श्रीभाईजीने मुख्य अतिथिके सम्मानमें सभी लोगोंको गीतावाटिकामें मध्याह्न भोजनके लिये आमंत्रित किया था।

भोजनके बाद ही सामान्य श्रीसम्पूर्णानन्दजीने कहा– भाईजी! आपको मेरी वस्तुकी तो याद होगी ही।

श्रीभाईजीके शब्द थे– उसे तो मैंने सबेरे ही पैकेटमें रखवा दिया है। मैं जानता था, आप तकाजा करेंगे ही।

बात यह थी कि श्रीसम्पूर्णानन्दजी जब भी गोरखपुर पधारा करते थे, तब स्नेह एवं सम्मानवशात् श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये गीतावाटिका आया ही करते थे। भोजनके बाद वे मुखशुद्धिके लिये स्वादिष्ट पीपल लिया करते थे। यह सुस्वाद पदार्थ विशेष रूपसे तैयार किया जाता था। चलते समय श्रीभाईजीने कहा– लीजिये, यह उपहार लेते जाइये।

इतना कहकर श्रीभाईजीने उनके हाथमें पीपलका पैकट रख दिया। श्रीसम्पूर्णानन्दजी मुस्कुराते हुए पैकेटको जेबमें रखा और कहा– इसी स्नेहोपहारके लिये लम्बी दूरी तयकर मैं जयपुरसे गोरखपुर चला आया।

[१६] सरकारी मोटर

बात उन दिनोंकी है, जब गोरखपुरके उद्योग विभागके उपनिर्देशक थे श्रीजगदीशप्रसाद अस्थाना। उनका उद्योग-कार्यालय गीतावाटिकाके ही सन्निकट था, इसलिये वे कभी-कभी भाईजीके प्रातःकालके सत्संगमें आने लगे और धीरे-धीरे सपरिवार उन्होंने श्रीभाईजीका स्नेहाशिष प्राप्त कर लिया। अस्थाना महोदय बड़े ही मिलनसार और सहृदय व्यक्ति थे। एक दिन वे भाईजीके प्रातःकालके सत्संगमें बैठे थे। श्रीभाईजीका प्रवचन पूर्ण होते ही उन्होंने बड़ी विनम्रतासे निवेदन किया– कल आप मीटिंगमें आये नहीं, हम सभी लोग बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे थे।

श्रीभाईजीने कहा– अपनी मोटर कहीं चली गयी थी। आप जानते ही हैं कि यथा समय पहुँचनेका मुझे कितना ध्यान रहता है। आनेकी बड़ी इच्छा थी, पर विवशता थी।

अस्थानाजीने कहा– मैंने आपको लानेके लिये मोटर भेज दी थी।

श्रीभाईजीने कहा– आपने मोटर भेज दी थी। वह ठीक समयपर आ गयी थी और मैं मीटिंगमें आसानीसे आ भी सकता था, पर मनमें बड़ा संकोच था कि यह मोटर सरकारी है। उपयोगमें किस तरह लाता।

श्रीभाईजीने तुरंत थोड़ी देर बाद मुस्करा कर कहा– मैं अवश्य आता, यदि मोटर अस्थाना

साहबकी अपनी होती।

[१७] गीतातीर्थ

गीताप्रेसमें प्रत्येक वर्ष मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशीको गीता जयन्तीका उत्सव मनाया जाता है। एक बारकी बात है कि गीता जयन्तीके अवसरपर आयोजित सभामें मैं प्रवचन-कथा-पदगान आदि कार्यक्रमका संचालन कर रहा था। जब श्रीभाईजी प्रवचन करनेके लिये मंचपर लाउडस्पीकरके सामने आने वाले थे, तब कार्यक्रम-संचालकके नाते श्रीभाईजीके प्रवचनसे पूर्व मैंने भूमिकास्वरूप उपस्थित श्रोताओंसे कहा– जिस तरह भगवती गंगाके पावन तटपर गंगोत्री, हरिद्वार, प्रयाग, विन्ध्याचल, काशी आदि अनेक पवित्र तीर्थ हैं, जिनमें निवास करके लोग अपना इहलोक-परलोक सुधार लेते हैं, उसी तरह श्रीमद्भगवद्गीताके भाष्यकार आचार्य शंकर, आचार्य रामानुज, श्रीश्रीधर स्वामी, श्रीमधुसूदन सरस्वती आदि चेतन तीर्थ हैं, जिनके गीता-भाष्यमें अवगाहन करके साधक लोग साध्य-साधनाके स्वरूपको जान लेते हैं और साधनाके सोपानोंको पार करके परम सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। श्रीभाईजी भी उन्हीं पुण्यात्मा भाष्यकारोंके समान चेतन गीतातीर्थ हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन अपने आपमें गीताकी भाषा है। वे गीताके मर्म और तत्त्व समझने वाले भागवत मानव हैं, जिनके गीतापरक उपदेशामृतसे लाभ उठाकर त्रय-ताप पीड़ित मानव अपना जीवन कृतार्थ बना ले सकता है। अब उन्हीं श्रीभाईजीके उपदेशामृतके पान करनेका अवसर हमलोगोंको मिलेगा।

कहनेके लिये तो मैं भूमिकास्वरूप ये शब्द कह गया, पर मेरे मनमें संकोच भी हो रहा था कि श्रीभाईजी न जाने क्या सोचते होंगे।

श्रीभाईजीने अपने प्रवचनके आरम्भमें ही कहा– श्रीरामलालजी मेरे छोटे भाई हैं। छोटे भाईका तो यह सहज स्वभाव ही होता है कि अपने बड़े भाईका सदा सम्मान करे, पर जहाँतक मेरी अपनी बात है, मुझमें गीतातीर्थ होनेकी योग्यता भला कहाँ है? निःसन्देह आचार्य शंकर, आचार्य रामानुज, श्रीश्रीधर स्वामी, श्रीमधुसूदन सरस्वती, आदि-आदि तो गीतातीर्थ हैं ही। वे महान आचार्य गीता-तत्त्वके मर्मज्ञ हैं। मेरे लिये तो सबसे बड़े सन्तोषका विषय यही होगा, यदि मैं उन-उन मर्मज्ञों द्वारा निर्दिष्ट गीता-मर्मको थोड़ा-बहुत समझ करके और यत्किंचित् आचरण करके अपने मानव जीवनको सफल बना लूँ।

वास्तविक तथ्य होते हुए भी भाईजीने कभी भी अपनी सराहना स्वीकार नहीं की।

[१८] गोमाता

हिन्दू संस्कृति और हिन्दूजीवन-धारामें गोमाता तो गंगाजीकी तरह परम पुण्यमयी एवं पवित्र श्रद्धाकी अक्षय निधि है। उसके दर्शन और स्पर्श मात्रसे ही संसारके लोगोंके पाप-तापका शमन हो जाता हैं और वह सद्गति देती है।

सन् १९६८ के नवम्बर महीनेकी घटना है। श्रीभाईजीने गीतावाटिकामें कई गायें पाल रखी थी। उनमेंसे एक गाय बीमार हो गयी और उसका प्राणान्त हो गया। श्रीभाईजीने विधि पूर्वक उसका अन्तिम संस्कार सम्पन्न कराया। जिस तरह पुत्र अपनी माँकी अन्त्येष्टिमें अपने हृदयकी सम्पूर्ण श्रद्धाको उड़ेल देता है, उसी तरह गोमाताके अन्तिम संस्कारमें श्रीभाईजीकी श्रद्धा-भावना दर्शनीय थी।

गायके शवको नदीमें प्रवाहित करने हेतु ले जानेके पहले श्रीभाईजी स्वयं उसकी मृत्युस्थलीपर आ गये। उस समय उनकी धर्मपत्नी और पुत्री सावित्रीबाई फोगला भी उपस्थित होकर गायके प्रति अन्य सभी लोगोंके साथ हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर रही थीं। वातावरणका कण-कण भगवन्नामकी मधुर ध्वनिसे संप्लावित था। कीर्तनके मध्यमें ही भाईजीने गंगा जलसे मृत गायके शरीरको स्नान कराया, मुखमें तुलसीदल रखा, चंदनसे तिलक किया और तुलसीकी माला गलेमें डाल दी। इसके बाद गायको नये लाल रंगकी चादरसे ओढ़ा दिया। उसकी पाँच प्रदक्षिणाएँ की। एक घंटेतक झाँझ, करताल, ढोल और पखावजके गगन भेदी शब्दके साथ लोग एकाग्र चित्तसे *'श्रीमन्नारायण नारायण, नारायण'* मन्त्रका उच्चारण करते रहे। बड़ा पवित्र वातावरण था, अद्‌भुत अपूर्व दृश्य था।

इसके बाद ठेलेपर गायका शव लिटा दिया गया। भाईजीने अश्रुपूरित नेत्रोंसे गीतावाटिकाके मुख्य बाहरी द्वारतक आकर गायको प्रणाम किया। ठेला लेकर लोग कीर्तन करते हुए भगवती राप्तीके तटपर आये और प्रवाहमें गायका शव प्रवाहित किया।

[१९] चरणामृत

सम्भवतः सन् १९७० के नवम्बर महीनेकी बात है। श्रीभाईजीकी अस्वस्थता बढ़ती जा रही थी, शरीर कमजोर होता जा रहा था। यह निश्चय नहीं हो पा रहा था कि उन्हें कैंसर है या नहीं। डाक्टरोंकी रायसे उनका एक्स-रे करानेका निश्चय किया गया, जिससे शरीरमें कैंसरके विकारका पता चल सके। एक दिन दोपहरके ग्यारह बजे उन्हें एक्स-रे करानेके लिये रेलवे अस्पताल ले जाया गया। उनके वापस आनेकी लोग बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे थे। गीतावाटिकाके पोरटिकोमें हम अनेक लोग खड़े होकर मोटरका इन्तजार कर रहे थे। प्रायः सभीके मनमें आशंका थी कि न जाने एक्स-रेमें क्या निकले। वातावरण चिन्तासे बोझिल था। मधुर-मधुर ध्वनिसे बंगीय कीर्तन मण्डली पंडालमें *'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'* महामन्त्रका वाद्य निनादित स्वर लहरीमें अखण्ड संकीर्तन कर रही थी।

इसी समय एक महात्मा आये। वे लम्बे कदके थे, शरीर गौर वर्णका था, नेत्रोंमें दिव्य तेज था, ललाटपर रामानन्दी तिलक था, मस्तक भूरी-भूरी भस्मांकित जटासे विभूषित था। उनके हाथमें एक छोटा-सा जलपात्र था, उसमें जल था। वे लोगोंसे बात करना चाहते थे, पर हम लोग चिन्तामग्न थे। वे टहल रहे थे। मोटर आ गयी। भाईजीने मोटरसे उतरते ही हाथ जोड़कर उन संतको प्रणाम किया। महात्माने जलपात्र श्रीभाईजीके हाथके सामने करते हुए कहा— यह भगवानका चरणामृत है। आप ग्रहण करें।

श्रीभाईजीने बिना हाथ धोये ही अञ्जलिमें चरणामृत लिया और पी गये। महात्मा प्रसन्न थे। वे जाने लगे तो श्रीभाईजीने अपने निकटवर्ती कृष्णचन्द्रजी अग्रवालको कुछ संकेत किया। कृष्णचन्द्रजी उन्हें दक्षिणा देनेकी व्यवस्थामें संलग्न होने वाले थे कि महात्माने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया और वे स्वंय कह पड़े— मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं तो चरणामृत पिलाने आया था।

वे चले गये। वे थे कितने सीधे-सादे निःस्पृह साधु और ये थे कितने सदा-सदा

सम्मान-दानी !

श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव

[१] गुजरातीमें प्रवचन

बात तीर्थ यात्रा ट्रेन की है, जो सन् १९५६ में वाराणसीसे चली थी। जहाँ-जहाँ ट्रेन पहुँचती, वहाँ-वहाँ श्रीभाईजीका बड़ा स्वागत होता। तत्तत्स्थानीय भक्तोंके मध्य श्रीभाईजीको प्रवचन भी देना पड़ता था। ऐसे ही प्रवचनकी व्यवस्था श्रीद्वारकाधाममें भी थी। समुद्र-स्थित बेंट-द्वारकासे लौटकर श्रीभाईजी द्वारका सूर्यास्तके समय पहुँच पाये थे। एक मैदानमें तम्बू लगा हुआ था, वहीं भक्तगण श्रीभाईजीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीभाईजीके पहुँचते ही पहले श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीने एक भक्तिपरक पदका गायन किया और फिर श्रीभाईजीने हिन्दीमें प्रवचन देना आरम्भ किया।

तीर्थ-यात्री तो मंचके पास बैठे थे, पर हम एक-दो व्यक्ति स्थानीय श्रोताओंके मध्य बैठे थे। गुजराती भाषा-भाषी होनेके कारण इन श्रोताओंको हिन्दी प्रवचन समझनेमें कठिनाई पड़ रही थी। वे लोग बैठे-बैठे परस्परमें कानाफूसी करने लगे कि भली प्रकार समझमें नहीं आ रहा है। हमलोगोंने उन कानाफूसीको सुना और साथ ही यह भी याद आया कि श्रीभाईजी तो कुछ-कुछ गुजराती जानते हैं और यदि वे गुजराती भाषामें प्रवचन दें तो सबकी समझमें आये। मेरे मित्रने मंचपर जाकर यह बात श्रीभाईजीसे कही। बात कहते ही श्रीभाईजीने गुजरातीमें तुरंत प्रवचन देना आरम्भ कर दिया, ऐसा आरम्भ किया कि वे जो आधा वाक्य हिन्दीमें बोल गये थे, उस वाक्यको पूर्ण किया गुजरातीमें। गुजरातीमें प्रवचन आरम्भ होते ही सभी श्रोताओंकी आँखोंकी प्रसन्नताभरी कान्ति उनके उल्लासका प्रमाण दे रही थी। कुछ श्रोताओंने यहाँ तक कहा कि मजा आ गया।

श्रीभाईजीके मुखसे गुजरातीमें प्रवचन सुननेका यह पहला अवसर था। हिन्दी और बंगलापर तो उनका असाधारण अधिकार था ही, गुजराती भी इतनी सुन्दर और धारावाहिक बोल सकते हैं, यह देखकर मुझे सुख मिश्रित विस्मय हुआ।

[२] चिताके शवको मन्त्र-दान

प्रसंग तीर्थ-यात्रा-ट्रेनका है। जब ट्रेन बेजबाड़ा पहुँची, तब एक प्रौढ़ तीर्थयात्रीका देहान्त हो गया। उनकी धर्मपत्नी अत्यधिक शोकाकुल हो उठी। साथके तीर्थयात्री शव-यात्रा तथा अग्नि-संस्कारके लिये तैयारी करनेमें लग गये, परंतु उन शोकाकुल माताजीका रोदन बढ़ता ही जा रहा था। लोगोंने धीरज बँधानेकी चेष्टा की, परंतु जितना ही उनको सहलानेका प्रयत्न होता था, उतना ही अधिक उनका शोक उभर-उभर जाता था।

शोकाकुल माताजीकी स्थितिकी जानकारी श्रीभाईजीको दी गयी। श्रीभाईजी उन माताजीके पास आये और जगतकी नस्वरता बतलाते हुए उन माताजीसे कहा— यह तो उनका बड़ा भारी सौभाग्य है कि उन्होंने पुण्य सलिला कृष्णा नदीके तटपर तीर्थयात्रा करते हुए एक तीर्थस्थानमें अपनी देहका परित्याग किया। किसी तीर्थयात्रीकी ऐसी मृत्युके बारेमें शास्त्रोंमें बड़ी महिमा

गायी गयी है। उनकी श्रेष्ठ मृत्युको देखते हुए आपको किसी प्रकारका शोक नहीं करना चाहिये।

उन माताजीने कहा– आपका कहना सही है, पर मुझे दुख तो इस बातका सबसे अधिक है कि कई बेटे होते हुए भी आज कोई भी बेटा पासमें नहीं है, जो अर्थीको कन्धा दे सके और चितामें आग लगा सके। जब-जब यह बात सामने आती है, मनमें एक हूक-सी उठती है।

श्रीभाईजीने तुरंत कहा– यह आपने कैसे मान लिया कि यहाँ उनका कोई बेटा नहीं है ? मैं उनका बेटा हूँ न ! शवयात्राकी तैयारी हो रही है, फिर अर्थीको कन्धा मैं लगाऊँगा और चितामें दाग भी मैं दूँगा।

श्रीभाईजी द्वारा ऐसा कहे जानेपर उन माताजीके भावोंमें तुरंत परिवर्तन दिखलायी देने लगा। इस बातसे उन्हें बड़ा संतोष हुआ कि पूज्य श्रीभाईजी जैसे महान व्यक्ति द्वारा उनका अन्तिम संस्कार हो रहा है। ट्रेनके तीर्थयात्री भी उस दिवंगत आत्माके भाग्यकी सराहना करने लगे, जिसके शवका अग्निसंस्कार श्रीभाईजी द्वारा हो। सचमुच, श्रीभाईजीने अर्थीको कन्धा दिया और चितामें आग भी लगायी। एक बड़ी विचित्र बात और भी हुई। चितापर लेटे हुए शवके कानमें श्रीभाईजीने मन्त्र भी दिया, जिसे देखकर सभी लोग आश्चर्य करने लगे। अब उस आत्माकी सुगतिके बारेमें संदेहके लिये स्थान ही कहाँ रहा ?

[३] स्वजनोंका हित-चिन्तन

जगतके प्रति बढ़ती हुई उपरामता, भाव-समाधिमें अधिकाधिक निमग्नता, घोर एकान्तप्रियताकी ओर सतत उन्मुखता और शरीरमें दिन-प्रति-दिन घर करती हुई रुग्णता आदिको देखकर श्रीभाईजी सोचने लगे कि भविष्यमें न जाने कितने दिन मेरा जीवन रह पायेगा और न जाने उसका भावी स्वरूप क्या होगा। ऐसी दशामें किसी अनचाही परिस्थितिके अचानक उपस्थित हो जानेसे, हो सकता है, मेरे पास रहने वालोंको और उनके परिवारको किसी परेशानी या उलझनका सामना करना पड़ जाये। सुन्दर बात तो यह है कि यह समस्या उत्पन्न हो, इसके पहले ही सबको सावधान कर देना चाहिये। इस भावसे भावित होकर श्रीभाईजीने मेरे पास एक पत्र लिखा। वह इस प्रकार है–

प्रिय श्रीमाधवशरणजी,

सप्रेम हरिस्मरण।

एक आवश्यक निवेदन कर रहा हूँ। आजकल मेरे मस्तिष्ककी तथा शरीरकी जो स्थिति है, उसे देखते ऐसा अनुमान होता है कि यह शरीर बहुत दिनों नहीं चलेगा और यदि शरीर रहेगा तो मुझे सब काम-काजसे पृथक् होकर बहुत ही शीघ्र अलग एकान्त स्थानमें रहना पड़ेगा। यद्यपि मैं न तो शीघ्र मरनेकी इच्छा रखता हूँ और न मृत्युका भय ही है, भगवानके मंगलमय विधानके अनुसार जो होना है, वही होगा, तथापि उपर्युक्त दोनों ही स्थितियोंमें मेरे पीछेसे, इस समय अपने यहाँका जो ढंग है, वह अवश्य बदलेगा और सम्भव है कि वह ढंग आपको रुचिकर या अनुकूल न हो। सहसा दूसरी व्यवस्था कठिन होगी, इसलिये पहलेसे ही दूसरे अच्छे कामकी खोज कर लेना वाञ्छनीय है। अतएव आप इस विषयमें विचार करके अभी प्रयत्न प्रारम्भ कर दें। यह मेरा विनम्र निवेदन है। इसमें मुझसे जो कुछ सहयोग आवश्यक होगा, मैं यथाशक्ति

देनेको तैयार हूँ। मैं अपनी अबतकको सारी भूलोंके लिये क्षमा-प्रार्थना और आपके अकृत्रिम स्नेहके लिये हृदयसे कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। यह पत्र कई दिनों पहले लिखकर रखा था। संकोचवश दिया नहीं, अब दे रहा हूँ।

विनीत-
हनुमानप्रसाद

ऐसा ही पत्र श्रीभाईजीने पूज्य पं. श्रीजानकीनाथजी शर्मा, श्रीशिवनाथजी दूबे तथा श्रीदूलीचन्दजी दुजारीको लिखकर दिया। अपने समीपस्थ लोगोंका इतना अधिक हित-चिन्तन उनके सतत स्नेही स्वभावके ही अनुरूप था। ऐसा हितचिन्तन अन्यत्र सहज मिलना कठिन है।

श्रीदुर्गाप्रसादजी गुप्त

[१] इलाहाबाद कोर्टमें सफलता

गीताप्रेसमें सहायक-प्रबन्धकके रूपमें मेरी नियुक्ति १८ जनवरी सन् १९४५ को हुई थी। यद्यपि श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठिया मैनेजरके रूपमें कार्य कर रहे थे, पर प्रेसके कामसे उनको प्रायः बाहर जाना पड़ता था और जितने दिन वे बाहर रहते थे, उनका कार्यालय बन्द रहता था। यह बात पूज्य श्रीसेठजीको पसन्द नहीं थी। प्रबन्धकका कार्यालय सदा खुला रहना चाहिये, अतः उन्होंने मुझको नियुक्ति-पत्र दे दिया था, पर वह नियुक्तिपत्र मेरे पाकेटमें नौ मासतक पड़ा रहा। मैं निश्चय नहीं कर पा रहा था कि यह दायित्व स्वीकार करूँ अथवा नहीं। इसके लिये मुझे श्रीघनश्यामदासजी जालानने भी कहा, पर जब पूज्य श्रीभाईजीने कहा तो १९४५ की १८ जनवरी, वसंत पंचमीके दिन मैंने गीताप्रेसमें कार्य आरम्भ कर दिया। पूज्य श्रीभाईजीके प्रति मेरी श्रद्धा-भावना इतनी अधिक थी कि उनकी उपेक्षा कर सकना मेरे लिये सम्भव नहीं था।

ज्यों ही मैंने सहायक-प्रबन्धकका कार्य-भार सँभाला, श्रीभाईजीने मुझसे कहा— *भैया! अगर जीवनमें सफल होना चाहते हो तो उसका एक बड़ा सुन्दर उपाय है। सबसे सदा नम्रताका व्यवहार करना। मधुर व्यवहार और मधुर बोलसे विकट परिस्थितियाँ दूर हो जाती हैं और कठिन कार्य सरल हो जाते हैं।*

मैंने गीताप्रेसमें लगभग ४१ वर्षतक काम किया और श्रीभाईजीकी इस सीखने मुझे पद-पदपर सफलता प्रदान की। एक बारकी बात है। इलाहाबाद हाईकोर्टमें गीताप्रेसके चार मुकदमें थे। इस मुकदमेंके कामसे मुझे इलाहाबाद जाना था। जानेके पहले श्रीभाईजीको प्रणाम करनेके लिये मैं गीतावाटिका गया। जब श्रीभाईजीको मैंने प्रणाम किया तो उन्होंने कहा— 'नारायण नारायण' बोलकर जाना और सबसे मधुर व्यवहार रखना।

इलाहाबादमें मजदूरोंकी ओरसे बड़ी तैयारी की गयी थी। बहस करनेके लिये कानपुरसे कोई बड़ा बैरिस्टर आया था। बैरिस्टरके अलावा कुछ वकील भी थे। गीताप्रेसके चारों केस जिन न्यायाधीश महोदयके ट्रिब्युनलमें थे, मैं उनके चैम्बरमें चला गया। न्यायाधीशके चैम्बरमें जाना

साधारण बात नहीं है, फिर भी मैं साहस करके चला गया। मैंने उनको प्रणाम किया। उन्होंने मुझे बैठनेके लिये कुर्सी दी और पूछा— आप कहाँसे आये हैं।

मैंने कहा— मैं गोरखपुरसे आया हूँ और गीताप्रेसका मैनेजर हूँ।

मेरा संक्षिप्त परिचय पाकर उन्होंने गीताप्रेस और 'कल्याण'के बारेमें कई बातें पूछीं। फिर उन्होंने श्रीभाईजीकी कुशलताके बारेमें जिज्ञासा व्यक्त की। मैंने सबका यथोचित उत्तर दिया। फिर उन्होंने पूछा— यहाँ आपका आना कैसे हुआ ?

मैंने कहा— गीताप्रेसके चार केस हैं और वे सब आपके ही ट्रिब्युनलमें हैं।

उन्होंने कहा— अच्छा, मैं देख लूँगा।

कोर्टमें बहस आरम्भ हुई। श्रमिकोंकी ओरसे बैरिस्टर और वकील थे, पर गीताप्रेसकी ओरसे केवल मैं अकेला था। जैसा मुझसे बन पड़ा, वैसा मैं बहसमें बोल गया। सबसे अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि न्यायाधीश महोदयने चारों केसका फैसला गीताप्रसके पक्षमें तत्काल दे दिया। मेरा विश्वास है कि श्रीभाईजीकी सीख और उनके शुभाशीर्वादके प्रभावके कारण ही यह सफलता मिल पायी।

[२] निर्विघ्न वापसी यात्रा

सन् १९५० के आस-पासकी बात होनी चाहिये। गोरखपुरसे लगभग ५० मीलकी दूरीपर बस्ती नामक शहर है। बस्तीमें कोई सार्वजनिक कार्यक्रम था। इस कार्यक्रमका सभापतित्व करनेके लिये श्रीभाईजीको बस्ती जाना था। यह सार्वजनिक सभा शामको होने वाली थी, अतः श्रीभाईजी गीतावाटिकासे अपनी नैश कारद्वारा लगभग दो बजे गीताप्रेस आये और उनके साथ मैं, श्रीशुकदेवबाबू तथा और भी एक-दो व्यक्ति उसी कारसे बस्तीके लिये रवाना हुए।

कार गोरखपुर शहरसे बाहर निकलकर थोड़ी दूर आयी होगी कि उसके चक्केका एक बोल्ट खुलकर कहीं गिर गया। कारका चलना बंद हो गया। मार्गके बीच उस जंगली एकान्त स्थानपर लोहेका नट-बोल्ट भला कहाँ मिलता ? ड्राइवरने बोल्टके स्थानपर लकड़ीको ठूँसा। कार कुछ कदम चलकर फिर ठहर गयी। लोहेके बोल्टके स्थानपर लकड़ी कैसे काम दे सकती थी ? अब हम सभीको बड़ी चिन्ता हुई कि श्रीभाईजी बस्ती ठीक समयपर कैसे पहुँचेंगे। भगवत्कृपासे उसी समय एक जीप आ गयी। वे लोग भी गोरखपुरसे बस्ती जा रहे थे। जीपमें स्थान तो नहीं था, पर श्रीभाईजीको बस्ती पहुँचना आवश्यक था, अतः उन्होंने श्रीभाईजीको बैठा लिया। जीपमें बैठते-बैठते श्रीभाईजीने हम लोगोंसे कहा— परिस्थितिवशात् विवश होकर मुझे जाना पड़ रहा है। मैं बस्तीमें आप लोगोंकी राह श्रीकमलाप्रसादजी त्रिपाठीके घरपर देखूँगा। किसी प्रकार ढंग बैठाकर आप लोग वहाँ आइयेगा।

उस जीपमें श्रीभाईजी चले गये और बस्तीमें शामको सार्वजनिक सभाका कार्यक्रम भी ठीक प्रकारसे सम्पन्न हो गया। सभाके समाप्त होनेपर श्रीभाईजी श्रीत्रिपाठीजीके घर आ गये, पर हमलोग तबतक भी बस्ती नहीं पहुँच पाये थे। श्रीभाईजी हमलोगोंके लिये बड़ी चिन्ता कर रहे थे। किसी प्रकार उस नैश कारको काममें लेते हुए हमलोग लगभग नौ बजे बस्ती पहुँचे। श्रीभाईजी वहाँ हमलोगोंकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। गोरखपुरसे बस्तीका रास्ता एक घंटेका है, पर एक घंटेके स्थानपर वहाँ पहुँचनेमें हमलोगोंको छः घंटे लग गये। वहाँ पहुँचनेपर श्रीत्रिपाठीजीने

हमलोगोंका स्वागत-सत्कार किया और भोजन कराया। अब लगभग दस-साढ़े-दस बज चुके थे। ज्यों ही श्रीभाईजीने गोरखपुर जानेकी बात कहीं, तुरन्त श्रीत्रिपाठीजीने आपत्ति करते हुए कहा— भाईजी ! आप भी क्या कह रहे है ? एक तो रात्रिका समय और दूसरे यह मोटर खराब है। मैं आपको कैसे जाने दे सकता हूँ? यदि आपका जानेका ही निश्चय हो तो मैं किसी अन्य वाहनके प्रबन्धके लिये प्रयास करूँ।

श्रीभाईजीने कहा— त्रिपाठीजी ! आप चिन्ता न करें। भगवान सब भला करेगें। हम सभी लोग अभी जायेंगे और इसी नैश कारसे जायेंगे। मेरा विश्वास है कि भगवत्कृपासे कोई बाधा सामने नहीं आयेगी।

त्रिपाठीजीने हम सभी लोगोंको रोकनेके लिये अथवा अन्य वाहनकी व्यवस्थाके लिये कई बार कहा, पर श्रीभाईजीके आग्रहके सामने उनको झुकना पड़ा। हमलोग रातको ही बस्तीसे चल दिये। चलनेके पूर्व श्रीभाईजीने हम सभीसे कहा— हम सब लोग भगवान नारायणका नाम लेकर चलें तथा नारायणका स्मरण करें। वे भगवान ही सारी बाधाओंका निवारण करेंगे।

सबसे आश्चर्यकी बात यह है कि बस्तीसे चलनेके बाद वह खराब कार मार्गमें कहीं भी न बिगड़ी और न ठहरी। उस नैश कारने ही एक घंटेमें गीताप्रेसके प्रवेश द्वारपर हम लोगोंको पहुँचा दिया। कारसे उतरकर मैंने श्रीभाईजीसे कहा— आपने कौन सा जादू कर दिया कि रास्तेमें कारने धोखा नहीं दिया।

श्रीभाईजीने कहा— यदि मुझमें कोई जादू होता तो वह जादू बस्ती जाते समय ही मुझे दिखाना चाहिये था। अब जो हमलोग बिना बाधाके सुरक्षित घर पहुँच गये, यह सब भगवानकी अहैतुकी कृपाके फलस्वरूप है।

मैं ऐसा मानता हूँ कि श्रीभाईजीने यह उत्तर अपने संगोपन-प्रवृत्तिके अनुसार ही दिया था, अन्यथा सत्य तो यही है कि श्रीभाईजीके लोकोत्तर सामर्थ्यके कारण ही यह यात्रा निर्विघ्न रूपसे सम्पन्न हो पायी।

[३] क्षमा-याचनाके वे क्षण

घटना उस समयकी है जब गीतावाटिकामें श्रीराधाष्टमी उत्सव संक्षिप्त रूपमें कोठीके छोटे-से हालमें मनाया जाता था। उत्सवसे तीन-चार दिन पहले भाई श्रीरामदासजी जालानके साथ मैं गीतावाटिका गया। रातके लगभग आठ बज रहे थे। भाई श्रीरामदासजीको एक जगह तार भेजना था, अतः उन्होंने टेलीफोनपर तारघरके बाबूको तार ले लेनेके लिये कहा। तार बाबूने गीतावाटिकाका फोन नम्बर नोट कर लिया और कहा— मैं अभी थोड़ी देर बाद आपको फोन करूँगा। उस समय आप तार लिखवा दीजियेगा।

भाई श्रीरामदासजीने टेलीफोनका हुक रख दिया और वहीं प्रतीक्षामें हम दोनों बैठे रहे। प्रतीक्षा करते-करते एक घंटा बीत गया। हमलोगोंको ऐसा लगा कि तार बाबू बातको भूल गये हैं। भाई श्रीरामदासजीने फिर नौ बजे तार बाबूको फोन किया। तार बाबूने टेलीफोनपर कहा— मैं आपका तार लिख तो लूँगा, पर अब तारपर एक रुपया चार्ज अधिक लगेगा।

ऐसा सुनते ही भाई श्रीरामदासजीको रोष आ गया। उन दिनों तारघरका ऐसा नियम था कि रातके नौ बजेके बाद जो तार लिये जाते थे, उनपर एक रुपया चार्ज अधिक लगता था।

आजकी अपेक्षा उन दिनों एक रुपयेकी कीमत बहुत ज्यादा थी। भाई श्रीरामदासजीने तुरन्त जबाब देते हुए कहा– हम अधिक चार्ज क्यों देंगे ? हमने तो लगभग आठ बजे ही तार लेनेके लिये आपको फोन कर दिया था। नौ बजेके भीतर-भीतर तार आपने नहीं लिखा, इसमें गलती आपकी है।

टेलीफोनपर तारबाबूसे थोड़ी कहा-सुनी हो गयी। मैं भाई श्रीरामदासजीके पास ही बैठा हुआ था। तारबाबूसे निपटनेके लिये उन्होंने फोन मुझको दे दिया। यह बात एकदम साफ-साफ थी कि इसमें गलती तारबाबूकी है और हमारी गलतीके न होते हुए एक रुपया अधिक चार्ज देना बड़ा भारी लग रहा था। शायद वह सही रास्तेपर आ जाय, अतः अपने रोषको छिपाये हुए मैंने तारबाबूसे कहा– हमलोग तो आठ बजेसे ही टेलीफोनके पास बैठे हुए हैं। आपने ही नौ बजेतक कोई सुधि नहीं ली। प्रतीक्षा करते-करते जब थक गये तो फिरसे आपको फोन किया। इसमें गलती आपकी है या मेरी ?

तारबाबूने कहा– आपका कहना सही है, पर अब नौ बज चुके हैं और तारघरके नियमके अनुसार एक रुपया अधिक चार्ज लेना मेरे लिये आवश्यक हो गया है।

अभीतक मैं अपने रोषको दबाये हुए बैठा था, पर अब मुझे असह्य हो गया। मैंने कड़ी जबानमें उस तारबाबूसे कहा– आप यह जान लें कि मैं गीताप्रेसका मैनेजर दुर्गाप्रसाद बोल रहा हूँ। इसमें गलती मेरी नहीं, आपकी है। आपकी लापरवाहीके कारण यह एक रुपया चार्ज लग रहा है। एक रुपयेके लिये, यह समझ लें, आपकी नौकरी चली जायेगी।

मेरी बातको सुनकर वह तारबाबू सहम गया और विनम्र स्वरमें बोला– अच्छा, आपके तारपर एक रुपया चार्ज नहीं लगेगा। आप तार लिखवाइये।

मैंने टेलीफोनपर तारबाबूको तार लिखवा दिया और श्रीरामदासजी जालानको बतला दिया कि अब एक रुपया अतिरिक्त शुल्क नहीं लगेगा।

मुझे पता नहीं था कि पासवाले कमरेमें श्रीभाईजी लेटे हुए हैं और मेरी सब बात सुन रहे हैं। वे कुछ अस्वस्थ थे, अतः लेटे हुए थे। जब तार देनेका काम समाप्त हो गया, तब श्रीभाईजीने मुझको और भाई श्रीरामदासको बुलवाया और मुझसे कहा– अरे दुर्गाबाबू! क्या एक रुपयेके लिये आप उसकी नौकरी खतम कर देते ? क्या यही हमारी मानवता है ? यह तो हमारी लोभ वृत्तिका बड़ा ही विकृत रूप है कि जिसके कारण किसीकी आजीविका चली जाये। एक बात और बताऊँ। कदाचित् यदि आप कोई कारवायी करते तो मैं उस तारबाबूका पक्ष लेता और यही कहता कि इसमें गलती तारबाबूकी नहीं, हमारे मैनेजरकी ही है।

श्रीभाईजीके ऐसा कहते ही मैं तो पानी-पानी हो गया। मेरे लिये लज्जाके मारे सिर उठाना कठिन हो गया। अपना बचाव करनेके लिये मैंने कहा– मैं तो उसे केवल धमकी दे रहा था, वैसा कुछ करता नहीं।

श्रीभाईजीने समझाया– जगतके सांसारिक लोग भले वैसी नीति अपनायें, किन्तु आध्यात्मिकता, आस्तिकता और सात्त्विकताका प्रचार करनेवाली गीताप्रेस जैसी संस्थाके मैनेजरके लिये इस प्रकारकी धमकी भी शोभा नहीं देती।

मेरे मुखसे एक भी शब्द नहीं निकल रहा था। मेरा मन बड़ा खिन्न हो गया कि मेरे कारण श्रीभाईजीके मनको कष्ट पहुँचा। मनमें बड़ी उथल-पुथल मची हुई थी और अन्तरमें भारी पश्चात्ताप था कि तारबाबूके प्रति हमारे द्वारा ऐसा व्यवहार वस्तुतः बहुत ही लज्जाजनक था। भारी अन्तर्वेदना लिये-लिये मैं उदास मनसे घर वापस आ गया और उदासीके कारण रातको नींद भी ठीकसे नहीं आयी। अचानक सबेरे पाँच बजे श्रीजीवबोधन सिंहने मेरे घरका दरवाजा खटखटाया। श्रीजीवबोधन सिंह श्रीभाईजीका निजी पत्र-वाहक है। भीतर आकर उसने श्रीभाईजीका एक बन्द लिफाफा मुझे दिया। उत्सुकतावशात् बहुत जल्दीसे मैंने वह लिफाफा खोला तो उसमें उनके स्वयंकी लेखनीसे लिखा हुआ पत्र पढ़कर मैं तो अवाक् रह गया। पत्रमें श्रीभाईजीने लिखा था—

प्रिय श्रीदुर्गाबाबू,

सप्रेम हरिस्मरण।

बीमार आदमीकी बुद्धि मारी जाती है। रातको मेरी बुद्धि मारी गयी थी। मैंने आपको तथा भाई रामदासको बहुत दुर्वचन कहे। उसी बातको मैं प्रेमसे भी कह सकता था। मुझे पीछे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। दोषोंका पुतला है यह जीवन। क्या कहूँ? आपसे तथा प्रिय रामदाससे हाथ जोड़कर क्षमा चाहता हूँ। आप भगवानके नामपर तथा अपने शीलकी ओर देखकर मुझको क्षमा कर दें। प्रिय भाई रामदाससे भी आप मेरी ओरसे इसी तरह इन्हीं शब्दोंमें क्षमा माँग लें।

सीयराममय सब जग जानी।
करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

आपका क्षमा प्रार्थी
हनुमान

पत्रको पढ़ते ही हृदय बहुत अधिक विह्वल हो उठा। आँखें छलछला उठीं। भाई श्रीरामदासके घर जाकर मैंने वह पत्र उनको दिखलाया। उनकी भी आँखें भर आयी। हमलोग उसी समय गीतावाटिका गये। हमलोगोंको देखकर श्रीभाईजीने कहा— आज इतने सबेरे-सबेरे कैसे ?

मैंने कहा— आज एक दम प्रातःकाल श्रीजीवबोधन सिंहके हाथ भेजा हुआ आपका पत्र मिला। आपने यह क्या किया ? गलती तो सरासर मैंने की थी और मुझसे ही आप क्षमा याचना करें ! मेरी भूलको आप नहीं सुधारेंगे तो और कौन सुधारेगा ?

श्रीभाईजीने कहा— आप चाहे जो समझे, आपसे बड़ी भूल तो मैं ही कर बैठा। क्या मेरे लिये यही उचित था ?

इतना कहते-कहते श्रीभाईजीकी आँखें भर आयी और ऐसा लगा कि आँसूकी बूँदे बाहर चू जाने वाली हैं। मैं भी सजल हो उठा, रामदासजी भी सजल हो उठे। वातावरण बदलेनेके लिये मैंने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया, पर मेरा मन श्रीभाईजीके आँसूकी बूँदोंमें ही डूबा हुआ था। श्रीभाईजीकी विनम्रता एवं पर-हितैषिताकी यह भावना मुझपर ऐसी छाप छोड़ गयी, जिसका मिटना कभी सम्भव है ही नहीं।

[४] मेरे भाईको जीवन दान

सम्भवतः सन् १९६९ या ७० में मेरा छोटा भाई एक बार बहुत अधिक बीमार पड़ गया। उसके पीठपर अदीठ फोड़ा (कारबंकल) हो गया था। पूज्य श्रीभाईजीके कहनेसे रिटायर्ड सिविल-सर्जन डा. श्रीराजेन्द्रप्रसाद और डा. श्रीलहरी उसे देखनेके लिये लगभग प्रतिदिन आया करते थे। चिकित्सामें कहीं कोई कमी या चूक नहीं हो रही थी। देखभाल सम्बन्धी सारी तत्परताके बाद भी उसकी हालत गिरती ही जा रही थी। जब चार दिनतक मेरे रुग्ण भाईने कोई आहार नहीं लिया और न अपनी आँखें खोली तो सबको बड़ी चिन्ता हो गई। उस दिन सबेरे दोनों डाक्टरोंने जबाब भी दे दिया कि अब इसके बचनेकी आशा नहीं है।

डाक्टरोंका ऐसा कहना था कि घरमें रोना-धोना मच गया। मेरी बूढ़ी माँ बुरी तरह रोने लग गयी। इस अवसरपर मुझे श्रीभाईजीकी याद आयी। मैंने गीतावाटिका फोन करके उन्हें सारी स्थिति बतलायी और उनसे कहा-- मैं स्वयं गीतावाटिका आना चाहता था, पर यहाँ भाईकी सँभालके लिये मेरा रहना बड़ा आवश्यक है। मेरी माँका कहना यह है कि एक बार श्रीभाईजी आ जाते तो बड़ा अच्छा होता।

श्रीभाईजीने फोनपर कहा-- मैं अभी तुरन्त आता हूँ।

अस्वस्थ और व्यस्त होते हुए भी श्रीभाईजी मेरे घर पधारे। द्वारपर ही माँ बैठी थी। श्रीभाईजीको देखकर वह और अधिक रोने लग गयी। श्रीभाईजीने उनसे कहा-- माँजी! आप इतनी घबड़ाती क्यों हैं? भगवान मंगल करेंगे। आप अधीर न हों।

इसके बाद श्रीभाईजी रोगीके खाटके पास आये और उन्होंने मेरे भाईके सिरपर हाथ रखा। हाथ रखते ही उसने आँख खोलकर श्रीभाईजीकी ओर देखा और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। विगत चार दिनोंसे न उसने कुछ खाया-पिया था और न उसने करवट बदली थी। जब उसने आँख खोलकर श्रीभाईजीको प्रणाम किया तो मुझे बड़ा अचम्भा लगा। मैं तो इसे उनके वरद-स्पर्शका प्रभाव ही मानता हूँ। ज्यों ही मेरे भाईने ऐसा किया, श्रीभाईजीने मेरी माताजीसे कहा-- आपलोग व्यर्थ ही निराश हो रही थीं। देखिये, यह हाथ जोड़ रहा है। आप लोग तनिक भी हताश न हो। भगवान मंगल ही करेंगे।

श्रीभाईजीने सबको धैर्य बँधाया और उनके कहनेसे रोग-विमुक्तिके लिये तत्काल मानस-पाठ आरम्भ कर दिया गया। थोड़ी देर बाद श्रीभाईजी गीतावाटिका चले गये। उनके जानेके बाद मेरे भाईने थोड़ा आहार भी लिया। शामको फिर डा. श्रीराजेन्द्रप्रसाद और डा. श्रीलहरी मेरे घर आये। वे तो ऐसा ही सोचते आ रहे थे कि वहाँ पहुँचनेपर रोगीके निधनका समाचार मिलेगा, पर आकर उन्होंने देखा कि रोगीकी हालत अच्छी है। मैंने दोनों डाक्टरोंको श्रीभाईजीके आनेकी बात बतलायी और कहा कि उनके आनेके बादसे ही यह सुधार दिखलायी दे रहा है। डाक्टरोंने कहा-- दुर्गा बाबू! अब आपके भाईका संकट टल गया। जिसके सिरपर संतने अपना हाथ रख दिया, वह हर प्रकारसे सुरक्षित हो गया। श्रीभाईजीने उसके मंगलके लिये मानस-पाठ आरम्भ करवाया है। संतकी कृपासे तथा पाठके प्रभावसे यह ठीक होगा ही। अब इसमें संदेहके लिये स्थान नहीं।

क्रमशः हुआ भी ऐसा ही। कुछ दिनों बाद मेरा भाई पूर्ण स्वस्थ हो गया। इस स्वास्थ्यका सारा

श्रेय मैं तो श्रीभाईजीको ही देता हूँ। समय-समयपर हमारे न जाने कितने बिगड़े हुए कामोंको श्रीभाईजीने सँभाला और सुधारा है।

[५] खोयी कलंगी मिल गयी

सन् १९७० के १८ नवम्बर को मेरी कन्याका विवाह था। यह विवाह श्रीमोहनलाल भानुलालके मकानसे हो रहा था। मैंने पूज्य श्रीभाईजी से विशेष रूपसे अनुरोध किया था कि वे कन्याको आशीर्वाद देनेके लिये अवश्य पधारें। अस्वस्थताके उपरान्त भी श्रीभाईजी पधारे और उनके पधारनेसे मैं बड़ा प्रसन्न था। श्रीभाईजी तो एक आराम कुर्सीपर विराज रहे थे। बरात जनवासेसे प्रस्थान कर चुकी थी और मैं बरातका स्वागत करनेकी दृष्टिसे वहीं द्वारपर खड़ा-खड़ा विविध व्यवस्थाओंको देख रहा था।

इसी बीच मुझे एक बड़ा अप्रिय समाचार सुननेको मिला। बरात हिन्दी बाजार, रेती चौक होते हुए गीताप्रेसकी ओर आ रही थी, तभी यह समाचार मिला कि दूल्हेके सिरपर जो कलंगी लगी हुई थी, वह न जाने कहाँ गिर गयी है। यह सुनते ही मेरे सामने अँधेरा छा गया। विवाह जैसे शुभ अवसरपर यह एक महान अपशकुन था। मेरी कन्याके दाम्पत्य-जीवनके आरम्भमें ही जब यह अपशकुन घटित हो गया, तब भविष्यमें उसे न जाने क्या-क्या भोगना पड़ेगा। इसके अलावा वह कंलगी माँग करके लायी हुई वस्तु थी। उस कंलगीमें जवाहरात लगे हुए थे। कलंगीका मालिक न जाने कितना मूल्य बतलायेगा। उसका मूल्य चुकानेमें ही मैं बिक जाऊँगा। मेरी खिन्नताकी सीमा नहीं थी। उदास चेहरा लिये हुए मैं श्रीभाईजीके पास खड़ा हो गया। श्रीभाईजीने मेरी उदासीका कारण पूछा। कलंगीके खो जानेकी बात मैंने उन्हें बता दी। तब श्रीभाईजीने कहा— उसे जाकर खोजो, जाकर देखो कि कहाँ गिर गयी है। खोज करनेसे ही तो वह मिलेगी।

श्रीभाईजीके कहनेपर मैं गया अवश्य और सड़कपर इधर-उधर खोजा भी, पर वह मिली नहीं। बाजे बज रहे थे। कोलाहल हो रहा था। दूल्हेके साथ बरात धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। सड़कपर बहुत भीड़ थी। ऐसी स्थितिमें कलंगीके वापस मिलनेकी कल्पना करना भी एक मूर्खता थी। जनवासेसे लेकर बरात जहाँतक आ चुकी थी, वह सारी सड़क मैंने देखी ली, पर निराशा ही हाथ लगी। मैं और भी अधिक खिन्न और चिन्तित हो उठा। पुनः आकर मैं श्रीभाईजीके पास खड़ा हो गया। श्रीभाईजीने मुझसे पूछा— क्या कलंगी मिल गयी ?

मैंने खिन्नताभरे स्वरमें कहा— ऐसी कीमती चीज सड़कपर गिर जाय और वह भी चालू सड़कपर, फिर वह कैसे मिल सकती है ?

मेरे आँखोंकी एक-एक हलचलमें और बोलके भी एक-एक शब्दमें घोर व्यथा और चिन्ता समायी हुई थी। मेरी व्यथा श्रीभाईजीको सह्य नहीं हुई। जाड़ेके दिन थे। भाईजी शाल ओढ़े कुर्सीपर बैठे हुए थे। वे कुर्सीपरसे उठे और अपनी शाल झाड़ दी। शालके झाड़ते ही उसमेंसे कलंगी जमीनपर गिर पड़ी। कलंगीको देखकर मेरा मन आनन्दसे भर गया। मैंने कलंगी उठा ली और जाकरके दूल्हेके सिरपर लगा दी।

बरात घरके द्वारपर आयी। बरातका सुन्दर स्वागत हुआ और द्वार-पूजा हुई। सब मांगलिक नेगचारोंके हो जानेके बाद बराती जनवासे चले गये और श्रीभाईजी गीतावाटिका लौट गये।

विवाहकी उस भीड़-भाड़में तथा कार्यकी व्यस्ततामें अभीतक मुझे इस प्रसंगपर गहराईसे कुछ सोचनेका अवसर नहीं मिल पाया था। सभी लोगोंके चले जानेपर जब कुछ अवकाश मिला, तब रह-रह करके मुझे आश्चर्य होने लगा कि कहाँ तो वह बरात मार्गके बीचमें थी और कहाँ श्रीभाईजी मेरे द्वारपर बैठे थे, कहाँ वह कलंगी तब दूल्हेकी सिरसे मार्गमें गिर पड़ी थी और कहाँ वह कलंगी अब श्रीभाईजीके शालसे निकल पड़ी थी। श्रीभाईजीके अनन्त सामर्थ्य और अचिन्त्य सौहार्दको देखकर मैं अत्यधिक विस्मित और विगलित हो रहा था, जिसने मेरी लज्जाको रख लिया और मेरी कन्याके भविष्यको मंगलमय बना दिया। ■

पं. श्रीसूरजमलजी शर्मा

महत्प्रसाद

मैं रतनगढ़का साधारण स्थितिका एक ब्राह्मण हूँ। मेरी क्षीण स्मृतिके अनुसार सन् १९५० के आरम्भमें पूज्य श्रीराधा बाबाने पूज्य श्रीभाईजीकी दीर्घायुके लिये एक अनुष्ठान गोरखपुरकी गीतावाटिकामें करवाया था। यह अनुष्ठान कई मास चला था। अनुष्ठानके लिये रतनगढ़से मुझको बुलाया गया था। बुलानेके लिये जो पत्र गया था, उसमें कुछ कठोर नियमोंका उल्लेख करते हुए यह कहा गया था कि यदि ऐसा नियम-निष्ठ जीवन अनुष्ठानके अवधिमें स्वीकार हो तो गोरखपुर पधारनेकी कृपा करें।

इस पत्रको पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि किसी महान कार्यके लिये भगवानने मुझे यह अवसर दिया है। मेरा जीवन तो अनेक प्रकारकी कमियों और कमजोरियोंसे भरा हुआ था, पर इसे एक शुभ अवसर मानकर मैंने यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। रतनगढ़से मैं और पं. श्रीमोतीलालजी पारीक, हम दोनों गोरखपुर आये और पूज्य बाबाके निर्देशानुसार अनुष्ठान आरम्भ कर दिया गया। दैवी कृपासे अनुष्ठानके पूर्ण होनेपर प्राप्त सफलता बहुत संतोषप्रद रही। बाबाने भूरि-भूरि सराहना की तथा आशीर्वाद दिया।

जब श्रीभाईजीसे बात हुई तो उन्होंने सुझावके रूपमें एक निवेदन किया— आपको तो अब गंगातटपर जीवन व्यतीत करते हुए गायत्री पुरश्चरण करना चाहिये। भविष्यमें माँ गंगा और भगवती गायत्रीका आश्रय न छोड़े तो आपके लिये सर्वोत्तम बात रहेगी।

मैं नही जानता कि श्रीभाईजीने भावके किस धरातलसे यह बात कही थी, पर उसका प्रभाव मेरे मनपर बड़ा गहरा हुआ। उनकी बात मेरे अन्तरको छू गयी। मैंने तत्काल वैसा निश्चय कर लिया और मैं हरिद्वार आ गया। जब मैं हरिद्वार आया था, उस समय मेरी आयु पचाससे अधिक थी और अब नब्बेसे ऊपर है। वस्तुस्थितिको व्यक्त करनेमें कुछ संकोच हो रहा है, पर यह सत्य है कि मुझ साधारण ब्राह्मणपर श्रीभाईजीकी महत्कृपा बरस पड़ी। आजकल मेरे भीतर जैसी निर्विकारिता और जैसी शान्ति छायी हुई है, उससे मेरे आनन्दकी सीमा नही है। इस समय मेरे जीवनमें जो भी अच्छाई है, वह है श्रीभाईजीकी महत्कृपाका महत्प्रसाद। ■

श्रीओंकारमलजी सारस्वत

सिद्धान्त-निष्ठा

सन् १९५२ में भारतमें सर्वप्रथम आम चुनाव हुए थे, उस समयकी बात है। हमारे रतनगढ़ शहरके पण्डित श्रीगौरीशंकरजी आचार्य हम सभीके लिये परम आदरणीय रहे। उनका सदाचार और उनका पाण्डित्य देखकर हमलोग सदैव नतमस्तक रहते थे। उस प्रथम आम चुनावमें कांग्रेसकी टिकटपर श्रीआचार्यजी रतनगढ़से प्रत्याशीके रूपमें चुनावके लिये खड़े हुए। हमलोग कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि अपना मतदान किसे दें। हमलोगोंने अपनी उलझन पूज्य श्रीभाईजीके सामने रखी। हमारी उलझनको जानकर श्रीभाईजीने लिखकर भेजा—

पण्डित श्रीगौरीशंकरजी आचार्यके प्रति मेरे मनमें सद्भावना थी और है, पर यदि वे कॉंग्रेसके टिकटपर लोकसभाके सदस्य होते हैं तो उनका व्यक्तित्व कांग्रेसके हाथ बिक जाता है और फिर इन्हें कॉंग्रेसकी नीतिका समर्थन बरबस करना पड़ता है। माननीय पण्डित श्रीनेहरूजीने हिन्दू कोड बिलको कॉंग्रेसकी चीज घोषित कर दी है। यही बात गोवध सम्बन्धी कानूनके सम्बन्धमें है। उन्होंने स्पष्ट रूपसे कह दिया है कि गोवधके कतई बन्द होनेका कानून कॉंग्रेस नहीं बना सकती। ऐसी अवस्थामें मेरे जैसा आदमी उन जैसे व्यक्तिके प्रति श्रद्धा और सद्भाव रखते हुए भी हिन्दूकोड और गोवधका प्रकारान्तरसे समर्थन करनेवाली संस्थाके टिकटपर खड़ा होनेवाले व्यक्तिका समर्थन नहीं कर सकता। आशा है कि मेरी स्थिति आप समझ गये होंगे। सम्मान्य श्रीगौरीशंकरजी आचार्यसे मेरा सविनय प्रणाम कहियेगा। सिद्धान्तके कारण ही मैंने आचार्यजीके पक्षका समर्थन नहीं किया। इस विवशताके लिये मुझे बड़ा ही संकोच है। उनके व्यक्तित्वके प्रति मेरी श्रद्धा पहले भी थी और अब भी है ही। अब तो यही इच्छा है कि जितने श्वास बाकी हैं, भगवानके स्मरणमें ही बीतें।

सिद्धान्तके आधारपर श्रीभाईजीकी दृढ़ताको देखकर हमलोगोंको बड़ा बल मिला। श्रीआचार्यजी हमलोगोंके लिये श्रद्धास्पद रहे, पर श्रीभाईजीके विचारोंको पढ़कर मनको बड़ी प्रेरणा मिली कि जीवनमें व्यक्तिको नहीं, सिद्धान्तको महत्त्व देना चाहिये। ■

पं. श्रीनरसिंहप्रसादजी पारीक

आर्थिक संकटका निवारण

प्रसंग सन् १९५५-५६ का है। पैतृक कार्य छोड़कर मैंने व्यापार करनेका निश्चय किया। निश्चयके अनुसार नापासरसे नेपालके विराटनगर चला गया और वहाँ पाटका काम आरम्भ कर दिया। संयोगकी बात, पाटके व्यापारमें बहुत बड़े घाटेका सामना करना पड़ गया। माल

बेचकर बाजार वालोंका तो पैसा चुका दिया, परंतु आत्मीय जनोंके रुपये वापस नहीं कर पाया। जीवनमें कभी भी ऐसा आर्थिक संकट नहीं आया था। नापासर घरवालोंको मैंने पत्र देना बन्द कर दिया। चिन्ता और ग्लानि इतनी अधिक थी कि विरक्त होनेकी बात मनमें आने लग गयी। खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जगना, कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। स्नेह और सम्मान देने वाले व्यक्ति भी उपेक्षा करने लग गये। वापस घरपर जानेका साहस नहीं हो रहा था। ऐसी विषम और विकट निराशापूर्ण स्थितिमें मुझे श्रीभाईजी (सर्व सुहृद श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की याद आयी।

मैं विराटनगरसे राजस्थानके लिये चल पड़ा। अपने घर नापासर जानेके पहले मैं रतनगढ़ गया श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये। उन दिनों श्रीभाईजी रतनगढ़में विराज रहे थे। ट्रेनसे उतरकर मैं सवेरे चार बजेके लगभग उनके पास पहुँचा। मैंने अपने आर्थिक संकटकी विषम दशा उन्हें बतलायी। स्थितिको सुनकर श्रीभाईजीकी आँखें भर आयीं। उन्होंने कहा— इस संकटसे मुक्ति पानेके लिये मैं आपको अनुष्ठान बतलाता, पर मैंने अभी स्नान नहीं किया है।

मैंने उनसे निवेदन किया— मुझे अपनी व्यथा आपको सुनानी थी, वह मैंने सुना दी। आगे अब आप जाने।

इसके बाद मैं अपने गाँव नापासर चला आया। संयोग कुछ ऐसा बना कि सात-आठ दिनोंके बाद ही मुझे श्रीभाईजीका पत्र रतनगढ़से मिला। पत्रमें उन्होंने लिख रखा था कि मैं अमुक तारीखको नापासर आ रहा हूँ। मेरे साथ बाबा और सावित्रीकी माँ, रामसनेही आदि रहेंगे। मैं आपके घरपर ही ठहरूँगा।

पत्र पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और कार्यक्रमके अनुसार निश्चित तिथिपर सभी लोगोंके साथ श्रीभाईजी नापासर आये। वे हमारे घरपर ही ठहरे। उनके पधारनेसे गाँवमें सत्संगका वातावरण बना। दूसरे दिन जब श्रीभाईजी जाने लगे तो वे मोटरमें बैठ गये। बैठनेके बाद अपनी पाकेटसे एक पन्ना निकालकर उन्होंने मुझे दे दिया। विदाईके उन क्षणोंमें पन्नेको देखनेके लिये समय नहीं था। मोटरके चले जानेके बाद मैंने वह पन्ना खोलकर देखा। *उस पन्नेमें आर्थिक संकटसे मुक्ति पानेके लिये दो अनुष्ठान लिखे हुए थे। पहला अनुष्ठान था श्रीमद्‌भागवत महापुराणके गजेन्द्रमोक्षका पाठ और दूसरा वाल्मीकि रामायणके सुन्दरकाण्डका पाठ।* मेरा श्रीभाईजीसे आन्तरिक अपनत्व था और उनपर सहज विश्वास था। उन्होंने जब यह अनुष्ठान बतलाया है तो अवश्य करना चाहिये, अतः मैंने यह अनुष्ठान किया। अनुष्ठानकी सफलताके बारेमें मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि अनुष्ठान पूरा होते-होते वह आर्थिक संकट दूर हो गया। केवल दूर ही नहीं हुआ, अपितु अपनी गृहस्थीको चलानेके लिये आर्थिक स्थितिमें पर्याप्त सुधार आ गया। मैं तो विपत्तिके सागरमें डूब रहा था, उस सागरसे श्रीभाईजीने मुझको ऊबार लिया। ऐसे आर्त-त्राण-परायण श्रीभाईजीके श्रीचरणोंमें सादर अभिवन्दन।

श्रीभाईजीने ये दोनों अनुष्ठान सन् १९६५ के जनवरी माहमें प्रकाशित भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अंकके पृष्ठ ६२१-२४ पर छाप रखे है। इन अनुष्ठानोंसे लाभ उठानेवाले भाईको कल्याणके इस विशेषांकके इन पृष्ठोंको देखना चाहिये। ■

श्रीराधेश्यामजी खेमका

भक्तवाञ्छा-कल्पतरु

परम श्रद्धास्पद श्रीभाईजी संत-परम्पराके एक रत्न थे। जिन लोगोंने श्रीभाईजीके सत्संगका लाभ प्राप्त किया है, वे परम धन्य हैं। पूज्य श्रीभाईजीका भगवत्कृपापर अटूट विश्वास था, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव वे स्वयं किया करते थे और अपने सम्पर्कमें आनेवालोंको भी कराते थे। कुछ वर्ष पूर्व वे काशी पधारे हुए थे। मैं भी उनके दर्शनार्थ गया। प्रभु-कृपाके सम्बन्धमें चर्चा चल रही थी। पूज्य श्रीभाईजीने कहा— *प्रभुकी कृपा तो सदा अहर्निश संसारके प्रत्येक प्राणीपर रहती ही है। हमें केवल उस कृपाके अनुभव करनेकी आवश्यकता है।*

हमलोगोंने भगवत्कृपाकी चर्चा सुन ली। दूसरे ही दिन श्रीभाईजीके सांनिध्यमें भगवानकी कृपाका एक प्रत्यक्ष चमत्कार भी देखनेको मिला। पूज्य श्रीभाईजीकी प्रेरणासे उनके एक बहुत पुराने प्रेमी श्रीआनन्दरामजी जालान काशीवासके निमित्त कुछ दिनोंसे काशीमें निवास कर रहे थे। उनकी यह दृढ़ इच्छा थी कि अन्तिम समयमें मुझे पूज्य श्रीभाईजीके दर्शन प्राप्त हो जायँ और उनके चरणोंमें ही मैं अपने प्राण-त्याग करूँ, पर क्या यह भी किसीके वशकी बात है? वृद्धावस्था थी तथा कुछ समयसे वे अस्वस्थ चल रहे थे, किंतु अस्वस्थता सामान्य थी, कोई विशेष बात नहीं थी। श्रीभाईजी उनसे मिलनेके लिये उनके निवास स्थानपर गये और अत्यन्त प्रसन्न मुद्रामें श्रीजालानजीसे बातचीत की। श्रीजालानजीने अपनी आन्तरिक इच्छा श्रीभाईजीके सामने प्रकट की। श्रीभाईजी मुस्कुरा दिये।

अचानक परिस्थितिने करवट बदली। जिस रात्रिको श्रीभाईजी उनसे मिलने गये, उसी रात्रिको अचानक तीन बजे श्रीआनन्दरामजीकी स्थितिमें विशेष परिवर्तन हुआ। ऐसा लगा कि उनके लिये भगवानके घरका बुलावा आ गया है। इसका अनुमान स्वयं श्रीआनन्दरामजीको भी होने लगा। उन्होंने कहा— श्रीभाईजीको बुला लिया जाय।

श्रीभाईजीको तत्काल इसकी सूचना दी गयी। सूचना प्राप्त होनेके बाद पूज्य श्रीभाईजीको वहाँ पहुँचनेमें देर ही क्या हो सकती थी? उनके पहुँचते ही श्रीआनन्दरामजीका पाञ्चभौतिक शरीर शान्त हो गया। अप्रत्याशित रूपमें श्रीजालानजीकी अन्तिम अभिलाषा पूरी हुई। मणिकर्णिका घाटपर चिता लगायी गयी और उसपर श्रीआनन्दरामजीका पार्थिव शरीर रखा गया। ज्यों ही अग्नि-संस्कारका समय आया और जिन-ब्राह्मणदेवको उनके पुत्रोंकी अनुपस्थितिमें अन्त्येष्टि-संस्कारके लिये बुलाया गया था, उन्होंने अग्नि-संस्कार करना अस्वीकार कर दिया। एक नयी समस्या खड़ी हो गयी। सभी लोग उन्हें समझाने लगे। इस प्रकार दस-पन्द्रह मिनट उन्हें समझानेमें लग गये, पर वे तैयार नहीं हुए। उसी क्षण एक और ईश्वरीय चमत्कार दिखायी पड़ा। श्रीआनन्दरामजीका एक पुत्र, जो बिहारमें रहता था तथा जिसके आनेका न कोई समाचार था, न कोई आशा थी और न कोई कल्पना थी, उसी समय आकर चिताके समक्ष खड़ा हो गया। श्रीजालानजीका दाह-संस्कार पुत्रके ही द्वारा होना था। यदि ब्राह्मणदेव उस क्षण अस्वीकार न करते और उन्हें समझाने-बुझानेमें दस-पंद्रह मिनटकी

देर न होती तो पुत्रको यह अवसर कैसे प्राप्त होता ? सभी लोग आश्चर्यचकित थे। समस्याका समाधान भगवानने किस रूपमें दिया, यह कोई समझ नहीं पा रहा था।

पूज्य श्रीभाईजीने गत दिवस इतना ही कहा था— प्रभुकी कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव करो।

इस घटना द्वारा सत्यका प्रत्यक्षीकरण हो गया। साथ ही यह ज्ञात हुआ कि संतके प्रति की गयी सच्ची अभिलाषा भगवान पूर्ण करते हैं। ■

वैद्यराज पं. श्रीविद्याधरजी शुक्ल

दयाके सागर

दयाके तो श्रीभाईजी सागर थे। जब मैं पहले-पहल गोरखपुर आया, गीताप्रेसके मुद्रक एवं संचालक श्रीघनश्यामदासजी जालान मुझे श्रीभाईजीके पास ले गये। श्रद्धेय श्रीभाईजीका सत्संग हुआ। मैं सत्संगमें था ही। सत्संग पूर्ण होनेपर श्रीघनश्यामदासजीने श्रीभाईजीसे मेरा परिचय कराया और कहा— ये पण्डितजी शास्त्रोंके ज्ञाता, कर्मकाण्डी, ज्योतिषी और आयुर्वेदमें निपुण हैं। अपने यहाँ औषधालयमें प्रधान वैद्यके स्थानपर आये हैं।

महामना श्रीभाईजीने अन्तर्दृष्टिसे देख लिया कि पंडितजी सभी बातोंमें निपुण हैं, किन्तु अर्थाभावमें हैं और अर्थके लिये आये हैं। भक्त सुदामा सर्वशक्तिमान श्रीकृष्णके पास आकर खाली हाथ कैसे लौट सकते हैं ? चाहे प्रत्यक्षमें न माँगते हों, किन्तु किसी आग्रहसे ही आये हैं। मेरे पास आनेका फल तो मिलना ही चाहिये। दयासागर जो ठहरे। श्रद्धेय श्रीभाईजीने नाटक किया। उन्होंने मेरे पैर छूए, प्रणाम किया और 'आइये' कहकर भीतर ले गये। भीतर ले जाकर मुझे एक रजत-मुद्रा दी। श्रीभाईजी रुपया अपने पास रखते नहीं थे। जब किसीको कुछ देना होता था, तब अपने किसी व्यक्तिसे दिलवा देते थे। यह मैंने बहुत बार देखा है, किन्तु जहाँतक मुझे स्मरण है वह रुपया श्रीभाईजीने किसीसे लिया नहीं। मैं बहुत देरसे उनके पास बैठा था। श्रीभाईजीने अपनी मुट्ठीसे रुपया निकाला और आग्रह करके मेरे हाथमें दे दिया। मैंने कई बार अस्वीकार किया, किन्तु श्रीभाईजीका बार-बार निवेदन था— लेना ही होगा।

मैंने ले लिया। रुपयेका स्पर्श होते ही मन बदल गया और मैं सोचने लगा— महापुरुषने दिया है, इसमें कोई रहस्य होगा।

मुद्रा ले आया और घर पहुँचकर उसे सुरक्षित स्थानपर रख दिया। वह मुद्रा जबसे आयी, तभीसे मेरे घरमें लक्ष्मीदेवीका आगमन आरम्भ हुआ, अकेली श्रीलक्ष्मीजी ही नहीं, परमदयालु श्रीभगवान भी हृदयमें आ गये। यह है दयासागरकी दयालुता। ■

श्रीगोपाल सिंहजी विशारद

श्रीराम जन्म-भूमि

हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू आदर्श और हिन्दू जीवन शैलीका समग्र दर्शन हमें मिलता है मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामके पावन चरित्रमें और उनका पावन जन्म-स्थान है पवित्र

तीर्थ अयोध्या। उनके जन्म-स्थानपर चौसठ कसौटीके कलापूर्ण स्तम्भोंपर बने हुए भव्य मन्दिरको मुगल बादशाह बाबरने लगभग पाँच सौ वर्ष पहले ध्वस्त करावा दिया था। तबसे उस पावन श्रीराम जन्म-स्थानपर पुनः मन्दिर-निर्माणके लिये हिन्दू जाति संघर्ष करती रही। २३ दिसम्बर १९४९ को भगवत्कृपासे एक विशेष प्रसंग घटित हो गया। ब्राह्म मुहूर्तकी शुभ वेलामें श्रीरामजन्म-स्थानमें प्रकट मूर्तिसे एक ऐसी चामत्कारिक किरण छिटक पड़ी, जिसकी शान्त एवं सुखमयी प्रभासे प्रभावित भक्तजन आनन्दविभोर हो गये। यह शुभ समाचार विद्युत्प्रवाहकी भाँति चारों ओर फैल गया।

कोर्टमें केस दायर किया गया, और श्रीभाईजीके कानमें भनक पड़ी कि सरकार प्रकट हुए श्रीरामललाके श्रीविग्रहको मन्दिरसे हटवा देना चाहती है। श्रीभाईजीने तुरन्त देशके अनेक प्रमुख व्यक्तियोंके पास व्यक्तिगत स्तरपर पत्र लिखते हुए निवेदन किया— *'अयोध्यामें श्रीरामजन्मभूमिका प्राचीन स्थान है। बीचमें मुसलिम राज्यके समय उसपर मुसलमानोंने अधिकार करके मसजिद बना ली थी। हालमें कहा जाता है कि यहाँ भगवान श्रीरामकी मूर्ति प्रकट हुई है। इस समय वहाँ अखण्ड कीर्तन और रामायण पाठ हो रहा है। सुना गया है कि सरकार मूर्ति हटवा देनेके पक्षमें है और नाना प्रकारसे मूर्ति हटवानेका प्रयत्न कर रही है। आप जानते ही हैं कि भगवान श्रीरामकी जन्मभूमिका सम्बन्ध देशभरके तमाम हिन्दुओंसे है। रामजन्मभूमिसे भगवान श्रीरामकी मूर्ति हट गयी तो हिन्दुओंके छिने हुए देवमन्दिरोंको वापस प्राप्त करनेमें बड़ी कठिनता होगी। अतएव आपसे निवेदन है कि आप अपने यहाँ भिन्न-भिन्न प्रभावशाली व्यक्तियों, संस्थाओं और सभायें करके उनके द्वारा दिल्ली और लखनऊ सरकारके पास तार भिजवाइये।'*

श्रीभाईजीके प्रयाससे समाजमें अनुकूल वातावरणकी सृष्टि हुई तथा कोर्टने जो निर्णय दिया, वह हिन्दुओंकी भक्ति-भावनाका पोषक था। श्रीवीरसिंहजी, सिविल जज, फैजाबादने सरकारको आदेशात्मक सूचना दी— जबतक विवादका अन्तिम निर्णय न हो जाय, तबतक मूर्ति जहाँपर विराजमान है, वह वहींपर सुरक्षित रहे और उसकी सेवा-पूजादिक विधिवत् हो।

श्रीभाईजी अयोध्या पधारे और अपने प्रवचनों एवं उपदेशों द्वारा उन्होंने सरकारकी गतिविधियोंसे निराश जनता और कार्यकर्ताओंको प्रोत्साहित किया एवं आशान्वित बनाया। उस दिनों वहाँ श्रीराम-जन्म-भूमिमें पूजादिक सम्बन्धी तथा अभियोग सम्बन्धी निरन्तर व्ययकी जितनी आवश्यकता थी, इस समस्त व्ययका भार श्रीभाईजीने सानन्द और सहजमें ही उठा लिया। श्रीराम-जन्म-भूमिके इस महान कार्यके लिये आपने देशके धन-पतियोंका ध्यान भी आकर्षित किया। जन्म-भूमि सम्बन्धी इन व्ययोंके अतिरिक्त कभी-कभी विशेष व्ययकी भी आवश्यकता पड़ जाती थी। इसके लिये सबसे सरल तथा सीधा उपाय हमारे लिये गीतावाटिकाका द्वार ही था।

अभियोगके सम्बन्धमें श्रीभाईजीने अनेक ऐसे शिक्षित तथा इसलामधर्मके ज्ञाता मुसलमान बन्धुओंकी खोज की, जो सिद्धान्ततः और तर्कतः जन्म-भूमिको मुसलिम वन्दनागृह मानना इसलाम धर्मके विरुद्ध मानते और सिद्ध करते थे। जन्म-भूमिके पक्षमें वातावरण-निर्माणके लिये उन मुसलमान बन्धुओंमेंसे कुछको श्रीभाईजीने अयोध्या भी भेजा। उन्होंने अयोध्या आकर उन

विचारोंको जनताके समक्ष रखा तथा समाचारपत्रोंमें भी प्रकाशित करवाया। इतना ही नहीं, उन मुसलमान बन्धुओंने जन्म-भूमि-विरोधी मुसलिम नीति-रीतिकी भर्त्सना की। सन्तुलित चिन्तन करने वाले राष्ट्रीय विचारधारावादी मुसलमान बन्धुओंको तो श्रीभाईजीने समाजके सामने खड़ा किया ही, इसके अतिरिक्त श्रीभाईजीने देशके प्रधान प्रशासनाधिकारियों, जननेताओं एवं विद्वानोंको बार-बार पत्र लिखकर इस पुनीत कार्यमें सहयोग करनेकी प्रेरणा दी। मैं तो यही कहूँगा कि जिस प्रकार उस त्रेतायुगमें बनवासी श्रीरामजीके सहायक किष्किन्धाके संतप्रवर श्रीहनुमानजी हुए थे, उसी प्रकार इस कलियुगमें अयोध्याकी जन्म-भूमिपर श्रीराम-मन्दिरके निर्माणमें सहायक सिद्ध हुए गीतावाटिकाके संतवर श्रीहनुमानप्रसादजी। ■

श्रीनारायणचन्द्रजी गोस्वामी (कीर्तनिया)

अपरिचितके प्रति अपनापन

गीतावाटिकामें जो अखण्ड हरिनाम संकीर्तन हो रहा है, उसमें मैं हरिनाम-गायन करता हूँ। मैं सबसे पहले सन् १९६८ में आया था। अब तो बहुत जान-पहचान हो गयी है, पर तब मैं था पूर्णतः अपरिचित। किसीसे भी कोई जान-पहचान नहीं थी। उस समय मेरी धर्मपत्नी भी बंगालसे मेरे साथ आयी थी और यहाँ उसने पुत्रको जन्म दिया। परिचयका अभाव तो था ही, धनका अभाव, वस्तुका अभाव, इस प्रकार अनेक अभावोंसे मैं परेशान था। मैं सोच नही पा रहा था कि क्या करूँ। किसीसे कुछ कहनेकी हिम्मत ही नहीं हो रही थी। न जाने किसने पुत्र-जन्मकी सूचना परम वैष्णव पूज्य श्रीभाईजीको दे दी। उसी समय श्रीभाईजीने इक्यावन रुपयेकी मिठाई मँगवाकर मेरे पास भिजवा दिया और कहलवा दिया कि हरिनाम संकीर्तनमें श्रीठाकुरजीको भोग लगाकर सबको बाँट दें। यह कितने विस्मयकी बात है कि पुत्रका जन्म हुआ मेरे घर और आनन्द मना रहा था श्रीभाईजीका हृदय।

बात केवल इक्यावन रुपयेकी मिठाई तक ही नहीं रही। उन्होंने नवजात शिशुके लिये वस्त्र, औषधि एवं आहारकी भी व्यवस्था की। मैं सर्वथा नवीन एवं अपरिचित व्यक्ति था, पर श्रीभाईजीकी ओरसे सँभालकी कमी नहीं थी। श्रीभाईजीके हृदयमें मानव मात्रके प्रति जो अपनापन है, उसे देखकर मेरा मन सदाके लिये उनके श्रीचरणोंमें झुक गया। ■

श्रीकृष्णदत्तजी शर्मा

खड्डा ग्राममें

श्रीभाईजीको मैं ताऊजी मानता हूँ। मेरे पूज्य पिता श्रीगोवर्धनजी शर्मा लगभग पचास वर्षोंसे उनके निकट सम्पर्कमें रहे। श्रीभाईजीने उन्हें सगे छोटे भाईसे भी अधिक माना और जनसेवाके कार्योंमें उनका निस्संकोच सहयोग लेते रहे। श्रीभाईजीका सम्पूर्ण जीवन सेवा-कार्योंसे भरा था। कोई उनका क्या वर्णन करे? एक घटनाका उल्लेख करता हूँ। एक बार गोरखपुर जिलेके खड्डा ग्राममें आग लगी। आसपासके कई गाँव जल गये। श्रीभाईजीको पता चला वे तुरन्त मोटर

निकलवा करके चल पड़े।

वहाँ पहुँचकर अग्निकाण्डसे जले हुए दृश्यको देखकर श्रीभाईजीके नेत्र जलसे पूर्ण हो गये। उन्होंने पिताजीसे कहा— गोवर्धनजी, आप यहीं रहें, मैं गोरखपुर जाकर प्रबन्ध करता हूँ। आप नालीदार टीनोंसे, वस्तु-अनाज आदिसे इनकी सहायता कीजिये। रुपये एक बार यहाँके किसी व्यापारीसे उधार ले लें, गीताप्रेसके नाम लिखवाकर।

ऐसा था उनका हृदय। वे कहने लगे— हम पक्के मकानोंमें रहते हैं और इन बेचारोंके झोपड़े थे, वे भी जल गये।

करुणा उनमें कूट-कूटकर भरी थी। किसीके कष्टको देखकर वे स्वभाविक रूपसे आर्द्र हो जाते थे। श्रीभाईजी पिताजीसे बराबर कहते थे— *सेवा-भाव मनमें होता है, सेवाकी दुकान नहीं होती।* ■

श्रीमदनलालजी जालान

वैवाहिक प्रथाओंमें सुधार

२२ अक्टूबर १९६७ को पूज्य श्रीभाईजीके दौहित्र प्रिय श्रीसूर्यकान्तकी सगाई हुई। सगाईके अवसरपर जो देवाराधन आदि शास्त्रसम्मत विविध धार्मिक कृत्य होते हैं, उनको सम्पन्न करानेके लिये कन्यापक्षकी ओरसे पं. श्रीमूलराजजी शास्त्री कानपूरसे आये थे और वरपक्षकी ओरसे पं. श्रीरामजीलालजी शास्त्री उपस्थित थे। सगाईके नेगचार होनेमें एक-दो घंटेका विलम्ब देखकर दोनों ही विप्रवर श्रीभाईजीके कमरेमें बैठ गये तथा विवाहकी तिथि तथा मुहूर्तपर परस्परमें बातचीत करने लगे। शुभ-विवाहका मंगल-संस्कार गोधूलि वेलाका हो या मध्य रात्रिका, इसीपर विचार-विनिमय हो रहा था। श्रीभाईजी चाहते थे कि मंगल-संस्कार गोधूलि वेलाका हो, जिससे अन्य वैवाहिक नेगचार सुविधा पूर्वक हो जायें। अपने इस विचारको व्यक्त करते हुए श्रीभाईजीने कहा— हमें कुछ लेना-देना करना नहीं है। दहेज लेना नहीं है। मर्यादानुसार और सादगी सहित विवाह हो जाय, यही कामना है।

कन्यापक्षके पण्डित श्रीमूलराजजीने श्रीभाईजीके विचारोंकी सराहना करते हुए कहा— यह तो बहुत ही अच्छी बात है। आपका दृष्टिकोण और प्रयास सुधारवादी है, यह बड़ा उत्तम है।

पण्डितजीको कुछ अधिक कहनेका अवसर नहीं देकर श्रीभाईजी तुरंत बीचमें बोल पड़े— *सुधारवादी नहीं, आध्यात्मिक। आजके सुधारवादी दहेजको समाप्त करनेके साथ-साथ देवी-देवाराधन भी समाप्त करना चाहते हैं। वे आराधनाको गौण समझते हैं। ऐसा बिलकुल नहीं होना चाहिये। शुभ-विवाहके सम्पन्न होनेमें शास्त्र सम्मत जितने भी धार्मिक कृत्य होने चाहिये, अवश्य हों, विधि-विधानसे हों और सम्यक् प्रकारसे हो, किन्तु आडम्बर नहीं हो। फिजूलखर्ची नहीं हो।*

श्रीभाईजीके विचारोंने पण्डित श्रीमूलराजजीकी चिन्तन-पद्धतिको आन्दोलित कर दिया। उन्होंने पूछा— क्या आप दहेज बिलकुल नहीं लेंगे?

श्रीभाईजीने स्पष्टीकरण किया— दहेजके नामपर कुछ भी नहीं लेना है। पिता अपनी कन्याको जो देना चाहे, दे, परंतु वह भी एक सीमातक, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। 'दात', 'आँगी-मेवा', 'हरा-भरा', 'बड़ी मिलनी' यह सब कुछ नहीं। इस फिजूलखर्ची और वृथा-आडम्बरको समाजसे दूर करनेकी बड़ी आवश्यकता है। हाँ, नेगचारके पालनके रूपमें जहाँ एक या दो, पाँच या दस रुपया देना है, भले ही दिया जाय, परंतु देशकी ऐसी स्थिति नहीं है कि समाज इस प्रकारके रीति-रिवाजोंको सहन कर सके।

पं. श्रीमूलराजजी श्रीभाईजीके विचारोंसे बड़े प्रभावित हुए। श्रीभाईजीके विचार और निर्णयका केवल अनुमोदन ही नहीं, हृदयसे समर्थन करते हुए उन्होंने कहा— आप लोग समाजके अग्रगण्य हैं। जैसा आप करेंगे, वैसा ही समाज करेगा। भगवान करे, आपके विचारों और कार्योंके अनुसार समाज आचरण करे।

गीतावाटिकाके पंडालमें इस बातचीतके बाद प्रिय सूर्यकान्तकी सगाईका नेगचार आरम्भ हुआ। वरपक्ष एवं कन्यापक्षके पण्डितोंने विधिवत् भगवान गणेश एवं अन्य देवी-देवताओंका पूजन कराया। सभीके मनमें हर्षोल्लास था। पंडालमें परिवारके लोग तो थे ही, शहरके प्रतिष्ठित नागरिक भी उपस्थित थे। सारे नेगचार हुए, परंतु सगाई होनेकी खुशीमें सामाजिक परम्परानुसार बाँटी जाने वाली मिठाई नहीं बाँटी गयी। मिठाईको नहीं बाँटनेका निश्चय पहले ही हो चुका था। कुछ दिनों पहले जब श्रीभाईजीने इस निश्चयको प्रकट किया था, तब श्रीरामदासजी जालानने श्रीभाईजीसे थोड़ा विनम्र विनोद भी किया— यह तो बड़ा 'सुन्दर' ढंग है कि पहले तो लोगोंसे काम करवा लिया जाय और फिर उनको खानेके लिये मिठाई भी न दी जाय, भले यह मिठाई सगाईकी खुशीकी ही हो।

श्रीरामदासजीसे श्रीभाईजीने कहा— लड़केका जब विवाह हो, उस मंगल अवसरपर भाई-बन्धु मिठाई अवश्य खायें, परंतु लड़केकी सगाईके अवसरपर मिठाई खिलानेकी परम्पराको डालकर और चलाकर साधारण स्तरके गृहस्थपर व्यर्थके व्ययका भार क्यों डाला जाय?

कुछ दिनों पहले श्रीरामदासजी जालानने जो मधुर विनोद किया था, वह बात श्रीभाईजीको याद थी और उस बातको ध्यानमें रखते हुए सगाईके नेगचार सम्पन्न होनेके बाद श्रीभाईजीने उठकर लोगोंके बीच अपने विचार प्रकट किये— *अपनी हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्ममें विवाह भी एक धार्मिक कृत्य है। वे सभी धार्मिक कृत्य पूर्ण विधि-विधानके साथ सम्पन्न होने चाहिये। शास्त्रकी विधि एवं मर्यादाका पूर्णतः पालन करना चाहिये, परंतु जहाँतक बन पड़े व्यर्थके आडम्बरसे दूर रहना चाहिये।* अपने समाजमें ऐसी प्रथा चल पड़ी है कि सगाईके बाद आने वाले स्वजनोंको मिठाई खिलायी जाय। पहले ऐसी प्रथा नहीं थी। इधर बीचमें यह प्रथा चल पड़ी। जहाँतक मिठाई खानेका प्रश्न है, यह घर आपका है और सभी जी भरकर खायें, खूब खायें, परंतु सगाईकी खुशीके नामपर मिठाईकी कोई व्यवस्था नहीं है। यह केवल इसीलिये कि समाजमें आडम्बरके नामपर चलने वाली और दूर-दूरतक फैली हुई इन प्रथाओंको समाप्त किया जाय। यदि लड़केकी सगाईकी खुशीमें व्यय करना ही है तो श्रेष्ठ कार्यमें व्यय करें। आज जो आये हुए स्वजन हैं, उनको मिठाई नहीं खिलाकर धन बचाया नहीं जा रहा है, अपितु इस

धनका प्रयोग अन्यत्र होगा और १००१ रुपया आर्त-जनकी सहायतामें व्यय किया जायेगा। अब आनेवाले अपने स्वजन यह मन-ही-मन लें कि उनको मिठाई दे दी गयी और सबने खा ली।

श्रीभाईजीके अन्तिम वाक्यको सुनकर सभी लोग विहस पड़े। ■

श्रीपुरुषोत्तमदासजी सिंहानिया

मातृ-सेवा-परायण

पूज्या माँके प्रति पूज्य श्रीभाईजीकी बड़ी श्रद्धा थी। भले वह सौतेली थी, पर श्रीभाईजीने उसे भी जन्मदात्री माँसे अधिक सम्मान दिया। माँजीका स्वभाव थोड़ा कड़ा था, इसके बाद भी श्रीभाईजीका सदा प्रयत्न यही रहता था कि माँजीकी रुचिके विरुद्ध कोई काम न हो। जब माँजीका शरीर वृद्ध हो गया तो श्रीभाईजीने उनकी जैसी सेवा की, उस सेवा-भावनाको देखकर आश्चर्य होता था। 'थूकनेकी इच्छा होते ही थूक हथेलीमें ले लेना' यह कहावत पूर्णतः चरितार्थ होती थी श्रीभाईजीकी सेवा-तत्परताके बारेमें। श्रीभाईजीने देखा कि अब उनका शरीर अधिक दिन नहीं रहनेवाला है तो वे माँजीको वाराणसी ले गये और मीर घाटपर ठहरे। यह बात सन् १९४६ के जनवरी मासकी है।

इन्हीं दिनों वाराणसीमें अँगरेज संन्यासी स्वामी श्रीश्रीकृष्णप्रेमजी (आदरणीय श्रीरोनेल्ड हेनरी निक्सन महोदय) आये हुए थे। आप हिमालयकी बहुत ऊँचाईपर स्थित अल्मोड़ा जिलेके घोर जंगली क्षेत्रमें निर्मित अपने 'उत्तर वृन्दावन' नामक आश्रममें रहते हुए श्रीराधाकृष्णकी भक्ति-भावनामें लीन रहा करते थे। आप उस पर्वतीय शिखरसे उतरकर श्रीजगन्नाथपुरी जा रहे थे। बीचमें भगवान श्रीविश्वनाथके दर्शनार्थ एव पूज्य श्रीमहामनाजी (पूज्य श्रीमदनमोहनजी मालवीय) से संभाषणार्थ आप वाराणसी दो-तीन दिनके लिये रुक गये थे। आप एक साक्षात्कारी महात्मा थे। स्वामी श्रीश्रीकृष्णप्रेमजीके लेख प्रायः कल्याणमें छपते रहते थे। श्रीभाईजीको वाराणसीमें उपस्थित जानकर स्वामी श्रीश्रीकृष्णप्रेमजी उनसे मिलनेके लिये आये। श्रीभाईजीने बड़े प्रेमसे उनके साथ संभाषण किया। स्वामी श्रीश्रीकृष्णप्रेमजीके अतिरिक्त प्रज्ञा चक्षु स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज, वृद्ध संत श्रीसतीशचन्द्रजी मुखर्जी आदि-आदि महात्मा भी श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये पधारे। श्रीभाईजी संतों-महात्माओंके सत्कार-सम्मानमें समय देते हुए भी पूज्या माँजीकी सेवा-शुश्रूषाके कार्यमें सतत सावधान रहते थे।

माँजीको अत्यधिक कष्ट हो रहा था। माँजीके पास ही स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज बैठे हुए थे। माँजीके सीमातीत कष्टको देखकर स्वामीजी महाराजसे पूछा गया— माँजीके लिये अब क्या करना चाहिये ?

कुछ देर विचार करनेके बाद स्वामीजी महाराजने कहा— इनके कल्याणके लिये मन-ही-मन शुभ संकल्प करना चाहिये।

गोरखपुरसे आये हुए भाई श्रीकन्हैयालालजी जालान माँजीके अत्यधिक कष्टसे बड़े व्यथित थे। उनको स्वामीजी महाराजका सुझाव बड़ा प्रिय लगा। स्वामीजी महाराजके चले जानेके थोड़ी

देर बाद उन्होंने श्रीभाईजीसे आग्रह पूर्वक निवेदन किया— माँजीका कष्ट-भोग देखा नहीं जा रहा है। कष्टसे विमुक्तिके लिये आप भगवानसे प्रार्थना कीजिये।

अन्य भाइयोंने भी श्रीभाईजीसे ऐसा ही अनुरोध किया। फिर श्रीभाईजीने क्या किया, इसका तो पता नहीं, पर शामके समय माँजीका कष्ट कम हो गया। माँजी खाटपर ऐसे सुखपूर्वक लेटी थीं, मानो नींद ले रही हों। इससे सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई, पर यह प्रसन्नता दूसरे दिन तिरोहित हो गयी। दूसरे दिनके सूर्योदयसे उस कष्ट-भोगने फिर भीषण रूप ले लिया। यह देखकर श्रीभाईजीने कहा— आप लोगोंके आग्रहपर माँजीका कष्ट कम करनेके लिये मैंने कल भगवानसे प्रार्थना की थी। इससे एक बार कष्ट कम हुआ, पर फिर उसने वैसा ही रूप धारण कर लिया। इससे यह मालूम होता है कि भगवानकी इच्छा ऐसी ही है। सच पूछा जाय तो कष्टका निवारण करनेके लिये भगवानसे प्रार्थना करना एक प्रकारसे भूल ही है। ऐसी प्रार्थना तो परम सुहृद भगवानकी मंगलमयी योजनाके प्रति अविश्वासका परिचय देता है। भगवान वही करते हैं, जो जीवमात्रके लिये कल्याणकारी होता है। हमलोगोंको तो यही प्रार्थना करनी चाहिये कि हे नाथ आप वही करें, जो परम मंगल हो।

भगवानके मंगलमय विधानपर श्रीभाईजीकी आस्थाको देखकर हमलोगोंको बड़ी प्रेरणा मिली। माँजीकी अत्यधिक कष्ट-भोग झेलते हुए देखकर भी भगवानके विधानकी मंगलमयतापर श्रीभाईजीकी आस्था अद्भुत थी और अद्भुत थी मातृ-सेवामें क्षण-प्रति-क्षण सावधानीपूर्वक उनकी परम तत्परता। उनकी अद्भुत भगवदास्था और अद्भुत सेवातत्परता देखकर सभी लोग नत-मस्तक और विस्मित थे। माँजीकी सेवा-शुश्रूषामें श्रीभाईजीके लिये सतत सहयोगी सिद्ध हो रहे थे पण्डित श्रीगोवर्धनजी शर्मा, भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल तथा श्रीरामस्नेहीजी।

श्रीभाईजीकी सेवासे माँजी बड़ी प्रसन्न थीं और चोला परित्याग करनेके पूर्व उन्होंने श्रीभाईजीको बहुत-बहुत शुभाशीष दिया। वाराणसीमें दस-ग्यारह दिन रहनेके बाद माँजीने २३ जनवरी १९४६ के दिन महाप्रयाण किया। श्रीभाईजीने सारा क्रिया-कर्म बड़ी श्रद्धाके साथ किया। श्रीभाईजी जैसे संतकी माँजी होनेसे वे तो पहलेसे ही कृतार्थ थीं, पर लोकादर्शकी रक्षाके लिये श्रीभाईजीने वह सब कुछ किया, जो दिवंगतात्माके लिये करना चाहिये। ■

श्रीउमेशकुमारजी सिंहानिया

[१] वृक्षको जल दें

मई १९६७ में गोविन्द भवन ट्रस्टकी बैठकमें भाग लेनेके लिये ट्रस्टी लोग गीताभवन (स्वर्गाश्रम) आये और वे लोग बैठककी कार्यवाही समाप्त होनेपर अपने-अपने स्थानको लौट गये। सदस्योंके मनमें कार्यके प्रति अपेक्षित उत्साह नहीं था। कोई कहता था चुरुका ऋषिकुल बन्द कर दो और कोई कहता था प्रकाशनका काम कम कर दो। पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का इस प्रकारकी सभी बातोंसे विरोध था। उन्होंने कहा— पूज्य श्रीसेठजी जिस वृक्षको खड़ा कर गये, उस वृक्षकी कभी इस शाखाको और कभी उस

शाखाको तोड़ने या काटनेकी बात क्यों करें ? अन्य संस्थाके सदस्योंमें कार्यका उत्साह है और वे संस्थाके कार्यका विस्तार कर रहे हैं और उनकी तुलनामें एक हमलोग भी कैसे हैं, जो कार्यको घटानेकी बात कहते हैं ? जो जैसा सोचता है, वैसा ही हो जाता है। यदि हमारे चिन्तनकी पद्धति यही रही तो निश्चित ही हमारा ह्रास होगा। चाहिये यह कि हमलोग पूज्य श्रीसेठजीके द्वारा लगाये हुए वृक्षको जल दें। इसीमें अपना और अपनी संस्थाका, समाजका एवं हिन्दू धर्मका, बल्कि मानव मात्र का हित है। *शुभ चिन्तन मानवमात्रके लिये कल्याणकारी है।*

[२] संतोचित सरस विनोद

सन्-संवत् ठीकसे याद नहीं, पर अनुमानतः सन् १९६० के आस-पासकी बात होनी चाहिये। गीतावाटिकामें सम्पादकीय विभागके कार्यालयके भवनका विस्तार करनेकी दृष्टिसे निर्माण-कार्य हो रहा था। कल्याण, कल्याण-कल्पतरु तथा प्रकाशन सम्बन्धी कार्यके विस्तारके साथ-साथ भवनके विस्तारकी आवश्यकताकी अनुभूति अधिकाधिक होती जा रही थी। निर्माण-कार्य काफी हो चुका था। नव-निर्मित भागको दिखलानेके लिये बाबूजीने पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजको बुलाया। पूज्य स्वामीजी आये तथा बाबूजी उन्हें अपने साथ नव-निर्मित भागको दिखलानेके लिये ले गये। बाबूजी स्वामीजीको छतपर ले जाना चाहते थे, पर सीढ़ीके नीचेका हिस्सा अभी नहीं बना था, एक-दो सीढ़ीका बनना बाकी था। पूज्य स्वामीजी ठीक प्रकारसे चढ़ सकें, एतदर्थ बाबूजी ईंटें रखने लगे। बाबूजीको ईंट-पर-ईंट रखते देखकर स्वामीजीने मधुर विनोद किया– क्या आप मेरे लिये 'सीढ़ी' बना रहे हैं ?

तुरन्त बाबूजीने विनीत हृदयकी विनम्र वाणीमें उत्तर दिया– यह तो मैं अपने लिये बना रहा हूँ। दूसरोंके लिये बनानेकी क्षमता मुझमें भला कहाँ ?

पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके साथ मधुर विनोदका एक प्रसंग और है। २० मई १९६७ को एकादशी थी, अतः गीताभवन (स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश) में रात्रिके समय हरिनाम संकीर्तन हो रहा था। प्रत्येक एकादशी, पूर्णिमा और अमावस्याकी रात्रिको कीर्तन हुआ करता है। मंचपर बैठे हुए पहले श्रीईश्वरीप्रसादजी गोयन्दकाने कीर्तन कराया। पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजी तथा बाबूजी नीचे बैठे हुए थे। श्रीईश्वरीप्रसादजी गोयन्दकाका कीर्तन समाप्त होनेपर, उन्होंने बाबूजीसे प्रार्थना की– आप मंचपर पधारें।

बाबूजीने स्वामीजीसे कहा– स्वामीजी ! आप भी चलिये। आइये, कीर्तन करें।

स्वामीजीने कहा– मेरा जानेका विचार है। मुझे तो नींद आ रही है, मैं आराम करना चाहता हूँ।

बाबूजीने स्वामीजीसे निवेदन किया– केवल आपको ही नींद आ रही है क्या ? मुझे भी तो आ रही है। मैं भी तो आराम करना चाहता हूँ।

ऐसा कहकर स्वामीजीका हाथ पकड़कर मंचपर ले जाने लगे। स्वामीजी उठ गये तथा बाबूजीके साथ मंचपर जाने लगे। मंचपर जाते-जाते बाबूजीने स्वामीजीसे विनोद किया– आप तो यही कीर्तन करें, ... आ-राम, आ-राम, आ-राम।

सभी समीपस्थ लोग मुस्कुरा पड़े।

[३] बनियासे महात्मा

पूज्य श्रीबाबूजी तथा पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजीके दर्शनके लिये परमार्थ निकेतन (स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश) गये। स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजीका स्वास्थ्य खराब था। वहाँपर और भी संत आ गये, स्वामी श्रीभजनान्दजी, स्वामी श्रीचक्रपाणिजी आदि।

प्रयत्न इस बातका चलने लगा कि श्रीशुकदेवानन्दजी मौन ले लें, वे बोलें नहीं, जिससे उनकी तबीयतमें सुधार आये। इसके लिये श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने बड़ा आग्रह किया। बाबूजी भी इसके लिये आग्रह करने लगे। फिर श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने कहा— क्या करें, जो अन्दर चिन्तन होता है, वही बाहर आये बिना रहता नहीं। मैंने कई बार कान पकड़ा कि अब कोई सम्मेलन नहीं करूँगा, पर पहले एक सम्मेलन करता था तो अब दस सम्मेलन करता हूँ। पहले थोड़ी भीड़ होती थी तो अब बहुत अधिक होती है। अब तो कई एकड़ जमीनमें मैं खेती कर रहा हूँ। हम तो पूरे बनिया हो गये।

फिर बाबूजीकी ओर मुँह करके श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी कहने लगे— आप तो बनियासे महात्मा हो गये और हम महात्मासे बनिया हो गये। एक राजाकी गाथा है। उसका एक बड़ा मित्र संन्यासी था। दोनोंकी मृत्यु हुई। मृत्युके बाद दूसरे जन्ममें राजा संन्यासी हो गया और संन्यासी राजा हो गया। दोनोंमें फिर बड़ी मित्रता हो गयी। दूसरे जन्मके राजाने पूछा कि यह बात कैसे हुई? इसके उत्तरमें संन्यासी बोला कि पहले वाले जन्ममें मैं राजा था और निरन्तर मित्र संन्यासीका चिन्तन करता था, अतः मरनेपर संन्यासी हो गया। इसी तरह संन्यासी राजा हो गया। यही बात भाईजीके साथ है। हम महात्मासे बनिया हो गये और भाईजी बनियासे महात्मा हो गये।

इस पर सभी मुस्करा पड़े। फिर श्रीब्रह्मचारीजीने कहा— कोई बात नहीं, हम इस हालमें भी मस्त हैं।

[४] संन्यासी वेषको प्रणाम

१६ मई, १९६७। स्वर्गाश्रममें शामको गंगा किनारे टहलकर बाबूजी आये। अपने निवास-स्थान डालमिया कोठीके बरामदेमें बैठकर वे स्वामी श्रीसदानन्दजीकी प्रतीक्षा करने लगे। स्वामी श्रीसदानन्दजी, परमार्थ निकेतनके संस्थापक स्वामी शुकदेवानन्दजीके शिष्य हैं तथा 'परमार्थ' पत्रिकाके सम्पादक हैं। स्वामी श्रीसदानन्दजी अपने पूर्वाश्रमके पहले 'कल्याण' कार्यालयमें कार्य करते थे। अब परमार्थ निकेतनके प्रधान प्रबन्धकोंमेंसे एक आप भी हैं। निर्धारित समयसे जब समय अधिक होने लगा तो बाबूजी एक प्रकारसे निराश होने लगे। बाबूजी उठने ही वाले थे कि स्वामी श्रीसदानन्दजी आ गये। बाबूजीने उठकर स्वागत किया तथा भूमिपर माथ रखकर प्रणाम किया। स्वामीजी पहले ही झुककर प्रणाम कर रहे थे।

स्वामीजीने मस्तक उठाकर देखा कि बाबूजी भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम कर रहे हैं, वे संकोचमें गड़ गये। गड़ना स्वाभाविक था। जिनके नीचे और जिनके कार्यालयमें कार्य किया, वे ही प्रणाम करें, कोई भी संत हृदय इसे कैसे देख सकता है? स्वामीजीने कहा— भाईजी! आपने

ठीक नहीं किया।

बाबूजीने पूछा— क्या ठीक नहीं किया?

स्वामीजीने संकोचमें दबते हुए कहा— क्या बच्चेको प्रणाम करना उचित है?

स्वामीजीका निवेदन सही था। बाबूजीने कहा— आप एकदम ठीक कहते हैं। आप मेरे लिये बच्चे ही हैं, पर मैंने बच्चेको प्रणाम नहीं किया है। मैंने तो गेरुए वस्त्रको प्रणाम किया है। यह भी हमारी एक मर्यादा है।

भाव-विभोर स्वामी श्रीसदानन्दजी कुछ बोल नहीं पाये।

[५] सिद्धान्तवादिता

नवम्बर १९६७ में गीतावाटिकामें प्रवचन देते हुए पूज्य बाबूजीने अपना एक पुरातन संस्मरण सुनाया कि किस प्रकार लोग बाबूजीकी सिद्धान्त-निष्ठाके कारण उनसे किनारा कर लेते थे। घटना सन् १९२० और १९२४ के बीचकी है।

बाबूजीने खद्दरके वस्त्रोंका प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। आजकल तो बढ़िया-से-बढ़िया और महीन-से-महीन खादी प्राप्त हो जाती है, जिसके सामने मिलके कपड़े भी मात खाते हैं, परंतु उन दिनोंकी खादी टाटके बराबर होती थी। खादीके वस्त्रोंका प्रयोग करना भी एक अत्यधिक साहस और सिद्धान्तनिष्ठाकी बात मानी जाती थी।

बाबूजीका समाजमें सम्मान तो था ही, एक घनिष्ठ परिचित व्यक्तिने बाबूजीसे कहा— भाईजी! आज सूरदासका अभिनय प्रस्तुत किया जायेगा। आप देखने चलेंगे क्या?

बाबूजीने अपनी स्वीकृति दे दी। उन महाशयने कहा— भाईजी! अभिनय आठ बजे प्रारम्भ होगा। मैं आपके पास सात बजेके लगभग आ जाऊँगा। आप मेरे साथ मेरी गाड़ीमें बैठकर चले चलियेगा।

शामको बाबूजी उनकी प्रतीक्षा करने लगे, परंतु वे आये नहीं। अधिक समय निकलता देखकर बाबूजी एक-दो और साथियोंको साथ लेकर अभिनय देखनेके लिये चले गये। वहींपर उनकी उन महोदयसे भी भेंट हो गयी। बाबूजीने उनसे पूछा— भैया! मैं तो तुम्हारी राह देख रहा था। तुम सात बजे कैसे नहीं आये?

वे महोदय बड़े सरल हृदयके थे। उन्होंने मनकी सच्ची बातका निवेदन करते हुए कहा— यदि आप क्षमा कर दें तो आपको सच-सच बता दूँ।

बाबूजीने कहा— क्षमाकी क्या बात है। अवश्य बताओ।

बाबूजीसे आश्वस्त होकर उन महोदयने बताया— भाईजी! आप तो सिद्धान्त-प्रेमी हैं और आप बहुत मोटी खादीका प्रयोग करते हैं। आप मेरे बगलमें बैठेंगे तो लोग क्या कहेंगे। आपकी मोटी खादीकी बातको चलाकर लोग मेरी भद्द उड़ा सकते हैं। इसी संकोचसे मैं आपको लेनेके लिये नहीं आया।

उनकी सत्यवादिताको देखकर बाबूजी बहुत प्रसन्न हुए। साथ ही खादीके प्रति उनकी निष्ठा और भी सुदृढ़ हो गयी कि समाज भले स्वीकार या सत्कार करे या न करे, अपनेको वही करना है, जो उचित है। ■

श्रीजगदम्बाप्रसादजी मिश्र

स्वजनोंका संतोष

पूज्य श्रीबाबूजीके अन्तिम दिनोंकी एक बात मुझे याद आ रही है। उन्हें कैंसर रोग हो गया था। उनका परिचय अनेक डाक्टरों और वैद्योंसे था। सबसे बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध होनेसे सभी चिकित्सक प्यारमें खिंचे-खिंचे बाबूजीको देखनेके लिये आते थे और अपनी समझके अनुसार दवा भी देते थे। उन सभीकी दी हुई दवाको बाबूजी खा भी लिया करते थे, जिससे उनके प्यारका सम्मान हो जाय।

बाबूजी कभी आयुर्वेदिक, कभी ऐलौपैथिक, कभी होमियोपैथिक दवा ले लेते थे तो इसे देखकर श्रीजयदयालजी डालमियाने उनसे कहा— आप सबकी दवा खा लेते हैं, यह बात कहाँतक उचित हैं? इस प्रकार खानेसे कोई दवा एक दूसरेके विपरीत पड़ सकती है और तकलीफ बढ़ सकती है।

इसपर बाबूजीने बड़े प्यारसे उत्तर दिया— तकलीफका बढ़ना या घटना और शरीरका रहना या जाना तो प्रारब्धके अधीन है। होगा तो वही, जो होने वाला है, पर दवा देनेवाले लोग आत्मीयताके साथ दवा देते हैं और उनकी दवा ले लेनेसे उनको संतोष हो जाता है। यदि किसी दवाके प्रयोगसे सुधार हो गया तो उनको प्रसन्नता होगी। मेरे लिये तो स्वजनोंकी प्रसन्नता और संतोष ही महत्त्वपूर्ण है। ■

श्रीपरमेश्वरप्रसादजी दीक्षित

नव वर्षारम्भ

मैं दोपहरको श्रीभाईजीके पास बैठा हुआ था। श्रीभाईजी डाक देख रहे थे। उस समय मैंने श्रीभाईजीसे कहा— आज तो ३१ दिसम्बर हो गया। कलसे नये वर्षका आरम्भ होगा। नव वर्षकी शुभकामना भेजनी चाहिये।

श्रीभाईजीने कहा— आप भेजिये। मैं क्यों भेजूँ? मेरा नया वर्ष अभी थोड़े ही आया है। मेरा तो नव वर्ष तीन मास बाद आयेगा। हमलोग तो हिन्दू हैं और अपने लोगोंके नव वर्षका आरम्भ विक्रम संवत्‌के प्रथम दिनसे होता है, ईसाई संवत्‌से नहीं। ■

पं. श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री (मानस-कथावाचक)

अभिनन्दनीय व्यक्तित्व

बात बहुत पुरानी है। मेरे पूज्य पितामह श्रीवामदेवजी मिश्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें संस्कृत-साहित्य-विभागाध्यक्ष थे। मेरे पितामहजी विश्वविद्यालयके संस्थापक परमपूज्य महामना श्रीमदनमोहनजी मालवीयके परम अन्तरंग एवं सम्मान्य निज जन थे। ऐसा प्रायः हुआ करता था कि पितामहजी श्रीमहामनाजीसे मिलनेके लिये उनके आवासपर चले जाया करते थे। एक बार मेरे पितामहजी पूज्य श्रीमहामनाजीके भवनपर बैठे हुए उनसे कुछ आवश्यक चर्चा कर रहे थे। मैं भी वहाँ पर बैठा हुआ था। इसी समय परमादरणीय श्रीभाईजी (परम सम्मान्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) पूज्य श्रीमहामनाजीसे मिलनेके लिये आये। आते ही श्रीभाईजीने पूज्य महामनाजीको चरण छूकर प्रणाम किया और इसके उपरान्त मेरे पितामहजीको।

श्रीभाईजीके आते ही वह चर्चा स्थगित हो गयी। जब श्रीभाईजीने पितामहजीको प्रणाम कर लिया तो श्रीमहामनाजीने मुझे संकेत द्वारा श्रीभाईजीके प्रति प्रणाम करनेको कहा। मैं उन्हें प्रणाम करूँ, इसके पहले ही श्रीभाईजीने मुझको प्रणाम कर लिया। उन्होंने इतनी शीघ्रतासे प्रणाम कर लिया कि मुझे प्रणाम करनेका अवसर ही नहीं मिल पाया। प्रणाम करते-करते श्रीभाईजीने कहा— यह भला क्या उचित है एक विद्वान ब्राह्मण मुझ साधारणसे वैश्यको प्रणाम करे?

पूज्य श्रीमहामनाजीने श्रीभाईजीका परिचय दिया। मैं श्रीभाईजीका नाम तो सुना करता था, पर दर्शन करनेका यह पहला ही अवसर था। प्रथम दर्शनमें ही उनके दैन्य-भावसे मैं बड़ा प्रभावित हुआ। उनकी ऐसी ब्रह्मण्यता देखकर मैं विस्मय करने लगा। श्रीभाईजीका परिचय देकर पूज्य श्रीमहामनाजीने हम पितामह-पौत्रका परिचय दिया। मेरा परिचय देते हुए उन्होंने कहा— आप श्रीवामदेवजीके पौत्र हैं। संस्कृत साहित्यका अध्ययन तो करते ही हैं, इसके साथ-साथ श्रीमद्भागवत-श्रीरामायणजीका भी अध्ययन करते हैं तथा प्रवचन भी देते हैं।

मेरा परिचय देकर पूज्य महामनाने मुझे आदेश दिया— कुछ मानस-कथा सुनाओ श्रीभाईजीको।

यह मेरा परम सौभाग्य था, जो पूज्य श्रीमहामनाजीके आदेशपर मुझे भक्त-हृदय श्रीभाईजीको श्रीरामचरितमानसके कतिपय प्रसंग सुनानेका सुभग-सुखद-शुभद अवसर मिला। त्रिपुरारि भगवान विश्वनाथकी कृपासे मैं लगभग आधे घंटे तक *'राम ते अधिक राम कर दासा'* पर बोलता रहा। इस अवधिमें श्रीभाईजीकी भावमयता एवं विभोरता दर्शनीय थी और वह मेरे पूर्वानुभूत विस्मयको अधिकाधिक सघन बनाती जा रही थी। 'लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हसि।'

पूज्य श्रीमहामनाजीकी उपस्थितिमें ही श्रीभाईजीने मानस-प्रवचनपर बड़ा साधुवाद दिया

तथा गीताप्रेस पधारनेके लिये अनुरोध किया। श्रीभाईजीका यह प्रथम दर्शन मेरे मानस-पटलपर स्थायी छाप छोड़ गया। उनकी ब्रह्मण्यता, आत्म-विभोरता, अविरल भावार्द्रताकी स्मृति होते ही अन्तर उनका अभिनन्दन करने लगता है। ■

श्रीपद्मकुमारजी थरड़

[१] मुस्कानकी अनोखी छवि

आज मैं गृहस्थाश्रमी हूँ। संतानके रूपमें भगवानका कृपा-प्रसाद प्राप्त है और मेरा गृहस्थ जीवन साधारणतः सुखी है, पर मैं जो बात कहने जा रहा हूँ, वह तो उस समय की है, जब मेरी आयु मात्र छः या सात वर्षकी रही होगी। परमपूज्य नानाजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) कलकत्ते आये हुए थे और ठहरे हुए थे सम्मान्य श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाके घरपर। सुबहके समय मेरे पिताजी पूज्य नानाजीके दर्शनार्थ श्रीकानोड़ियाजीके घर जाने लगे तो मुझे भी अपने साथ ले लिये।

लगभग दस बजे हमलोग श्रीकानोड़ियाजीके घरपर पहुँचे। मकानकी सीढ़ियोंसे चढ़कर ज्यों ही हमलोग ऊपर पहुँचे, वहीं चार-पाँच कदमकी दूरीपर पूज्य नानाजी खड़े हुए मिल गये। उस समय उनके मुख मण्डलपर जैसी प्रसन्नता थी, उनके नेत्रोंसे जैसा प्यार झर रहा था और सबसे बड़ी बात यह कि उनके अधरोंपर जैसी मधुर मुस्कान थी, उसकी मनोहारिणी छवि आज भी मेरे मानस-पटलपर ज्यों-की-त्यों अंकित है। बात साधारण होकर भी साधारण नहीं है, इसीलिये कि आज पैंतीस वर्षसे भी अधिक हो गये, पर उनके अधरोंपर खेलती हुई मुस्कानकी वह अनोखी छवि कभी भुलाये नहीं भूलती। उस समय मैं एक अबोध बालक था और मुझ बालकके मनपर अंकित उस समयकी छवि आजतक धूमिल न हो, यह मेरे लिये आश्चर्यका विषय कल भी था और आज भी है। उस मुस्कानमें न जाने कैसी सम्मोहिनी भगवदीय आभा थी, जो आज भी स्मरण मात्रसे मेरे अन्तरको आह्लादित करती रहती है। मैं जब कभी कहींपर भागवत-कथा अथवा मानस-कथा सुनता हूँ और उस कथामें जब भगवान श्रीकृष्ण और भगवान श्रीरामकी रूप- माधुरीका वर्णन किया जाता है और उसमें भी जब मोहिनी मुस्कानका वर्णन होता है, तब उस वर्णनको सुनते ही बरबस मुझे पूज्य नानाजीकी मधुर मुस्कानकी याद हो आती है, जिसमें एक सहज आकर्षण था। अधिक क्या कहूँ? *'सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा'*।

[२] नगण्य बातको भी महत्त्व

सन् १९५७ के आस-पासकी बात होनी चाहिये। मैं अपने पिताजीके साथ रतनगढ़ गया था। तब पूज्य नानाजी रतनगढ़में ही विराज रहे थे। इस बार हमलोग बहुत दिनोंतक रतनगढ़में रहे और सदा ही पूज्य नानाजीके दर्शन एवं समीपताका अवसर मिलता रहा। पूज्य नानाजीका प्यार भी मेरे प्रति अनोखा था और बार-बार मनमें ऐसी भावना उठा करती थी कि क्या मुझ बालकको ही सबसे अधिक प्यार करते हैं। पूज्य नानाजीके वात्सल्यको देखकर मैं फूले नहीं समाता था। मेरे लिये एक बार उन्होंने कहा भी था कि यह तो अपना ही टाबर (बच्चा) है।

उनका कोई-सा भी काम हो, उसे तुरंत कर देनेमें मैं अपनेको धन्य मानता था। उनके तनिक-से संकेतको मैं अपने लिये आदेश समझता था। बस, मनमें सदा चाह बनी रहती थी कि पूज्य नानाजीका सामीप्य अधिक-से-अधिक मिलता रहे।

पूज्या नानीजीने सालासर ग्रामके श्रीहनुमानजी महाराजके यहाँ कोई मनौती बोल रखी थी। नानीजी अस्वस्थ चल रही थी, इसके बाद भी एक दिन सालासर जानेका कार्यक्रम बन गया। यात्रा काफी लम्बी करनी थी और सूर्योदयके समय चलकर सूर्यास्ततक वापस रतनगढ़ आ जाना था। पूज्य नानाजी सालासर जाने वाले हैं, यह देखकर कई लोग साथ चलनेके लिये तैयार हो गये। साथमें बहुत लोग हो जानेसे एक बस किरायेपर ले ली गयी, पर पूज्या नानीजीकी तबीयतके खराब होने के कारण एक कारकी व्यवस्था की गयी। मेरी बड़ी चाह थी कि मैं पूज्य नानाजीके साथ कारमें जाऊँ। एक बात स्पष्ट कर दूँ, मेरे मनमें कारका चाव नहीं था, अपितु चाव था पूज्य नानाजीके पास बैठनेका, अतः जब कारमें चढ़नेका मौका आया तो मैं कारका दरवाजा खोलकर बाहर खड़ा हो गया और पूज्य नानाजीके संकेतकी राह देखने लगा।

कारमें आगेकी सीटपर ड्राइवरके बगलमें बैठ गये पूज्य बाबा तथा नानाजीके दौहित्र प्रिय चन्द्रकान्त। पीछेकी सीटपर बैठ गयीं पूज्या नानीजी और नानीजीके पास बैठने वाले थे नानाजी। मुझे खड़े देखकर नानाजीने मेरी इच्छा जान ली। कुछ देरतक तो नानाजी मन-ही-मन तुक बैठाते रहे कि किसी प्रकार मेरे भी बैठनेका ढंग बन जाय, पर पूज्या नानीजीकी तबीयत खराब देखकर वे विवश हो गये और मुझसे प्यार भरे शब्दोंमें कहा— गाड़ीमें जगहका संकोच है, नहीं तो मैं तुमको अपने साथ बैठा लेता।

साथ बैठनेकी मेरी चाह चाहे जितनी हो, पर मुझे यह तनिक भी अभीष्ट नहीं था कि मेरे कारण किसी प्रकारकी कोई परेशानी खड़ी हो। मैंने तुरंत कहा— मैं बसमें बैठ जाऊँगा।

फिर हम सबलोग सालासर गये और वहाँ श्रीहनुमानजी महाराजका दर्शन करके रात्रितक रतनगढ़ वापस आ गये। सालासरकी यात्रासे वापस आनेके बाद यात्रा-सम्बन्धी सारी बात समाप्त हो गयी। बात समाप्त हो गयी मेरे मनसे, पर पूज्य नानाजीके मनसे नहीं।

कुछ दिन बाद ही पूज्य नानाजी दिल्ली जाने वाले थे और इसी ट्रेनसे हमलोग भी जाने वाले थे। ट्रेन रतनगढ़से रातको आठ बजेके लगभग चलकर प्रातःकाल दिल्ली पहुँचती है। पिताजीके साथ मेरा रिजर्वेशन एक दूसरे कोचमें हो गया था और नानीजी-नानाजी-बाबाजी आदिका रिजर्वेशन एक दूसरे कोचमें था। जब स्टेशनपर हमलोग ट्रेनपर चढ़ने लगे तो पूज्य नानाजीने कहा— पद्मा तो हमारे साथ हमारे कोचमें रहेगा।

पिताजीने सहर्ष सहमति प्रदान कर दी। फिर मैंने पूज्य नानाजीके साथ-साथ रतनगढ़से दिल्लीतककी यात्रा की और सारी रात मुझे सहयात्राका पावन सौभाग्य मिला। यद्यपि मुझे नींद बहुत आया करती है, पर सह-यात्राकी उमंगमें मुझे रातभर नींद नहीं आयी। मैं तो रह-रह करके विस्मय कर रहा था पूज्य नानाजीके वात्सल्यपर, जो उन्होंने मेरी सर्वथा नगण्य बातको भी महत्त्व दिया, जिसके फलस्वरूप मुझे रात्रिभर कोचमें उनके साथ यात्रा करनेका अवसर मिला। ■

श्रीयुगलकिशोरजी खेतान

अनुमानातीत कार्य-क्षमता

बात कई वर्ष पहलेकी है। पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) गोरखपुरमें आये हुए थे और वे साहबगंज मोहल्लेमें श्रीघनश्यामदासजी जालानके यहाँ ठहरे हुए थे। उनके आनेकी सूचना मिलते ही मैं शामके समय उनके दर्शनार्थ गया। उन्हें प्रणाम करके मैं वहीं बैठ गया। श्रीसेठजीने कुशल-क्षेमका समाचार पूछा। ऐसी बात परस्परमें चल ही रही थी कि गीताप्रेसके तत्कालीन प्रबन्धक श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठिया एक दो व्यक्तियोंके साथ वहाँ आ गये। उनके आते ही बातचीतका प्रवाह बदला। श्रीसेठजी श्रीबजरंगलालजीसे गीताप्रेसके कार्यके बारेमें बातचीत करने लगे कि यदि कहीं कोई कठिनाई या बाधा हो तो उसकी जानकारी मिले और उसे दूर करनेका कोई उपाय और प्रयास किया जाय। श्रीबजरंगलालजीने गीताप्रेसकी छोटी-बड़ी कई अड़चनोंका उल्लेख किया, पर अन्तमें उन्होंने कहा— गीताप्रेसके काममें सबसे बड़ी और विकट कठिनाई प्रूफ-रीडिंगको लेकर है। जो सामग्री कम्पोज हो चुकी है, उसकी जबतक प्रूफ-रीडिंग नहीं हो जाती, तबतक उसको छापा नहीं जा सकता। प्रूफ-रीडिंगके बाद संशोधन होता है और फिर छपायी हो पाती है। अच्छे प्रूफ-रीडर मिलते नहीं और जो थोड़े-बहुत हैं, उनकी कार्य-क्षमता अल्प है। प्रेसमें प्रूफ-रीडिंगकी बातको लेकर बड़ी परेशानी सामने आ जाया करती है और इसके कारण अनेक बार मशीनें खड़ी रहती हैं। न फर्मा मशीनपर चढ़ पाता है और न छपायीका काम हो पाता है।

जो व्यक्ति श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठियाके साथ आये थे, उनमेंसे किसीने कहा— पूज्य श्रीभाईजी तो बहुत शुद्ध और बहुत शीघ्र प्रूफ-रीडिंग कर लेते हैं।

उनकी बात सुनकर श्रीबजरंगलालजीने उनसे तुरंत कहा— श्रीभाईजीकी बात आप करिये ही मत। उनकी तो बात ही अद्भुत है।

उन सज्जनसे इतना कहकर फिर श्रीबजरंगलालजी पूज्य श्रीसेठजीको कहने लगे— मैं आपको एक अद्भुत प्रसंग सुनाता हूँ। कल्याणके विशेषांककी सामग्री अगले दिन छापनेके लिये मशीनमैनको देनी थी। जो सामग्री कल मशीनपर चढ़ा देनी जरूरी थी, उसकी कम्पोजिंग हो चुकी थी, पर समस्या सामने थी, उस कम्पोज्ड मैटरके प्रूफ-रीडिंगकी। इस समस्याको सुलझानेके लिये दिनभर प्रयास किया गया, पर बात बन नहीं पायी। सूर्यास्तके बाद मैं वह सारा कम्पोज्ड मैटर लेकर गीतावाटिका गया। अँधेरा फैल चुका था। मैं श्रीभाईजीसे मिला। उनके सामने कम्पोज्ड मैटरको रखकर अपने प्रयासकी असफलताका वर्णन करते हुए मैंने उन्हें सारी कठिनाईको बतलाया और यह भी कहा— कल प्रातःकालतक इस मैटरकी प्रूफ-रीडिंग हो जानी जरूरी है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो कई मशीनें बेकार खड़ी रहेंगी और विशेषांकके प्रकाशनमें अनावश्यक विलम्ब होगा।

मेरी बात सुनकर श्रीभाईजी थोड़ी देर चुप रहे और फिर बोले— इसे मेरे पास छोड़ दो।

मैंने उनके पास सारा कम्पोज्ड मैटर रख दिया और चलते-चलते उनसे फिर कहा— कल

सबेरे तक यदि प्रूफ-रीडिंग नहीं हो पायी तो कार्यकी बड़ी हानि होगी।

मैं कहकर चला तो आया, पर मुझको चैन नहीं था। कार्यकी सम्पन्नताकी चिन्ता मनपर सवार थी। मैं अच्छी तरह जानता था और समझ रहा था कि जितना कम्पोज्ड मैटर मैं श्रीभाईजीके पास छोड़कर आया हूँ, उस मैटरको यदि पाँच-छः प्रूफ-रीडर रात भर लगातार प्रूफ-रीडिंग करें तो भी नहीं कर पायेंगे। एक ओर इतना अधिक मैटर प्रूफ-रीडिंगके लिये था और दूसरी ओर श्रीभाईजीके जप-संध्या-आदिके कार्यके अलावा खान-पान-शयनमें भी कुछ समय अवश्य जायेगा। इन दोनों बातोंकी कल्पना करके बार-बार मेरा चिन्तन थक जाता था और मैं बड़ी चिन्ता कर रहा था कि कैसे उस सारे मैटरकी प्रूफ-रीडिंग हो पायेगी। मैं कितनी ही चिन्ता करूँ, पर कोई उपाय भी तो मेरे सामने नहीं था। उन्होंने सबेरेके समय मुझे बुलाया था और उनकी आज्ञानुसार मैं सबेरे उनके पास गया। उन्होंने वह सारा मैटर मुझे वापस दे दिया। मैंने देखा कि आरम्भसे अन्ततक प्रत्येक पन्नेकी प्रूफ-रीडिंग हुई है। प्रूफ-रीडिंगमें एक-एक शब्द, एक-एक विराम-अर्धविराम-चिह्न आदिपर पूरा ध्यान दिया गया है। मैं तब भी नहीं सोच पाया था और इस क्षणतक नहीं सोच पाया हूँ कि श्रीभाईजीने इतने सारे मैटरकी प्रूफ-रीडिंग कैसे और कब कर दी ? उस बातको सोच-सोच करके मैं बार-बार आश्चर्यमें डूब जाता हूँ।

श्रीबजरंगलालजी यह बात बता रहे थे पूज्य श्रीसेठजीको और हम सभी बैठे हुए लोग विस्मय पूर्वक सुन करके इस विवरणको। सभीके चेहरोंपर आश्चर्य छाया हुआ था, गहरा आश्चर्य, ऐसा गहन आश्चर्यकी स्वयं पूज्य सेठजी बहुत देरतक कुछ बोल नहीं पाये।

आज भी मुझे जब-जब वह संध्या याद आती है, वह वर्णन याद आता है, उपस्थित लोगोंकी आँखें याद आती हैं और श्रीसेठजीका मौन याद आता है तो मैं खो जाता हूँ पूज्य श्रीभाईजीकी लोकोत्तर कार्य-क्षमताकी अनुमानातीत अगाधतामें। ■

एक माताजी

मेरा हठ: उनका वात्सल्य

अब तो शरीर वृद्ध होनेको आया, अतः कह देनेमें संकोच नहीं है। मेरे पिताजीने छोटी आयुमें ही मेरा विवाह कर दिया था और विवाहके कुछ समय बाद ही वैधव्यका दुःख मेरे सिरपर आ पड़ा। अब इस दुःखको भोगना ही था। संतोंके आश्रयने मनको बल दिया। जीवनके दिन बीतने लगे। एक सालके बाद दूसरा साल, इस प्रकार बहुत सारे साल निकल गये। कई साल बाद उनकी, जो गुजर गये थे, उनकी बहुत ज्यादा याद आने लगी। क्या दिन और क्या रात, उनकी याद थमती ही नहीं थी। मुझे चिन्ता होने लगी कि क्या करूँ ? बेटीको सहारा अपने माँ-बापका ही होता है। घरपर वे मेरे जन्म देने वाले पिता हैं तो गीतावाटिकामें श्रीभाईजी मेरे धर्म-पिता हैं। मैं श्रीभाईजीके पास उनके कमरेमें गयी। वे कुछ लिख रहे थे। मुझको देखकर श्रीभाईजीने पूछा– क्यों ? कैसे आयी ?

मैंने कहा– कई दिनसे उनकी बड़ी याद आ रही है। उनकी आत्मा किसी तरहका कष्ट पा रही है क्या ?

मुझे पता था कि श्रीभाईजीकी अन्य लोकोंमें भी पहुँच है, पर मुझे भुलावेमें डालनेके लिये उन्होंने कहा– मैं भला क्या जानूँ कि तुम्हारे दिवंगत पतिकी आत्मा कष्टमें है या सुखमें ?

मुझे बात बनानी तो आती नहीं थी। मैंने सीधे-सीधे कहा– मैं यह सब नहीं जानती। आप चाहें तो पता लगा सकते हैं। आप पता लगाइये और बताइये। उनकी याद इन दिनों मुझे बहुत ही आती है।

श्रीभाईजीने कहा– तू तो मूरख है। मुझे जानकारी थोड़े ही है कि किसकी आत्मा किस लोकमें है और किस हालतमें है।

मैं तो हठ करके वहीं बैठ गयी। अपने पितासे हठ नहीं करूँगी तो किससे करूँगी। मैंने आग्रह पूर्वक कहा– मैं भरममें पड़ने वाली नहीं हूँ। आप बता सकते हैं। जब तक आप कुछ बतायेंगे नहीं, मैं जाऊँगी नहीं। न मैं जाऊँगी और न आपको काम करने दूँगी।

मुझे ऐसा लगा कि मेरा वह हठ श्रीभाईजीको प्यारा लगा। हठ भी किसी अपनेके सामने ही करना बनता है। मेरी हठभरी बात सुनकर श्रीभाईजी मुस्कुराने लगे। उनकी मुस्कुराहट देखकर ही तो यह बात मेरे मनमें आयी कि उनको मेरा हठ अच्छा लगा। मुस्कुराते हुए श्रीभाईजीने कहा– अच्छा जा। परसो मेरे पास आना।

यही तो मैं सुनना चाहती थी। दो दिन बाद मैं फिर श्रीभाईजीके पास गयी। श्रीभाईजीने कहा– मैंने पता लगा लिया है। वे कष्टमें नहीं है, पर उनके अधिक मंगलके लिये तू किसी ब्राह्मणसे श्रीविष्णुसहस्रनामके कुछ पाठ करवा दे।

श्रीभाईजीके मुखसे इस बातको सुनकर मुझे बड़ा संतोष हुआ और इसके बाद उस यादका वेग भी शान्त हो गया। ■

श्रीमिश्रीलालजी तिवारी

[१] उज्जैनकी संघ शाखापर

सन् १९५६ के जनवरी मासमें पूज्य श्रीभाईजी अपने स्नेही बन्धुओंके साथ तीन धामकी तीर्थ-यात्राके लिये निकले थे। यह तार्थ-यात्रा की गयी थी ट्रेनके द्वारा। विभिन्न तीर्थ स्थानोंका दर्शन करते हुए जब यात्री-ट्रेन उज्जैन पहुँची, उस समयकी बात है। मैं प्रातःकाल पूज्य श्रीभाईजीसे मिला और अपना परिचय देते हुए मैंने उनसे निवेदन किया– मैं उज्जैन जिलेमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघका प्रचारक हूँ। इस वर्ष परमपूज्य श्रीगुरुजी (संघके सरसंघचालक पूज्य श्रीमाधवराव सदाशिव गोलवलकरजी) की इक्यानवीं वर्षगाँठ है। इस अवसरपर हम स्वयंसेवक लोग उन्हें श्रद्धानिधि भेंट करना चाहते हैं। यह समर्पित श्रद्धानिधि भी संघ-कार्यके ही उपयोगमें आयेगी। पासमें ही हमारी संघ शाखापर यह समर्पण-कार्यक्रम है। क्या आप कुछ समय निकालकर संघ-शाखापर चलनेकी कृपा करेंगे ?

मैं श्रीभाईजीसे निवेदन अवश्य कर रहा था, पर स्वीकृतिकी सम्भावना कम ही दिखलायी दे रही थी। जितने व्यक्तियोंसे वे घिरे हुए थे और जैसी-जैसी बातें उनके सामने आ रही थी, उसको

देखते हुए निराशाके भावोंका उदित होना स्वाभाविक था। पर मैं व्यर्थ ही हताश हो रहा था। उन्होंने तुरंत चलनेकी स्वीकृति दे दी। यह स्वीकृति झलक प्रस्तुत कर रही थी श्रीभाईजीके हिन्दू हृदयकी, जिसमें पूज्य श्रीगुरुजीके लिये अगाध निजत्व था और जिसमें संघ-कार्यके लिये अपार आस्था थी। तीर्थ-यात्राकी व्यस्तताके बाद भी श्रीभाईजी मेरे साथ चल पड़े।

हमारी शाखा शहरमें एक छोटी-सी पहाड़ीके ऊपर थी और वहाँ पहुँचनेके लिये लगभग साठ सीढ़ी चढ़नी पड़ती थी। मुझे यदि यह पता होता कि श्रीभाईजीका स्वास्थ्य शिथिल है तो शायद मैं ही उन्हें चलनेसे मना कर देता, पर कार्योत्साहमें मेरी दृष्टि उस ओर गयी ही नहीं और मेरा यह प्रमाद मुझे जब-जब याद आता है, तब-तब बड़ा चुभता रहता है। संघ-शाखापर पहुँचकर श्रीभाईजीका संक्षिप्त भाषण हुआ। अपने भाषणमें श्रीभाईजीने हिन्दू देश, हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू आदर्शोंकी महिमापर प्रकाश डालते हुए पूज्य श्रीगुरुजीके नेतृत्व-कौशलका गुणगान किया, जिनके निर्देशनमें संघ-कार्यका दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक विस्तार हो रहा है। श्रीभाईजीने संघ-कार्यको हिन्दुत्वका समर्थ पहरेदार बतलाया और कहा कि ऐसे कार्यके लिये तन-मन-धनसे जितना सहयोग दिया जाय, उतना ही अपने धर्मकी सार्थक और सफल सेवा है।

शाखापर स्वयंसेवकोंको तथा अन्य उपस्थित नागरिकोंको प्रबोध प्रदान करके श्रीभाईजी वापस लौट आये। व्यस्तता और स्वास्थ्यकी बातको नजरन्दाज करके जिस प्रसन्नताके साथ श्रीभाईजी हमारे कार्यक्रममें पधारे और जिस रीतिसे ओजस्वी भाषामें विभिन्न प्रसंगोंके उदाहरण द्वारा हिन्दू धर्मका गुणाख्यान प्रस्तुत किया, यह सब देखकर, सुनकर मेरा अन्तर हिन्दुत्व-गौरव और आत्मोत्सर्गके भावोंसे भर गया।

[२] श्रीमद्भागवत-गौरव

सन् १९७० के अगस्त मासमें मैं कल्याण आश्रमके अध्यक्ष महोदय श्रीदेशपाण्डेजीके साथ गीतावाटिका आया था। हम लोगोंके द्वारा वनवासी बन्धुओंके मध्य हिन्दुत्व भावको सुदृढ़ बनानेका कार्य चल रहा है। कार्यकी प्रगतिके सम्बन्धमें कुछ परामर्श श्रीभाईजीसे प्राप्त करना था, यही हमारे आगमनका उद्देश्य था। हमारा यह उद्देश्य तो सिद्ध हुआ ही, पर इसीके साथ एक बड़ा प्रेरक दृश्य देखनेको मिला।

श्रावणी पूर्णिमाका दिवस होनेसे पूज्य श्रीभाईजी अपने कमरेके बाहर छतपर बैठे हुए थे। सायाह्नका समय था। शहरकी अनेक बहिनोंने आकर श्रीभाईजीके हाथमें राखी बाँधी। एक बहिन कलकत्तासे भी आयी थी। उसने भी श्रीभाईजीके हाथमें राखी बाँधी और निवेदन किया— भाईजी! हमें भी भगवान श्रीकृष्णका दर्शन करा दें।

श्रीभाईजी उसकी बात सुनकर चुप रहे। फिर थोड़ी देर बाद सभी उपस्थित लोगोंके समक्ष श्रीभाईजीने उस बहिनसे कहा— *श्रीमद्भागवत भगवान श्रीकृष्णका वाङ्मय स्वरूप है और श्रीमद्भागवत सर्व जनके लिये सर्वत्र सुलभ है। श्रीभागवतजीके दर्शन-वन्दन-वाचनसे, उसके सेवनसे और उसके आश्रयसे ऊँची-से-ऊँची स्थितिकी प्राप्ति हो सकती है। संतों द्वारा बतलायी गयी इस बातपर सहज विश्वास होते ही सारी बात बन जायेगी। तुम विश्वास करो, भागवत सत्ता सर्वत्र व सदैव है।*

मैं नहीं कह सकता कि कलकत्तेवाली उस बहिनके हृदयमें यह बात कितने अंशतक उतर पायी, पर मुझे ते इससे बड़ी प्रेरणा मिली। प्रेरणा भला क्यों नहीं मिलती ? इस कथनका आधार श्रीभाईजीका जीवन जो था। ■

बाबू श्रीरामसिंहजी

विषम परिस्थितिमें कर्मठता

बात उस समयकी है, जब भारतको स्वतंत्रता-प्राप्ति हो चुकी थी। पहले मैं उत्तर प्रदेश सरकारके लखनऊ मन्त्रालयमें आशुलिपिक (स्टेनो) का कार्य करता था। गीताके प्रति मेरी बड़ी निष्ठा है। गीताप्रेससे संचालित गीता-रामायण-परीक्षा-समितिसे भी मेरा सक्रिया सम्पर्क रहा है। हमलोगोंने गीता-प्रचारके उद्देश्यसे लखनऊमें एक दुर्गा गीता विद्यालयकी स्थापना कर रखी है।

उन दिनों श्रीमती सरोजिनी नायडू उत्तर प्रदेशकी राज्यपालिका थीं। गीता विद्यालयके वार्षिकोत्सवमें अध्यक्ष-पदके लिये श्रीमती नायडूको आमन्त्रित किया गया और उन्होंने स्वीकार भी कर लिया, परंतु मेरी नजरमें कोई ऐसा आध्यात्मिक व्यक्ति नहीं आया, जिसे बुला लिया जा सके, जिसका गीतापर अधिकार हो तथा जो आधिकारिक वाणीमें बोल सके।

मैंने अपने मित्र श्रीपरमेश्वरीप्रसादजी अग्रवालसे इसकी चर्चा की। उन्होंने पूज्य श्रीभाईजीके नामका सुझाव दिया और यह मुझको तुरन्त जँच गया। श्रीभाईजीको आमन्त्रित करनेके लिये गोरखपुर फोन किया गया। पहले तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया, पर जब कई फोन किये गये, तब उन्होंने कहा— भाई ! आपलोग मानेंगे नहीं। फोनपर व्यर्थ खर्चा करते हैं। आप तिथि बता दीजिये। मैं आ जाऊँगा।

फोनपर उनको गीता विद्यालयके वार्षिकोत्सवकी निश्चित तिथि बता दी गयी। श्रीभाईजीसे स्वीकृति मिलते ही सारी चिन्ता दूर हो गयी। विद्यालयमें उत्सव मनानेकी तैयारी की जाने लगी। कल उत्सव होनेवाला है और आज गीता विद्यालयके प्रांगणमें तम्बू तान दिया गया है। कुर्सियाँ लगा दी गयी हैं। पहले दिन जितनी आवश्यक व्यवस्था होनी चाहिये, वह कर दी गयी। अब विधिके विधानकी बात क्या कही जाय ? रातके साढ़े दस बजेसे वर्षा आरम्भ हुई और घनघोर वर्षा, वह भी घंटोंतक। सारी जमीन अत्यधिक भीग गयी। तम्बू लटक गया। कुर्सी-टेबुल सभी भीग गये।

विधिके विधानकी प्रतिकूलताका सिलसिला अभी जारी था। गाड़ी गोरखपुरसे लखनऊ सबेरे छः बजे पहुँचती है, पर किसी कारण गाड़ी लेट हो गयी तीन घंटे। श्रीभाईजीको लेनेके लिये श्रीपरमेश्वरीप्रसादजी स्टेशन गये। श्रीभाईजीके साथ थे पूज्य बाबा, श्रीरामसनेहीजी और शायद एक नौकर। पूज्य बाबाको श्रीमोतीलालजी जालानके यहाँ ठहराकर और श्रीभाईजीको अपने साथ लेकर वे जल्दी-जल्दी श्रीदुर्गा गीता विद्यालय पहुँचे। जब वे लोग पहुँचे, तब साढ़े दस बजा था और उत्सव आरम्भ होनेवाला था ग्यारह बजे, पर पंडालका हाल ही कुछ और था,

बिल्कुल बेहाल। वर्षाके कारण उत्पन्न अस्त-व्यस्तता ज्यों-की-त्यों थी। तम्बू झुका हुआ पड़ा है, कुर्सियाँ भीगी पड़ी हैं, मंचकी कोई व्यवस्था नहीं है। वहाँपर संयोगसे न मैं था और न अध्यापक एवं विद्यार्थिगण इस अस्त-व्यस्तताको दूर करनेका प्रयत्न कर रहे थे। इस स्थितिको देखकर श्रीपरमेश्वरीप्रसादजी एकदम घबड़ा गये और वे सोचने लगे— अब क्या होगा ? साढ़े दस बज गये, कोई प्रबन्ध नहीं है और श्रीमती सरोजिनी नायडू ठीक समयसे पहुँच जायेंगी।

परिस्थितिकी विषमताको श्रीभाईजीने भी भाँप लिया, पर अब न तो किसीको दोष देनेका समय था और न हाथ-पर-हाथ रखकर बैठनेका अवसर था। उन्होंने कहा— घबड़ानेकी जरूरत नहीं। आओ, सब मिलकर काम करें। चन्द मिनटोंमें सारा काम हो जाता है।

वहाँ जितने अध्यापक और विद्यार्थी थे, श्रीभाईजीने सबको उत्साहित किया, सबको काम बताया और वे काम स्वयं करने लगे और कराने लगे। बाँस पकड़कर तम्बू तान दिया गया। तम्बूपर पड़ा हुआ पानी गिराया गया। फिर तम्बूकी रस्सियाँ बाँधी गयीं। कुर्सिया पोंछी गयीं, टेबुल पोंछे गये। मंचको ठीक किया गया और मंचसे लेकर विद्यालयके प्रवेशद्वारतक पावड़े बिछाये गये। बात अविश्वसनीय लगती है, पर यह शत-प्रतिशत सत्य है कि यह सारा काम लगभग बीस मिनटमें हो गया। श्रीभाईजीकी सूझ, निर्देशन, श्रम तथा प्रोत्साहनने सारा काम बना दिया। ठीक पाँच मिनट पहले श्रीमती नायडूके स्वागतके लिये श्रीभाईजी, श्रीपमेश्वरीप्रसादजी, मैं तथा अन्य लोग प्रवेशद्वारपर आकर खड़े हो गये। समयसे श्रीमती सरोजिनी नायडू आयीं तथा उनको ले जाकर मंचपर बैठाया गया। श्रीमती नायडूने श्रीभाईजीके प्रति बहुत सम्मान प्रदर्शित किया।

वार्षिकोत्सवकी कार्यवाही आरम्भ हुई। दो-तीन कार्यक्रमोंके बाद श्रीभाईजीका गीतापर पन्द्रह मिनटतक भाषण हुआ। भाषण इतना उत्कृष्ट था कि सारे श्रोता विमुग्ध हो गये। स्वयं श्रीमती नायडू प्रभावित हो गयीं। पूर्व योजनानुसार श्रीमती नायडूके बोलनेका कोई कार्यक्रम नहीं था, पर उन्होंने कहा कि मैं भी थोड़ा बोलूँगी। वे बोलनेके लिये खड़ी हुईं और गीतापर लगभग दस-बारह मिनटतक बोलीं। श्रीमती नायडूने यहाँतक कहा— श्रीपोद्दारजीके भाषणको सुनकर उसी तरहकी प्रसन्नता हुई, जिस तरह गाँधीजीके भाषणको सुनकर हुआ करती थी।

श्रीभाईजीकी उपस्थितिसे बिगड़ी परिस्थिति सर्वथा सुधर गयी, परिस्थिति ऐसी सँवरी कि किसीको पूर्व-विषमताका आभासतक नहीं हो पाया। ■

श्रीसर्वजीतजी शुक्ल

[१] पवित्र प्रेमके निर्मल निर्झर

सन् १९४८ ई. में महात्मा गाँधीका गोडसेकी पिस्तौलकी गोलीसे प्राणान्त होते ही देशका सम्पूर्ण वातावरण शोकाकुल हो गया। गोडसेको सरकारने गिरफ्तार कर लिया। गाँधी-हत्याकाण्डसे जो-जो सम्बद्ध थे और जिन-जिनपर सन्देह था, उन सभीको सरकारने गिरफ्तार कर लिया, पर अनेक निर्दोष व्यक्ति भी जेलके सींकचोंमें बन्द हो गये। गिरफ्तारीका यह चक्र

बहुत दिनोंतक चलता रहा। समाजमें विशिष्ट कहलाये जानेवाले लोगोंके मनमें भी ईर्ष्या-द्वेष रहता ही है और इस कारण जीवनमें मनोमालिन्यके प्रसंग आ ही जाया करते हैं। ईर्ष्या-द्वेष जनित क्षुद्रेच्छाओंको परितुष्ट करनेका यह एक अच्छा मौका हाथ लग गया। जिससे कुछ भी खिन्नता या मनमुटाव होता, उसे सन्देहके आधारपर अथवा इससे मिलते-जुलते किसी अन्य बहानेपर गिरफ्तार करवा दिया जाता।

श्रीभाईजीको भी गिरफ्तार करवानेके लिये कुछ लोग सचेष्ट हो उठे और अपने क्षुद्र मनोरथको पूर्ण करनेके लिये मिथ्या आरोप लगा दिया गया कि गाँधीजीकी हत्यामें श्रीभाईजीका भी किसी-न-किसी रूपमें हाथ है। आरोप लगानेवालोंका एक ग्रुप था। इस ग्रुपके शोरसे प्रभावित होकर सरकारके कुछ पदाधिकारी श्रीभाईजीको गिरफ्तार करनेकी बात सोचने लगे, किन्तु भक्षककी अपेक्षा रक्षकके हाथ अधिक लम्बे और बहुत मजबूत होते हैं। श्रीभाईजीके जीवनका प्रेरक तत्त्व एक महान आध्यात्मिक उद्देश्य रहा है और उस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये गीताप्रेसको चलाना तथा प्रतिमास 'कल्याण'को निकालना आवश्यक था। श्रीभाईजी इन तत्कालीन विभिन्न अभद्र गतिविधियोंसे तनिक भी विचलित न होते हुए अपने कार्यमें संलग्न रहे और चुपचाप गीताप्रेसके कार्यका संचालन करते रहे। आरोप लगानेवालोंने तो यह चाहा था कि गोडसेकी तरह श्रीभाईजीको भी कठोर सजा मिल जाय और यह गीताप्रेस बन्द हो जाय। यदि यह नहीं हो पाये तो कम-से-कम गीताप्रेसको मिलनेवाले कागजका कोटा बन्द हो जाय। कागजका कोठा बन्द होनेसे अपने आप गीताप्रेसका काम ठप्प पड़ जायेगा। अप-प्रचार-कर्ताओंने काफी झूठी बातें अफवाहके रूपमें फैलायी और समाचार-पत्रोंमें छपवायीं, किन्तु प्रभु-कृपासे धीरे-धीरे सब शान्त हो गया तथा कुप्रचार और आरोपका मिथ्यापन समाजके सामने आ गया। क्रमशः सूर्यपरसे बादलोंका आवरण हट गया। कालान्तरमें तूफानके चिह्न भी शेष नहीं रहे।

जिन्होंने झूठा आरोप लगाया था, उनके प्रति श्रीभाईजीके मनमें रंचमात्र दुर्भाव नहीं आया, अपितु उनके मंगलकी मधुमयी कामनासे हृदय सदा भरा रहता। श्रीभाईजी उनका सतत शुभ चाहते रहते। कुछ समय बाद आरोप लगानेवाले एक भाईकी धर्मपत्नी रुग्ण होकर शय्याग्रस्त हो गयी। उनकी स्थिति दिन-प्रति-दिन बिगड़ने लगी। उनकी सुपुत्रीका फोन श्रीभाईजीके पास आया— मेरी माताजी कई दिनसे खाटपर पड़ी हैं। वे पूज्या माँ (पूज्य श्रीभाईजीकी धर्मपत्नी) से मिलना चाहती हैं।

श्रीभाईजीने यह समाचार पूज्या माँको सुनाया। माँने तुरन्त चलनेको कहा और दोनों ही मिलनेके लिये उसी समय कारसे रवाना हो गये। उनके घरपर गये, मिले, बैठे और जितनी अधिक सान्त्वना दे सकते थे, उनको दी। उनकी धर्मपत्नीके मुखमण्डलपर पश्चात्तापकी कुछ गहरी रेखाएँ थीं, क्षमाकी कुछ भावभरी याचना थी, शान्तिकी कुछ मीठी-मीठी लहरियाँ थी तथा इस प्रकारके कुछ और भी भाव रह-रह करके आ-जा रहे थे। श्रीभाईजीको इससे क्या मतलब कि वे कैसे हैं, उन्होंने क्या किया है और उनका पूर्व इतिहास क्या है। सामनेवाला जो भी हो और जैसा भी हो, पर हमें तो प्यार देना है। पूज्य श्रीभाईजी और पूज्या माँके हृदयके पवित्र प्रेमके निर्मल निर्झरकी शीतल फुहारसे कमरेका वातावरण भीगने लगा। इस प्यारसे वे आप्यायित हो उठीं। आगे भी अनेक बार उनके घरपर जानेका क्रम बना रहा। यह ठीक ही कहा गया है कि एक बार आँधी तो आती है, पर अन्ततः सत्य एवं स्नेहकी ही विजय होती है।

[२] भगवत्तत्त्व निष्ठ व्यक्तित्व

एक बार मैं अपने कमरेमें कागजोंकी फाइल उलट रहा था। जिस कागजकी जरूरत थी, उसको खोजते-खोजते अचानक मेरे हाथ लग गया पूज्य श्रीभाईजीका एक लेख, जो उन्होंने सन् १९१२ में लिखा था और जो 'अभ्युदय' नामक समाचार-पत्रमें छपा था। हाथमें आते ही मैं उसी समय उसको आरम्भसे अन्ततक पढ़ गया। उस लेखमें थी देश-भक्तिकी उबलती भाषामें विप्लवी भावना। क्या कोई उस समय कल्पना कर सकता था कि जो लेखनी धधकती ज्वालामुखीके समान आग उगल सकती है, वह भविष्यमें माधुर्यकी शीतल धारा प्रवाहित कर देगी, ऐसी शीतल धारा, जिसके *'दरस परस मज्जन अरु पाना'* से भवाग्नि-दग्ध मानवको परम शान्ति, परम आनन्दकी प्राप्ति हो सके? जो तथ्य कल्पनातीत था, वह आज यथार्थ सत्य है। ऐसी शीतल धारा उसी व्यक्तिकी लेखनीसे निर्झरित हो सकती है, जो भगवत्साक्षात्कारी हो और जो भागवती शक्ति एवं भागवती दृष्टिसे सम्पन्न हो। परमानन्द एवं अक्षय शान्तिकी बातें प्रायः प्रवचनों एवं पत्रिकाओंमें सुनने-पढ़नेको मिलती हैं, पर वह चर्चा अपेक्षित प्रभावोत्पादिनी नहीं हो पाती, इसीलिये कि उस कथनके पीछे खरा जीवन नहीं होता। वह वाणी वक्ता या लेखकके जीवनके भीतरसे आती नहीं, अतः श्रोता या पाठकके हृदयके भीतर जाती भी नहीं। सच्चा जीवन ही वाणीमें सच्ची शक्तिका संचार करता है। संत तुकारामने कहा है कि कोई स्त्री अपने पेटपर कपड़ा बाँध ले तो क्या वह गर्भवती हो गयी? गर्भवतीके लक्षण तो कुछ और ही होते हैं। इसी प्रकार सच्चा जीवन और सच्ची वाणीकी शक्ति कुछ और ही हुआ करती है और इस सच्चाईका मूर्तिमान स्वरूप था पूज्य श्रीभाईजीका आध्यात्मिक व्यक्तित्व। श्रीभाईजीने जो कहा और जो लिखा, वह उनके भगवत्तत्त्व-निष्ठ जीवनका अनुभूत सत्य था। उनके द्वारा लिखित साहित्यमें यदि एक ओर अनुभूत सत्यकी गहरी सच्चाई है तो दूसरी ओर उसकी मात्रा भी विपुल है, जो अध्यात्म-पथके पथिकोंको अमित प्रकाश प्रदान कर रही है।

जब-जब मुझे अपने मित्रोंके मध्य पूज्य श्रीभाईजीके सम्बन्धमें कुछ कहनेका अवसर मिलता है, मुझे बड़े आनन्दकी अनुभूति होती है। सन् १९६८ की बात है। शिमलामें विभिन्न समाचार-पत्रोंके सम्पादकोंका अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ था। उस सम्मेलनमें मुझे भी भाग लेनेका अवसर मिला था। 'जागरण' दैनिक पत्रके सम्पादक श्रीनरेन्द्रमोहनजीके पासवाले कमरेमें मैं ठहरा हुआ था। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मेरा गीताप्रेससे, 'कल्याण' पत्रिकासे तथा श्रीभाईजीसे निकट सम्पर्क है तो उन्होंने मुझको बातचीत करनेके लिये अपने पास बुला लिया। मैं श्रीनरेन्द्रमोहनजीके पास बैठा हुआ था, वहीं पटनासे प्रकाशित होनेवाले अँगरेजी समाचार-पत्र 'सर्चलाइट' के सम्पादक श्रीसरकार महोदय भी आ गये। श्रीसरकार ईसाई मतावलम्बी थे, अतः श्रीनरेन्द्रमोहनजीने मुझसे कहा— आप श्रीसरकार महोदयको 'कल्याण' पत्रिकाके बारेमें कुछ बतलाइये तथा उसके सम्पादक श्रीपोद्दारजीका कुछ परिचय दीजिये।

अपनी अल्प जानकारीके आधारपर मैं लगभग पन्द्रह मिनटतक बोलता रहा और मैंने प्रस्तुत किया श्रीभाईजीके व्यक्तित्वका मात्र पत्रकारिता-पक्ष। मैंने उनको बतलाया— सम्पादक श्रीपोद्दारजी वर्ष भरमें 'कल्याण' पत्रिकाके बारह अंक प्रकाशित करके लगभग १४०० पृष्ठोंकी सामग्री देते हैं। इसमें प्रथम अंक विशेषांक और द्वितीय अंक (तथा कभी-कभी तृतीय

अंक भी) परिशिष्टांक होता है और शेष साधारण अंक होते हैं। विशेषांक और परिशिष्टांक, ये दोनों मिलकर लगभग नौ सौ पृष्ठसे अधिक ही होते होंगे। इन्हें आप एक विश्वकोष कह सकते हैं। ये जिस विषयपर होते हैं, उस विषयसे सम्बन्धित जितनी भी सामग्री प्राप्य हो सकती है, वह सारी उसमें उपलब्ध रहा करती है। उस सामग्रीमें न केवल हिन्दू-धर्मकी महिमाका उद्‌घाटन होता है, अपितु विश्वके अन्य धार्मिक मतोंकी महानताको भी स्थान दिया जाता है।

मेरी बातपर श्रीसरकार महोदयको विश्वास नहीं हुआ। मेरे कथनपर संदेह व्यक्त करते हुए उन्होंने आपत्ति की– मुझे ऐसा लगता है कि आप 'कल्याण' पत्रिकाके बारेमें कुछ बढ़ा-चढ़ाकर बोल रहे हैं। मुझे कोई विशेषांक देखनेको मिले तो मैं कुछ सही धारणा बना पाऊँ।

मैंने उसी आस्थाके स्वरमें कहना आरम्भ किया– आप ईसाई हैं, अतः आप उसके कार्यकी गहराई और कार्यके विस्तारका अनुमान नहीं कर पा रहे हैं। यहाँ कोई पुस्तकालय हो तो उसमें आप कल्याणके विशेषांक देख सकते हैं।

श्रीसरकार महोदयके दिमागमें बात कुछ ज्यादा बैठ गयी और उन्होंने सोचा कि इस बारेमें यथार्थ आकलन होना चाहिये। हम दोनों व्यक्ति शहरमें निकले। शिमला शहरकी माल रोडपर एक पुस्तक-विक्रेताकी दूकानपर संयोगसे 'हिन्दू-संस्कृति' विशेषांक देखनेको मिल गया। नौ सौ पृष्ठों वाला यह विशेषांक श्रीसरकार महोदय अपने कमरेपर ले आये। वे दूसरे दिन मुझसे मिले और कहने लगे– कल मैंने आपसे कहा था कि आप बढ़ा-चढ़ाकर बता रहे हैं, पर अब तो मेरी धारण यह है कि आपने कम ही कहा है। अब मैं यह जानना चाहूँगा कि वहाँके सम्पादकीय विभागमें कितने व्यक्ति हैं और प्रूफ रीडिंग कौन करता है ?

पूर्वापेक्षा अधिक आस्थापूर्वक मैंने कहा– क्या आप विश्वास करेंगे कि इसके एक-एक शब्द एवं विराम चिह्न आदिकी अंतिम प्रूफ रीडिंग स्वयं श्रीपोद्दारजी करते हैं। सारा-का-सारा मैटर जब श्रीपोद्दारजीकी निगाहोंके नीचेसे निकल जाता है, तभी वह छपता है। इसके अलावा सम्पादकीय विभागमें विशेषांकके कार्यकी दृष्टिसे चार-पाँच व्यक्ति होंगे। चार-पाँच व्यक्तियोंका कार्य तो अकेले श्रीपोद्दारजी कर लेते हैं।

श्रीसरकार महोदय विस्फारित नेत्रोंसे देखते हुए कहने लगे– आप तो ऐसी-ऐसी बात कहने लगते हैं, जिसपर विश्वास करनेसे मन हिचकता है।

मैंने पुनः निवेदन किया– आपका यह हिचकना ही सिद्ध कर रहा है कि श्रीपोद्दारजी मानवातीत अलौकिक क्षमतावाले व्यक्ति हैं। फिर आप यह भी देखें कि इस पत्रिकामें कहीं एक भी विज्ञापन है क्या ? आजकल बिना विज्ञापनके समाचार-पत्र टिक नहीं पाते, पर 'कल्याण' पत्रिका इसका एक अद्‌भुत और खरा अपवाद है। 'कल्याण' पत्रिकाने सिद्ध कर दिया है कि यदि मानव हितकारी सही सामग्री प्रकाशित की जाय तो बिना विज्ञापनके भी पत्रिका समाजमें जमी रह सकती है। फिर आप उनके सम्पादन-शैलीकी गम्भीरतापर गौर करें। इन विशेषांकोंके पृष्ठोंपर एक भी ऐसा वाक्य नहीं है, जो किसीकी भी भावनाओं-मान्याताओंको ठेस पहुँचाये, चाहे वह किसी धर्म या मतका अनुयायी हो। विचारोंकी इस विशदता-विशालतामें श्रीपोद्दारजीके उदार एवं उन्नत चिन्तनकी झलक आपको दिखलायी देगी ही।

श्रीसरकार महोदयका विस्मय बढ़ता ही जा रहा था। उन्होंने चकित मनसे, जिसमें थोड़ा अविश्वासका भी भाव था, ऐसे सहमे हुए मनसे उन्होंने पूछा— क्या ढलती आयुवाले व्यक्तिसे इतना परिश्रम सम्भव हो सकता है ? इतना सारा काम कर लेना क्या साधारण बात है ?

मैंने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा— साधारण बात नहीं है, तभी तो वे अलौकिक व्यक्ति हैं। वे अपौरुषेय हैं। गीताप्रेसके कार्यका आरम्भ एक छोटी-सी ट्रेडिल मशीनसे हुआ था, पर आज यह ऐसा प्रेस है, जिसकी देश-विदेशमें सर्वत्र ख्याति है तथा इसके प्रकाशनोंकी आधिकारिक वाणीके रूपमें मान्यता है। आदिशंकराचार्यके बाद श्रीपोद्दारजीके रूपमें एक ऐसे महान व्यक्तित्वका प्रादुर्भाव हुआ, जिससे धर्म-जागरणका अद्भुत कार्य हुआ और हिन्दू-धर्म एवं हिन्दू-संस्कृतिका यश सर्वत्र परिव्याप्त हो गया।

श्रीसरकार महोदय स्वयं एक सम्पादक थे और वे अच्छी तरह जान रहे थे कि पत्रकारिता-क्षेत्रमें सफलता पानेके लिये कैसी विकट घाटियोंको पार करना पड़ता है। यदि हिन्दू-संस्कृति विशेषांक सामने नहीं होता तो वे मेरे कथनको मात्र अतिशयोक्ति कहकर फिर मुझसे दुबारा न मिलना चाहते और न बात करना चाहते, पर क्रमशः उनकी धारणामें परिवर्तन हुआ। वे पूज्य श्रीभाईजीको आदरके भावसे देखने लगे। विदा होते समय उन्होंने कहा था कि मेरे पास श्रीपोद्दारजीका साहित्य भिजवाइयेगा। गोरखपुर आकर मैंने अनेक पुस्तकें भिजवायी। यह भी संयोगकी बात है कि चार वर्ष बाद १९७२ में श्रीसरकार महोदयसे मेरी भेंट हो गयी। तब उन्होंने कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा— आपके मिलनसे और संलापसे मेरी अनेक भ्रान्तियाँ दूर हुई हैं। यदि आपसे बात नहीं हुई होती और मैंने उन पुस्तकोंको नहीं देखा होता तो मैं श्रीपोद्दारजीके बारेमें भ्रमित ही रहता। अपना आभार व्यक्त करते हुए मैं आपको हार्दिक साधुवाद देता हूँ।

मैं ऐसा सोचता हूँ और मेरा सोचना सही ही है कि पूज्य श्रीभाईजीके द्वारा लिखित-अनूदित-सम्पादित विपुल और गम्भीर साहित्यको देखकर, पढ़कर और समझकर देशमें-विदेशमें बहुतोंकी धारणामें श्रीसरकार महोदयके समान परिवर्तन आया होगा और वे पूज्य श्रीभाईजीके प्रति विनत हुए होंगे। हिन्दू धर्म, हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू दर्शन, हिन्दू जीवनके वैशिष्ट्यको दूर-दूरतक पहुँचानेका जो कार्य उनके भगवत्तत्त्वनिष्ठ व्यक्तित्वके द्वारा हुआ है, वह अभूतपूर्व है, अद्वितीय है। हिन्दी साहित्यके महान कवि श्रीसुमित्रानन्दपंतके शब्दोंको उद्धृत करके मैं अपनी लेखनीको विराम देना चाहूँगा। उन्होंने कहा है—

'कल्याण'के सम्पादनद्वारा उन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा तत्सम्बन्धी शास्त्र-ग्रन्थों, पुराणों आदिमें जो कुछ सनातन मूल्यवान, श्रेष्ठ तथा वरेण्य था, उसका सहस्रों नर-नारियोंमें प्रचार-प्रसार कर उन्हें नवीन आस्था, स्फूर्ति तथा भारतीय जीवन-आदर्शोंके प्रति श्रद्धा एवं दृढ़ निष्ठा प्रदान की। उन्होंने इस युगमें भारतीय चेतनाके असीम अकूत समुद्रका पुनः मन्थन कर, उससे अनश्वर कान्तिके मणिरत्न निकालकर लोगोंके हाथमें जिस संजीवनी-सुधाका अक्षय पात्र रखा, वह उन्हीं-जैसी महान आत्माके अजेय पौरुषसे सम्भव था। गीताप्रेसके समस्त प्रकाशन जिस दिव्य आलोकसे सदैव मण्डित रहे हैं, वह श्रीपोद्दारजीकी ही सूझ-बूझ तथा अथक परिश्रम-परीक्षण-निरीक्षणका परिणाम है।

[३] भगवन्नाम निष्ठ व्यक्तित्व

विभिन्न समाचार पत्रोंसे सम्पर्क होने तथा पत्रकारिताके क्षेत्रमें कार्य करनेके कारण मुझे भिन्न-भिन्न स्थानोंपर भ्रमण करने तथा भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंसे मिलनेका अवसर सुलभ होता रहता है और मिलनेवालोंमें विदेशी लोग भी हैं। एक बार गोरखपुरके शिशु मन्दिरमें ट्रिनीडाडसे आये हुए एक हिन्दू भाईसे भेंट हो गयी। उनका नाम था श्रीशिवशंकरजी दूबे। वे ट्रिनीडाडमें वहाँकी सरकारमें विपक्षदलके नेता थे और सिंगापुरमें किसी राजनैतिक सम्मेलनमें भाग लेनेके लिये जा रहे थे। यात्राके बीचमें भारत भी आ गये थे। मेरे सामने ही शिशु मन्दिरमें उनकी भेंट श्री बी.के. मित्रासे हो गयी, जो गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाले चित्रोंके विख्यात चित्रकार थे और जो पूज्य श्रीभाईजीके निर्देशके अनुसार चित्र बनाया करते थे। श्री बी.के. मित्रासे भेंट होते ही श्रीशिवशंकरजीने बड़ी श्रद्धाके साथ उनको प्रणाम किया और विभोर स्वरमें वे कहने लगे— हमें भला क्या पता कि भगवान किसे कहते हैं ? यदि आपके चित्रोंके द्वारा भगवानके साकार स्वरूपकी कुछ भावना होती है तो श्रीपोद्दारजीके लेखोंके द्वारा भगवानके तात्त्विक स्वरूपकी कुछ धारणा बनती है। विदेशमें रहनेवाले हमलोगोंको आपका प्रकाशन ही धर्म-पथपर चलाता है और ध्यान-जप सिखाता है।

श्रीशिवशंकरजीने बहुत कुछ कहा। यह तो उनके कथनका मात्र सार है। जिस समय वे अपने भावभरे उद्‌गार व्यक्त कर रहे थे, उनकी विभोरावस्था देखकर मैं बड़ा प्रसन्न और विस्मित हो रहा था पूज्य श्रीभाईजीके द्वारा हो रहे कार्यके प्रभाव-विस्तारकी कल्पना मात्रसे। श्रीभाईजीका कर्तृत्व एक ऐसा प्रखर प्रकाश स्तम्भ है, जो देश-विदेशके लोगोंको आध्यात्मिक आलोक प्रदान कर रहा है। यह तो मात्र एक उदाहरण है। जब-जब मिलनेवाले व्यक्तियोंसे मुझे ऐसे भाव भरे उद्‌गार सुननेको मिलते हैं, मनमें पूज्य श्रीभाईजीके कार्योंके प्रति गौरव-भाव परिव्याप्त हो जाता है।

पूज्य श्रीभाईजीके अन्तिम दिवसोंकी बात है। वे मृत्यु-शय्यापर थे। मैं गोरखनाथ-पीठाधिपति पूज्य महन्त श्रीअवैद्यनाथजी महाराजके पास बैठा हुआ था। महाराजजीने कहा— श्रीभाईजी अत्यधिक रुग्ण हैं। ऐसा लगता है कि यह रुग्णता विघातक सिद्ध होगी। चलो, उनसे मिल आवें।

फिर महन्तजी महाराज और मैं गोरखनाथ मन्दिरसे गीतावाटिका आये। श्रीभाईजी अत्यधिक रुग्ण थे ही। वे खाटपर लेटे हुए थे। महन्तजी महाराजके आनेपर वे खाटपर उठकर बैठ गये तथा उन्होंने महाराजजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। महाराजजीने देखा कि श्रीभाईजीके हाथमें कागज-कलम है। महन्तजी महाराजने जिज्ञासा की— भाईजी ! आपकी काया क्षीण हो गयी है। शक्तिका भी ह्रास हो गया है। रुग्णताके कारण शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया है, ऐसी दशामें आपके हाथमें लेखनी है। आप अभी भी काम किये जा रहे हैं ?

श्रीभाईजी विनम्र स्वरमें धीरे-धीरे कहने लगे— *जीवनकी सारी वासनाएँ समाप्त हो चुकी हैं। मैं उन सब द्वन्द्वोंसे मुक्त हो चुका हूँ। बस, एक वासना अभी भी मनमें बनी हुई है। भगवन्नामके प्रति मेरे मनमें आस्था है। मेरा विश्वास है कि भगवन्नामका आश्रय मानव मात्रके लिये अशेष कल्याणकर है। जीवन तो अवसानकी ओर जा रहा है, पर इस लेखनीके माध्यमसे*

भगवन्नामाश्रयकी भावनाका यदि कुछ प्रसार हो सके तो बड़ा उत्तम। यह वासना तो अभी भी है ही।

मृत्यु-शय्यापर पड़े हुए श्रीभाईजीके मुखसे आस्थाके इन शब्दोंको सुनकर महन्तजी महाराज नख-शिख सिहर उठे और वे पुलकित स्वरमें कहने लगे— भगवन्नामके प्रति सुदृढ़ आस्था तथा लेखनीके द्वारा भगवन्नाम प्रचारकी शुभद वासना सदैव आपके हृदयमें बनी रहे, यह मेरी भगवानसे प्रार्थना है।

मैं तो हैरान था पूज्य श्रीभाईजीके इन शब्दोंको सुनकर। उनका जीवन अवसानोन्मुख था। वे थे अत्यन्त रुग्ण, अत्यन्त क्षीण, अत्यन्त जर्जर, पर उनकी आत्मामें थी भगवन्नामके प्रति अडिग आस्था और भगवन्नाम-निष्ठाके प्रचारके प्रति अतुल तत्परता। भगवन्नाम-निष्ठाका यह अद्‌भुत चित्र था, एकदम जीता-जागता चित्र। भगवन्नाम प्रचारकके रूपमें श्रीचैतन्य महाप्रभुका नाम लिया जाता है। यह बात इतिहासके पृष्ठोंकी है। उस बातको मैंने केवल सुना है, देखा नहीं है, पर पूज्य श्रीभाईजीके भगवन्नाम-प्रचारका वृत्त तो मेरी आँखों देखी हुई बात है। 'कल्याण' पत्रिकाके पृष्ठोंमें अनुरोध करके, नामजप विभागकी स्थापना करके, अखण्ड नाम संकीर्तन अनुष्ठानको आयोजित करके, सम्पर्कमें आनेवालोंको तुलसीमाला प्रदान करके, इस प्रकार विविध माध्यमोंसे भगवन्नाम-प्रचार द्वारा उन्होंने वर्तमान घोर कलिकालमें आध्यात्मिक वातावरणकी जैसी सृष्टि की, वह अपने ही ढंगकी है। पैसा-पद-प्रभुता-प्रतिष्ठा आदिकी दृष्टिसे उनसे अधिक समर्थ व्यक्ति समकालीन समाजमें थे और हैं, पर उनके द्वारा यह कार्य नहीं हो पाया। होता कैसे? इसके लिये चाहिये था भगवन्नाम-निष्ठ व्यक्तित्व और इस व्यक्तित्वके साकार स्वरूप थे विश्ववन्द्य श्रीभाईजी। ■

श्रीनारायणप्रसादजी शर्मा

श्रद्धालु श्रीशुकदेवजी

विश्वविख्यात धार्मिक संस्था गीताप्रेसके संस्थापक हैं परमपूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पर इस संस्थाको खड़ा करनेमें श्रीशुकदेवजीका महान योगदान नीवके पत्थरके समान सदैव सम्माननीय रहेगा। श्रीशुकदेवजी गीताप्रेसके एक ऐसे निस्पृह-निरभिमानी-कर्तव्यपरायण-कर्मठ कार्यकर्ता थे, जिन्होंने गीता और रामायणके संदेशको घर-घर पहुँचानेके लिये अपने जीवनकी आहुति दे दी। उनका सरल-सादा-सात्विक-साधनानिष्ठ-सेवासंलग्न जीवन गीताप्रेसके निर्माण एवं अभ्युदयके इतिहासका एक अभिन्न और अमर अंग है।

जब श्रीशुकदेवजीकी मृत्युका हृदयद्रावक समाचार चित्रकूटसे गीताप्रेस आया और जब श्रीभाईजीने इसे सुना तो वे एक बार स्तम्भित रह गये थे। उन्होंने विह्वल स्वरमें कहा था— आज मेरी आन्तरिक रुचिको परखनेवाला, बिना संकेत किये ही मेरी सुख-सुविधाका ध्यान रखनेवाला, मनुहार करके या अकड़ करके मेरी सेवा-सुश्रुषाका प्रबन्ध करनेवाला, अपनी बातकी टेक निभानेवाला, निष्कपट भावसे प्रीति करनेवाला, सेवाका प्रतिफल नहीं चाहनेवाला मेरा छोटा भाई आज मुझे छोड़कर भगवन श्रीरामके साकेतधाममें पधार गया। उनकी निष्ठा

और कर्मठतासे मेरे जीवनके न जाने कितने ही आयोजन सफल व पूरे हुए। श्रीशुकदेवजीके साथ मेरा कैसा आन्तरिक स्नेह-सम्बन्ध था, यह एक रहस्य ही रहेगा।

जब श्रीभाईजी गोरखनाथ मन्दिरके समीप एक उद्यानमें निवास करते थे, तब उस उपवनके हरित लतागुल्मोंके संकुल झुरमुटोंमें सत्संगका आयोजन होता था। वे एकदिन भगवान श्रीकृष्ण तथा गोपीतत्त्वके परम मधुर भावकी झाँकी करा रहे थे कि उसको सुन करके श्रीशुकदेवजीको भावावेश हो आया। शरीरकी सुधि नहीं रही। इस प्रकारका भावावेश उनमें अनेकों बार देखा गया था। उस स्थितिमें उनको विलक्षण आनन्द और शान्तिका अनुभव होता था। एक बार सत्संगमें श्रीभाईजीने श्रीनैमिषारण्य तीर्थका वर्णन करके वहाँके पौराणिक सत्संगका चित्रण किया। श्रीशुकदेवजीको भावावेश हो गया और उसी स्थितिमें आपको नैमिषारण्यके ज्ञान-यज्ञमें सम्मिलित अट्ठासी हजार शौनकादि ऋषियोंके साथ-साथ श्रीसूतजीका दर्शन हुआ। ये ऐसे भावुक हृदयके थे।

श्रीभाईजीके प्रति श्रीशुकदेवजीकी अगाध प्रीति थी। जब श्रीभाईजीने साधक कमेटी बनायी तो ये उनके प्रथम सक्रिय समर्पित सदस्य बने। साधकोंको कठिनतम नियम दिलाये गये, जिसमें उल्लेखनीय हैं भोजनमें तीन या पाँच वस्तुओंका प्रयोग (आटा, घी, नमक, दाल, दूध आदि), तीन या पाँच कपड़ोंका संग्रह, नित्य चौंसठ मालाका जप, गीतापाठ आदि। इन्होंने सत्य, सेवा, सत्संग और अदोष-दर्शन आदि नियमोंका भी व्रत लिया। कमेटीकी बैठक प्रति रविवारको श्रीभाईजीकी अध्यक्षतामें होती थी। नियम भंगका दण्ड उपवास था, पर इनका नाम प्रायः उस श्रेणीमें नहीं आता था।

इनका चित्त श्रीभाईजीमें बसा रहता था। ये प्रत्येक स्थानपर अदृष्टके रूपमें श्रीभाईजीको अपना रक्षक, सहायक और सूत्रधार मानते थे। बात सन् १९३४ की है। उन दिनों सत्संगके निमित्त श्रीभाईजीकी माताजी स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) गयी हुई थीं। उनको वापस गोरखपुर पहुँचानेका दायित्व श्रीशुकदेवजीको सौंपा गया। वे ट्रेनसे गोरखपुर आ रहे थे। लखनऊ एवं गोरखपुरके बीच खलीलाबाद नामक एक स्टेशन पड़ता है, जो गोरखपुरसे लगभग बीस मील दूर है। श्रीशुकदेवजी गाड़ीके गोरखपुर पहुँचनेके बहुत पहले मानसिक संध्या-वंदन आदिसे निवृत्त हो गये। उनके मनमें श्रीभाईजीसे मिलनेकी तीव्र लालसा थी। ट्रेन खलीलाबाद स्टेशनपर अभी पहुँची नहीं थी, पर उत्कंठाके आवेगमें उन्होंने समझ लिया कि गोरखपुर स्टेशन आ गया है, अतः चलती गाड़ीका दरवाजा खोलकर नीचे उतरने लगे। संयोगसे दरवाजेसे लगा हुआ लोहेका डंडा उनके हाथमें आ गया। गाड़ी गतिमें थी, अतएव उन्हें झटका लगा और वे अचेत हो गये। ईश्वरकी कृपा, इस स्थितिमें भी उनके हाथसे वह डंडा छूटा नहीं। थोड़ी देर बाद जब उन्हें होश आया तो उन्होंने अपनेको चलती गाड़ीसे झूलते हुए पाया। उन्होंने जान लिया कि अब प्राण गये! वे कालके गालका ग्रास बनने ही वाले थे कि उसी क्षण उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि श्रीभाईजीने सशरीर उपस्थित होकर उनका हाथ पकड़ लिया है और उनको खलीलाबादके प्लेटफार्मपर खड़ा कर दिया है। सच तो यह है कि श्रीभाईजी गोरखपुरमें थे, जो खलीलाबाद स्टेशनसे कई मील दूर है, पर यह दूरी तो हमारे-आपके लिये है, श्रीभाईजीके अन्तरंग भक्त श्रीशुकदेवजीके लिये नहीं। जीवन-रक्षाके इस अद्भुत प्रसंगने श्रीभाईजीके महान सामर्थ्यकी

एक झलक उनको दिखला दी। इस झलकसे श्रीभाईजीके श्रीचरणोंके प्रति उनके अन्तरमें कैसी आस्था, कैसी श्रद्धा, कैसी भक्तिका उद्रेक हो उठा, इसे तो एक मात्र श्रीशुकदेवजीका हृदय ही जानता है। श्रीशुकदेवजीके हृदयकी भावनाके प्रबल प्रवाहका स्वरूप सामने आते ही मुझे श्रीरामचरितमानसकी चौपाई याद आने लगती है कि सामर्थ्यके ज्ञानके अभावमें सही प्रतीति-प्रीति-भक्ति नहीं होती।

जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।।
प्रीति बिना नहीं भगति दिढाई। जिमि खगपति जल के चिकनाई।।

■

श्रीदुर्गाशंकरजी अग्रवाल

कुछ आदर्श उदाहरण

समाजमें बढ़ती हुई अनैतिकता-उच्छृंखलता-अनास्थासे किसीका मन बड़ा व्यथित था। टूटती हुई मर्यादाओं, बढ़ती हुई वासनाओं, कराहती हुई आस्थाओं, विखरती हुई मान्यताओंको देखकर उनका मन काँप उठा कि अपने हिन्दू देश भारतके ऋषियों-मुनियों द्वारा स्थापित वे महान आदर्श और वे महान चरित्र क्या केवल अब पुस्तकोंमें पढ़नेकी चीज रह जायेगी। एक पत्रमें आपबीती कुछ घटनाओंका वर्णन करते हुए उन्होंने अपना दर्द लिखकर श्रीभाईजीके पास गोरखपुर भेज दिया। श्रीभाईजीने पत्रका जो संक्षिप्त उत्तर भेजा, वह इस प्रकार है:—

प्रिय महोदय,

सादर हरिस्मरण। आपका कृपा पत्र मिला। अवश्य ही वर्तमान समयमें भी ऐसे बहुत सज्जन सभी क्षेत्रोंमें वर्तमान हैं, जो भारतीय संस्कृतिके परमोज्ज्वल प्रकाश रूप हैं, पर ऐसे सज्जन न तो अपना विज्ञापन करते हैं, न वे यह चाहते हैं कि उन्हें लोग जाने और मानें। करोड़ों मानवोंमें, पता नहीं, कितने ऐसे होंगे, जिनके चरित्र अत्यन्त पवित्र और आदर्श हैं। जिन क्षेत्रोंके लोगोंके सम्बन्धमें आपने पूछा, उन क्षेत्रोंमें भी ऐसे बहुतसे सज्जनोंसे मेरा काम पड़ा है और मैं उन्हें जानता हूँ, जो परम आदर्श चरित्र हैं।

साधुओंमें मैं ऐसे महात्माओंको जानता हूँ, जो सचमुच बड़े विरक्त और परम त्यागी सदाचारी हैं। उनमें कौन ब्रह्मनिष्ठ है, कौन परमात्माको प्राप्त है, यह तो मैं नहीं कह सकता, क्यों कि यह स्थिति तो स्वसंवेद्य है। एक महात्माको मैंने देखा है, जो बहुत बड़े दार्शनिक विद्वान हैं, पर जिनमें विद्याका जरा भी अभिमान नहीं और जिनका अत्यन्त त्यागपूर्ण विरक्त जीवन है।

धनियोंमें भी ऐसे बहुतसे हैं। एक ऐसे सज्जन हैं, जो अपने लिये कंजूस हैं और दूसरोंके लिये बड़े उदार हैं। सदाचारी हैं, व्यसनरहित तथा अभिमान-शून्य हैं। अत्यन्त साधारण रहन-सहन रखते हैं। विनम्र हैं, भगवद्भक्त हैं। एक दूसरे धनी सदाचारी महापुरुष हैं, जिन्होंने

पैसा कमाया ही धर्म तथा जनताकी सेवाके लिये। उम्रभर सेवा करते रहे।

एक डिप्टी कलक्टर हैं, जो अनुचित अर्थ ग्रहण नहीं करते। अपने नियमित नौकरीके पैसोंसे परिवारका पालन करते हैं। एक दिन मेरे पूछनेपर, उस दिन महीनेके अन्तकी तीस तारीख थी, उन्होंने कहा— 'मेरे पास आज चार आने पैसे हैं। इस महीनेके वेतनके पैसे मिलेंगे तो काम चलेगा'। एक पोशाक है, जिसे बाहर जाते हैं, तब पहन लेते हैं। बड़े मितव्ययी हैं और अपनी इस स्थितिमें संतुष्ट हैं।

टैक्सटाइल विभागके एक उच्चअधिकारी थे। अब उन्होंने अवकाश ग्रहण कर लिया है। बड़े-बड़े प्रलोभन आनेपर भी उन्होंने ऊपरका एक पैसा नहीं लिया। बड़ी सादगीसे जीवन बिताया। साइकिलसे आफिस आते जाते थे। आफिसके ऊपर-नीचेके अधिकारी उनसे उतने प्रसन्न नहीं रहते थे, क्यों कि वे उनको अपनी अनुचित आयमें बाधक समझते थे। बड़े निर्मल हृदय, विनम्र, सदाचारी तथा भक्त पुरुष हैं।

एक पुलिसके उच्च अधिकारी थे, जिन्होंने सारी उम्रमें कभी घूस नहीं ली, कभी मिथ्या मुकदमा नहीं बनाया। कमाईमेंसे गरीबोंकी सेवा करते और स्वयं बड़ी कठिनाईसे जीवन चलाते, पर बड़े प्रसन्न थे। उन्हें अपनी सादगी और इमानदारीका गौरव था।

एक नेता हैं, जो पहले कहीं किसी पंचायतके उच्च अधिकारी थे। अच्छे कुलके, इमानदार, अपनी धुनके पक्के, जनताकी सेवा तथा जनताको सुख पहुँचानेके लिये अथक परिश्रम करनेवाले, देश तथा जनताकी सेवामें अपना सारा समय, शक्ति, धन लगानेवाले, कुटुम्बसे लापरवाह, सेवा-सेवाकी धुनमें घरकी जमीन-मकान-जायदाद बेचकर काम चलानेवाले, पर मित्रों-बान्धवोंके द्वारा दिये जानेपर भी किसी भी हालतमें पैसा स्वीकार न करनेवाले अति फक्कड़ आदमी हैं। मैं उनकी कुटुम्बकी लापरवाही तथा जमीन-जायदाद बेचनेके कार्यका समर्थन नहीं करता, पर उनकी धुन देखकर तो सभी चकित हो जाते हैं। अभी-अभी उन्हें कई लाख रुपये किसी वोटके सौदेमें मिल रहे थे, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किये और नयी सरकार बननेतक दबाव पड़नेके डरसे एकान्त सेवन करते रहे। संग्रह करने योग्य मुनष्य है।

मिनिस्टरोंमें भी ऐसे बहुतसे हो चुके हैं, अब भी होंगे, जिन्होंने ऊँचे-से-ऊँचे पदोंपर आसीन होकर भी अपने घरकी ओर नहीं देखा। फकीर ही बने रहे। नया मकान बनाना तो दूर रहा, पुराने घरकी मरम्मत भी नहीं करवाई। भाड़ेका घर भी नहीं बदला।

इसी प्रकार सभी क्षेत्रोंमें परम पवित्र आचरणों वाले सज्जन हैं। स्त्री समाजमें तो पुरुषोंसे कहीं अधिक आदर्श चरित्रवाली त्यागमूर्ति देवियाँ हैं। इन सभीके चरणोंमें मैं सभक्ति नमस्कार करता हूँ। दुःख तो इस बातका है कि नवीन निर्माणमें ऐसे पुरुषों तथा स्त्रियोंकी संख्या उत्तरोत्तर घट रही है, जो देशके लिये भयानक दुर्भाग्यकी बात है।

शेष भगवत्कृपा।

आपका

हनुमानप्रसाद पोद्दार

■

श्रीविश्वम्भरनाथजी द्विवेदी

प्रणम्यका प्रणाम

पूज्य श्रीभाईजीके सर्वप्रथम दर्शन मुझे तब हुए, जब मेरी उम्र मात्र सात-आठ वर्षकी थी। उन दिनों 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें श्रीलक्ष्मणनारायणजी गर्दे, श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', श्रीनन्ददुलारेजी वाजपेयी, श्रीदेवधरजी शर्मा और मेरे पिताजी श्रीशान्तनुबिहारीजी द्विवेदी काम करते थे। श्रीभाईजीके समीप जानेपर चरण छूकर प्रणाम करना मुझे सिखलाया गया था। तदनुसार उनके चरणोंतक पहुँचकर जैसे ही मैंने प्रणाम किया, श्रीभाईजीने मुझे अपने पास खींचकर बैठा लिया और अपने अमूल्य समयमेंसे मुझे भी कुछ क्षण देकर बहुत लाड़-प्यार पूर्वक घर-बाहरकी बातें मुझसे करने लगे। फिर तो मैं कई दिनों तक उनके घर ही रहा। वहाँके स्नेहकी स्मृतियाँ आज भी मानस-पटलपर एक-एक कर अंकित हो रही हैं।

सन् १९४२ में 'महाभारतांक' का काम पूरा होते-होते मेरे पिताजीने संन्यास ले लिया। उस समय मैं श्रीभाईजीकी पूर्वज-भूमि रतनगढ़के निकट चूरूके 'ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम'में अध्ययन कर रहा था। जब मुझे संन्यासकी सूचना मिली तो आश्रममें मैं कई दिनोंतक दुःखी रहा और रोया भी। उस समय श्रीभाईजीने मुझे रतनगढ़ बुलवा लिया और विश्वास, आश्वासन और स्नेहकी वह वर्षा की, जिसे आज भी यादकर हृदय गद्‌गद हो उठता है।

सन् १९४६ में ऋषिकुलका स्नातक होकर अपने गाँव महराई आ गया। घर आनेके पश्चात् विवाह पर्यन्त श्रीभाईजीसे मैं मिल न सका। विवाहके अवसरपर ही श्रीभाईजीका एक कार्ड आया, जिसके आरम्भमें लिखा था 'प्रिय विश्वम्भर, शुभाशीष'। उसी कार्डके अन्तमें यह भी लिखा था 'तुम्हारा, हनुमान प्रसाद पोद्दार'।

यह कार्ड मेरे एक अभिभावकके हाथ लग गया। उस पत्रमें लिखित 'आशीष' और 'तुम्हारा' जैसे शब्दोंपर उन्होंने बड़ी आपत्ति उठायी और वे आग-बबूला हो गये। वे लगे वहाँ अपनी भड़ास निकालने— देखा, यह देशके बड़े विद्वान 'कल्याण'के सम्पादकका पत्र है! इतना तो उन्हें ध्यान होना ही चाहिये कि पत्र लिख रहे हैं एक ब्राह्मणको।

मैं श्रीभाईजीसे अपने सम्बन्ध एवं भावकी बात उन्हें समझानेमें विफल रहा। वे अन्ततक झल्लाते ही रहे।

संयोगसे उन्हीं अभिभावक महोदयके साथ कुछ दिनों बाद मैं गोरखपुर गया और श्रीभाईजीसे मिला। अपने पहले संस्कारके अनुसार ही मैंने उन्हें प्रणाम किया। बस, प्रणाम करते-करते श्रीभाईजीने मेरा हाथ पकड़ लिया। फिर उन्होंने स्वयं अपने हाथ जोड़ लिये और वे बोले— अच्छा, विश्वम्भर, आ गये। अब तुम छोटे बच्चे नहीं, बड़े हो गये हो। ब्राह्मण हो, पूज्य हो। तुम पैर छूकर प्रणाम करो, यह अब नहीं चलेगा। अब तो तुम्हें प्रणाम करना मेरा ही कर्तव्य है। प्रसन्न हो न? घरमें सब लोग स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं न?

यह सब कहते और पूछते हुए श्रीभाईजीने प्रणामके गौरवमें एक छोटा-सा प्रवचन ही दे

डाला। मुझे सबसे अधिक संतोष यह देखकर हो रहा था कि श्रीभाईजीसे अपने सम्बन्ध और भावकी जो बात मैं चाह करके भी अपने अभिभावकको तब नहीं समझा पाया था, अब उसी बातको श्रीभाईजीके वर्तमान उद्‌गारोंने एवं उनके प्रत्यक्ष व्यवहारने सहज रूपमें समझा दिया।

श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास

नत-मस्तक हूँ

सन् १९६३ की बात है। तब मैं लखनऊसे प्रकाशित होनेवाली 'ज्ञान भारती' पत्रिकाका सम्पादक था। उस दशकके आरम्भमें चीन और भारतके मध्य जो संघर्ष हुआ था, उससे दोनों देशोंके पारस्परिक सम्बन्धमें तनाव आ गया था और अपने देशका वातावरण क्षुब्ध था। उस समय आवश्यकता थी अपने देशके नवयुवकोंमें देशभक्ति एवं देशरक्षाकी भावना प्रस्फुटित एवं परिपुष्ट करनेकी। इस चिन्तनसे प्रभावित होकर 'ज्ञान भारती' पत्रिकाका 'देश-रक्षांक' विशेषांक निकालनेका विचार होने लगा, जिससे त्याग और बलिदानकी गाथाएँ देशवासियोंतक पहुँच सके। 'देश-रक्षांक' विशेषांकके प्रकाशनका निश्चय होते ही सभी क्षेत्रोंकी प्रमुख विभूतियोंको पत्र लिखकर अनुरोध किया गया कि वे अपने विचार या तद्‌विषयक कुछ सच्ची घटनाएँ लिखकर भेजें, जिससे विशेषांक सुन्दर रूपमें प्रकाशित हो सके।

मैंने पत्र श्रीभाईजीको भी लिखा। किसी सार्वजनिक सभामें उनको देखने-सुननेका अवसर मुझे भले ही मिला हो, पर उनसे मेरा कोई व्यक्तिगत परिचय नहीं था। गीताप्रेस और 'कल्याण' पत्रिकाके कर्णधार होनेके कारण श्रीभाईजी अध्यात्म एवं सम्पादन-क्षेत्रकी एक अति गण्यमान विभूति थे, अतः उनसे निवेदन करना आवश्यक और उचित था। मैंने निवेदन किया अवश्य, पर मात्र कर्तव्यवश, क्यों कि सुना था, वे अन्य पत्र-पत्रिकाओंके लिये लेख नहीं भेजते। साथ ही उनकी चतुर्दिक् ख्याति और उनकी अत्यधिक व्यस्तताकी बातोंको मैंने खूब सुन रखा था, अतः मुझे स्वाभाविक ही आशा नहीं थी कि उनके पाससे कोई लिफाफा मेरे पास आयेगा, परंतु एक दिन अचानक उनसे उत्तर प्राप्त करके मेरे आश्चर्य और आनन्दका ठिकाना न रहा। उनका जीवन अत्यधिक व्यस्त है, इसके बाद भी 'ज्ञान भारती' जैसी मध्यम श्रेणीकी पत्रिका और मुझ जैसे साधारण सम्पादकके लिये उनके दिलमें जगह है, इससे मैं बड़ा प्रभावित हुआ।

उन्होंने ज्ञान-भारतीके लिये एक लेख भेजा था और लेखके साथ एक पत्र था मेरे नाम। लेखके भेजनेसे मैं प्रभावित तो था ही, इससे भी अधिक प्रभावित था उनके पत्रसे, जिसकी पंक्ति-पंक्तिमें उनके अन्तरका दैन्य भरा हुआ था और उसी दैन्यमें उनके अन्तःकरणकी उदारताका सागर हिलोरे ले रहा था। मैं उनसे छोटा हूँ, मात्र कहनेके लिये नहीं, सचमुच ही। इसके बाद भी मुझको अत्यन्त सम्मान देनेके लिये 'परम आदरणीय' शब्दका प्रयोग करते हुए उन्होंने पत्रका प्रारम्भ किया था। इस सम्मानका न तो मैं पात्र था और न मुझमें योग्यता थी, पर उन्होंने वैसा सम्मान दिया। पत्रमें जो उन्होंने लिखा था, उसका सारांश यह था कि यद्यपि स्वास्थ्य ठीक नहीं है, पर आपकी आज्ञा थी, अतः कर्तव्य-पालनके रूपमें कुछ लिखकर भेज

रहा हूँ। साथ ही यह भी लिखा था कि यदि लेख आपको पसन्द न आये या स्तरका न हो तो निःसंकोच वापस कर दें। अति विनम्रतामें छिपी हुई उनकी महानता मेरे हृदयको बहुत भीतरसे छू गयी और पत्रका अन्त तो बड़ा हृदय-स्पर्शी था। उसे देखकर मैं उनके दैन्यका वन्दन करने लगा। उन्होंने अपने लिये लिखा था 'आपका सेवक'। इन दो शब्दोंको पढ़कर मेरा मस्तक उनके प्रति झुक गया। चतुर्दिक् प्रतिष्ठा होकर भी ऐसा दैन्य-भाव था और ऐसी असाधारण विनम्रता थी उनमें। इस दैन्यके प्रति मैं तब भी नत मस्तक था और आज भी हूँ और सदैव रहूँगा। ■

श्रीगोपीनाथजी तिवारी (भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, गोरखपुर विश्वविद्यालय)

सिर झुका कर कहते हैं–

गोरखपुर दो सम्बन्धोंसे लोकविश्रुत रहा है, गोरखनाथ और गीताप्रेस– 'कल्याण'से। केरलमें यात्रा करते हुए मुझे एक मद्रासी सज्जनने पूछा– आप कहाँसे आये हैं?

मैंने कहा– गोरखपुरसे।

मुँह ताकते हुए वे बोले– गोरखपुर, कौन गोरखपुर?

मैंने कहा– गोरखनाथकी सिद्धभूमि, पूर्वोत्तर रेलवेका मुख्यकेन्द्र।

वे और अधिक स्तम्भित हो पूछने लगे– कौन गोरखपर, ? समझा नहीं मैं।

मैंने कहा– गीताप्रेसवाला गोरखपुर, जहाँसे 'कल्याण' निकलता है।

प्रसन्न वदन वे बोल पड़े– अच्छा, गीताप्रेसवाला गोरखपुर।

यह वार्तालाप अंग्रेजीमें हुआ, क्योंकि वे हिन्दी बिल्कुल नहीं समझते थे। गीताप्रेस और 'कल्याण'की पृष्ठभूमिमें एक स्तम्भ था, यशस्वी प्रकाश-स्तम्भ, जिसका नाम था– 'श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार'।

गीतावाटिका इसी कार्यरत कुसुमसे सुगन्धित थी। गोरखपुरके सहायता-कार्योंमें भी भाईजीका हाथ सदा आगे बढ़ा है। गोरखपुरकी बाढ़ एक विभीषिका बनी रहती थी और भाईजी सहायता-कार्यमें सदा तत्पर रहते थे। कुष्ठाश्रम भी उनकी सहायता-दृष्टिमें रहा। मेरा भाईजीसे २५ वर्षोंसे निकटका सम्बन्ध रहा है। मैंने सैकड़ों छात्रोंको उनके पास सहायतार्थ भेजा और मुझे एक भी ऐसा समय स्मरण नहीं है, जब कोई छात्र रिक्तहस्त लौटा हो। उन्होंने किसीको मासिक छात्रवृत्ति दी, किसीको एक मुश्त धनराशि। एक छात्र मेरे पास दुःखी आया। उसपर विश्वविद्यालयका परीक्षा-शुल्कसहित पौने दो सौ रुपया देय था। मैंने भाईजीको पत्र लिखा। वह छात्र हँसता हुआ लौटा और परीक्षामें बैठा। ऐसा सैकड़ों बार हुआ है।

सब कुछ करते हुए भी भाईजी नामसे दूर भागते थे। मैंने उन्हें विश्वविद्यालयमें बुलाया। उनके भाषण भी हुए, किन्तु वे कभी भी सभापति न बने। पहले ही कह देते थे– मैं आऊँगा, किन्तु सभापति न बनूँगा।

महाप्रयाणसे दो मास पूर्वकी ऐसी ही एक अविस्मरणीय स्मृति है। मैं चाहता था कि एम. ए. हिन्दीमें सर्वोच्च अंक प्राप्त करनेवालेको स्वर्णपदक दिया जाय। मैंने भाईजीसे इसकी चर्चा की। वे तुरन्त बोले— हाँ, दो सहस्त्र रुपये आपके पास पहुँच जायँगे।

मैंने कहा— भाईजी, इस स्वर्णपदकका नाम होगा 'हनुमानप्रसाद पोद्दार स्वर्णपदक'।

उन्होंने कहा— यह नहीं हो सकता। कोई और नाम रखिये।

मुझे आधा घंटा भाईजीसे पर्याप्त वाद-विवाद एवं संघर्ष करना पड़ा, तब बड़ी कठिनाईसे वे राजी हुए और बोले— तिवारीजी ! आप तो सब कुछ जानते हैं, तब क्यों इसपर आज अड़कर बैठ गये हैं ?

वास्तवमें भाईजी 'ऋषि' थे और गीतावाटिकाके वृक्ष सिर झुकाकर कहते हैं— हाँ, हम उनके ही लिये झुकते हैं। ■

श्रीशिवबालकजी त्रिपाठी

[१] श्रमिक नेताके उद्गार

एकबार गीताप्रेसमें श्रमिकोंने हड़ताल कर दी। गीताप्रेसके श्रमिक नेताओंकी ऐसी कल्पना थी कि श्रीशिब्बनलालजीके सहयोगसे यह हड़ताल और भी जोर पकड़ लेगी। श्रीशिब्बनलालजी पूर्वाञ्चलके श्रमिक वर्गके नेता थे और वे शहरमें थे नहीं। कहीं बाहर गये हुए थे। उनके बाहरसे आनेपर श्रमिक नेताओंने उनसे नेतृत्वके लिये अनुरोध किया। श्रीशिब्बनलालजीने स्पष्ट और जोरदार शब्दोंमें कहा— मैं इस हड़तालमें सहयोग नहीं दूँगा। मैं राजनैतिक पार्टीसे इस्तीफा दे सकता हूँ किन्तु श्रीपोद्दारजीके खिलाफ एक शब्द नहीं बोल सकता। मुझे उनकी नेक-नीयतीपर पूर्ण विश्वास है।

[२] समयकी पाबन्दी

११ फरवरी १९६८ के दिन भारतीय जन-संघके अध्यक्ष श्रीदीनदयालजी उपाध्यायके निधनका समाचार रेडियो द्वारा प्रसारित किया गया। श्रीउपाध्यायजीका निधन मुगलसराय स्टेशनके पास हुआ। शव पुलिसके पास है और मृत्युका कारण अज्ञात है। इस समाचारको पाते ही श्रीभाईजीको बड़ी मार्मिक पीड़ा हुई।

शामको साढ़े पाँच बजे गोरखपुरके टाउन हालमें शोक-सभा थी। जनसंघके स्थानीय कार्यकर्ता श्रीमलहोत्राजीने श्रीभाईजीसे भी आनेके लिये अनुरोध किया। श्रीभाईजीने उस अनुरोधको तुरन्त स्वीकार कर लिया और कहा— मुझको तो आना ही चाहिये। वे तो मेरे बड़े आत्मीय स्वजन थे। हम दोनोंका बड़ा स्नेह था।

दोपहरमें मृत्यु हुई थी और अपराह्नकालमें यह समाचार प्रसारित किया गया था। समाचार मिलते ही इस शोक-सभाका आयोजन कर लिया गया था। श्रीभाईजी घरसे पाँच बजे चल दिये।

कारमें समीप बैठे हुए भाई श्रीबंकाजीने श्रीभाईजीसे कहा– बाबूजी ! आप जल्दी चल रहे हैं।

श्रीभाईजी– हमलोग जल्दी कैसे चल रहे हैं ? श्रीमलहोत्राजीने कहा था कि साढ़े पाँच बजेसे सभा है।

श्रीबंकाजी– वह तो ठीक है, पर सभाकी कार्यवाही साढ़े पाँच बजे आरम्भ नहीं हो पायेगी। अभी तो अच्छी प्रकारसे प्रचार भी नहीं हो पाया है।

श्रीभाईजीने कहा– इससे क्या ? अपनेको तो समयपर पहुँचना है।

कुछ देर रुककर श्रीभाईजीने कहा– यही तो खराबी है। सभी यदि यह सोचने लगें कि सभाकी कार्यवाही साढ़े पाँच बजे आरम्भ नहीं होगी, अतः देरसे चलना चाहिये, फिर तो अवश्य ही देर होगी। सोचना यह चाहिये कि कार्यवाही आरम्भ हो या न हो, अपनेको ठीक समयपर पहुँच जाना है।

श्रीभाईजी वहाँपर समयसे पहुँच गये और सचमुच शोक-सभाकी कार्यवाही साढ़े पाँच बजे आरम्भ हो गयी। निश्चित समयपर पहुँचनेका निश्चय रहनेसे श्रीभाईजी कुछ मिनट पहले ही वहाँ पहुँच गये थे। ■

श्रीहरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी

कठिनाई हल हो गयी

गरीबों और दुःखियोंकी वेदनासे पोद्दारजी द्रवित हो जाते थे। सन् १९५५ या ५६ की बात है। उन दिनों मैं गोरखपुरमें ही वकालत कर रहा था। एक डकैतीका मुकदमा चल रहा था, जिसमें कई अभियुक्त थे, जो हवालातमें बंद थे। एक अभियुक्तके सम्बन्धमें पोद्दारजीका विश्वास था कि वह निरपराध है। वे मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उसके सम्बन्धमें कुछ छानबीन कर लूँ।

श्रीभाईजीके इस कथनसे मुझे विश्वास हो गया कि कोई खास बात है। मैंने जाँच-पड़ताल करायी तो पता चला कि वह व्यक्ति निर्दोष था और वह मुक्त कर दिया गया। उसे इस बातका पता भी न था कि उसकी मुक्तिमें पोद्दारजीका हाथ था।

उन्हीं दिनोंकी एक दूसरी घटना याद आती है। पोद्दारजीके निमन्त्रणपर भारतके प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद गीताप्रेसके मुख्य-द्वारके उद्‌घाटन और चित्र-मन्दिरके अनावरणके लिये गोरखपुर पधारे थे। बड़ी धूम-धाम थी और उनके दर्शनके लिये हजारोंकी संख्यामें लोग इकट्ठे हो रहे थे। गीताप्रेस शहरके मध्यमें स्थित है। भीड़-भाड़के कारण जिला-अधिकारियोंने सुरक्षाके कुछ प्रश्न उपस्थित किये, किन्तु श्रीराजेन्द्रबाबूके गीताप्रेसके प्रति प्रेम और पोद्दारजीके मर्मस्पर्शी अनुरोधने सभी कठिनाइयोंको हल कर लिया और उद्‌घाटन एवं अनावरणका कार्यक्रम बड़े ही उल्लासपूर्ण वातावरणमें सम्पन्न हुआ। ■

डा. श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज

एक गृहस्थ संत

जहाँतक मुझे स्मरण है यह बात सन् १९२८ ई. की है। मेरे भगवद्भक्तिपरक दो छन्द 'कल्याण'में प्रकाशित हुए थे। सम्पादक महोदयने मुझे उस अंककी एक प्रति भेजी थी और तभीसे मेरा उनके साथ लेखक-सम्पादकका सम्बन्ध स्थापित हो गया।

एक बार उन्होंने अपने एक मित्रके घर विवाहोत्सवमें निमन्त्रित एक विद्वान्का दक्षिणा-प्रदानद्वारा सम्मान करना चाहा। दक्षिणाको अस्वीकार करते हुए निमन्त्रित व्यक्तिने यह कहा– मैं तो केवल उत्सव-दर्शनार्थ यहाँ आया था, अतः दक्षिणा नहीं लूँगा।

इसपर विनयावनत श्रीपोद्दारजीने उस दक्षिणाद्रव्यको उनके हाथमें न देकर चरणोंमें समर्पित कर दिया। इस भावमयी दक्षिणाका वे विद्वान् प्रत्याख्यान न कर सके। यह घटना नयी दिल्लीकी है।

ऐसा ही एक प्रसंग स्वर्गाश्रमका है, जहाँ श्रीपोद्दारजीने एक विद्वान्के चरणोंका स्पर्श करना चाहा। विद्वान् व्यक्ति वयमें न्यून थे, अतएव उन्होंने संकोचवश श्रीपोद्दारजीके द्वारा अपने चरणोंके स्पर्शका विरोध किया। इसपर श्रीपोद्दारजीका संक्षिप्त उत्तर था– किन्तु श्रीमान्! आपके चरणोंको स्पर्श करनेका तो मेरा अधिकार है। इससे आप मुझे वञ्चित न करें।

श्रीपोद्दारजी एक वदान्य व्यक्ति थे। दिल्लीके एक सज्जनको, जो परिस्थितवश संकटापन्न हो गये थे, अपनी पुत्रीके विवाहके लिये धनकी आवश्यकता आ पड़ी। उन्होंने एक मित्रके माध्यमसे श्रीपोद्दारजीसे आर्थिक सहायताकी याचना की। परिणामतः श्रीपोद्दारजीने उन सज्जनके घरपर चार अंकोंवाली अपेक्षित धनराशि भिजवा दी। उनकी विपुल आर्थिक सहायताके द्वारा एक अन्य कन्याका भी विवाह सुविधापूर्वक सम्पन्न हो जानेकी बात मुझे विदित है। धन्य है ऐसी उदारता। ■

बहिन बी. बेगम मौदहा

फरिश्ता-सिफत इन्सान

मुझे जब इस बुजुर्ग और फरिश्ता-सिफत इन्सान माननीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अपने बीचसे उठ जानेकी खबर मिली तो मैं सोचने लगी कि क्या ऐसी शखसियत भी फना हो सकती है। मेरा सम्पर्क आदरणीय पोद्दारजीसे मेरे पति 'सगीर साहब' की मार्फत सन् १९५२ से रहा है। जिस समय मेरे पति चित्रकूटमें राजकीय ड्यूटीपर थे, उन्होंने पोद्दारजीकी इतनी अधिक तारीफ व बड़ाई की कि मैं चकित रह गयी और फिर मुझे मिलाने ले गये। जब मैंने उन्हें अदबसे सलाम किया और मेरे पतिने मेरा परिचय दिया तो पोद्दारजीने फरमाया– खुश रहो, बेटी! लोगोंके दुःख-सुखमें शरीक रहोगी तो अमर रहोगी।

और भी बातें हुई। तबसे वे मुझे बराबर 'कल्याण' भेजते रहे। कई बार उन्होंने लिखा कि तुमलोग कुछ 'कल्याण' में लिखो।

१९६१ ई. में जब मैं अपने पतिके साथ श्रीराहुलजीको उनकी बीमारीमें कुछ सामग्री देने दार्जिलिंग गयीं, तब उनके सामने पोद्दारजीका जिक्र मेरे पतिने छेड़ दिया। उसपर श्रीराहुलजीने कहा था— हनुमानप्रसादजी पोद्दार जो सेवा-कार्य कर रहे हैं, उससे वे अमर रहेंगे। उनकी सेवाएँ लोगोंको अवश्य याद रहेगी। ■

श्रीसाँवरमलजी जोशी

प्रार्थना-निष्ठा

प्रभु सर्वसमर्थ हैं, प्रभु सर्वसुहृद हैं, उनका प्रत्येक विधान जीवमात्रके लिये अशेष मंगलकारी होता है, इस सिद्धान्तपर बाबूजीकी अद्‌भुत निष्ठा थी। वे अपने प्रवचनोंमें कहा करते थे— *विधाता और विधान ये दो नहीं हैं, अतएव विधाताके प्रत्येक विधानमें मंगल-ही-मंगल भरा है। इतना होनेपर भी जो विधान प्रतिकूल प्रतीत हो, उसके निवारणके लिये सत्प्रयत्न करनेके साथ-साथ मन-ही-मन भगवानसे प्रार्थना करनी चाहिये। भगवानकी प्रार्थनामें अमोघ एवं अमित शक्ति है। भगवत्प्रार्थनासे कठिन-से-कठिन कार्य सहजमें सम्पन्न हो जाते हैं, परंतु भगवान सर्वज्ञ एवं सर्वसुहृद हैं, अतः वे उसी प्रार्थनाको पूर्ण करते हैं, जिसके परिणाममें हमारा परम मंगल होता है। हमारी कोई प्रार्थना पूर्ण न हो तो निश्चय समझें कि उसकी अपूर्णता ही मंगलकारिणी है, किन्तु प्रार्थना होनी चाहिये सच्चे मनसे और अचल विश्वासके साथ। प्रार्थनाके लिये किसी विशेष प्रकारके शब्दोंकी आवश्यकता नहीं, भगवान सब भाषाएँ समझते हैं। प्रार्थनामें चाहिये हृदयकी भाषा।*

बात सन् १९१८ की है। देशकी स्वतन्त्रताके लिये क्रान्तिकारी गतिविधियोंको अपनानेके कारण बाबूजी बंगालके शिमलापाल ग्राममें नजरबन्द कर दिये गये और नजरबन्दीकी अवधिको पूर्ण कर बाबूजी मुक्त हुए थे। बंगाल सरकारने बंगालसे उनके निष्कासनका आदेश भी जारी कर दिया था, अतएव बाबूजी अपने पैतृक स्थान रतनगढ़ चले आये थे।

विधिका विधान ! अचानक वहाँ प्लेगका प्रकोप हो गया। परिवार-के-परिवार नियतिके क्रूर हास्यमें विलीन होने लगे। ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रकृति सबको दिखा देना चाहती थी कि जीवन कितना क्षणभंगुर है।

शिमलापालके जीवनमें भगवानकी मंगलमयता तथा भगवत्प्रार्थनापर बाबूजीकी आस्था बहुत दृढ़ हो गयी थी। साथ ही लोकसेवाकी भावना भी परिपुष्ट हुई थी। सब रूपोंमें अपने प्रभु ही हैं, इससे प्राणिमात्रकी सेवा, अध्यात्म-साधनाका ही प्रतिरूप था बाबूजीके लिये। प्राणि-सेवामें भी आर्तनारायण, अर्थात् रोग-कष्टसे पीड़ित व्यक्तियोंकी सेवाके लिये विशेष तत्पर रहते थे वे। प्लेगके प्रकोपसे सेवाका उन्मुक्त क्षेत्र सामने था। बाबूजी इस अवसरपर कब चूकनेवाले थे ! वे रोगियोंकी सेवामें जुट गये। घर-घर रोगियोंकी सँभाल करना, उनके उपचारकी व्यवस्था करना तथा सबके मनोबलको बनाये रखना, यही दिन-रातका उनका कार्यक्रम था।

प्लेगका रोग भीषण रूपसे संक्रामक होता है, अतएव बाबूजीके कतिपय हितचिन्तकोंने उन्हें यह सलाह दी— आपको कुछ समयके लिये यह स्थान छोड़ देना चाहिये।

बाबूजी सबको हँसते हुए यही उत्तर देते थे— यदि साँस समाप्त हो गयी होगी तो कहींपर भी रहूँगा, मृत्यु निश्चित है और यदि जीवन शेष होगा तो यहाँ भी कुछ नहीं हो सकता। फिर इस समय तो मुझे प्रभुने सेवाका अवसर दिया है, इसे क्यों छोड़ूँ?

बाबूजीकी निष्ठापूर्ण प्रभु-अर्चनाके रूपमें होनेवाली सेवाका अद्भुत प्रभाव भी परिलक्षित हुआ। अनेकों निराश व्यक्तियोंने स्वास्थ्य लाभ किया। एक घटना नीचे दी जा रही है।

एक अत्यन्त साधारण स्थितिका जाट-परिवार जीवनकी जटिलताओंको सहते हुए वहाँ निवास कर रहा था। परिवार बड़ा था, आय कम थी। अचानक इस परिवारके सबसे बड़े नवविवाहित पुत्रपर प्लेगका प्रकोप हुआ। यथासम्भव सभी प्रकारके इलाज करवाये गये, पर दशा बिगड़ती ही चली गयी। सबसे बड़े पुत्रको अपनी आँखोंके सामने जाता देख, निःसहाय जाट रोता-कलपता बाबूजीके पास पहुँचा। श्रद्धाकी गरिमा, याचनाकी सीमा, विश्वासकी गुरुताके साथ जाटने बाबूजीके चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया। उसकी करुण-गाथा सुनकर परदुःखकातर बाबूजी सहज ही उसके साथ चल दिये दुःखमें उसका हिस्सा बँटानेके लिये। घर पहुँचनेपर बालककी स्थिति देखकर बाबूजीके मुखमण्डलपर भी गम्भीर चिन्ताकी रेखाएँ उभर आयीं। चुनी हुई उत्तम-से-उत्तम औषधि निरर्थक साबित हो रही थी। लगता था कि बालक अब कुछ ही घंटोंका मेहमान है। बाह्य चेतना प्रायः लुप्त हो चुकी थी। मुखपर किंचित् विकृति भी आ गयी थी। नव-विवाहिता वधू लाज-शर्म छोड़कर सामने आयी और फटते हृदय तथा अजस्र अश्रुधाराके साथ वह बाबूजीके चरणोंपर मस्तक टेककर बिलख उठी। भाषासे शून्य, भावनासे पूर्ण, वेदनाकी मूर्ति वह कुछ कह न सकी। कहनेकी आवश्यकता भी नहीं थी। बाबूजीके नेत्र भी भर आये।

परिवारके सदस्योंको समझानेका प्रयास करते हुए बाबूजीने कहा— भगवानपर विश्वास रखो। उनकी कृपाका अवलम्बन लेकर बालकको गंगाजल देना आरम्भ कर दो। औषधि सर्वथा बंद कर देनी चाहिये। बालकके समीप सुमधुर स्वरमें भगवन्नामका गान आरम्भ कर दो। भगवानकी कृपासे सब कुछ सम्भव है।

इतना कहकर स्वयं बाबूजी वहाँ बैठ गये। सुमधुर स्वरमें उन्होंने नामध्वनि आरम्भ कर दी। गंगाजल भी मँगवाया गया। बाबूजीने स्वयं अपने हाथोंसे उसे गंगाजल दिया।

कुछ देरतक बैठनेके बाद बाबूजी जाने लगे। जाते-जाते उन्होंने पुनः कहा— भगवानके सौहार्दपर विश्वास करके नाम-ध्वनि सुनाते रहो। बीच-बीचमें बालक जब भी पानी माँगे, उसे गंगाजल ही देना। भगवानकी कृपामें अद्भुत शक्ति है।

बाबूजी घर लौट आये। भगवानकी अपार कृपासे बालककी स्थिति सुधरने लगी। कुछ ही घंटों बाद बालककी चेतना लौट आयी। वह सबको पहचानने लगा। अब उसके जीवनकी आशा हो गयी। उपचारके साथ प्रार्थना चलती रही। बाबूजी बराबर उसकी सँभाल करते रहे। कुछ दिनोंमें वह निरोग हो गया।

बालक जब चलने-फिरने योग्य हो गया, तब जाट अपने पूरे परिवारसहित बाबूजीके

निवासस्थानपर पहुँचा। प्रत्येकका रोम-रोम पुलकित था, प्रसन्नतामें सारे-के-सारे डूबे हुए थे। कृतज्ञताके शब्द तो उनके पास थे नहीं, वह साधारण व्यक्ति सुन्दर शब्द-रचना कहाँसे लाता ? हाँ, आनन्दमें अश्रु बहाते हुए जाटने बाबूजीके चरण पकड़ लिये। उनकी प्रसन्नताको देख बाबूजीका हृदय प्रफुल्लित था। प्यारभरे आतिथ्यके बाद बाबूजीने कहा— मुझमें कुछ भी नहीं है। यह सब तो प्रभुकी कृपा है। आपलोगोंकी प्रार्थनामें सच्चाई थी और प्रभु तो करुणा-वरुणालय हैं ही ! उनपर निरन्तर विश्वास बढ़ाते रहिये और मुझे भी ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मेरे हृदयमें भी उनके प्रति प्रेम दृढ़तर होता चला जाय। मैं तो किसी योग्य हूँ ही नहीं।

जाट परिवार हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करके चला गया, पर परिवारका प्रत्येक सदस्य ले गया अपने साथ एक ऐसी अनुपम निधि, भगवत्प्रार्थनापर विश्वास, जिससे भवरोगका भी सहज रूपमें ही शमन हो सकता है। ■

श्रीइन्द्रचन्दजी थरड

श्रीमाधवजीका परिचय

मैं एक बहुत पुरानी बात कह रहा हूँ, जो मेरे सामने घटित हुई। प्रतिवर्षकी भाँति सन् १९३७ के दिसम्बर मासमें चूरू स्थित ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रमका वार्षिकोत्सव मनाया जाने वाला था। इसके लिये आवश्यक तैयारी शुरू हो गयी थी। वार्षिकोत्सवके साथ-साथ ऋषिकुलमें पूज्य श्रीसेठजी, पूज्य श्रीभाईजी, पूज्य श्रीबाबा (स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज) तथा अन्य संतों-विद्वानोंके प्रवचन सत्संगकी दृष्टिसे हुआ करते थे। इन दिनों श्रीबाबा श्रीसेठजीके साथ रहा करते थे और श्रीमद्भगवद्गीताकी टीकाके लिखनेका काम चल रहा था। तबतक श्रीबाबाने मौन व्रत नहीं लिया था। वार्षिकोत्सवके समय जो सत्संग होता था, उसका लाभ उठानेके लिये दूर-दूरसे जैसे नापासर, रतनगढ़, बीकानेर, दिल्ली, जयपुर आदि स्थानोंसे भगवत्प्रेमी लोग आ जाया करते थे। उत्सवकी अवधिमें प्रत्येक दिन आठ-दस घंटे सत्संग चलता था। सच पूछा जाय तो यह वार्षिकोत्सव नहीं, वस्तुतः सत्संगोत्सव था।

श्रीभाईजी उत्सवके मुख्य दिवससे एक दिन पहले आया करते थे और उनके साथ उनके सम्पादकीय विभागके कई विद्वान लोग भी आया करते थे। तब तो उस सत्संगमें आनन्दकी बाढ़ आ जाया करती थी। वार्षिकोत्सवकी सत्संग-सभामें जो व्यक्ति प्रवचन देनेके लिये खड़े होते, प्रवचनके पूर्व पूज्य श्रीगोस्वामीजी (पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) वक्ताका संक्षिप्त परिचय दिया करते थे। परिचयके बाद उनका भाषण हुआ करता था। जब पं. श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' भाषण देनेके लिये मंचपर आये तो उनका परिचय देनेके लिये श्रीगोस्वामीजी उठने लगे। उसी समय श्रीमाधवजीने उनसे बैठे रहनेका अनुरोध करते हुए निवेदन किया— आप उठनेका कष्ट न करें। मेरा परिचय मैं स्वयं ही दे लूँगा।

यह सुनकर श्रीगोस्वामीजी महाराज अपने स्थानपर बैठ गये। माधवजीने भाषणके पूर्व अपना परिचय दिया— मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका एक स्नातक हूँ। गीताप्रेसका एक कर्मचारी हूँ एवं हूँ श्रीभाईजीका एक अनुचर।

इस प्रकार अपना परिचय देकर उन्होंने अपना भाषण आरम्भ कर दिया। समयसे अपना भाषण समाप्त करके जब वे अपने आसनपर विराजमान हो गये, तब तुरन्त श्रीभाईजी अपने आसनसे उठे एवं मंचपर आकर कहने लगे— अभी मेरे मित्र श्रीमाधवजीने अपना परिचय दिया कि मैं भाईजीका अनुचर हूँ। यह उन्होंने अपना बिल्कुल गलत परिचय दिया है। ये सभी लोग भाईजीके प्राण हैं। इनके बिना आज भाईजीका उतना ही मूल्य है, जितना कि एक प्राण-विहीन शवका। 'कल्याण' पत्रिका एवं पुस्तकोंके सम्पादनका सारा कार्य ये ही लोग करते हैं। गीताप्रेससे प्रकाशित होने वाले साहित्यके सम्पादनका श्रेय इन लोगोंको ही है। मेरा नाम तो केवल नाम मात्रके लिये है तथा मेरी प्रार्थना है कि भविष्यमें फिर कभी ऐसा गलत परिचय नहीं देना चाहिये।

इन्हीं बातोंको कुछ विस्तार पूर्वक बड़े भाव भरे ढंगसे कहकर श्रीभाईजी अपने आसनपर विराजमान हो गये। मैं भी उस समय वहाँ उपस्थित था। श्रीभाईजीके उपर्युक्त शब्द सुनकर केवल मैं ही नहीं, सारे श्रोता लोग अत्यधिक विह्वल हो उठे। मेरे शरीरमें तो रोमाञ्च हो रहा था। मेरे नेत्रोंसे टप-टप आँसू चू रहे थे और यही दशा मेरे पास बैठे हुए कई भाइयोंकी थी। सभी मन-ही-मन श्रीभाईजीकी इस बन्धु-भावनाकी जय-जयकार बोल रहे थे। ■

पं. श्रीहरिवक्षजी जोशी

मेरे आत्मीय बन्धु

भाईजीके साथ मेरा प्रथम परिचय संवत् १९७८ में बम्बईमें हुआ। मैं उस समय अध्ययन समाप्त करके बम्बई गया था। वहाँ जाते ही संयोगवश श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजीकी ओरसे स्थापित 'व्यंकटेश्वर-प्रेस' खेतवाड़ीमें उनके धर्मार्थ औषधालयके प्रधान चिकित्सकका स्थान मुझे प्राप्त हो गया। मैं खेतवाड़ी, बम्बईमें रहने लगा। संस्कृत-साहित्यके अध्ययन-अध्यापनकी रुचि मेरे संस्कारोंमें थी। मेरे पिता-पितामह— सभी संस्कृतके विद्वान् थे। संस्कृतके वातावरणमें ही पालन-पोषण-शिक्षण होनेसे मुझे संस्कृत-प्रेमी साथीकी संगतिकी आवश्यकताका अनुभव होता था।

उन दिनों बम्बईमें सुखानन्दजीकी धर्मशालामें सायंकाल सत्संग हुआ करता था, जो भाईजीकी प्रेरणा, प्रयत्न और सहयोगसे चलता था। मैं भी वहाँ जाने लगा। प्रथम परिचयमें ही मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ। उनकी साधुता, सरलता, मृदुभाषिता, समादरकी भावना आदि हर एक अपरिचित व्यक्तिको चिर-परिचित-सा बना देनेवाली थी। इस प्रकारकी स्वाभाविक प्रवृत्ति व्यापारी-समाजमें तो क्या, महात्माओंके आश्रममें भी कहीं-कहीं ही दृष्टिगोचर होती है। शनैः शनैः प्रेम और परिचय बढ़ने लगा। हृदयकी संकोच-ग्रन्थि टूट गयी। वे मुझे अपना और मैं उन्हें अपना आत्मीय बन्धु समझने लगा। हृदयकी बातें खुलकर निःसंकोच भावसे होने लगीं। भाईजी उन दिनों व्यापार करते थे। बम्बईमें उस समय मारवाड़ियोंके हाथमें सट्टेका व्यापार ही प्रधान था। भाईजी उसीमें संलग्न थे, परंतु इनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हिन्दीके भक्तिप्रधान कविता-भजन आदि बनानेमें ही थी। श्रीमम्मटाचार्यका सिद्धान्त है कि कवित्वशक्ति पूर्वजन्मोंके

संस्कारसे जन्म लेती है। ऐहिक प्रयाससे प्राप्त कवित्वशक्ति कृत्रिम होती है— *'स्वाभाविकात् कृत्रिममन्यदेव'।*

उन दिनों गायकाचार्य भक्त-हृदय श्रीविष्णु दिगम्बर महाराजकी बम्बईमें बहुत प्रसिद्धि थी। *'रघुपति राघव राजा राम, पतितपावन सीताराम'* की ध्वनि प्रत्येक स्त्री-पुरुष-बालकके मुखसे चलते-फिरते निकलती थी। वे *'रघुपति राघव राजा राम'* के कीर्तनमें छत्तीसों राग सुना देते। भाईजीपर उनकी बड़ी कृपा थी। वे कभी-कभी भावविभोर होकर एकान्त कमरेमें मीराकी तरह 'मीरानृत्य' करते थे और जब वे एकतारा लेकर *'पद घुँघरु बाँध मीरा नाची रे'* गाते थे, तब दर्शक लोग देह-गेहकी सुधि भूलकर चित्र-लिखित-से हो जाते थे। उस नृत्यको देखनेका सौभाग्य किन्हीं-किन्हीं महानुभावोंको ही मिलता था, क्यों कि उसमें वे लोग ही प्रवेश पा सकते थे, जिनको वे अधिकारी समझकर आज्ञा देते थे। भाईजी श्रीविष्णु दिगम्बरके अन्तरंग विश्वासियोंमें अनन्यतम थे, अतः वे उस अलौकिक आनन्दमें सम्मिलित होते थे। उन दिनों भाईजीने एक भजनोंकी पुस्तिका लिखी, जिसका नाम था 'पत्र-पुष्प'। भाईजी न तो राग-रागिनियोंके ज्ञाता थे, न गायक ही। उनके हृदयमें जब जो भाव उत्पन्न होते, उन्हें वे तुकबन्ध कर देते थे। जब वह पुस्तक श्रीविष्णु दिगम्बरको सुनायी गयी, तब वे बड़े प्रसन्न हुए और कार्यव्यस्त रहते हुए भी उन्होंने उसके प्रत्येक भजनपर रागिनीका नाम बैठा दिया। भाईजी पिंगलशास्त्रके ज्ञाता या पण्डित नहीं थे, न उन्होंने संस्कृत या हिन्दी-साहित्यके काव्य या छन्दःशास्त्रकी शिक्षा ही किसी गुरुसे प्राप्त की थी। इनकी कविताशक्ति सहज तथा स्वाभाविक थी।

श्रीभाईजी जब बम्बईको त्यागकर आने लगे, उस समय उनके समक्ष बहुत प्रलोभन आये। एक प्रतिष्ठित व्यापारीने कई हजार रुपये मासिक तथा अपने फर्ममें कुछ हिस्सा देनेका प्रस्ताव किया, पर श्रीभाईजीने उसे स्वीकार नहीं किया और वे 'कल्याण'का सम्पादन करनेके लिये गोरखपुर आ गये। जब वे आने लगे, तब मैंने उनसे कहा— भाईजी, आप कहते हैं कि मैं 'कल्याण'की निःस्वार्थ सेवा करूँगा, उससे कुछ भी नहीं लूँगा तो आपका खर्चा कैसे चलेगा ?

इसके उत्तरमें भाईजी बोले— मेरे पास पचीस हजार रुपये हैं, जिनके व्याजसे आरामसे गृहस्थीका निर्वाह हो जायगा।

मैंने फिर भाईजीसे कहा— इतने रुपयोंके व्याजसे यदि घर-खर्च नहीं चला और आप 'कल्याण'से या सेठजी श्रीजयदयालजीसे या उनके भक्तोंसे कभी कुछ भी परोक्ष या प्रत्यक्ष सहायता ग्रहण कर लेंगे तो मुझे बड़ा दुःख होगा।

उसपर वे बोले— आप निश्चिन्त रहिये। आपको दुःखी होनेका अवसर भगवानकी कृपासे आयेगा ही नहीं।

उनके शरीर त्यागनेके दस दिन पहले जब मैं उनसे मिलने गोरखपुर गया, तब उन्होंने कहा— पण्डितजी, आपने मुझे बहुत बड़े दोषसे बचनेकी जो बात कही थी, वह मुझे बराबर याद रही और उसके कारण मैं अनेक दोषोंसे बच गया। भगवानकी कृपासे और आपके आशीर्वादसे मेरा वह व्रत अक्षुण निभ गया। आपने मुझे बम्बईमें भागवतके सरस मधुर श्लोकोंको सुनाकर मेरी भागवतमें और भागवतकी आत्मा श्रीकृष्णमें प्रीति बढ़ानेमें बड़ी सहायता की।

भाईजी अत्यन्त सरल, निष्कपट और विनम्र थे। आत्माभिमान उन्हें छूतक नहीं गया था। इस साधुता और निरभिमानताका नमूना है उनके द्वारा लिखी गयी वह भूमिका, जो मेरे द्वारा प्रकाशित रासपञ्चाध्यायीमें छपी है। उस भूमिकामें वे लिखते हैं— लगभग चालीस वर्ष पूर्व बम्बईमें लगातार बहुत दिनोंतक श्रीजोशीजी महाराज श्रीमद्भागवतके मधुर प्रसंग तथा उनका रहस्य सुना-सुनाकर आप्यायित करते थे। उनकी इस महती कृपासे श्रीमद्भागवतके तथा भागवतकी आत्मा श्रीकृष्णके प्रति मन-बुद्धिके समर्पणकी बड़ी ही प्रबल प्रेरणा मिलती थी। मैं इस परम प्रीति तथा अहैतुकी कृपाके लिये सदा ही श्रीजोशीजीका ऋणी हूँ।

भाईजी केवल भक्त ही नहीं, ज्ञानी भक्त थे। उनसे कई बार मेरी परमतत्त्वके विषयमें चर्चा होती थी। मैंने उनसे पूछा— आप राधा-माधवका ध्यान करते हैं, उनके युगल-नामको जपते हैं, उनके विषयमें आपकी क्या धारणा है?

उन्होंने उत्तर दिया— *परमतत्त्व एक अद्वैत अखण्डस्वरूप है। उसमें वास्तवमें कोई भेद नहीं है। वह जब भक्तोंको विशुद्ध प्रेम-रस पिलाना और उनके विशुद्ध हार्दिक प्रेम-रसका आस्वादन करना चाहता है, तब एक ही तत्त्व दो रूपोंमें अभिव्यक्त हो जाता है। प्रेम-रसका आस्वादन करनेके लिये वही प्रेमका आश्रयालम्बन और विषयालम्बन बना हुआ है। जिस प्रकार वेदान्ती मानते हैं— 'आश्रयत्वविषयत्वभागिनी विशुद्धा चितिरेव केवला' यही मैं मानता हूँ। मानता ही नहीं, अनुभव भी करता हूँ।*

ऐसे ज्ञानी भक्तोंको लक्ष्य करके ही भगवानने गीतामें कहा है— *'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'*। ■

डा. घनश्यामदासजी तोलानी

[१] सभा-मंचपर दर्शन

कभी-कभी संयोगवशात् ऐसी बात बन जाती है, जिसपर बड़ा विस्मय होता है। प्रथम भेंटके बीस दिन बाद पुनः श्रीभाईजीके शुभ दर्शनका मुझे सौभाग्य मिला। १५ अगस्त १९४७ को भारतके विभाजन और सत्ता-हस्तान्तरणका दिवस था। सत्ता-हस्तान्तरणके समारोहको देखनेके लिये मैं ९ अगस्तको सपरिवार दिल्ली पहुँच गया। दूसरे दिन १० अगस्तको मैं दिल्लीके हिन्दू महासभा भवन गया। वहाँ आल इण्डिया हिन्दू कन्वेन्शनका अधिवेशन हो रहा था। अधिवेशनके मंचपर पूज्य श्रीभाईजीको देखकर मेरे आनन्द और आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। मंचपर वीर सावरकर, डा. मुञ्जे, श्री. बी. सी. चटर्जी आदि विख्यात हिन्दू नेताओंके साथ श्रीभाईजी बैठे हुए थे।

अधिवेशनके कार्यक्रमके समाप्त होते ही मैं पूज्य श्रीभाईजीसे मिला। हमलोगोंको देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने हमलोगोंको रुकनेके लिये कहा।

इस अधिवेशनके थोड़ी देर बाद ही वहाँ 'गोवध निवारक संघ' का अधिवेशन आरम्भ हुआ। मंचपर पूज्य श्रीभाईजी तो थे ही, इसके अलावा महाराजा भरतपुर, महाराजा फरीदकोट, श्रीरामकृष्णजी डालमिया, श्रीशिब्बनलालजी सक्सेना आदि-आदि महानुभाव भी विराज रहे थे।

इस अधिवेशनमें गोवध-बन्दीपर बल दिया गया और अनेक ओजस्वी भाषण हुए। भले यह

मेरा व्यक्तिगत दृष्टिकोण हो, पर उस दिन मंचपर जितने भी भाषण हुए, उन सबमें श्रीभाईजीका भाषण मुझे बड़ा तर्कपूर्ण, मार्मिक, विचारोत्तेजक लगा। श्रीभाईजीके भाषणने मेरे अन्तरको झकझोर दिया। उनके व्यथित हृदयकी पीड़ा सारे वातावरणमें छा गयी।

मैं सोचने लगा कि श्रीभाईजीके हृदयमें गो माताके लिये कितनी अधिक भक्ति है और गोवधसे होने वाली कितनी अधिक पीड़ा उनके रग-रगमें समायी रहती है। 'गोवध निवारक संघ' के अधिवेशनके समाप्त होते ही हमलोग श्रीभाईजीसे मिले। कुछ देरतक उनसे बात होती रही। तत्पश्चात् हमलोग उनसे विदा हुए।

भारत-विभाजनके पश्चात् हमलोगोंको सिन्ध छोड़ना पड़ गया। सन् १९४८ का पूरा वर्ष हमलोगोंने अयोध्यामें बिताया। इसके बाद सन् १९४९ में हमलोग नासिकमें जाकर बस गये। अब सालमें एक-दो बार ही पूज्य श्रीभाईजीके दर्शनार्थ गोरखपुर आ पाते थे। जब-जब मैं गोरखपुर आया, उनके प्यारका वही उमड़ता सागर मुझे सराबोर कर देता था। मेरी अपात्रता, मेरी अयोग्यता, मेरी न्यूनताकी ओर उनका ध्यान कभी गया ही नहीं। उनके स्नेह और उनकी आत्मीयतामें कभी अन्तर आया ही नहीं। श्रीभाईजी जैसे महान संतका सांनिध्य पाकर मैं अपनेको सौभाग्यशाली मान रहा था और मान रहा हूँ।

[२] स्वागत-समारोहसे दूर

सन् १९५६ के जनवरी मासमें गीताप्रेसकी ओरसे तीर्थ-यात्रा ट्रेनके चलनेका कार्यक्रम बना। पूज्य श्रीभाईजीको ट्रेनकी भीड़ और यात्राकी हलचल तनिक भी पसन्द नहीं थी, पर पूज्य श्रीसेठजी (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के कथनका आदर श्रीभाईजीको करना पड़ा। पूर्ण अनिच्छा होते हुए भी तीर्थ-यात्रा-ट्रेनमें जानेके लिये सहमति देनी ही पड़ी। यह निश्चित हो गया कि तीर्थ-यात्रामें पूज्य श्रीभाईजी सपरिवार जायेंगे ही।

तीन धामकी यात्रा होनेके कारण इसमें तीन माससे भी अधिक समय लगने वाला था, अतः यात्राके मध्य जो तीर्थ-यात्री बीमार पड़ जायें, उनकी चिकित्सा तथा सँभाल करनेके लिये पूज्य श्रीभाईजीने मुझ दासको नासिकसे बुला लिया और इस प्रकार तीन माससे अधिक समयतक श्रीभाईजीके साथ रहनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हो सका।

२७ जनवरी १९५६ के दिन तीर्थ-यात्रा-ट्रेन वाराणसीसे रवाना हुई। चित्रकूट, प्रयाग, अयोध्या, नैमिषारण्यकी यात्रा करके ट्रेन दूसरी फरवरीको हरिद्वार पहुँची। हरिद्वारका एक प्रसंग विशेष रूपसे याद आ रहा है। हरिद्वारकी पंजाब सनातन धर्म प्रतिनिधि सभाके महाबीर दलके अध्यक्ष श्रीचिरञ्जीलालजीने श्रीभाईजीका स्वागत एवं सम्मान करनेके लिये एक विशेष समारोहका आयोजन किया था। इस समारोहमें श्रीभाईजीको अभिनन्दन-पत्र देनेका विचार था। जो अभिनन्दन पत्र दिया जाने वाला था, उसको रेशमी कपड़ेपर सुनहरे अक्षरोंमें छपवा लिया गया था। छपे हुए वस्त्रको सुन्दर फ्रेममें मढ़वा लिया गया था और इसीको समारोहमें समर्पित किया जाने वाला था। इस मढ़े हुए अभिनन्दन-पत्रको लेकर श्रीचिरञ्जीलालजी सबेरेके समय श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये आये और बतलाया कि समारोहका क्या-क्या कार्यक्रम है।

श्रीभाईजी उस आयोजनके विषयमें सुनकर तथा उस अभिनन्दन पत्रको देखकर बड़े संकोचमें पड़ गये। उस समय श्रीभाईजीकी जैसी गम्भीर मुद्रा थी और उनके मुख-मण्डलपर

सात्त्विक संकोचकी जैसी घनीभूत छाप थी, वह मेरे मर्मको छू रही थी। उनकी वह मुखाकृति आज भी मेरे स्मृति-पटलपर ज्यों-की-त्यों अंकित है। श्रीभाईजीने बड़े स्नेहके साथ श्रीचिरञ्जीलालजीके गलेमें अपनी बाँहें डालकर उनसे विनम्र शब्दोंमें कहा— मैं आपकी अपार प्रीति, अगाध सद्भाव और महती कृपाके लिये हृदयसे आभारी हूँ, पर यह चीज मेरे मनके अनुकूल नहीं है। मेरा मन इसे किसी भी रूपमें स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं है, अपितु विरोध करता है। आप कृपा करके इस आयोजनके विचारको अपने मनसे ही निकाल दीजिये।

श्रीचिरञ्जीलालजीने कहा— अब यह कैसे सम्भव हो सकता है ? हमने तो सार्वजनिक रूपसे इस कार्यक्रमकी घोषणा भी कर दी है। उसकी पूरी तैयारी हो चुकी है। हरिद्वारके नागरिक, मुख्यतः भक्तजन उत्सुकता पूर्वक इस कार्यक्रमकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपका सत्कार करनेकी उनमें जो आतुरता है, उसका बयान मैं किन शब्दोंमें करूँ ? उनको निराश करनेकी बात मैं सोच ही नहीं सकता।

श्रीभाईजीने अब श्रीचिरञ्जीलालजीके हाथोंको अपने हाथोंमें ले लिया और एक किनारे ले जाकर उन्हें प्यार पूर्वक समझाने लगे। श्रीभाईजी अपने दृढ़ नियमकी बात बतलाकर उनसे बड़ा अनुनय-विनय करने लगे। श्रीचिरञ्जीलालजीने जब यह देख लिया कि अभिनन्दन पत्रका विरोध मात्र दिखावा नहीं, बल्कि विरोधके पीछे श्रीभाईजीकी सच्ची और आन्तरिक भावना कार्य कर रही है तो फिर श्रीचिरञ्जीलालजीने श्रीभाईजीकी बात मान ली। इससे श्रीभाईजीको बड़ा सन्तोष हुआ।

इस प्रकारके कई प्रसंग तीर्थ-यात्रामें कई जगहोंपर आये, पर मद्रासमें अभिनन्दनसे छुटकारा पानेके लिये श्रीभाईजीको विशेष प्रयत्न करना पड़ा। तीर्थ-यात्रा-ट्रेन १४ अप्रैल १९५६ को मद्रास पहुँची। वहाँ भी श्रीभाईजीके स्वागत-समारोहका आयोजन हुआ और स्वागताध्यक्ष थे मद्रासके राज्यपाल परम सम्मान्य श्रीश्रीप्रकाशजी, जो थे श्रीभाईजीके अनन्य स्वजन। वाराणसी-निवासी एवं परम-आत्मीय श्रीश्रीप्रकाशजीको समझा सकना बड़ा कठिन था, पर श्रीभाईजीने भरपूर प्रयास किया और अन्ततः श्रीभाईजीको अपने प्रयासमें सफलता मिली।

क्या मद्रास, क्या हरिद्वार, क्या कलकत्ता, क्या बम्बई और क्या अन्यत्र, सभी जगह श्रीभाईजीको सफलता मिली केवल इसीलिये कि श्रीभाईजीके मनमें इन अभिनन्दन-पत्रोंके लिये आन्तरिक वितृष्णा थी। महाकवि मिल्टनने लिखा है Fame, the last infirmity of noble mind अर्थात् यशेच्छा मानवके निर्मल मनकी अन्तिम दुर्बलता है और इस दुर्बलतासे श्रीभाईजी सर्वथा दूर थे। यश-लिप्सासे सर्वथा-सर्वथा शून्य होकर धर्म और समाजकी सेवा करना, इसीमें श्रीभाईजीकी महानता और सफलताका रहस्य छिपा हुआ है।

[३] मेरे प्रश्नोंका उत्तर

सन् १९५९ के नवम्बर मासकी बात है। मेरे मनके भीतर वैचारिक संघर्ष चल रहा था। बुद्धिमें स्थिरता थी नहीं और अन्तर्द्वन्दसे मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहा था। एक जागतिक, एक पारिवारिक और एक आध्यात्मिक, इन तीन प्रश्नोंके कारण मेरी रति-मति-गति बड़ी ही कुण्ठित हो रही थी। जब मैं सर्वथा विवश दशाको पहुँच गया तो समाधान प्राप्त करनेके लिये

नासिकसे चल पड़ा गोरखपुरकी गीतावाटिकाके लिये। ट्रेनमें बैठा-बैठा मैं यही सोच रहा था कि वहाँ पहुँचकर श्रीभाईजीसे कुछ एकान्त समय माँगूँगा और अवश्य ही वहाँ मुझे सही मार्ग-दर्शन मिलेगा।

२४ नवम्बर १९५९ के प्रातःकाल छः बजे मैं गीतावाटिका पहुँचा। जाते ही पता चला कि सबेरे आठ बजे श्रीभाईजीका प्रवचन हुआ करता है। मैं शौच-स्नानादिसे शीघ्र निवृत्त होनेमें जुट गया। अपने प्रश्नोंकी जटिलताके कारण मनमें बड़ी उदासी तो थी, पर संत-दर्शनका सौभाग्य देखकर मनमें प्रसन्नता भी थी। अपने आवश्यक कार्योंसे निवृत्त होकर मैं पंडालमें प्रवचनके समय पहुँच गया।

प्रवचन सुनकर मुझे तो बड़ा ही विस्मय हो रहा था। क्या श्रीभाईजी अन्तर्यामी हैं? क्या उन्होंने मेरे प्रश्नोंको जान लिया? आजका सारा प्रवचन मेरे तीन प्रश्नोंको लेकर था। वे मेरे तीन प्रश्नोंका उत्तर ही अपने आजके प्रवचनमें देते रहे। श्रीभाईजीने अपने प्रवचनमें कहा— *जगतके कल्याणकी भावना एक मीठा मोह मात्र है। यह भावना समाज-सुधारकके जीवनमें एक प्रकारके अभिमानको उत्पन्न कर देती है। जिसने आत्म-सुधार नहीं किया, उससे सच्चा समाज-सुधार हो नहीं सकता। प्रचारका आधार आचार है। जगतमें प्रचार करनेके पहले जीवनमें आचार आवश्यक है। आचरण-शून्य व्यक्तिके द्वारा शुभका प्रचार कल्पना मात्र है। सच्चे साधकको आत्म-सुधारपर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये। साधकको विभिन्न आध्यात्मिक मतों और सिद्धान्तोंके जंजालसे भी बचना चाहिये। मत-मतान्तरोंकी जानकारीसे प्रायः साधकोंकी बुद्धि भ्रमित हो जाया करती है। विभिन्न वादोंका विवेचन एक प्रकारसे विवादका विस्तार ही है। वादोंका खण्डन-मण्डन-स्थापन करना आचार्योंका काम है। मतों-वादोंके विवेचक और प्रवर्तक महान आचार्योंकी नकल साधकके लिये उचित नहीं है। साधकको तो अपने साधन-पथपर चुपचाप चलना चाहिये, भले जगत मूर्ख कहे। साधकको अपने परिवारके मध्य ऐसे ही रहना चाहिये, जैसे नाट्यमंचका अभिनेता मंचपर अभिनय करते समय अन्य पात्रोंके साथ रहता है। अभिनयकालमें अभिनेताका व्यवहार सभी पात्रोंके साथ यथोचित होता है। यह उसका बाह्याचरण है। ऐसा यथोचित आचरण करते हुए भी उसके मनमें आदिसे अन्ततक तटस्थ भाव रहता है। तटस्थ भाव वाला साधक ही अपने साधन-पथपर शीघ्र बढ़ पाता है। जैसे भी बने, जीवनके सूर्यास्तके पहले-पहले साधक अपना काम बना ले, इसीमें जीवनकी सफलता और सुन्दरता है।*

मैं प्रायः अपनी डायरी लिखा करता हूँ। अपनी डायरीके पृष्ठोंके आधारपर ही उपर्युक्त कुछ बातें लिखनेका मैं साहस कर सका। ■

श्रीपरमानन्दजी कानोड़िया

[१] बालकोंके साथ बालक

यह मेरा सौभाग्य है कि मैं श्रद्धेय बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के परम अभिन्न मित्र पूज्य श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाका पौत्र हूँ। नितान्त घरेलू आत्मीयताके नाते

मुझे श्रद्धेय बाबूजीका सीमातीत वात्सल्य मिला है। मेरे दादाजी जानते थे कि मेरे मित्र हनुमानको भगवत्साक्षात्कार हो चुका है। सन् १९२७ के सितम्बर मासमें जब जैसीडीहमें श्रद्धेय बाबूजीको पूज्य श्रीसेठजीकी संनिधिमें सर्व प्रथम भगवद्दर्शन हुआ था, तब मेरे दादाजी भी वहीं थे और उन्होंने उस भगद्दर्शनका सारा विवरण अपने हाथसे लिखा था। एक दिन मैंने दादाजीसे प्रार्थना की कि हमें भी भगवानका दर्शन करा दें, तब उन्होंने मुझको सिखला-पढ़ाकर कहा— तुम जाकर उनसे विनती करो कि मुझे भी भगवद्दर्शन करा दें।

तब मेरी आयु छः-सात सालकी रही होगी। दादाजीकी प्रेरणासे मैं श्रद्धेय बाबूजीके पास जाकर कहने लगा— मुझे भी भगवद्दर्शन करा दीजिये।

बाबूजीने हँसते हुए विनोदकी भाषामें कहा— तुम मेरी गंजीकी पाकेटको अपने हाथसे टटोल लो और उसमें भगवान हों तो उस भगवानको तुम देख लो। मेरी पाकेटको, मेरी काखको, जहाँ-जहाँ तुमको संदेह हो, वहाँ-वहाँ खोज कर लो और भगवान मिल जायें तो जरूर दर्शन कर लो।

मुझे लगा कि श्रद्धेय बाबूजी मुझे भुलावा दे रहे हैं। बचपना तो था ही, मैं उनके पेटपर चढ़ गया और मचल-मचलकर अपनी बात कहने लगा। मैं अपने ढंगसे मचलता रहा और वे अपने ढंगसे बहलाते रहे। इसीमें काफी समय निकल गया। इस सारी झकझोरा-झकझोरीमें उन्होंने एक बार भी यह नहीं कहा कि तुम मुझे तंग कर रहे हो या तुम मेरे पाससे चले जाओ। सचमुच बालकोंके साथ बालकवत् बन जानेमें उनको आनन्द मिलता था।

[२] मित्र भावना

मेरे पूज्य दादाजी श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया रूबी जनरल इंश्योरेंश कम्पनीके महाप्रबन्धक थे, अतः कलकत्तेमें घर होते हुए भी उन्हें दिल्लीमें भी लम्बी अवधिके लिये रहना होता था। एक बार मेरे दादाजी दिल्लीमें थे और श्रद्धेय बाबूजी रतनगढ़में थे। मेरा अनुमान है कि यह बात सन् १९४० के आस-पासकी होनी चाहिये। रतनगढ़में श्रद्धेय बाबूजी काफी बीमार पड़ गये। चिकित्साके बाद भी जब वहाँ कोई सुधार दिखलायी नहीं दिया तो मेरे दादाजीने श्रद्धेय बाबूजीको रतनगढ़से अपने पास दिल्ली बुला लिया। दादाजी बड़ी लगनके साथ बाबूजीकी चिकित्सा करवाने लगे। बाबूजीके पथ्य-परहेज-दवा-विश्राम आदिकी चिन्ता सदैव दादाजीके मनपर छायी रहती। बाबूजी मेरे दादाजीकी चिकित्सा-तत्परता, सेवा-परायणता, मैत्री-भावना आदि पर बलिहार हो गये। न जाने कितनी बार श्रद्धेय बाबूजी अपने प्रवचनोंमें मेरे दादाजीकी चर्चा किया करते थे।

मेरे ये ही दादाजी जीवनके अन्तिम दिनोंमें जब अत्यधिक रुग्ण हो गये तो पूज्य बाबा सहित श्रद्धेय बाबूजी कई बार हमारे घर आये और काफी दिनोंतक रहकर दादाजीकी देखभाल करते रहे। अन्तिम क्षणोंका दृश्य तो सर्वदा ही याद रहेगा। दादाजी चेतना-शून्य-अवस्थामें लगभग सात दिनोंतक पड़े रहे। पूज्य दादाजीकी मरणासन्न स्थिति होते ही उनको भूमिपर ले लिया गया। भूमिपर अचेतन पड़े हुए दादाजीके एक ओर श्रद्धेय बाबूजी बैठे हुए थे और दूसरी ओर पूज्य बाबा बैठे हुए थे। मेरा अनुमान है कि अन्तिम तीस-पैंतीस श्वास शेष रहे होंगे कि दादाजीने एक सचेतन एवं स्वस्थ व्यक्तिकी भाँति अपने नेत्र बाबाकी ओर खोल दिये और वे

आकाशकी ओर एकटक देखने लगे। तभी श्रद्धेय बाबूजीने हड़बड़ीके स्वरमें मुझसे कहा— जल्दीसे छत्रीमें कपूर रखकर आरतीकी सामग्री ला, आरती करनी है।

मैं भागकर ले आया। श्रद्धेय बाबूजीने कपूरको प्रज्वलित किया और वे खड़े होकर आरती करने लगे। मेरे मनमें बड़ा कौतूहल जाग उठा कि श्रद्धेय बाबूजी क्या कर रहे हैं? क्या वे अपने सामने बैठे हुए पूज्य बाबाकी आरती कर रहे हैं? अथवा मेरे पूज्य दादाजीकी आरती कर रहे हैं? कौतूहलवशात् मैं अपने दोनों घुटनोंके बल बैठकर और दोनों हथेलियोंको भूमिपर टिकाकार अपने दादाजीके ऊपर किंचित् झुक गया और उनके खुले नेत्रोंकी ओर देखने लगा। मैं देखने लगा यह जाननेके लिये कि इस समय अचानक क्या बात घटित हो गयी? तभी श्रद्धेय बाबूजीने अपने हाथसे मुझे झकझोरते हुए कहा— अरे, भगवान सामने खड़े हैं और तू बैठा है? जल्दीसे खड़ा हो।

श्रद्धेय बाबूजीके ऐसा कहते ही मैं हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बाबूजी नभमें विराजित भगवानकी आरती उतारते रहे। मेरे दादाजीकी दृष्टि नभस्थ भगवानपर टिकी हुई थी। मेरे खड़े होनेके लगभग आधे मिनट बाद ही दादाजीने अपने नेत्र सदाके लिये बन्द कर लिये। उचित ही है, भगवानको देख लेनेके बाद फिर जगतको क्या देखना?

अब रहस्य खुल चुका था कि श्रद्धेय बाबूजीने आरतीकी सामग्री लानेके लिये क्यों कहा था? जिन दादाजीको बाबूजीने अपना मित्र कहा और मनसे कहा तथा मनसे माना, उस मित्रताका निर्वाह किस सीमातक होना चाहिये, इसका एक अनोखा उदाहरण पूज्य बाबूजी अपने पीछे छोड़ गये।

[३] परिवारका हित-चिन्तन

परमपूज्य दादाजीके निधनसे मनमें खिन्नता थी। जिनकी छत्रछाया अबतक रही, उस छत्रछायाके हटनेसे मनको खिन्न होना ही था, पर यह कितनी सुन्दर बात है कि जन्म-जन्मान्तरतक तप-जप करनेके बाद भी जीवनके अन्तकालमें जिन भगवानके नामका उच्चारण नहीं हो पाता, उन्हीं भगवानका दर्शन करते हुए मेरे पूज्य दादाजीने महाप्रयाण किया। उनके मुनिगण-दुर्लभ-सौभाग्यसे हमारा कुल पवित्र हो गया, पर उससे अधिक भी महान सौभाग्य इस रूपमें उदित हुआ कि उन दादाजीके जाते ही श्रद्धेय बाबूजी जैसे महान सिद्ध संत हमें नये 'दादाजी'के रूपमें मिल गये, जो हमारे परिवारके हित-चिन्तनमें सदा डूबे रहते थे।

परिवर्तन जगतका नियम है। उगता हुआ सूर्य ढलता ही है। *'सबै दिन जात न एक समान'* के सिद्धान्तानुसार हमारे परिवारमें भी तंगीके दिन आये। तंगी थी, पर हमने कभी भी इसकी जानकारी श्रद्धेय बाबूजीको होने नहीं दी। हमें यह रंच मात्र भी रुचिकर नहीं था कि हमारी समस्यासे श्रद्धेय बाबूजीका हृदय कभी विकल हो। हमने अपना हाल छिपाना चाहा, पर वह छिप न सका। हमारे एक स्वजनने इसकी सांकेतिक झलक श्रद्धेय बाबूजीको दे दी।

श्रद्धेय बाबूजी इस टोहमें थे कि कभी घनश्याम (अर्थात् मेरे पूज्य पिताजी) से एकान्तमें बात करूँ। एक बार मैं अपने पिताजीके साथ बाबूजीके दर्शनार्थ गोरखपुर आया हुआ था। हमलोग श्रद्धेय बाबूजीके पास कमरेमें बैठे थे। ज्यों ही एकान्तका अवसर आया, श्रद्धेय बाबूजी सरक करके मेरे पिताजीके पास आ गये और सिरपर तथा पीठपर अपना प्यार भरा हाथ फेर

करके कहने लगे– घनश्याम, तुमने अबतक यह बात क्यों छिपायी कि तुम कुछ कष्टमें हो ? मेरे रहते भला तुम कष्ट पाओ ! अभी चलो मेरे साथ बाबाके पास। इसके बारेमें मैं उनसे बात करूँगा।

पूज्य पिताजीको मन-ही-मन इस बातसे बड़ा कष्ट हो रहा था कि श्रद्धेय बाबूजीको हमारे उन स्वजनने यह बात क्यों बता दी। उन स्वजनका स्वाभाविक स्नेह हम लोगोंके प्रति था, इसीलिये उन्होंने इसका संकेत बाबूजीसे कर दिया, पर यह हमें प्रिय नहीं लगा। पिताजीका मन खिन्नतासे भर गया। श्रद्धेय बाबूजीके शब्दोंको सुन-सुन करके पिताजीका मन खिन्नतासे अधिकाधिक भरता चला जा रहा था और श्रद्धेय बाबूजीके मनमें त्वरा भरी हुई थी कि इन बच्चोंके लिये क्या कर दिया जाय। श्रद्धेय बाबूजी अपने कमरेसे चल पड़े पूज्य बाबाकी कुटियाकी ओर और उनके पीछे चलने लगे पिताजी और मैं। कुटियाका फाटक खोलकर बाबूजी अन्दर बाबाके पास गये। बाबूजीने बाबाको अपने पास बैठाकर हम दोनोंको भी समीप बैठा लिया। वे बाबासे कहने लगे– बाबा, यह अपना घनश्याम है न, आजकल इसका परिवार कुछ संकोचमें है, अतः इनके लिये कुछ करना है।

बाबा तो मौन थे। उन्होंने लिखकर कहा– आप जो कहें, वही मैं कर दूँ। जिसके लिये आपके अन्तरमें वेदना है, उसके समान भाग्यशाली कौन भला ? आपकी वेदना मेरी वेदना है। वेदनाकी रेखाका भी उदय आपके अन्तरमें क्यों हो ? आप जो कहें, वही मैं करनेको तैयार हूँ।

बाबूजीसे कहनेके बाद बाबा पिताजीसे कहने लगे– आप बता दें, आप क्या चाहते हैं ? सच माने, आप जो चाहेंगे, वह हो जायेगा।

बाबाके कहते ही बाबूजीने पिताजीसे कहा– हाँ, हाँ घनश्याम ! संकोच छोड़कर बता दो कि क्या चाहते हो। सचमुच बता दो।

कुटियामें बैठते ही श्रद्धेय बाबूजी एवं बाबाकी जो पारस्परिक बात हुई, उसे सुनकर पिताजीका हृदय बड़ा द्रवित हो रहा था। इसके बाद अपने प्रति बाबाकी और फिर बाबूजीकी कही हुई बात सुनकर वे तो और भी उमड़ पड़े। आँखोंसे झर-झर आँसू बहने लगे। अपने कपोलोंको पोंछते हुए रुँधे स्वरमें पिताजीने यही कहा– बाबा ! मुझे कुछ नहीं चाहिये, सचमुच कुछ नहीं चाहिये। आपका यह प्यार सदा बना रहे, बस, यही याचना करता हूँ। रातके बाद सबेरा आता ही है। ये दुःखके दिन भी निकल जायेंगे। इसके लिये हमें कुछ नहीं कहना है। बस, आपका प्यार चाहिये, एकमात्र प्यार।

पिताजीके इस उत्तरको सुनकर बाबा तो एकदम रीझ गये। फिर बाबाने सराहनाके और आशीर्वादके अनेक शब्द कहे। आशीर्वादके वे शब्द तो हमारे लिये आधार बन गये। आधार बन गये उस अँधियालीमें, जो हमारे परिवारपर छायी थी और सबसे बड़ी बात यह कि पूज्य बाबूजीके उस उछलते प्यारको देखकर दुःखके दिन दुखी नहीं कर पाते थे। प्यारका मादक प्रभाव ऐसा ही हुआ करता है।

[४] पिताजीकी सँभाल

श्रद्धेय बाबूजी गोरखपुरमें और हमलोग कलकत्तेमें थे, पर यह दूरी कभी भी निजत्व भावनामें बाधक नहीं हुई। दूर रहते हुए भी श्रद्धेय बाबूजी निकट थे, एकदम हमारे पास थे।

उनकी वत्सलताकी गहरी अनुभूति सदैव पदे-पदे होती रहती थी। हमारे परिवारके सभी बच्चे प्रति सप्ताह श्रद्धेय बाबूजीको अपना प्रणाम पत्र द्वारा निवेदित करते ही थे। मेरी दो पुत्रियाँ जब सयानी होने लगीं तो उनके सम्बन्धकी चिन्ता पिताजीके मनपर छा गयी। एक ओर हमलोगोंकी साधारण स्थिति और दूसरी ओर विवाहमें होनेवाला असाधारण व्यय, इस समस्यासे अलग अगली समस्या यह थी कि वर खोजनेके लिये कहाँ-कहाँ भटका जाय ? मेरी और पिताजीकी चिन्ताका आभास श्रद्धेय बाबूजीको हो गया और उन्होंने तुरन्त सान्त्वना दी— ये बेटियाँ तुम्हारी नहीं, मेरी हैं। तुम क्यों चिन्ता करते हो ? इनका सम्बन्ध तो घरपर बैठे-बैठे हो जायेगा और विवाह भी सुन्दर-से-सुन्दर होगा।

अब चिन्ताका कारण ही समाप्त हो गया। श्रद्धेय बाबूजीसे अव्यर्थ आश्वासन पाकर मेरे पिताजी ऐसे निश्चिन्त हो गये, मानो कोई समस्या रही ही नहीं। बस, एक ही खेद मुझे था और है कि जो पिताजी मनसे पूर्ण निश्चिन्त और श्रद्धेय बाबूजीपर पूर्ण निर्भर थे, वे अपनी आँखोंके सामने अपनी पौत्रीका विवाह नहीं देख पाये। पौत्रीके विवाहसे बहुत पहले ही पिताजीने हमलोगोंसे सदाके लिये बिदाई ले ली।

जब पिताजी बहुत अस्वस्थ हो गये थे, तब मैंने श्रद्धेय बाबूजीसे कहा— पिताजीकी बीमारी देखकर मेरा धैर्य रह-रह करके छूट जाता है। मैं तो यही अनुरोध करता हूँ कि जैसे आपने दादाजीकी सँभाल की थी, वैसे ही यहाँ आकर पिताजीकी सँभाल करें।

श्रद्धेय बाबूजीने कहा— मैं अवश्य आता, पर प्रथम तो मैं स्वयं अस्वस्थ हूँ। इसके अलावा बाबाका मौनव्रत तथा सावित्रीकी माँकी अस्वस्थता, इन कारणोंसे वहाँ आना बड़ा कठिन लग रहा है, पर तुम घबड़ाओ नहीं। मैं ऐसी व्यवस्था कर रहा हूँ कि मानो मैं वहीं रहकर सँभाल कर रहा हूँ।

सचमुच श्रद्धेय बाबूजीने गोरखपुरमें बैठे-बैठे ही वैसी व्यवस्था कर दी। श्रद्धेय बाबूजीने कलकत्तेके ग्यारह व्यक्तियोंको पत्र व्यक्तिगत रूपसे लिखे और उनसे कहा कि आप लोग प्रतिदिन जाकर अति रुग्ण श्रीघनश्यामदासजी कानोड़ियाको सँभालें, परमानन्दको धीरज दें तथा प्रतिदिनकी हालतका विवरण पत्रसे सूचित करें।

श्रद्धेय बाबूजीके निर्देशके अनुसार श्रीबजरंगलालजी सिंहानिया, श्रीदाऊलालजी कोठारी, श्रीभीमराजजी फोगला, श्रीरामप्रसादजी मूँधड़ा, श्रीहनुमानप्रसादजी थरड इस प्रकार ग्यारह स्वजन प्रतिदिन पिताजीको सँभालने तथा आवश्यक सेवा-चर्या करनेके लिये आते थे और ये स्वजन प्रतिदिन गोरखपुर पत्र लिखकर वस्तु-स्थितिसे अवगत कराते थे। आयुकी अवधिके पूर्ण होनेपर पिताजीको तो जाना ही था, पर पिताजीकी सँभाल और सेवाके लिये श्रद्धेय बाबूजीने जो किया, वह सदा वर्तमानवत् दिखलायी देता रहता है।

[५] मेरी पुत्रीका विवाह

मुझे इस बातका खेद था और है कि मेरे पिताजी अपनी पौत्रीका विवाह नहीं देख पाये, परंतु पौत्रीके सम्बन्धकी बात उनके जीवनकालमें लगभग तय-सी हो गयी थी और इस सम्बन्धको सुनिश्चित करनेका सारा श्रेय पूज्य बाबाको ही है। जैसा सुयोग्य और सुशील वर और जैसा संभ्रान्त एवं सम्पन्न घर मिला, हम साधारण स्थितिवाले उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे,

पर संतानुग्रहसे चमत्कार भी साकार हो जाया करता है। जिस परिवारको श्रद्धेय बाबूजी अपना माने और जिस समस्याको वे निजी समझे, उसके लिये पूज्य बाबा स्वयं-प्रेरणासे सक्रिय हो उठे और उन्होंने मेरी सुपुत्री निर्मलके लिये जो घर-वर सुनिश्चित किया, उसके लिये हम सभी लोग सीमातीत रूपसे प्रसन्न थे। मेरी पूर्ण मान्यता थी और है कि यह सम्बन्ध मेरे पुरुषार्थका या प्रारब्धका फल नहीं, सर्वथा-सर्वथा संतानुग्रहका मंगलमय परिणाम था।

सम्बन्ध हो जानेके बाद विवाहकी तिथि निश्चित हो गयी और यह विवाह सन् १९६७ के जुलाई मासमें होनेवाला था। ऐसे दायित्वका बोझ कभी मैंने सँभाला नहीं था और कुलकी प्रतिष्ठाके अनुरूप सारा कार्य उत्तम-से-उत्तम करना था। मैंने अपनी विवशता श्रद्धेय बाबूजीके सामने रखी। बाबूजीने कहा— तू घबड़ा मत। मैं स्वयं सारा सँभालूँगा।

और सचमुच श्रद्धेय बाबूजीने जो किया, वह आत्मीयताका अद्भुत नहीं, परमातिपरम अद्भुत उदाहरण है। इन दिनों श्रद्धेय बाबूजी प्रायः भाव-समाधिस्थ रहा करते थे, जिसके लिये उन्होंने एक नया शब्द गढ़ लिया था कि 'माथा खराब' हो गया है। ऐसी अन्तर्मुखी मनस्थितिमें भी श्रद्धेय बाबूजी स्वर्गाश्रमके सत्संगको शीघ्र पूर्ण करके ऋषिकेशसे सीधे कलकत्ते चले आये। कलकत्ते आनेके पूर्व अनेक स्वजनोंको उन्होंने निजी पत्र लिखा कि सुपुत्री निर्मलके मंगल परिणयके कार्यको अपना कार्य मानकर जिम्मेदारीसे पूरा करना है। पूज्य बाबूजीने सबको पत्र बहुत पहले इसलिये दे दिया कि शहरका जीवन बड़ा व्यस्त होता है और उस अत्यधिक व्यस्त जीवनमें भी इस कार्यके लिये वे लोग समुचित अवकाश निकाल सकें। और सचमुच लोगोंने आकर सारा कार्य सँभाल लिया। नाम मेरा हो रहा था, पर काम वे स्वजन कर रहे थे। वे स्वजन पूरे उत्साहसे और पूर्ण जिम्मेदारीसे काम भला क्यों न करें, जब उन सबके उर-प्रेरक स्वयं उनके परम श्रद्धास्पद बाबूजी थे। श्रद्धेय बाबूजीकी प्रेरणा और फिर श्रद्धेय बाबूजीकी स्वयं उपस्थिति, इससे सारा वैवाहिक कार्य इतनी सुन्दर रीतिसे सम्पन्न हुआ, जिसका अनुमान एक सांसारिकके लिये बड़ा कठिन है।

सुपुत्री निर्मलके विवाहके एक-दो प्रसंग बड़े महत्त्वपूर्ण एवं रोचक हैं। मेरा स्वास्थ्य थोड़ा ढीला ही चलता रहता था। सौभाग्याकांक्षिणी सुपुत्री निर्मलके मंगल परिणयके अवसरपर मेरे स्वास्थ्यने कुछ चिन्ताजनक मोड़ ले लिया। मुझे हार्ट-अटैककी थोड़ी-थोड़ी शिकायत हो गयी। सीनेमें हल्का-हल्का दर्द बना रहता था। ऐसी परिस्थितिमें मैंने श्रद्धेय बाबूजीसे कहा— कन्या-दान आपको करना है।

बाबूजीने मीठे शब्दोंमें कुछ फटकारते हुए और कुछ समझाते हुए कहा— परमा! तू तो सचमुच मूर्ख है। कहीं ऐसी भावुकतासे काम बनता है? यह काम तो माँ-बाप ही करते हैं और यह तुमको करना चाहिये।

मैंने निवेदन किया— इसके माँ-बाप तो सचमुच आप ही हैं। आप ही माँ-बापकी तरह सारा बोझ सँभाल रहे हैं। इसके अलावा, मेरी छातीमें दर्द हो रहा है। मेरे लिये बैठ सकना भी सम्भव नहीं है।

इसी बातको हेर-फेरके शब्दोंमें कहकर मैं उनसे बालहठ-सा करने लगा कि वे ही कन्यादान करें। फिर बाबूजी बड़े प्यार भरे शब्दोंमें कहने लगे— नहीं परमा! तू मेरी बात मान ले। ऐसा

बालहठ ठीक नहीं। तू मेरा है। मैं तेरी बात मान लेता, पर तू मेरी एक बातपर विचार कर। यदि आज मैं निर्मलका कन्या-दान कर दूँगा तो जितने स्वजन हैं, वे भी अपनी-अपनी कन्याके लिये मुझसे ऐसा ही करवाना चाहेंगे और मुझे सभी लोग तंग करेंगे, अतः तुमको बालहठ नहीं करना चाहिये।

पूज्य बाबूजीकी यह बात सचमुच मेरी समझमें आ गयी कि निर्मलका कन्या-दान करनेसे श्रद्धेय बाबूजीके लिये एक नये प्रकारकी परेशानीका सूत्रपात हो जायेगा। मेरा भी मन यही सोचने लगा कि यह कन्या-दान मुझे ही करना चाहिये, पर मेरे तो सीनेमें दर्द हो रहा था, अतः मैं चिन्ता कर रहा था कि मैं कैसे बैठ पाऊँगा। इसी समय एक और बात हुई। श्रद्धेय बाबूजी मुझे समझानेके लिये अपनी बात प्यार भरे ढंगसे कहते जा रहे थे तथा अपना प्यार भरा हाथ मेरी पीठपर फेरते जा रहे थे। पीठपर हाथ फेरते-फेरते वे अपना हाथ मेरी छातीपर फेरने लगे और छातीपर हाथ फेरनेका प्रभाव यह था कि वह दर्द न जाने कहाँ गायब हो गया। अब मैं अपनेको पूर्ण स्वस्थ अनुभव करने लगा। उसी समख मैंने श्रद्धेय बाबूजीसे कहा— हाँ बाबूजी, आपकी बात मैं समझ रहा हूँ और अब कन्या-दान हम दोनों ही करेंगे।

जब विवाहका सारा कार्य हो गया, जब सब आये हुए अतिथि चले गये और जब घरके शान्त वातावरणमें इस प्रसंगकी ओर ध्यान गया तो मैं मन-ही-मन श्रद्धेय बाबूजीके श्रीचरणोंको प्रणाम करने लगा, जिन्होंने अपनी अहैतुकी कृपासे वैवाहिक कार्यको सम्पन्न करनेके लिये मुझे स्वस्थ बना दिया था।

विवाहके पहले हमारे समाजमें एक नेग 'झोल' डालनेका होता है। विवाहके मण्डपमें बैठनेके पूर्व वस्त्र-आभूषण-पुष्पहारसे कन्याको सुसज्जित-समलंकृत किया जाता है। समलंकरणसे पूर्व विशिष्ट रीतिसे कन्याको स्नान करवाया जाता है। स्नान करवानेकी यह प्रक्रिया लम्बी होती है। इस प्रक्रियाकी शृंखलाके मध्यमें झोल डालनेका क्रम आता है। शास्त्रोंमें नारीके षोडश शृंगारका वर्णन आता है। झोल डालनेको षोडश शृंगारके मध्यकी एक कड़ीके रूपमें समझना चाहिये। झोल एक प्रकारका गाढ़ा द्रव पदार्थ होता है, जो दूध, दही, घी, केशर, इत्र, गुलाबजल आदि कई वस्तुओंके मिश्रणसे बनाया जाता है। इस झोलको कन्याके पिता कन्याके शीशपर डालते जाते हैं और माता उसको मसलती जाती है। जब झोलके नेगकी बात आयी तो मैंने पुनः श्रद्धेय बाबूजीसे बालहठ किया— झोलका नेग तो आपको ही करना होगा।

बाबूजीने कहा— तुम तो बात-बातमें बचपना करते हो। कहीं ऐसा भी किया जाता है? यह नेग माँ-बाप ही करते हैं, सो तुमको ही करना चाहिये।

मैंने बड़े आग्रहपूर्वक कहा— कम-से-कम यह तो कर ही दें। कन्यादान वाली बात तो मैंने आपकी मान ली, पर यह नेग तो आपके ही द्वारा होना चाहिये।

श्रद्धेय बाबूजी समझाते हुए मुझसे कहने लगे— अच्छा, मैं तुम्हारी बात मान लेता, पर यह कैसे हो सकता है? सावित्रीकी माँ तो बीमार है। वह तो यहाँ है ही नहीं। उसके बिना तो यह काम हो ही नहीं सकता।

पूज्या माँ श्रद्धेय बाबूजीके साथ ही ऋषिकेशसे यहाँ कलकत्ते आयी थीं, पर वे अस्वस्थ थीं, अतः अलीपुरकी कोठीमें, जहाँ वे लोग ठहरे थे, वहीं रह गयीं और हमारे घर नहीं आ सकी थीं।

पूज्या माँकी अनुपस्थितिके कारण यह नेगचार श्रद्धेय बाबूजीके द्वारा होना सम्भव ही नहीं था और उनके इस प्रश्नका मेरे पास कोई उत्तर नहीं था। मैं तो मूक खड़ा था, तभी परम सम्मान्य श्रीजयदयालजी डालमिया बोल पड़े— भाईजी! यदि आपको आपत्ति नहीं हो तो माँके स्थानपर मैं खड़ा हो जाऊँ।

सम्मान्य श्रीडालमियाजीके कथनको सुनकर मैं तो अवाक् था। यह कार्य ऐसा था जो प्रतिनिधिके द्वारा होना ही नहीं था। इसे तो पूज्या माँकी उपस्थितिमें ही होना चाहिये था। श्रद्धेय बाबूजी यदि चाहते तो साफ-साफ इंकार कर सकते थे, पर उन्हें तो मेरा मन रखना था। तत्सुख-सुखी भावके साकार स्वरूप श्रद्धेय बाबूजीने कहा— मुझे तो कोई आपत्ति नहीं है, पर परमानन्दसे पूछ लो।

मैंने तुरन्त कहा— इसमें भला आपत्ति? सच तो यह है कि यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी।

बस, बात तय हो गयी। झोल डालनेवाला नेग श्रद्धेय बाबूजीके द्वारा पूर्ण हुआ। पूज्या माँके स्थानको ग्रहण किया श्रीडालमियाजीने। पितृस्थानीय श्रद्धेय बाबूजीके कर-कमलोंमें झोलका पात्र दिया गया। वे पात्रसे सुगंधित झोल सौभाग्याकांक्षिणी निर्मलके शीशपर डाल रहे थे और मातृस्थानीय श्रीडालमियाजी अपने कर-पल्लवसे झोलको मसल रहे थे। इस दृश्यके कई छाया-चित्र लिये गये। सारा उपस्थित समुदाय इस छविको देख-देख करके आनन्दित और विस्मित हो रहा था। जन-जनका अन्तर सुपुत्री निर्मलके सौभाग्यकी सराहना कर रहा था। इस नेगचारके पूर्ण हो जानेके बाद न जाने कितने व्यक्तियोंसे मुझे बधाई और सराहना मिली।

[६] प्यारकी वर्षा

यह बात उस समयकी है, जब श्रद्धेय बाबूजी काफी अस्वस्थ रहने लग गये थे। उनकी बीमारीका चिन्ताजनक हाल सुनकर मैं कलकत्तेसे गोरखपुर आ जाता था और उनकी तबीयतमें कुछ सुधार देखकर मैं वापस कलकत्ते चला जाता था। इस प्रकार उनके दर्शनके लिये कई बार आना-जाना हुआ। फरवरी १९७१ में जब मैं गोरखपुर आया, तब बाबूजीकी तबीयत कुछ ज्यादा ही खराब चल रही थी। मैं कई दिन रहा, पर उनसे कोई बात नहीं हो पायी। उनकी बीमारीको देखकर मैंने भी उनके पास जानेका प्रयास नहीं किया, भले ही उनके समीप बैठनेकी मनमें बड़ी ललक थी।

अचानक कोई ऐसा पारिवारिक कार्य मेरे सामने आ खड़ा हुआ कि जिससे कलकत्ता जाना जरूरी हो गया। गीतावाटिकासे प्रस्थान करनेके पूर्व प्रणाम करनेके लिये मैं बाबूजीके पास गया। कमरेमें बाबूजी पलंगपर लेटे हुए थे और पास ही पूज्या मैया बैठी हुई थीं। मुझे आता देखकर बाबूजी पलंगपर बैठने लगे तो मैयाने कहा— आप क्यों उठ रहे हैं? तबीयत ठीक नहीं है। आप लेटे रहिये।

बैठनेके लिये उठते हुए बाबूजी बोले— इसे आये हुए कई दिन हो गये, पर अभीतक मैंने इससे कुछ बात नहीं की। अब यह घर जा रहा है। क्या अब भी इससे बात न करूँ?

वे एकदम स्वस्थ व्यक्तिकी तरह बैठ गये। उस समय ऐसा लगता था जैसे वे पूर्ण स्वस्थ हों। जब मैं प्रणाम करनेके लिये झुका तो उन्होंने मेरा सिर अपने छातीसे चिपका लिया और

बार-बार सिरपर, पीठपर हाथ फेरते हुए कहने लगे— बेटा! तुम कोई चिन्ता नहीं करना। परिवारपर यह जो बदली छायी है, वह शीघ्र छँट जायेगी। बहुत अच्छे दिन आयेंगे। तुम बहुत सुखसे रहोगे।

वे गद्‌गद स्वरमें कहते जाते थे और प्यारसे मेरे सिरको और पीठको सहलाते जाते थे। मैं समझ नहीं पा रहा था कि आज बाबूजीको हो क्या गया है। वात्सल्य तो उनका मेरे ऊपर सदासे ही बहुत था और है, पर आज उस वात्सल्यमें इतना ज्वार कैसे आ गया? आज बाबूजी इतना अधिक कैसे उमड़ रहे हैं? जैसे गाय अपने नवजात बछड़ेको चाटती रहती है, उसी तरहसे सहलाते हुए वे मुझपर अपने प्यारकी वर्षा कर रहे थे। मुझे क्या पता था कि यह मेरी उनसे अन्तिम भेंट है। मैं उनका प्यार पाकर निहाल हो गया। उनका प्यार आज भी उसी तरह मेरे रोम-रोममें, मेरे कण-कणमें समाया हुआ है।

ऊपर वर्णित अनेक प्रसंगोंके माध्यमसे मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि श्रद्धेय बाबूजीने यदि किसीको मित्र माना तो उसे हृदयसे मान लिया और मित्रताको निभाया तो वह हर सम्भव रीतिसे निभाया। जब-जब यह भाव मनमें उदित होता है कि मैं श्रद्धेय बाबूजीके अभिन्न मित्र श्रीज्वालाप्रसादजीका पौत्र हूँ तो हृदय आह्लादसे भर जाता है। मैं तो भगवानसे यही प्रार्थना करता हूँ मेरा सम्पूर्ण जीवन श्रद्धेय बाबूजीकी रुचिके अनुकूल बन जाय। ■

श्रीदूलीचन्दजी दुजारी

[१] उन्हींका पाला-पोसा

मैं एकदम अनाथावस्थामें पूज्य बाबूजीके पास आया था। पिताकी मृत्यु मेरे बचपनमें ही हो गयी थी। चाचाजी (श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी) ने पढ़ाया और वे ही मुझे पूज्य बाबूजीके सम्पर्कमें लाये। 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादकीय विभागमें काम करता था, अतः पूज्य बाबूजीकी सेवाका पूरा मौका मुझे मिलता था। उन्होंने भी अपना पूरा स्नेह मुझे दिया। अपने परिवारके सदस्यकी भाँति ही वे मुझे समझते थे। मेरा उनसे सम्बन्ध क्या था, कह नहीं सकता, क्यों कि वे ही मेरे सब कुछ थे। पूज्य बाबूजी हमेशा 'भैया' कहकर पुकारते थे। इन दो अक्षरके सम्बोधनमें इतना प्यार भरा रहता था कि सुनकर मन एकदम गद्‌गद हो उठता था। मैं भी उनका आश्रय एवं प्यार पाकर अपने सभी दुःखोंको भूल गया था। मैं खुद तो क्या, मेरे बच्चे भी उन्हींकी छत्रछायामें पले हैं। मेरी तो सामर्थ्य ही क्या थी, पर उन्हींकी कृपासे आज सभी बच्चे योग्य हो गये हैं। उनके रहते मैंने किसी कामकी चिन्ता नहीं की। उन्हींकी कृपासे सभी कार्य सानन्द सम्पन्न होते आये हैं। मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मुझे ऐसा आश्रयदाता मिला। बहुत विश्वास था उनका मुझपर।

सन् १९६२ में मेरे सिरपर काफी जोरकी चोट लगी थी। बचनेकी कोई आशा न थी। सभी आशा छोड़ चुके थे, पर शायद कुछ दिन उनकी सेवा करनेका सौभाग्य और प्राप्त होना था और पूज्य बाबूजीको भी मेरा अभाव सह्य न था, इसीलिये उन्होंने मुझे जीवनदान दिया। इससे बढ़कर और क्या कृपा हो सकती है? यहाँतक कि जीवनके अन्तिम दिनोंमें, जब कि उनकी हालत काफी खराब थी, तब भी उन्होंने मुझे याद किया।

क्या कहूँ, मैं तो उन्हींका पाला-पोसा हूँ।

[२] असहायको आश्रय

बात सन् १९२९ की है। पूज्य बाबूजी उन दिनों गोरखपुर शहरके उत्तरी भागमें रेलवे इंजन-शेडके समीप स्थित एक बगीचेमें रहते थे। यह बगीचा श्रीकान्तिबाबूका था और पूज्य बाबूजीने इसे किरायेपर ले रखा था। उन दिनों पूज्य बाबूजीपर भगवानकी कृपाकी वर्षा हो रही थी। भगवत्कृपाके विलक्षण प्रसंग उस बगीचेमें घटित होनेके कारण पूज्य बाबूजीके प्रति स्नेह-सद्भाव रखनेवाले स्थानीय जालान परिवारके एक बन्धुने वह बगीचा श्रीकान्तिबाबूसे खरीद लिया। उस बगीचेको खरीदनेमें उनकी आन्तरिक अभिलाषा यही थी कि पूज्य बाबूजी वहाँ बराबर रहें और उनकी उपस्थितिसे उसका महत्त्व बढ़ता चला जाय, परंतु दैवका कुछ और ही विधान था। *'तेरे मन कछु और है, कर्ताके कछु और'*।

उन दिनों गोरखपुर शहरमें बहुधा प्लेगका प्रकोप हो जाता था। उस वर्ष भी प्लेगका प्रकोप हुआ। शहरके लोग अपने घर खाली करके शहरके बाहरी क्षेत्रोंमें जाकर रहने लगे।

निर्धनता बड़ी क्रूर होती। शहरके प्रसिद्ध साहबगंज मुहल्लेमें रहनेवाला एक निर्धन मारवाड़ी ब्राह्मण, जिसका नाम बनारसी था, प्लेगकी चपेटमें आया और ठीकसे उपचार न होनेके कारण चल बसा। उसकी अनाथा स्त्री और बच्चे प्लेगका प्रकोप देखकर पहलेसे ही आतंकित थे, अपने पति-पिताको प्लेगका ग्रास होते देखकर तो वे और भी भयभीत हो गये। अब वे घर छोड़कर शहरके बाहर कहीं शरण लेनेके लिये व्यग्र हो गये, किंतु निर्धनको कौन आश्रय दे? ऐसे भीषण समयमें जब सभी 'शरणार्थी' बने हुए थे, कौन उनकी व्यवस्था करे? ब्राह्मणपत्नीको किसीने पूज्य बाबूजीकी शरण ग्रहण करनेके लिये प्रेरित किया। ब्राह्मणपत्नी पूज्य बाबूजीसे मिली और पूज्य बाबूजीने उसे अपने आवास-स्थान, अर्थात् उसी किरायेके बगीचेमें आकर रहनेके लिये कह दिया।

बगीचेके मालिक जालान-बन्धु भी साहबगंज मुहल्लेमें रहते थे। प्लेगके प्रकोपको देखकर वे भी बगीचेके उस हिस्सेमें जाकर रहने लगे थे, जो हिस्सा पूज्य बाबूजीके किरायेमें नहीं था। जालान-बन्धुको जब यह बात ज्ञात हुई कि बनारसी ब्राह्मणकी विधवा पत्नी और बच्चोंको पूज्य बाबूजी अपने हिस्सेके कमरोंमें लाकर ठहरा रहे हैं, तब वे भयभीत हो गये। जिस परिवारमें प्लेगके प्रकोपसे एक व्यक्तिकी मृत्यु हुई है, उसे अपने साथ शरण देना जालान-बन्धुको निरापद प्रतीत नहीं हुआ। मौतकी आशंकासे उनका हृदय काँप उठा। उन्होंने पूज्य बाबूजीसे प्रार्थना की— उस ब्राह्मण परिवारको बगीचेमें शरण नहीं देनी चाहिये। हमलोग भी सपरिवार रहने लगे हैं। ब्राह्मणकी मृत्यु प्लेगसे हुई है, अतएव उसके परिवारवालोंके साथ रहनेमें सभीको प्लेग हो जानेका भय है।

पूज्य बाबूजीने उन बन्धुकी बात सुन ली और उन्हें प्रेमपूर्वक समझाया— उस असहाय परिवारको शरण देना हमलोगोंका कर्तव्य है। किसी घरका एक व्यक्ति यदि प्लेगसे मर जाय तो क्या उसके अन्य सदस्योंसे भी प्लेग हो जानेका भय रहना चाहिये? जब रोगका प्रकोप हो रहा है, उस समय बिना किसी भेद-भाव अथवा अन्यथा विचारके अपनी शक्तिभर लोगोंको शरण देनी चाहिये।

पूज्य बाबूजीकी इस सीखका कुछ भी प्रभाव जालान-बन्धुपर नहीं पड़ा। वे किसी भी हालतमें अनाथ ब्राह्मण परिवारका बगीचीमें रहना स्वीकार नहीं कर सके। आत्मरक्षाकी चिन्तामें उन्होंने पूज्य बाबूजीके प्रति अपने प्यार और सद्भावको भी कोई महत्त्व नहीं दिया।

पूज्य बाबूजीको जालान-बन्धुकी यह हठधर्मी एवं भय सर्वथा अनुचित प्रतीत हुए। उन्होंने जालान-बन्धुको स्पष्ट कह दिया— बगीचेमें मैं रहूँगा तो ब्राह्मण-परिवार भी रहेगा। यदि ब्राह्मण परिवारको बगीचेमें शरण नहीं मिलेगी तो मैं भी इस बगीचेमें नहीं रहूँगा।

पूज्य बाबूजीके इतना कहनेपर भी जालान-बन्धुने अपना निश्चय नहीं बदला। उधर पूज्य बाबूजी अपनी कर्तव्य-भावनापर अडिग थे। परिणामस्वरूप उन्होंने जल्दी ही श्रीगोरखनाथ-मन्दिरके उत्तरकी ओर श्रीबालमुकुन्दजी गुप्तका बगीचा किरायेपर ले लिया और उसमें स्थानान्तरित हो गये। पीछे जब पूज्य बाबूजी बगीचा छोड़कर जाने लगे, तब जालान-बन्धुको अपनी हठधर्मीपर बड़ा विचार हुआ, किन्तु पूज्य बाबूजी उनके उस आग्रहको मान नहीं सके।

[३] अड़े सँवारे काम

बात बहुत पुरानी है। परम पूज्य श्रीमदनमोहनजी मालवीयके सुपुत्र श्रीकृष्णकान्त मालवीय इलाहाबादके नैनी जेलमें राजनैतिक बन्दी थे। अधिकारियोंके आदेशसे उनकी बदली बस्ती जेलमें हो गयी। उन्हें नैनीसे गोरखपुर होकर बस्ती ले जाया जा रहा था। उन्होंने श्रीबाबूजीके नाम एक तार दिया, जिसमें लिखा था— आज सन्ध्या सात बजेकी ट्रेनसे दस आदमियों सहित गोरखपुर स्टेशन पहुँच रहा हूँ। आप भोजनका प्रबन्ध करवा दें।

पूज्य बाबूजी उन दिनों गोरखनाथके समीप एक बगीचेमें रहते थे। तार प्रातः दस बजे गीताप्रेस पहुँचा, पर गीताप्रेसके व्यवस्थापक महोदयने सायंकाल छः बजेके बाद वह तार पूज्य बाबूजीको दिया। उसे पढ़कर वे बहुत चिन्तित हुये। प्रेसवालोंकी उपेक्षा वृत्तिके प्रति उनके मनमें बड़ा खेद हुआ कि न उन्होंने भोजनकी स्वयं व्यवस्था की और न उन्होंने समयसे तार मेरे पास भिजवाया। अब समय केवल आधा घंटा रह गया था। किंकर्तव्य-विमूढ पूज्य बाबूजी चिन्तामें डूबे हुए थे। इतना समय रह नहीं गया था कि पूड़ी-शाक बनवा लिया जाता और यदि किसी प्रकार बन भी जाय तो फिर सवारीका प्रश्न कैसे हल हो? नगरमें जाकर कोई ताँगा लेकर बगीचीमें आये और बगीचीसे भोजनका सामान स्टेशन पहुँचे, अब ट्रेनमें इतना समय नहीं रह गया था। परिस्थितिसे विवश पूज्य बाबूजी एकान्त मनसे भगवानका स्मरण करने लगे।

इतनेमें उन्होंने एक सज्जनको मिठाई, पूरी, सब्जी तथा फलोंकी टोकरियोंसे लदे हुए इक्केको आते हुए देखा। उक्त सज्जनने आते ही कहा— . . . . . के यहाँ लड़केका आज विवाह है। उन्होंने आपके लिये मिठाई-फल आदि भेजे हैं।

भगवानके द्वारा समयपर हुई व्यवस्थाको देखकर पूज्य बाबूजी आश्चर्यपूर्ण प्रसन्नतासे विभोर हो गये। उन्होंने इक्केवालेको रोक लिया। तुरन्त अपने दो-तीन साथियोंको सब सामानसहित उसी इक्केसे स्टेशन भेज दिया। सामान इतना अधिक था कि श्रीकृष्णकान्तजी तथा उनके सब साथियोंने पूर्ण तृप्तिके साथ भोजन किया। पीछे इस घटनाका उल्लेख करते हुए पूज्य बाबूजी कहा करते थे— भगवानने भोजनका सामान ही नहीं भेजा, सवारीके लिये इक्का भी भेज दिया,

अन्यथा जहाँ मैं रहता था, वहाँसे काफी दूर पैदल चलनेपर इक्का मिलता था। इतने अल्प समयमें स्टेशन पहुँचनेकी व्यवस्था होनी असम्भव थी। श्रीसूरदासजीने सर्वथा सत्य लिखा है—

सुने री मैंने निर्बल के बल राम।
पिछली साख भरूँ संतन की अड़े सँवारे काम॥

[४] विश्वसनीय व्यक्तित्व

कई वर्ष पहलेकी बात है। राजस्थानमें भीषण अकाल था। गौओंकी बड़ी दुर्दशा थी। उस समय राजस्थानमें स्थान-स्थानपर सहायताका काम हो रहा था। रतनगढ़में पूज्य बाबूजी वह काम देख रहे थे। वे एक दिन दोपहरको अपनी बैठकमें अकेले बैठे डाक देख रहे थे कि वहींके एक सज्जन आये। वे बहुत सम्पन्न थे, उनका बंगालमें बड़ा कारोबार था, बड़े दानी थे, पर वे अपने लिये व्यय करनेमें बड़े अनुदार थे। घुटनों तक की धोती, एक कमरी तथा सिरपर पगड़ी, जाड़ेमें एक बीकानेरी कम्बल, यही उनकी पोशाक थी। वे रिश्तेमें पूज्य बाबूजीके मामा लगते थे। उनके आनेपर पूज्य बाबूजीने प्रणाम करके आनेका कारण पूछा। उनके हाथमें एक कागजका छोटा-सा पुलिंदा था, उसे पूज्य बाबूजीके हाथमें देते हुए बोले— ले भैया! ये दस हजार रुपयेके नोट हैं, इस समय तू अकेला मिलेगा, इसीसे दुपहरीमें आया हूँ। इनको गायोंकी सेवामें लगा देना। पर देखना, कहीं मेरा नाम न आने पाये। भगवानकी सेवामें लगे, इसमें देनेवाले किसी दूसरेका नाम क्यों आना चाहिये?

उन दस हजार रुपयोंको आज एक-सवा लाखसे अधिक ही समझना चाहिये। पूज्य बाबूजीने मुस्कुराते हुए नोट ले लिये। वे जानते थे मामाजीके स्वभावको।

पूज्य बाबूजीका व्यक्तित्व इतना अधिक विश्वसनीय था कि न जाने कितने लोग अपने गुप्त दानका कार्य बाबूजीके माध्यमसे करवाया करते थे।

[५] स्नेहका सच्चा सम्मान

पूज्य बाबूजीकी आत्मीयता प्रसिद्ध है। जो भी, किसी भी हेतुसे, उनके सम्पर्कमें आया, वह सदाके लिये उनका हो गया तथा समय और स्थानकी दूरीसे फिर उस आत्मीयतामें कभी कोई बाधा या न्यूनता नहीं आयी। सच्ची आत्मीयता तो आत्मीयताकी ही सृष्टि करती है। यही हेतु है कि सभी लोगोंसे पूज्य बाबूजीको सच्चा स्नेह प्राप्त हुआ। गोरखपुर बाबूजीका कार्यक्षेत्र रहा है, अतएव यहाँके नागरिकोंके लिये पूज्य बाबूजी परिवारके एक गुरुजनके रूपमें समादृत रहे हैं।

पूज्य बाबूजीका जीवन आरम्भसे ही बड़ा क्रियाशील था। दिन-रातमें वे अधिक-से-अधिक चार-साढ़े चार घंटे विश्राम करते थे। इस व्यस्तताका प्रभाव शरीरपर होना स्वाभाविक था। शरीर प्रायः अस्वस्थ रहने लगा, पर अस्वस्थताकी भी कुछ परवा किये बिना ही पूज्य बाबूजी कार्यमें जुटे रहते थे। हाँ, शरीर-धर्मके नाते वे शुद्ध औषधिका प्रयोग करते थे। गोरखपुरके सभी डाक्टर एवं वैद्योंसे पूज्य बाबूजीकी बड़ी ही घनिष्ठता थी और तनिक-सा संकेत पाते ही डाक्टर-वैद्य उन्हें देखनेके लिये उपस्थित हो जाते थे। इसमें वे अपना अहोभाग्य मानते थे कि पूज्य बाबूजी

जैसे संत-जीवनकी सेवाके लिये उनके औषधि-ज्ञानका यत्किंचित् उपयोग हुआ, पर पूज्य बाबूजीका स्वभाव था, अपितु नियम-सा था कि जिनका जो व्यवसाय (PROFESSION) है, उनकी उस सेवाको मुफ्त नहीं लेना है। जिनके लिये चिकित्साका पेशा आजीविकाका साधन है, उन्हें उसके लिये उचित पारिश्रमिक देकर ही सेवा लेनी चाहिये। अपने इस नियमके अनुसार अपने यहाँ आनेवाले सभी सम्मान्य चिकित्सक महानुभावोंसे पूज्य बाबूजीने यह समझौता कर लिया था कि वे उन्हें जो दें, वह उन्हें लेना होगा। जो-जो चिकित्सक महानुभाव पूज्य बाबूजीके इस आग्रहको माननेमें अपनेको विवश पाते थे, पूज्य बाबूजी आवश्यक होनेपर भी अपने उपचारके लिये उन्हें बुलानेमें संकोच करते थे। वैसे प्रेमके नाते पूज्य बाबूजीके दर्शनार्थ वे लोग आते ही रहते थे।

सन् १९५१ की बात है। पूज्य बाबूजीके हृदयमें थोड़ी पीड़ा रहने लगी। कई महीने कष्ट रहा। स्थानीय सरकारी अस्पतालके सिविल सर्जन कैप्टन श्रीराजेन्द्रप्रसादजी बड़े ही अनुभवी तथा निपुण डाक्टर थे। अनेकों सांघातिक अवस्थाओंमें उनके उपचारसे लोगोंको प्राणदान मिला था। परिवारवाले तथा मित्रोंने पूज्य बाबूजीके सामने कई बार आग्रहपूर्ण प्रस्ताव रखा कि कैप्टन श्रीराजेन्द्रप्रसादजीको भी देखनेके लिये बुलाया जाय, पर पूज्य बाबूजीको ज्ञान था कि कैप्टन श्रीराजेन्द्रप्रसादजी उनके यहाँसे फीस स्वीकार नहीं करते, अतएव पूज्य बाबूजीने सभी लोगोंके आग्रहको सुनकर भी कैप्टन श्रीराजेन्द्रप्रसादजीको बुलाना स्वीकार नहीं किया। पूज्य बाबूजीकी अस्वस्थताकी बात छिपनेवाली चीज नहीं थी। कुछ दिनोंमें कैप्टन श्रीराजेन्द्रप्रसादजीको भी पता चल गया कि पूज्य बाबूजी बीमार हैं। वे बिना बुलाये ही पूज्य बाबूजीके निवास-स्थानपर पहुँच गये और पूज्य बाबूजीको वन्दन करनेके पश्चात् अत्यन्त स्नेहपूर्वक उपालम्भके स्वरमें कहने लगे— भाईजी! आपने मुझे अपनी बीमारीकी सूचनातक नहीं दी, क्या आपने डाक्टर राजेन्द्रप्रसादको मरा हुआ मान लिया था?

डाक्टर साहबके इन आत्मीयता भरे शब्दोंको सुनते ही श्रीभाईजीका हृदय भर आया, आँखें भर आयीं और वे बहुत ही संकोचभरे शब्दोंमें बोले— डाक्टर साहब! यह मेरी भूल है, पर क्या करूँ? यह मेरे स्वभावका दोष है। स्वजन लोग मुझे बहुत समझाते हैं, किन्तु मैं अपने स्वभावदोषको नहीं सुधार पाता। इसीसे आपको सूचना नहीं दी।

ऐसे लाचारीके प्रसंगपर भी अपने संकोची स्वभावका निर्वाह करनेकी पूज्य बाबूजीकी दृढ़ताको देखकर डाक्टर साहब गद्गद हो गये। उन्होंने बड़े ही स्नेहसे बहुत देरतक पूज्य बाबूजीका निरीक्षण किया एवं उपचारके सम्बन्धमें कई प्रकारके सुझाव दिये।

डाक्टर साहबके लौट जानेपर पूज्य बाबूजीने मुझसे कहा— डाक्टर साहबके स्नेहको देखकर मेरा हृदय भर आया। ऐसे सच्चे स्नेही कहाँ मिलते हैं, पर किसीके स्नेहका दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। अपने व्यक्तिगत स्वार्थके लिये स्वजनको कष्ट देना ही क्या स्नेह है? स्नेही देनेका आग्रह करता रहे और अपने मनमें उससे लेनेका संकल्प ही उदित न हो, तब शोभा है। किसी दूसरेके लिये डाक्टर साहबकी सेवाकी आवश्यकता होती तो उन्हें बुलानेमें मुझे प्रसन्नता होती, पर अपने लिये बुलाना उनके स्नेहका दुरुपयोग है।

सच्चे स्नेहका आदर्श रूप देखकर मेरा मन मुग्ध हो गया।

[६] राष्ट्रपति श्रीराजेन्द्रबाबूको सही परामर्श

उत्तर प्रदेशकी विधान सभाके सामने गोभक्तोंने सत्याग्रह किया तो सम्माननीय श्रीपंतजीने पूज्य बाबूजीको वचन दिया कि गोबध-बन्दीका कानून उत्तर प्रदेशमें बन जायेगा। उत्तर प्रदेशमें तो कानून बन गया, पर केन्द्रीय सरकार सदा ही टालमटोल करती रही। केन्द्रमें कसाइयोंका कोई ऐसा प्रबल पक्षधर बैठा था, जो केन्द्रीय सरकारको अखिल भारतीय गोरक्षा कानून बनाने नहीं दे रहा था। केन्द्रीय सरकारके सामने जब-जब बात उठती, तब-तब इस विषयकी उपेक्षा कर दी जाती। *'गवार्थे ब्राह्मणार्थे च सद्यः प्राणान् परित्यजेत्'* जैसे सिद्धान्त-वाक्यसे प्रेरणा लेकर पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी गोरक्षार्थ अनशन करनेकी बात सोचने लगे। उन्होंने इस विषयमें पूज्य बाबूजीकी सम्मति जाननी चाही। पूज्य बाबूजीने ब्रह्मचारीजीको तत्काल तार दिया— अभी शीघ्रता न करें।

फिर पूज्य बाबूजीने तुरन्त तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. श्रीराजेन्द्रप्रसादजीको पत्र लिखा। श्रीराजेन्द्रबाबू पूज्य बाबूजीसे बड़ा स्नेह रखते थे। वे गोरक्षाके प्रबल पक्षपाती थे, कई गोरक्षा-सम्मेलनोंके वे सभापति बने और उन्होंने सरकारकी गोहत्या बंद न करनेपर बड़ी भर्त्सना की।

पूज्य बाबूजी बताते थे कि एक बार श्रीराजेन्द्रबाबूने कहा था— यदि मेरा वश चले तो इन सब सिनेमाघरोंको बंद कर दूँ।

कुछ दिनों बाद सिनेमा-तारिकाओंके संगमें उनका चित्र छपा, तब पूज्य बाबूजीने उनसे पूछा— आप तो सिनेमा बंद करनेकी बात करते थे, फिर सिनेमा-तारिकाओंके साथ अपना चित्र क्यों छपवाया ?

श्रीराजेन्द्रबाबूने हँसकर कहा— मेरे दो रूप हैं, एक राजेन्द्रप्रसाद, व्यक्तिगत स्तरपर और दूसरा राष्ट्रपति, शासकीय स्तरपर। यह चित्र राष्ट्रपतिका है, और वह मन्तव्य श्रीराजेन्द्रप्रसादका।

श्रीराजेन्द्रबाबूका पत्रोत्तर दि. २४ जनवरी १९५३ को पूज्य बाबूजीके पास आया राष्ट्रपतिके नाते, केन्द्रीयसरकारकी नीतिके अनुरूप, न कि अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं के अनुसार। जो पत्र पूज्य बाबूजीके पास आया, वह बहुत लम्बा था। उस पत्रका सार यह था कि कानूनके बजाय समाजमें ऐसे वातावरणका निर्माण करना चाहिये, जिससे गोरक्षा स्वतः हो। अधिकांश बार यही होता है कि गायोंके पंगु या वृद्ध या रुग्ण होनेके कारण अथवा गोपालककी निर्धनताके कारण गायें कसाइयोंके हाथों छल-पूर्वक बेच दी जाती हैं। अनशन करनेके स्थानपर ब्रह्मचारीजी यदि समाजके मानसको गोभक्तिपूर्ण बनानेमें अपने समय और शक्तिका उपयोग करें तो वे अधिक गो-सेवा कर सकते हैं।

राष्ट्रपतिके नाते लिखे गये उस लम्बे पत्रका छोटा-सा उत्तर जो पूज्य बाबूजीने उनको लिखा, वह इस प्रकार है।

गीताप्रेस, गोरखपुर
३० जनवरी १९५३

परम सम्मान्य और प्रिय श्रीबाबूजी!

सादर नमस्कार।

आपका २४ जनवरीका कृपा पत्र मिला। आपने कृपापूर्वक मेरे पत्रका तत्काल स्वयं लम्बा पत्र लिखकर उत्तर दिया, इसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मेरे प्रति चिरकालसे आपकी जो अहैतुकी प्रीति, शुद्ध सद्भावना तथा आत्मीयता है, इसके लिये मैं आपका सदा ही ऋणी हूँ। आपका संदेश मैं श्रीब्रह्मचारीजी महाराजके पास भेज रहा हूँ। वे क्या करेंगे, इसका निश्चित तो पता नहीं है, पर आशा है, वे फिलहाल आपकी बात मान लेंगे।

आपने पत्रमें जो कुछ विचार प्रकट किये हैं, वे सर्वथा स्तुत्य और विचारणीय हैं एवं उनके अनुसार गोसंवर्धन, नस्ल-सुधार, गोसेवा होनी ही चाहिये। गाय बेचनेवाले लोग छलसे स्वार्थवश कसाईके हाथ पगहा नहीं पकड़ा करके, पगहा जमीनपर रख देते हैं और कसाई भी गायका मूल्य बेचनेवालेके हाथमें न दे करके रुपये जमीनपर रख देता है, इस प्रकार कपटसे कसाईके हाथ गाय बेची जाय और इस रीतिसे आँख बचाकर गोवध हो या कराया जाय, इसमें संतोष माननेकी तो कल्पना ही नहीं है। यह तो प्रत्यक्ष गोहत्या है, महापाप है। यह बंद होनी ही चाहिये।

परंतु साथ ही कानूनन सर्वथा गोवध बंद भी होना ही चाहिये। इसके बिना अच्छी गायोंका कटना बंद नहीं होगा। आपसे कई बार पहले भी बात हो चुकी है और आपने इस बातको स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया था, किंतु आप आवश्यकतासे अधिक साधु हैं। इसलिये स्पष्टवादी होनेपर भी कहीं-कहीं मित्रों तथा साथियोंके मनके विरुद्ध या सरकारकी नीतिके विपरीत कोई बात कहनेमें हिचक जाते हैं। अतएव मेरी यह विनीत प्रार्थना है कि अब आपको साहसके साथ अपने मनकी बात स्पष्ट कह देनी चाहिये कि सरकारको कानूनन सर्वथा गोवध बंद करना होगा और इसके लिये उचित प्रयत्न भी करना चाहिये। आशा है मेरी प्रार्थनापर आप ध्यान देंगे और मैं धृष्टतापूर्ण जो शब्द लिख गया हूँ, यद्यपि आप जानते हैं कि ये सत्य हैं, उसके लिये मुझे कृपया क्षमा करेंगे।

आप स्वस्थ और सानन्द होंगे। शेष भगवत्कृपा।

विनीत
हनुमानप्रसाद पोद्दार

राष्ट्रपति-पीठासीन स्वजनको शालीन शब्दोंमें कितना सही परामर्श स्पष्ट रूपमें पूज्य बाबूजी दे सकते हैं, इसका ज्वलन्त उदाहरण ऊपरवाला पत्र है।

[७] दान-दाताकी भावना महत्त्वपूर्ण

सन् १९६८ के ग्रीष्म ऋतुकी बात है। पूज्य बाबूजी सत्संग हेतु स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) आये हुए थे। पूज्य बाबूजीका निवास डालमिया कोठीमें था और मैं बूबना भवनके एक कमरेमें ठहरा हुआ था। बूबना भवन डालमिया कोठीसे एकदम सटे हुए है।

सन् १९६६ के नवम्बर मासमें गोरक्षाके लिये जो अखिल-भारतीय आन्दोलन हुआ था, उसे एक बार स्थगित कर दिया गया था, जिससे सरकारको इस विषयपर सोचने-विचारने तथा लोगोंसे बातचीत करनेका कुछ अवसर मिल जाय, पर आन्दोलनका प्रभाव जन-मानसपर छाया हुआ था। आन्दोलनको सफल बनानेके लिये जन-जनने तन-मन-धनसे जो सहयोग दिया था, उसकी उस समय भी बड़ी सराहना हुई थी और वह आज भी सराहनीय है।

बूबना भवनके जिस कमरेमें मैं ठहरा हुआ था, उससे तीन-चार कमरे हटकर एक कमरेमें साँभरलेककी एक वृद्धा माताजी रहती थीं। वे जानती थीं कि मैं पूज्य बाबूजीका व्यक्ति हूँ। उन्होंने मुझे बुलाया तथा कहा— भइया! ये तीस रुपये लो और मेरी ओरसे भाईजीको देकर कहना कि इसे गोरक्षा आन्दोलनमें लगा दें।

उन रुपयोंको लेकर मैं पूज्य बाबूजीके पास गया और उन वृद्धा माताजीका परिचय देकर तथा प्रयोजन बताकर वे रुपये देने लगा। बाबूजीने कहा— तुम जाकर ये रुपये वापस कर आवो। उनसे कह देना कि इस समय आन्दोलन बन्द है, अतः ये रुपये कैसे लिये जा सकते हैं। यदि गोरक्षा आन्दोलन चल रहा होता तो मैं इन रुपयोंको ले लेता।

पूज्य बाबूजीकी आज्ञानुसार मैं माताजीके पास गया तथा बाबूजी द्वारा बताये गये कारणको बतलाकर रुपये वापस करने लगा। माताजीने उन रुपयोंको अपने हाथमें नहीं लिया। उन्होंने कहा— भइया! मैं इसे वापस नहीं लूँगी। मैं तो ये रुपये गायके लिये निकाल चुकी हूँ। तुम यह बात श्रीभाईजीसे कह दो।

मैं पुनः पूज्य बाबूजीके पास आया तथा माताजीका मन्तव्य पूज्य बाबूजीसे बता दिया। पूज्य बाबूजीने कहा— तुम एक बार फिर उनके पास जावो और पूछ लो कि क्या इन रुपयोंका प्रयोग किसी गोशालामें घासचारेके काममें किया जाये?

माताजीके पास जानेके लिये मैं डालमिया कोठीसे बाहर निकला, पर जाते-जाते यह भी सोच रहा था कि क्या पूज्य बाबूजी ऐसी छोटी-छोटी बातोंपर भी इतना अधिक ध्यान देते हैं कि सहायता करनेवाले अथवा दान देनेवालेकी भावनाके अनुसार ही कार्य होना चाहिये। मैंने माताजीसे ज्यों ही पूज्य बाबूजी वाली बात पूछी, उन्होंने तुरन्त अपनी सहमति प्रकट कर दी। उनकी सहमतिके मिल जानेपर पूज्य बाबूजीने उन रुपयोंको गोशालामें लगा देनेके लिये स्वीकार कर लिया। ■

श्रीव्रजकिशोरजी त्रिपाठी

हिन्दू नामके प्रति आस्था

नेहरू सरकार द्वारा अपनायी गयी धर्म-निरपेक्षिताकी नीतिकी ओटमें मुसलिम-तुष्टीकरण-भावनाको जितना प्रश्रय और पोषण मिला, उसको देखकर विस्मय होता है। पर-धर्म-सहिष्णुताके नामपर स्व-धर्म-निष्ठाकी अवहेलना, मात्र अवहेलना ही नहीं, अपितु अवगणना होनेका सबसे बड़ा प्रमाण यही है, सरकारको 'हिन्दू' शब्दके प्रयोगमें संकीर्णता एवं संकोचका अनुभव होने लगा और यही कारण है कि इन्दिरा सरकार वाराणसीके महान

शिक्षा-केन्द्र काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके नाममेंसे 'हिन्दू' शब्दको हटा देनेका विचार करने लगी। इतना ही नहीं, वह इस विचारको क्रियान्वित करनेके लिये प्रयत्नशील हो उठी। हिन्दुत्वके प्रति सरकारकी यह उपेक्षा हिन्दू-हृदयके लिये असह्य हो उठी। विश्वविद्यालयकी एक-एक ईंटमें 'का. हि. वि. वि.' अंकित है। क्या इन्दिरा सरकार द्वारा यह शक्य था कि ईंटमेंसे 'हि' को हटा दे, जो 'हिन्दू' शब्दका बोधक है? वास्तविक तथ्यका उपहास उड़ाती हुई सरकारने यह कहना आरम्भ कर दिया कि श्रीमालवीयजीने स्वेच्छासे नहीं, परेच्छासे हिन्दू शब्दको विश्वविद्यालयके नाममें स्थान दिया था। यह अप-प्रचार तो उन हिन्दुत्वाभिमानी मालवीयजीके हिन्दू-जीवनपर कीचड़ उछालनेके समान था, जिन्होंने वेदनाधिक्यमें अपने प्राण छोड़ दिये थे नोआखालीमें हिन्दुओंपर हुए भीषणात्याचारको देखकर।

सरकारकी इस हिन्दू-विरोधी नीतिका खुलकर विरोध हुआ और इस विरोधने एक आन्दोलनका रूप ले लिया। विद्यार्थी परिषदके कतिपय कार्यकर्ता श्रीभाईजीके पास पहुँचे आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये, जिससे उनके प्रयासमें सफलता मिले। श्रीभाईजीने तत्काल दिनांक ८-१-६६ को एक लिखित वक्तव्य दिया, जो इस प्रकार है।

वास्तवमें यह दुःखकी बात है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे 'हिन्दू' नाम हटानेकी बात चल रही है और किन्हींके द्वारा यहाँतक कहा जा रहा है कि महामना मालवीयजी महाराज 'हिन्दू' नाम नहीं रखना चाहते थे, अपितु श्रीएनीवेसेन्टके दबावसे उन्होंने 'हिन्दू' नाम रक्खा। पर यह सर्वथा असत्य और भ्रान्त धारणा है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये जब महामना मालवीयजी प्रयत्न कर रहे थे, उस समय मुझे उनके साथ रहनेका और कुछ काम करनेका अवसर मिला था। मैंने उस समय महामना मालवीयजीके विचारोंको बहुत निकटसे देखा था और मैं यह निःसंकोच कह सकता हूँ कि मालवीयजी स्वयं 'हिन्दू' नाम रखना चाहते थे और उन्होंने रक्खा। बल्कि सत्य तो यह है कि श्रीऐनीबेसेन्ट ही 'हिन्दू' नाम नहीं रखना चाहती थीं और महामना मालवीयजीके विशेष आग्रहसे ही 'हिन्दू' शब्द रक्खा गया। इस विषयमें लिखित प्रमाण भी थे, जो मेरे पास अभी नहीं है, पर खोजनेपर मिल सकते हैं। अतएव महामना मालवीयजी द्वारा स्थापित उनके प्राणोंकी प्रियतम वस्तु काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे 'हिन्दू' शब्दको निकाल देना उनके प्रति अक्षम्य अपराध होगा और जहाँतक मैं समझता हूँ कोई भी सहृदय पुरुष और सरकार 'हिन्दू' नामको निकालनेका प्रयास नहीं करेगी। मालवीयजीका हिन्दुत्वसे अत्यन्त अनुराग था, हिन्दुत्वमें अत्यन्त विश्वास था और वे हिन्दू-धर्मके लिये जीवन धारण किये हुए थे। नोआखालीमें हिन्दुओंपर जो अत्याचार हुआ, इससे वे मर्माहत हुए और उनका अन्तिम लेख जो नोआखालीके सम्बन्धमें था, वह कल्याणके अक्टूबर, १९४६ के अंकमें पृष्ठ १३८९ पर 'महामना मालवीयजीका अन्तिम पूरा वक्तव्य' शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हो चुका है। इस लेखसे भी महामना मालवीयजीका हिन्दू-प्रेम स्पष्ट प्रकट हो रहा है।

हनुमानप्रसाद पोद्दार
सम्पादक, कल्याण
गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीभाईजीके आशीर्वादसे कार्यकर्ताओंको बड़ा बल मिला। अब बड़े संतोषके साथ कहा जा सकता है कि प्रबल विरोधके फलस्वरूप इन्दिरा सरकार विश्वविद्यालयके नाममेंसे 'हिन्दू' शब्द

नहीं हटा सकी और आज भी उस महान शिक्षा-केन्द्रका नाम है ''काशी हिन्दू विश्वविद्यालय''। इस वक्तव्यसे स्पष्ट झलक रही है श्रीमालवीयजीके साथ-साथ श्रीभाईजीकी भी हिन्दू-भावना। हिन्दू धर्म, हिन्दू हित, हिन्दू गौरवके प्रति श्रीभाईजीकी जो आस्था है, वह सदा अभिनन्दनीय रहेगी। ■

श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी

[१] रचनाकी सहज प्रतिभा

पूज्य श्रीभाईजीका सदा प्रयास यही रहता था कि लोगोंके जीवनमें प्रभु-भक्तिकी प्रतिष्ठा हो। वे अपनी वाणीसे और अपनी लेखनीसे सदा ही प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया करते थे। न जाने कितने लोग उन्हें पत्र लिखा करते थे और उनका सदैव प्रयत्न रहा करता था सबको पत्र द्वारा उत्तर दे देनेका। मेरा भी उनसे पत्र-व्यवहार रहा है। जब-जब मैंने उनके पास पत्र लिखा है, प्रायः उनके पाससे उत्तर मेरे पास आया है। मुझे सबसे अधिक विस्मय एक बार यह देखकर हुआ कि मेरे पत्रका उत्तर उन्होंने कवितामें लिखकर दिया है। मैंने उनको एक पत्र अक्टूबर १९५९ में लिखा था। इसका उत्तर उन्होंने २२ अक्टूबर १९५९ को एक पदके रूपमें भेजा। पदको पढ़कर यह बात मेरी समझमें अच्छी प्रकार आ गयी कि इस पदमें मेरे पत्रका उत्तर है। इस उत्तरको पढ़कर मन तो आनन्दमें डूब ही गया, परंतु एक जिज्ञासा भी मनमें उभर आयी। उत्तर स्वरूप आये हुए इस पदकी रचना कब हुई? क्या किसी पूर्व रचित पदको ही उन्होंने पत्रके उत्तरमें लिख दिया अथवा पत्रको पढ़नेके बाद उत्तरमें लिखनेके लिये ही इसकी रचना हुई? वस्तुस्थितिका परिज्ञान प्राप्त करनेके लिये मैंने तत्काल श्रीभाईजीको पत्र लिख कर पूछा— आपने जो पद मेरे पत्रमें लिखा, वह कोई पूर्व रचना है अथवा मेरे पत्रके उत्तरमें ही उसकी रचना हुई?

मैंने पत्र तो भेज दिया, पर मेरे मनमें एक संदेह भी कार्य कर रहा था। लौकिक स्तरपर उनकी कार्य-व्यस्तता और लोकातीत स्तरपर उनकी भाव-निमग्नता, इन दो कारणोंसे पत्रोत्तर देनेमें यदि कुछ अधिक दिन व्यतीत हो गये तो वे यही लिख देंगे कि मुझे स्मरण नहीं है। यह संदेह मेरे मनमें था, किन्तु वह शीघ्र ही समाप्त हो गया। मेरे पत्रका उत्तर उन्होंने ३० अक्टूबर १९५९ के पत्रमें दे दिया। पत्रमें उन्होंने लिखा था— मैंने उस दिन तुमको जो चार पंक्तियाँ लिखी थीं, वे पहलेकी बनी हुई नहीं थी। तुम्हारा पत्र पढ़कर उसके उत्तरमें जो लिखनेका भाव आया, वही उस समय लिखा। क्या लिखा था, मुझे याद नहीं है।

काव्य-रचनाकी यह सहज क्षमता देखकर मेरा मन उनके प्रति और भी विनत हो गया। मुझे स्मरण हो आया उनका एक पद्यात्मक पत्र, जो सन् १९४२ में 'कल्याण'में छपा था। एक साधकने अपना नाम न बतलाते हुए श्रीभाईजीको एक दर्द भरा पत्र लिखा। वह पत्र लिखा गया था पद्यात्मक। श्रीभाईजीने भी पद्यात्मक उत्तर लिखा और ठीक उसी प्रकारके छन्दमें। साधकने

अपना नाम-पता नहीं दिया था, अतः श्रीभाईजीने उस पद्यात्मक उत्तरको 'कल्याण'में प्रकाशित कर दिया। वह पद्यात्मक उत्तर भी अपने ढंगका एक ही है। मैं पहले सोचता था कि उस पद्यात्मक उत्तरको लिखनेमें श्रीभाईजीको बड़ा समय लगाना पड़ा होगा, किन्तु वैसा सोचना मेरा भ्रम था। जैसे श्रीभाईजीने मुझे लिखा, वैसे ही उनको भी सहज रूपमें लिख दिया होगा। इसी तरह मेरे अनेक मित्रोंको श्रीभाईजीने पत्र लिखे हैं और अनेक बार वे पद्यात्मक होते थे, विशेष रूपमें तब, जब वे अपनी स्थिति अथवा श्रीराधामाधवकी लीलाके बारेमें लिखते थे।

सन् १९६७ अथवा १९६८ की बात है। श्रीभाईजी स्वर्गाश्रम आये हुए थे। डालमिया कोठीमें उनका निवास था। कोठीमें नृसिंह जयन्ती मनायी जाने वाली थी। पूजनके लिये सारी तैयारी हो चुकी थी, केवल एक पद्यबद्ध आरतीकी आवश्यकता थी नीराजनके समय गायन करनेके लिये। कई पुस्तकोंके पन्ने उलटे गये, पर आरती नहीं मिली। यह बात श्रीभाईजीको बतलायी गयी। वे तुरन्त अपने कमरेमें गये और कुछ ही मिनटोंमें आरतीकी रचना करके ले आये। वस्तुतः पद्य-रचनाकी उनमें सहज प्रतिभा थी। उनके भावोंका प्रवाह पद्यके साँचेमें सहज ही ढल जाया करता था।

जब उनके पदोंका संग्रह 'पद रत्नाकर' गीताप्रेससे प्रकाशित हुआ, तब अनेक विशिष्ट साहित्यकारोंने आश्चर्य व्यक्त किया कि 'कल्याण' जैसी पत्रिकाके सम्पादन-कार्यमें अत्यधिक व्यस्त और प्रभु-भक्तिके प्रचार-कार्यमें सतत रत रहते हुए भी उनके द्वारा इतने विपुल परिमाणमें और ऐसे श्रेष्ठ स्तरकी काव्य रचना कैसे हो पायी? श्रीभाईजीकी पदरचनापर केवल साहित्यकार ही नहीं, संगीत-सम्राट श्रीविष्णु दिगम्बरजी पलुस्कर जैसे मूर्धन्य संगीतज्ञ भी रीझे हुए थे। पदोंके शब्द-लालित्य और भावमाधुर्यपर तो श्रीविष्णु दिगम्बरजी इतना अधिक रीझ गये थे कि उनकी ही भावनाके अनुसार श्रीभाईजीका पहला पद-संग्रह 'पत्र-पुष्प'के नामसे छपा था। प्रत्येक पदकी राग भी उन्होंने ही बैठायी थी।

पद्य-रचनाके साथ-साथ वे गद्य-लेखनमें भी नितान्त दक्ष थे। 'कल्याण' पत्रिकाके लिये लेख लिखनेमें तथा प्रकाशनार्थ आये हुए लेखोंका संशोधन करनेमें उन्हें विलम्ब नहीं लगता था। गद्य-लेखनकी इसी दक्षताके कारण उनके द्वारा सम्पादित 'कल्याण' पत्रिका जन-मानसपर छा गयी थी। एक ओर भाव और विचार तथा दूसरी ओर भाषा और शैली, इन दोनों दृष्टियोंसे प्रकाशित सामग्रीका स्तर इतना श्रेष्ठ होता था कि समाजमें कल्याणकी प्रतिष्ठा प्रकाश-स्तम्भके रूपमें हो गयी थी। लक्ष्यकी स्पष्टता, चिन्तनकी गम्भीरता और विचारोंकी उच्चताके कारण धर्म और साधनाके क्षेत्रमें कल्याण पत्रिकाको प्रमाण माना जाने लगा। श्रीभाईजीकी महान कृति 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' रस-साधना-राज्यकी एक अनुपम निधि है, जिसको मूर्धन्य विद्वानोंने मुक्त कण्ठसे सराहा है।

सिद्ध संत होते हुए भी सिद्ध-हस्त लेखक और कवि होना उनके महान व्यक्तित्वका एक गौरव पूर्ण पक्ष है। अध्यात्मके शिखरपर सहज जीवन, विवेकका विचारोंमें सहज प्रकाश, धर्मके रक्षण हेतु सहज उत्सर्ग, रसके सिन्धुमें सहज निमग्नता और काव्यकी रचनामें सहज प्रतिभा उन्हें सहज ही प्रस्थापित कर देती है आदि शंकराचार्य एवं गोस्वामी श्रीतुलसीदास जैसे सिद्ध कवि संतोंकी पंक्तिमें।

[२] वह विशिष्ट विदाई

प्रसंग सन् १९६८ का है और स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) का है। पूज्य सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके ब्रह्मलीन होनेके पश्चात् पूज्य श्रीभाईजी प्रति वर्ष ग्रीष्मकालमें सत्संगके उद्देश्यसे स्वर्गाश्रम जाया करते थे। श्रीभाईजीके वहाँ रहनेसे एक ऐसा सात्त्विक वातावरण परिव्याप्त रहता था, जो बड़ा प्रेरणादायक होता था। मैं सत्संगका लाभ उठानेके लिये स्वर्गाश्रम आया हुआ था। जब कार्यालयसे प्राप्त छुट्टी समाप्तिपर आयी तो न चाहते हुए भी मुझे वापस जानेकी तैयारी करनी पड़ी। जिस दिन मैं कलकत्तेके लिये रवाना होने वाला था, उस दिनकी बात है। मैं प्रातः श्रीभाईजीको प्रणाम करनेके लिये डालमिया कोठी गया तो पता लगा कि आज जल्दी ही उन्होंने कमरेका दरवाजा बन्द कर लिया और वे चेतनावस्थामें नहीं हैं। भाव-सिन्धु-निमग्नताकी यह स्थिति उन दिनों उनके लिये साधारण बात थी। चाहे जब और चाहे जिस स्थितिमें उनकी बाह्य चेतना लुप्त हो जाती थी तथा भावसमाधिकी वह स्थिति कुछ मिनटोंसे लेकर पन्द्रह-बीस घंटे भी रह जाती थी। बहुत वर्षोंतक उन्होंने इस स्थितिको छिपाये रखा, पर जीवनके अन्तिम दस-बारह वर्षोंकी अवधिमें उनके प्राणाराध्यकी किसी दिव्य इच्छाके अनुसार वह दिव्य स्थिति जगतके सामने प्रकाशित हो गयी। उनके कमरेके द्वारको मैं प्रणाम करके लौट आया।

दोपहरके समय मैं फिर गया तो देखा कि श्रीभाईजी उसी प्रकार भाव-समाधिस्थ हैं। श्रीभाईजीकी प्रिय दौहित्री श्रीराधाबाईने मुझसे कहा— आज तो आप नहीं जा पायेंगे।

मैंने कहा— क्यों ?

वह बोली— नानाजीके दर्शन किये बिना आप कैसे जायेंगे और वे दरवाजा कब खोलेंगे, इसका पता नहीं, अतः आप अपनी बर्थका रिजर्वेशन कैंसिल करा दीजिये।

मैंने कहा— अभी तो आज जानेका ही विचार है।

मैं प्रतीक्षा करनेके उद्देश्यसे कमरेके बाहर बरामदेमें बैठ गया। बैठे-बैठे मैं सोच रहा था— यह भी कैसी अनिर्वचनीय स्थिति है। श्रीभाईजीकी अभिलाषा है और तदनुरूप प्रयास रहता है कि मेरी वृत्तियाँ जगतके सेवा-कार्योंमें लगी रहें, परंतु उनकी वृत्तियाँ बलात् पहुँच जाती हैं उस लीला राज्यमें। यह एक अद्भुत विवशता है। लीलासिन्धुमें उनकी वृत्तियोंके विलीन होनेके बाद जागतिक सेवाके सभी कार्य ज्यों-के-त्यों धरे ही रह जाते हैं। इस स्थितिको निकटवर्ती जनोंने भाव-समाधि कहना आरम्भ कर दिया। मैंने कई संतोंके जीवन-चरित्र पढ़े हैं, बहुत संतोंकी बातें सुनी हैं, कई संतोंके दर्शन भी किये हैं, पर ऐसा कहीं भी सुनने-देखनेमें नहीं आया कि कोई संत अपनी वृत्तियोंको जगतमें रखनेका प्रयास करे और संघर्षपूर्वक यहाँ लगानेपर भी बलात् लीलाराज्यमें जाकर भाव-समाधिस्थ हो जाये।

दोपहरसे अपराह्नकाल होनेको आया। कई घंटे प्रतीक्षा करनेके पश्चात् मैंने अपने छोटे भाई प्रिय श्रीहरिकृष्णको अपने पास बुलाया। वह कई वर्षोंसे श्रीभाईजीकी निजी सेवामें रहने लगा था। मैंने उससे पूछा— अब कैसे करना चाहिये ?

प्रिय हरिकृष्णने कहा— आज दरवाजा अन्दरसे बन्द है, अतः जब वे खोलेंगे, तभी दर्शन हो पायेगा और कोई उपाय नहीं है। आप ही सोच लें कि जाना कितना आवश्यक है। मेरा सुझाव है कि आप यहीं रहें। वे कभी भी दरवाजा खोल सकते हैं।

मैंने उससे कहा– छुट्टीके लिये तो कोई बात नहीं, पर कलकत्तेको जानेवाली एक ही ट्रेन देहरादून एक्सप्रेस है। उसमें भीड़ बहुत चलती है, अतः रिजर्वेशन दुबारा जल्दी नहीं मिल सकेगा और बिना रिजर्वेशन सपरिवार भीड़में जाना महा कठिन है।

मैं डालमिया कोठीसे गीताभवनके अपने कमरेमें आया और सामान आदि सब तैयार करके पुनः मैं और मेरी पत्नी श्रीभाईजीके दरवाजेके पास बैठ गये। मैं मन-ही-मन कुछ प्रार्थना भी करने लगा– आप यदि मेरी परीक्षा ले रहे हों तो मैं अनुत्तीर्ण हूँ ही, क्यों कि मैंने बाहरसे द्वारको प्रणाम करके जानेकी बात सोच ली है। आप अन्तर्यामी हैं, अतः आप मेरी झूठी या सच्ची इच्छाका स्वरूप जानते ही हैं। मेरी इच्छा है कि मैं आपका दर्शन करके और आपको प्रणाम करके जाऊँ। यदि दरवाजा खोलनेसे आपके इस रसावगाहनमें व्यवधान उपस्थित होता हो तब तो मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण उसमें व्यवधान आये, पर मनमें यह भाव बार-बार उठता है कि आपके द्वारसे कभी कोई निराश लौटा हो, ऐसा सुना नहीं।

जब मेरे रवाना होनेमें लगभग बीस मिनट बाकी रहे तो मैंने हरिकृष्णसे कहा– तुम मेरा सामान मेरे कमरेमेंसे यहाँ डालमिया कोठीके घाटपर ले आओ और मोटर-बोटके लिये चेष्टा करो कि अगली बार वह यहीं आ जाय। मैं पूरे समय यहाँ प्रतीक्षा करना चाहता हूँ।

वह तदनुसार व्यवस्था करनेके लिये चला गया। जब मेरे रवाना होनेमें पाँच मिनट शेष रहे तो मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। श्रीभाईजीके दरवाजेकी चटखनीके खोलनेकी आवाज मुझे सुनायी पड़ी। मैं और मेरी पत्नी दरवाजा खोलकर अन्दर चले गये और वहाँ देखा कि श्रीभाईजी नेत्र बन्द किये अपने आसनपर बैठ रहे हैं। जब वे बैठ गये तो मैंने चरणोंमें प्रणाम करके उनसे कहा– मैं आज जा रहा हूँ।

उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। उनके नेत्र बन्द थे और उनका शरीर निश्चेष्ट था। इसी समय उनके अनन्य सेवक श्रीरामसनेहीजी आ गये। उन्होंने श्रीभाईजीसे कहा– जल पी लीजिये।

श्रीभाईजीने कोई उत्तर नहीं दिया। इस मई-जूनकी भयंकर गर्मीमें, कुछ खाने-पीनेकी बात तो दूर रही, उन्होंने सबेरेसे अपराह्नतक जल भी नहीं लिया था, अतः श्रीरामसनेहीजी चाहते थे कि वे जल पी लें, अन्यथा उनके अस्वस्थ हो जानेका भय है। उनके दुबारा कहे जानेपर भी श्रीभाईजीने कोई उत्तर नहीं दिया। वे उसी स्थितिमें निश्चेष्ट बैठे रहे। प्रायः रवाना होते समय श्रीभाईजी इलायचीका प्रसाद दिया करते थे। डब्बा उनके पास पड़ा था। मैंने हिम्मत करके उनसे कहा– थोड़ा इलायचीका प्रसाद दे दीजिये।

नेत्र बन्द थे, अतः वे हाथसे डिब्बेको टटोलने लगे। मैंने डिब्बा उनके हाथके पास कर दिया तो उसमेंसे थोड़ी इलायची निकालकर देने लगे। मेरा हाथ उन्हें दिखाई नहीं दे रहा था, अतः मैंने अपने हाथको उनके हाथके पास किया तो उन्होंने इलायची छोड़ दी। मेरा हृदय गद्गद हो गया। हमलोग प्रणाम करके बाहर आ गये। श्रीरामसनेहीजी भी बाहर आ गये, दरवाजा बाहरसे बन्द कर दिया गया। मैं इसे कृपावर्षा कहूँ या स्नेह-वर्षा ? मैं गद्गद हृदयसे डालमिया घाटपर आया और कलकत्तेके लिये रवाना हो गया। आज जब कभी भी अर्धचेतनावस्थामें उनके हाथसे मिली हुई वे इलायची और विदा होते समय उनकी वह भाव-निमग्न मुद्रा याद आती है तो मन विभोर हो जाता है।

[३] बिजलीकी घंटी

गीतावाटिकामें श्रीभाईजीके कमरेके एकदम पास और सीढ़ीके ठीक ऊपर एक छोटा-सा केबिन था, जिसमें श्रीराधेश्यामजी बंका बैठकर अपना काम किया करते थे। इस केबिनमें जाते सम्पादकीय विभागके पत्र, कागज, फाइल, रजिस्टर आदि रखे रहते थे। जब कभी किसी कामके लिये श्रीभाईजीको बुलाना पड़ता था तो वे श्रीबंकाजीको आवाज देकर बुला लेते थे। कई स्वजनोंने सोचा कि एक बिजलीकी घंटी श्रीभाईजीके पास लगा दी जाय, जिससे उनको सुविधा हो जाय और जब आवश्यक हो, वे घंटीका बटन दबाकर श्रीबंकाजीको बुला लें।

स्वजनोंका मन रखनेके लिये श्रीभाईजीने अपनी ओरसे स्वीकृति दे दी और फिर उनके कमरेमें बिजलीकी घंटी लग गयी, पर उसका कभी उपयोग नहीं हुआ। हाँ, अपवाद स्वरूप उसका उपयोग हुआ दो बार। एक बार तो यह देखनेके लिये कि देखें, श्रीबंकाजी आते हैं या नहीं। श्रीभाईजीके पास प्रिय श्रीचन्द्रकान्त बैठा था। उसने बटनको दबाया और घंटी बज गयी। श्रीबंकाजी तत्काल श्रीभाईजीके पास गये। उनको देखकर प्रिय श्रीचन्द्रकान्तने कहा— हमने तो यों ही यह देखनेके लिये घंटी बजा दी थी कि देंखे, आप आते हैं या नहीं।

यह सुनकर श्रीबंकाजी विहसते हुए अपने केबिनमें वापस चले गये। दूसरी बार घंटी बजी एक विशेष परिस्थितिमें। एक बार प्रिय श्रीचन्द्रकान्त तथा श्रीभाईजी कमरेमें बैठे हुए थे। किसी बालकने खेल-खेलमें दरवाजेका कुंडा बाहरसे बन्द कर दिया। श्रीभाईजीको बाहर आना था, पर दरवाजा तो बन्द था। कुंडा खुलवानेके लिये प्रिय चन्द्रकान्तने बटन दबाकर घंटी बजायी और फिर श्रीबंकाजीने जाकर कुंडा खोला।

घंटी बजनेके केवल ये दो प्रसंग उल्लेखनीय हैं, पर श्रीभाईजीने अपने हाथसे कभी उसको काममें नहीं लिया। घंटी बजाकर किसी व्यक्तिको बुलाना, यह बात श्रीभाईजीको कभी रुचिकर लगी ही नहीं। इसमें उनको 'आफिशियलडम' और 'अफसरपने' की बू आती थी। श्रीभाईजीको वह व्यवहार पसन्द ही नहीं था, जिसपर कार्यालय-व्यवस्थाके नामपर कसावटपूर्ण अनुशासनकी छाया हो। वे तो उस वातावरणके पुजारी और पोषक थे, जिसमें पारिवारिक भावनासे उद्भूत सहजतापूर्ण आत्मीयता परिव्याप्त हो। यही कारण है कि घंटीके लग जानेके बाद भी उनको जब भी आवश्यकता होती, वे वहींसे बैठे-बैठे आवाज लगाकर श्रीबंकाजीको बुला लेते अथवा वे स्वयं उठकर केबिनके दरवाजेपर जा खड़े होते अथवा किसी व्यक्तिको भेजकर श्रीबंकाजीको बुलवा लेते, पर उन्होंने कभी घंटीका प्रयोग नहीं किया।

[४] आदेशका 'पालन'

भाई श्रीराधेश्यामजी बंकाकी चाह थी तथा तदनुसार प्रारम्भसे ही प्रयास था कि पूज्य श्रीभाईजीके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें देशके गण्यमान लोगोंकी जो धारणा है, वह उन्हींकी लेखनीसे लिखवाकर लिखित रूपमें प्राप्त की जाय, जिससे उसका उपयोग भविष्यमें उचित समयपर किया जा सके। इसके लिये श्रीबंकाजीने अनेक लोगोंको व्यक्तिगत रूपसे पत्र लिखा। किसी सूत्रसे श्रीभाईजीको इस बातकी जानकारी हो गयी और यह भी पता चल गया कि जबलपुरके संसत्सदस्य तथा गीताप्रेसके प्रति श्रद्धा-भाव रखनेवाले सेठ श्रीगोविन्ददासजीके

पास भी पत्र लिखा गया है। श्रीगोविन्ददासजीको लिखनेसे निवारण करनेके लिये श्रीभाईजीने २७ सितम्बर १९७० को जो पत्र लिखा, वह इस प्रकार है—

परम सम्मान्य

सादर नमस्कार।

मालूम हुआ है कि हमारे यहाँके श्रीराधेश्यामजी बंकाने मेरे सम्बन्धमें कुछ लिखनेके लिये आपसे निवेदन किया है। मेरे प्रति उनका सद्भाव है, वे मुझमें श्रद्धा रखते हैं, इसीलिये उन्होंने विशुद्ध भावुकतावश यह प्रयास किया है। परन्तु न तो मेरे जीवनमें ऐसा कोई गुण है, न कोई महत्त्व है, जिससे इस विषयमें आप सरीखे महानुभावोंका समय लिया जाय। सिद्धान्ततः भी मैंने जीवनभर आत्म-प्रशंसाका विरोध किया है। मनमें क्या है, सो तो भगवान जानें। आप सरीखे मुझपर अहैतुकी कृपा और स्नेह रखनेवाले आदरणीय महानुभाव यदि कुछ लिखेंगे तो आपका समय जायगा और मेरे लिये कोई लाभकी बात नहीं होगी। मैं तो आपसे यही आशीर्वाद और सद्भाव चाहता हूँ कि मान-प्रतिष्ठासे बचा रहकर जीवनभर भगवानका स्मरण कर सकूँ। आपका जो समय किसी बहुमूल्य लोकहितकर काममें लगता, उसे श्रीराधेश्यामजीने और मैंने पत्र लिखकर तुच्छ कार्यमें खोया, इसके लिये मैं करबद्ध क्षमा चाहता हूँ।

शेष भगवत्कृपा।

आपका विनीत
हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीभाईजी द्वारा लिखे गये पत्रमें जो आत्म-संगोपन एवं दैन्य-भाव है, वह उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्वके अनुरूप ही है। संतोचित विनम्रता पत्रकी एक-एक पंक्तिमें समायी हुई है। श्रीगोविन्ददासजीने श्रीभाईजीको क्या उत्तर दिया, वह तो ज्ञात नहीं, पर श्रीबंकाजीके पास उनका जो पत्र आया, वह भी पठनीय है। श्रीभाईजीके सम्बन्धमें अपनी धारणाको लिपिबद्ध करके वह लेख श्रीगोविन्ददासजीने भेजा और लेखके साथ आनेवाले पत्रमें उन्होंने लिखा—

राजा गोकुलदास महल
जबलपुर
दि: १५-१०-१९७०

प्रिय बंकाजी

आपका पत्र मिला। इधर मैं फ्लूमें पड़ा हूँ, अतः लेख भेजनेमें कुछ विलम्ब हो गया, क्षमा करें। बुखार हटते ही श्रद्धेय पोद्दारजीपर एक छोटासा लेख लिखा, जो इस पत्रके साथ आपकी सेवामें भेज रहा हूँ। इसका जहाँ उचित, समझें, उपयोग आप कर सकते हैं।

श्रद्धेय पोद्दारजीका एक पत्र मुझे इन दिनों मिला, जिसमें उन्होंने आपके पत्रका हवाला देकर उनपर कुछ न लिखनेका मुझे आदेश दिया। उसमें पोद्दारजीका वही आत्मगोपी और आत्म-प्रशंसाविरोधी भाव था। किन्तु इसमें आत्म-प्रशंसाकी तो कोई बात ही नहीं है। मनुष्य मात्र निमित्त ही तो है और जिस तरह निमित्त एक शब्द अथवा नाम है, उसी तरह व्यक्तिका नामोल्लेख एक साधन बन जाता है। इससे अधिक कुछ नहीं। इसी भावसे मैं श्रद्धेय पोद्दारजीकी

उस आज्ञाका पालन न कर सका और अपने भाव विचार अंकित कर भेज रहा हूँ। कृपया पहुँच दें।

भवदीय
गोविन्ददास

सेठ श्रीगोविन्ददासजीके पत्रने श्रीबंकाजीको तथ्य-संग्रहके प्रयासमें प्रोत्साहन ही दिया। इस प्रसंगके अन्तमें मैं इतना ही और कहना चाहूँगा कि श्रीभाईजीने अपना महान व्यक्तित्व जितना अधिक छिपाना चाहा, उस व्यक्तित्वकी महनीयता उतनी ही अधिक फैलती चली गयी। ■

श्रीहरिकृष्णजी दुजारी

[१] समत्व भावना

नित्यकी भाँति पूज्य बाबूजी गीतावाटिकाके पंडालमें प्रवचन देनेके लिये पधारने वाले थे। सभी लोगोंके बैठनेके लिये भूमिपर दरी बिछी हुई थी। शीत ऋतु होनेके कारण ठण्ड अधिक थी, अतः जहाँ सदा बैठकर पूज्य बाबूजी प्रवचन दिया करते थे, वहाँपर एक कम्बल चार पर्त करके बिछा दिया गया, जिससे उनपर जमीनकी ठण्डका प्रभाव न पड़े।

पूज्य बाबूजी प्रवचन देनेके लिये पंडालमें आये। उन्होंने देखा कि बैठनेकी जगहपर कम्बल बिछा हुआ है। पूज्य बाबूजीने वह कम्बल हटवा दिया। उन्हें बड़ा अप्रिय लग रहा था कि मैं अपने ही लोगोंके मध्य एक श्रेष्ठ आसनपर बैठूँ।

पूज्य बाबूजीने कम्बल तो हटवा दिया, पर हमलोगोंको चिन्ता हो रही थी शीतकी प्रबलताको देखकर। इससे उन्हें ठण्ड लग सकती है। फिर अगले दिन एक चतुराई की गई। कम्बल दरीके ऊपर न बिछा करके दरीके नीचे चार पर्त करके बिछा दिया गया। कम्बल दरीके नीचे होनेसे दिखलायी नहीं दे रहा है, अतः ऐसा अनुमान था कि उस आसनपर बैठनेमें किसी प्रकारकी आपत्ति पूज्य बाबूजीको नहीं होनी चाहिये।

पूज्य बाबूजी प्रवचन देनेके लिये पंडालमें आये। बैठनेके लिये पूज्य बाबूजीने ज्यों ही अपने निश्चित स्थानपर पैर रखा, उन्हें लगा कि स्थान कुछ ऊँचा-सा है। उन्होंने पूछा— आज यह स्थान ऊँचा-सा क्यों लग रहा है ? देखो तो, क्या बात है ?

नीचे कम्बल तो था ही। पूज्य बाबूजीने वह कम्बल तुरन्त नीचेसे भी हटवा दिया। पूज्य बाबूजीको वह कोई भी विशेष व्यवस्था अथवा विशिष्ट सुविधा स्वीकार नहीं थी, जो अपने भीतर किसी प्रकारकी श्रेष्ठता अथवा उच्चताकी भावनाको उपजने दे। ऐसी भावना तो किसी व्यक्तिको अपने जनोंसे अलग कर देती है। जो रहनी अलगावमें हेतु बने, वह जीवनके लिये वरदान कैसे हो सकती है ?

सन् १९५६ में तीन धामोंके दर्शनके लिये तीर्थ-यात्रा-ट्रेन चली। उस ट्रेनमें पूज्य बाबूजीके लिये प्रथम श्रेणीके डिब्बेकी व्यवस्था की गयी थी। पूज्य बाबूजीने यह व्यवस्था अस्वीकार कर

दी। उन्हें यह सर्वथा अरुचिकर था कि मैं प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें सुविधापूर्वक रहूँ और साथके लोग तृतीय श्रेणीमें कसमसाते हुए यात्रा करें।

ऐसी थी सबके प्रति उनकी समत्व-भावना और आत्मदृष्टि।

[२] सहयोगकी भावना

गीतावाटिकामें रहनेवाले विरही संत श्रीरघुजीकी चर्चा पूज्य बाबूजी अनेक बार अपने प्रवचनोंमें किया करते थे, अतः उनका विस्तृत परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है। संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि कराचीके भाटिया परिवारमें आपका जन्म हुआ था और आपने ऊँची शिक्षा बम्बईमें प्राप्त की। यहीं बम्बईमें साधु-संगसे श्रीसीतारामजीकी अहैतुकी भक्ति आपके मनमें जाग उठी। आप बम्बईसे कराची गये, परंतु घरपर मन नहीं लगा और भक्ति-पूर्ण जीवन व्यतीत करनेके लिये आप कराचीसे गोरखपुर बाबूजीके पास गीतावाटिका चले आये। उन्होंने अखण्ड मौन ले लिया और वे जीवनके अंततक यहीं गीतावाटिकामें रहे। आप निरन्तर 'रघु', 'रघु' जपा करते थे, अतः आपका नाम रघुजी पड़ गया। भगवानके विरहमें आपके दोनों नेत्रोंसे इतने आँसू बहते थे कि दोनों कपोलोंपर अश्रु-प्रवाहके निशान पड़ गये थे।

श्रीरघुजी गीतावाटिकामें रहते तो थे, परंतु पूज्य बाबूजीने कभी भी कोई नियम अथवा कोई मर्यादा उनपर थोपी नहीं। पूज्य बाबूजीका स्वभाव था साधन-भजन करने वाले साधकको पूरी-पूरी स्वतन्त्रता देना, इतना ही नहीं पूर्ण रूपसे सहयोग करना। श्रीरघुजी श्रीरामचतुष्टयके चित्रात्मक श्रीविग्रहकी उपासना किया करते थे। उनकी ठाकुर-सेवाके लिये पूज्य बाबूजीने निर्देश दे रखा था कि उन्हें जब जो आवश्यकता हो, तदनुसार वस्तु उनके पास पहुँचा देनी चाहिये। एक बार ठाकुर-सेवाके लिये श्रीरघुजीके पास ऐसे केले पहुँच गये, जो कुछ अधिक पक गये थे। संयोगसे किशमिश भी ऐसी पहुँची, जो कुछ गीली-गीली थी। श्रीरघुजी उन किशमिश और केलोंको लेकर पूज्य बाबूजीके पास गये और स्लेटपर पेंसिलसे लिखकर अपनी टूटी-फूटी हिन्दीमें कहने लगे— मेरे प्यारे-प्यारे कोमल-कोमल अति सुकुमार कुमार श्रीरघुनाथजीके लिये क्या ऐसे केले और ऐसी किशमिश ?

वे कुछ और बात आगे लिखें, कि पूज्य बाबूजी तुरंत बोल पड़े— जिसने ये वस्तुएँ आपके पास पहुँचायी हैं, उससे भूल हो गयी है। इन्हें भगवानके सामने कदापि निवेदित नहीं करना चाहिये। मैं अभी दूसरी व्यवस्था करता हूँ।

इतना कहकर पूज्य बाबूजीने उसी समय बाजारसे बढ़िया किशमिश और केले मँगवा कर दिये। इसीके साथ पूज्य बाबूजीने अपने सहयोगियोंको स्थायी निर्देश भी दे दिया कि श्रीरघुजीकी ठाकुर-सेवाके लिये कभी कोई हलकी अथवा दागी वस्तु न जाये और पूज्य बाबूजीके इस आदेशका पालन सदा सावधानीपूर्वक होता रहा। किसी भी साधककी भावनाका पूज्य बाबूजी बड़ा ध्यान रखते थे।

गीतावाटिकामें एक और महान शक्ति-साधक थे पूज्य श्रीरामचन्द्रन् ब्रह्मचारी। आप दक्षिणके तमिल प्रदेशके रहने वाले थे। आप एक जर्मन कम्पनीमें काम करते थे। वहीं उनमें विरक्तिका भाव जगा और वे घरसे बाहर निकल पड़े साधना करनेके लिये। वे अनेक स्थानोंके अनेक आश्रमोंमें इस आशासे गये कि वहाँ अनुकूल परिस्थिति मिल सके, जिससे वे तत्पर

होकर भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी उपासना कर सकें। इस बारेमें उन्हें बड़ा कटु अनुभव मिला कि भगवत्कैंकर्य अथवा गुरु-भक्ति अथवा साधु-सेवा अथवा आश्रम-कार्यके नामपर साधकसे बहुत काम करवाया जाता है। जिस-जिस आश्रममें वे गये, उन्हें सर्वत्र यही दृश्य दिखलायी दिया कि वहाँ साधककी श्रद्धाका दोहन होता है और साधककी भावनाओंपर उचित ध्यान नहीं दिया जाता। उनका मन बड़ा खिन्न था। धार्मिक 'कल्याण' पत्रिका और उसके आध्यात्मिक सम्पादक पूज्य बाबूजीकी ख्यातिको सुनकर श्रीब्रह्मचारीजी गोरखपुरकी गीतावाटिकामें भी आये यहाँके वातावरणको टटोलनेके लिये। उन्हें आश्चर्य हुआ यह देखकर कि उन्होंने जो सुविधा चाही, वह पूज्य बाबूजीके द्वारा गीतावाटिकामें उन्हें पूर्ण रूपसे मिली और फिर आश्रम-सेवाके नामपर कोई काम नहीं। कुटिया, भोजन, वस्त्र, औषधि आदि सभी प्रकारकी व्यवस्था उन्हें गीतावाटिकामें प्राप्त हुई और वह व्यवस्था ऐसी, जहाँ प्रतिदानकी कोई कामना नहीं, रंचमात्र कल्पना भी नहीं।

कुछ दिनों बाद स्वयं श्रीब्रह्मचारीजीके मनमें आया कि शरीर-निर्वाहके लिये मैं जो भोजन यहाँ करता हूँ, उस अन्नकी शुद्धिके लिये कुछ कार्य मुझे करना चाहिये। उन्होंने अपने मनका यह भाव पूज्य बाबूजीके सामने व्यक्त किया। पूज्य बाबूजी तो सदा साधना-परायण साधककी रुचिका आदर करते थे। पूज्य बाबूजीने पूछा— आप क्या काम करना चाहते हैं?

श्रीब्रह्मचारीजीने कहा— मैं हिन्दी तो जानता नहीं। तमिल मेरी मातृ-भाषा है। हाँ, मैं अँगरेजीमें टाइप कर सकता हूँ।

पूज्य बाबूजीने पूछा— आप कितना समय देना चाहते हैं?

श्रीब्रह्मचारीजीने कहा— लगभग दो घंटा।

पूज्य बाबूजीने वैसी ही व्यवस्था कर दी। गीतावाटिकामें हिन्दी 'कल्याण' पत्रिकाके साथ-साथ अँगरेजीमें 'कल्याण-कल्पतरु' पत्रिकाका भी सम्पादन होता था। इसका सारा कार्य-भार पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीपर था। पूज्य बाबूजीने एक अँगरेजी टाइप मशीन मँगवा दी। श्रीब्रह्मचारीजी 'कल्याण-कल्पतरु' पत्रिकाके लिये अँगरेजीमें लेख टाइप करने लग गये। दो घंटा टाइप करना और चौदह-पन्द्रह घंटोंतक साधना करना, यही उनका मुख्य दैनिक कार्य होता था। लगभग बयालीस वर्ष वे गीतावाटिकामें रहे और सन् १९८१ में यहीं अपने पाञ्चभौतिक चोलेको विसर्जित कर देवीलोकको पधार गये।

ऐसा नहीं समझना चाहिये कि पूज्य बाबूजी केवल गीतावाटिकामें रहनेवाले साधकको सहयोग देते थे, अपितु उनकी ऐसी उदार भावना हर क्षेत्रके और हर प्रकारके साधु-संतोंके प्रति रहा करती थी। सन् १९६८ के नवम्बर मासकी बात है। कर्नाटक प्रदेशके एक आश्रमके एक संन्यासी गीतावाटिका आये। उस आश्रमके महन्त थे समर्थ स्वामी श्रीरामदासजी महाराजकी संत-परम्परावाले। उन्होंने अपने संन्यासी शिष्यको उत्तर भारत भेजा शालग्राम शिला लानेके लिये। वे हिन्दी नहीं जानते थे। भाषाकी कठिनाईको दूर करनेके लिये उन्होंने अपनी सहोदरा बहिनको साथ ले लिया। बहिन बड़ी विदुषी थी तथा हिन्दी भाषाका अच्छा ज्ञान था। वे दोनों भाई-बहिन गीतावाटिकामें आकर ठहरे और अपने आनेका प्रयोजन पूज्य बाबूजीको बतलाया। एक दिन विश्राम करनेके बाद वे दोनों नेपालकी यात्रापर चले गये। वे बड़े चावसे नेपाल गये

और उन्हें पर्वतीय यात्रामें बड़ा श्रम उठाना पड़ा, परंतु उनको सफलता नहीं मिली। एक-डेढ़ सप्ताहके बाद वे निराश होकर खाली हाथ लौट आये। आकर फिर ठहरे गीतावाटिकामें। उन्होंने अपनी कष्टपूर्ण यात्राका विवरण पूज्य बाबूजीको सुनाया। उनकी गाथा दर्द भरी असफलताकी कहानी थी।

पूज्य बाबूजीको यह तनिक भी अच्छा नहीं लग रहा था कि जो साधु अपने गुरुजीकी आज्ञासे शालग्राम शिला प्राप्त करनेके लिये सुदूर दक्षिणसे भारतके नितान्त उत्तरी छोरपर आया हो, वह रिक्त-हस्त और भग्न-हृदय वापस जाय। पूज्य बाबूजीने उनको पुनः नेपाल जानेके लिये उत्साहित किया। वे जाना तो नहीं चाहते थे, परंतु पूज्य बाबूजी द्वारा बार-बार कहे जानेपर उन्होंने साहस बटोरा और पुनः नेपाल-यात्राका निश्चय किया। इस बार उनकी यात्राके पीछे पूज्य बाबूजीकी भाव-शक्ति परोक्ष रूपसे कार्य कर रही थी। पूज्य बाबूजीकी प्रेरणासे वे दोनों भाई-बहिन पुनः नेपाल गये और नित्य पावनी गण्डकी सरिताके उद्गम-स्थलपर उन्हें अभीष्ट शालग्राम शिलाकी प्राप्ति हो गयी। श्रीगुरुजीने जिन-जिन चिह्नोंसे समलंकृत होना आवश्यक बतलाया था, वे-वे चिह्न उस शिलापर थे। इस बारकी यात्रामें पहलेकी अपेक्षा भी अधिक कष्ट झेलना पड़ा, परंतु प्रसन्नता इसी बातसे थी कि यह दूसरी यात्रा पूर्ण सफल रही।

एक और उदाहरण लिख रहा हूँ। एक बार ग्रीष्म ऋतुमें पूज्य बाबूजी स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में विराज रहे थे। एक युवक ब्रह्मचारी पूज्य बाबूजीके पास आये। वे थे गुजराती और उन्होंने वाराणसीके एक संतसे दीक्षा ले रखी थी। उनकी रुचि हठयोगमें थी। वे चाहते थे कि यदि गंगोत्रीमें मेरे आवास एवं आहारकी व्यवस्था हो जाय तो बारहों मास वहाँ रहकर अपनी साधना करूँ। गंगोत्री ही भगवती गंगाका उद्गम स्थल है। यह बड़ा ही ठण्डा और निर्जन स्थान है। वे वहीं अपनी योग-साधना करना चाहते थे। पूज्य बाबूजीने अपने व्यक्तियों द्वारा उन ब्रह्मचारीजीकी इच्छानुसार गंगोत्री-वासकी सारी व्यवस्था तत्काल करवा दी। श्रीब्रह्मचारीजी बहुत लम्बी अवधितक गंगोत्रीमें रहकर अपनी योग-साधना करते रहे। आजकल वे श्रीब्रह्मचारीजी वाराणसीमें एक बहुत बड़े आश्रमके सम्माननीय महन्त हैं। महन्त होकर भी प्रतिदिन उनका अधिकांश समय साधनामें ही व्यतीत होता है।

इसी स्वर्गाश्रममें पूज्य बाबूजीसे एक जर्मन महिला मिली। जर्मनीमें जन्म होनेके बाद भी भारतकी आध्यात्मिकतासे आकृष्ट होकर वे अपने देशसे भारत चली आयीं। वे बड़ी ही उत्तम मूर्तिकार तथा संगीतज्ञा थीं। उन्हें वीणा-वादनका अच्छा अभ्यास था। वे भी चाहती थीं कि यदि मेरे आहारकी व्यवस्था हो जाय तो हिमगिरिकी गुफामें रहकर साधना करूँ। पूज्य बाबूजीने उन जर्मन महिलाके लिये भी सारी-सारी समुचित व्यवस्था करवायी। लक्ष्मणझूलासे ऊपर गरुड़चट्टीके पास एक गुफामें रहते हुए वे अपनी साधनामें लीन हो गयीं। हमलोगोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता था कि हिंसक जंगली जन्तुओं वाले उस निर्जन स्थलपर वे विदेशी महिला गुफामें अकेली रहकर साधनामें संलग्न रहती थीं। जब पूज्य बाबूजी स्वर्गाश्रम जाया करते थे तो वे यदा-कदा आकर पूज्य बाबूजीको वीणा सुनाया करती थीं।

ये कुछ प्रसंग ऐसे हैं, जिनसे उस प्रकारके सहयोगकी एक झाँकी मिलती है, जो स्थूल रूपसे प्रदान किये गये, किंतु कुछ सूक्ष्म प्रकारके ऐसे भी सहयोग पूज्य बाबूजी द्वारा प्रदत्त हुए,

जिनका कोई लेखा-जोखा नहीं। जब साधक अपनी साधना आरम्भ करता है तो अनेक प्रकारके विघ्न सामने आते हैं। कभी अशुभ कर्मराशिके विकट फल, कभी आधिदैविक बाधाओंकी अलंघ्य घाटियाँ, कभी शंकाओं और संदेहोंके भीषण झंझावात, कभी भ्रान्ति एवं कुतर्कोंके दुर्गम जंगल, कभी आसुरी शक्तियोंका मायावी जाल, कभी मानसिक विकृतियोंका घोर ताण्डव, कभी साध्य एवं साधनाका अल्प परिज्ञान, इस प्रकार कभी कोई, कभी कोई उपद्रव साधकके जीवनमें खड़ा हो जाता है और वह साधक किं-कर्तव्य-विमूढ़ होकर बैठ जाता है। ऐसे हताश-निराश, असहाय-निरुपाय साधकोंको पूज्य बाबूजी बड़े गुप्त रूपसे सँभालते रहे हैं। उनके मंगल एवं प्रगतिके लिये कभी अनुष्ठान करना, कभी अनुष्ठान करवाना, कभी सुझाव देना, कभी प्रेरणा देना, कभी साहित्य देना, कभी संकल्प करना, इस प्रकार पूज्य बाबूजी चुपचाप विविध उपाय किया और करवाया करते थे, जिसका कोई विवरण है ही नहीं। कृतज्ञताभिभूत साधकोंसे कभी-कभी कुछ आभारोद्गार सुननेको मिलते हैं, उससे अनुमान लगाया जाता है कि पूज्य बाबूजीने उनके लिये क्या-क्या और कितना-कितना किया है।

ऊपर जो लिखा गया है, वह तो शाखा-चन्द्र-न्यायके अनुसार एक संकेत मात्र दिया गया है, जिससे कुछ झलक मिल सके। साधकों और संतोंको विभिन्न अवसरोंपर विविध प्रकारसे सहयोग दिये जानेके अनन्त प्रसंग है। वे चाहे किसी सम्प्रदायके हों, चाहे किसी पंथके हों, चाहे किसी प्रदेशके हों, सभी साधुओं-संतों-साधकोंको उनके भजन एवं साधना-परायण जीवनमें उनकी अभिलाषा एवं आवश्यकताके अनुसार सहायता-सहयोग करनेके लिये पूज्य बाबूजी सदैव तत्पर रहा करते थे। ■

श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल

[१] आदेशका पालन

बात पुरानी है। एक प्रसिद्ध विद्वान महोदयने दर्शनशास्त्रपर हिंदीमें एक अच्छा ग्रन्थ प्रकाशित कराया था। उन्होंने उसकी एक प्रति पूज्य बाबूजीके पास भेंटस्वरूप भेजते हुए पत्रमें लिखा— इस ग्रन्थकी अच्छी-सी समालोचना आप 'कल्याण'में अवश्य प्रकाशित कर दें।

पूज्य बाबूजी उन दिनों 'कल्याण'के विशेषांकके कार्यमें व्यस्त थे एवं उनका स्वास्थ्य भी कुछ शिथिल था, अतएव उस पत्रका उत्तर सामान्यरूपमें सम्पादकीय विभागके एक सदस्यने लिख दिया था— 'कल्याण'में आपके ग्रन्थकी समालोचना प्रकाशित नहीं हो पायेगी। कृपया विवशताके लिये क्षमा करें।

इस उत्तरको प्राप्त करके विद्वान महानुभावको बड़ा असंतोष हुआ, पर उन्होंने अपना असंतोष मनमें ही रखा, पत्ररूपमें उसे व्यक्त नहीं किया।

एक-दो मास बाद किसी कामसे वे विद्वान महोदय गोरखपुर पधारे और पूज्य बाबूजीसे मिले। पूज्य बाबूजीने उनका बहुत ही आदरके साथ स्वागत किया, चरण छूकर प्रणाम किया और अपने सहज स्वभावसे पूछा— महाराजजी ! कोई सेवा हो तो बताइये।

पूज्य बाबूजीके मुखसे ये शब्द सुनते ही विद्वान महोदय मुखर हुए। ग्रन्थकी समालोचना

प्रकाशित न होनेके कारण जो असंतोष उनके हृदयमें था, उसे व्यक्त करनेका उन्हें अच्छा अवसर मिल गया। *'कामात् क्रोधोऽभिजायते'* कामना प्रतिहत होकर क्रोध बनती है। विद्वान महोदयने कहा— भाईजी! आप पूछ रहे हैं कि कोई सेवा हो तो बताइये। दो मास पूर्व एक सेवा बतायी थी। दर्शन-विषयपर लिखा गया अपना ग्रन्थ आपको भेजा था और आग्रहपूर्वक लिखा था कि उसकी अच्छी समालोचना 'कल्याण'में प्रकाशित कर दीजियेगा, परंतु आपने उस सेवाकी ओर तो ध्यान ही नहीं दिया और मिलनेपर सेवा बतानेकी बात कह रहे हैं। क्या 'कल्याण' जैसे आध्यात्मिक पत्रके सम्पादकका यही स्वरूप होना चाहिये!

पूज्य बाबूजीने विद्वान महोदयके रोषभरे शब्द शान्त-भावसे सुने और दोनों हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करते हुए वे बोले— महाराजजी! आपका कहना सत्य है, किंतु क्या करूँ? आपका ग्रन्थ मिला। उन दिनों मैं विशेषांकके कार्यमें अत्यधिक व्यस्त था। साथ ही शरीर भी रुग्ण था, अतएव उसका उत्तर मैं स्वयं नहीं लिख पाया। पता नहीं, मेरे साथियोंने आपको क्या उत्तर लिखा, किन्तु महाराजजी! 'कल्याण'के आरम्भसे ही हमलोगोंकी यह दृढ़ नीति रही है कि किसी भी ग्रन्थकी समालोचना उसमें प्रकाशित नहीं की जाय। इस नीतिके निर्धारणकी भी एक महत्त्वपूर्ण घटना है। महात्मा गाँधीजीसे मेरा प्रथम परिचय सन् १९१५ में हुआ। महात्माजी सन् १९१५ में जब दक्षिण अफ्रीकासे लौटनेपर रंगून होकर कलकत्ता पधारे, तब वहाँकी हिंदू-सभा संस्थाकी ओरसे मन्त्रीके रूपमें मैंने उनका स्वागत किया था तथा अल्फ्रेड थियेटरमें उन्हें अभिनन्दन-पत्र भेंट किया था। पीछे क्रान्तिकारी गति-विधियोंमें सक्रिय भाग लेनेके कारण जब मैं बंगालसे निष्कासित कर दिया गया, तब सन् १९१८ से १९२७ ई. तक मैं बम्बईमें रहा। उस अवधिमें महात्माजीके साथ अत्यन्त घनिष्ठता हो गयी। वे जब बम्बई पधारते, तब स्वर्गीय भाई श्रीजमनालालजी बजाजके साथ व्यावसायिक कार्य करनेके कारण उनकी ओरसे महात्माजीके सारे आतिथ्यका भार मेरे ही जिम्मे रहता था। महात्माजी बम्बईमें मेरे घरपर भी कई बार पधारे थे। उनका मेरे साथ सम्बन्ध प्रायः वैसा ही कौटुम्बिक था, जैसा उनका अपने पुत्र भाई देवदासके साथ था। जब 'कल्याण' पत्रिका प्रकाशित हुई, तब पत्रिकाके लिये महात्माजीका आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु श्रीजमनालालजी बजाजको साथ लेकर मैं उनके पास गया था। 'कल्याण'के सम्बन्धमें निर्धारित नीतियोंको सुनकर महात्माजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि दो नियमोंका पालन दृढ़तासे करना। बाहरी कोई विज्ञापन नहीं देना तथा पुस्तकोंकी समालोचना मत छापना। विज्ञापन न छापनेके सम्बन्धमें उन्होंने हेतु बताया कि तुम अपनी जानमें पहले-पहले यह देखकर विज्ञापन लोगे कि वह किसी ऐसी चीजका न हो, जो भद्दी हो और जिसमें जनताको धोखा देकर ठगनेकी बात हो। आगे चलकर ऐसी परिस्थिति तुम्हारे सामने आयेगी कि तुम्हारे विरोध करनेपर भी साथी लोग कहेंगे कि देखिये इतना पैसा आता है, क्यों न यह विज्ञापन स्वीकार कर लिया जाय? बस, पैसेका प्रलोभन आया कि जनताके लाभ-हानिकी बात एक ओर रह जायगी, अतएव आरम्भसे ही यह नियम बना लो कि 'बाहरी विज्ञापन स्वीकार करना ही नहीं है'। समालोचनाके सम्बन्धमें यह बात है कि जो लोग समालोचनाके लिये तुम्हारे पास अपनी पुस्तकें भेजेंगे, उनमेंसे अधिकांश इसलिये भेजेंगे कि तुम्हारे पत्रमें उनके ग्रन्थकी प्रशंसा निकले। यथार्थ समालोचना करानेके लिये अपनी पुस्तक भेजनेवाले बिरले ही होते हैं। ऐसी स्थितिमें पुस्तकें चाहे जैसी हो, या तो उनकी झूठी प्रशंसा

करनी होगी या उन साहित्यकारों, लेखकोंसे झगड़ा मोल लेना पड़ेगा। इसलिये समालोचना मत छापना। महात्मा गाँधीजीकी बात सुनकर मैंने उनसे कहा कि बापू! आपका आशीर्वाद चाहिये और भगवान शक्ति दें कि इन दोनों नियमोंका दृढ़ताके साथ पालन हो। फिर बापूने 'कल्याण'की सफलताके लिये हृदयसे आशीर्वाद दिया। तबसे आजतक 'कल्याण'की वही नीति चली आ रही है। गाँधीजीने जो आशंका व्यक्त की थी, आगे चलकर वह सामने आ गयी। ज्यों-ज्यों 'कल्याण'का प्रचार बढ़ने लगा, त्यों-त्यों विज्ञापनवालोंके आग्रह आने लगे। जब इसके एक लाख ग्राहक हो गये, तब तो लोग खूब अधिक पैसा देकर विज्ञापन छपवानेको तैयार हो गये। समालोचनाके लिये भी बहुत-सी पुस्तकें आयीं, बहुत तरहसे दबाव डाले गये, पर भगवान रक्षा करते चले आ रहे हैं। महाराजजी! आपकी सेवा न करनेका अपराध मेरे द्वारा अवश्य हुआ है, पर किन परिस्थितियोंमें, यह आपके सामने स्पष्ट है। आप गुरुजन अपराधके लिये जो दण्ड देंगे, वह शिरोधार्य है। बस, मुझे इतना ही संतोष है कि आजतक 'कल्याण'की रीति-नीतिका निर्वाह मेरेद्वारा भलीभाँति हो रहा है। इससे मेरे मनमें प्रसन्नता भी है। गुरुजनोंद्वारा प्रदत्त आदेशका पालन करनेके लिये मैं सदा सचेष्ट रहा हूँ और होश रहते उसमें किसी प्रकारकी शिथिलता आने देनेका विचार भी नहीं है।

'कल्याण'की रीति-नीतियोंका परिचय प्राप्त करके विद्वान महोदयका रोष शान्त हो गया। वे पूज्य बाबूजीको आशीर्वाद देते हुए बोले— भाईजी! आपने पत्रकारिता-जगतके सामने एक आदर्श उपस्थित किया है। मुझे यह जानकर आन्तरिक प्रसन्नता हुई कि आप गुरुजनोंके आदेशका इतनी दृढ़ताके साथ पालन करते हैं।

विद्वान महोदयके चरणोंमें अपना मस्तक रखते हुए पूज्य बाबूजीने कहा— आप जैसे गुरुजनोंके श्रीचरणोंके आशीर्वादका ही यह फल है। बस, जीवनपर्यन्त आशीर्वाद बना रहे!

विद्वान महोदय भाव-विभोर थे।

[२] उलझन दूर हो गयी

इस समय मुझे भली प्रकारसे स्मरण नहीं हो पा रहा है कि यह प्रसंग किन पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजसे सम्बन्धित है। जगन्नाथपुरी स्थित गोवर्धन-पीठाधिपति अथवा शृंगेरी स्थित शारदा-पीठाधिपति परम पूज्य जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराज एक बार गीतावाटिका पधारे। उत्तर भारतके विभिन्न स्थानोंका परिभ्रमण करते हुए ही पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजका गोरखपुरमें शुभागमन हुआ था और स्नान-पूजादिसे निवृत्त होनेके उद्देश्यसे आपने गीतावाटिकामें कुछ घंटोंके लिये पूज्य बाबूजीका आतिथ्य स्वीकार किया था। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजके शुभागमनको बाबूजीने अपना सौभाग्य समझा। बाबूजीने अपनी सुपुत्री सावित्रीबाईको तथा उसकी माँको बुलाकर प्रणाम करवाया। बाबूजीने तत्काल पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजके विश्रामादिकी सुन्दर-से-सुन्दर व्यवस्था करवायी। महान धर्माचार्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजकी सेवा और सम्मानमें जो कुछ सम्भव था, उसमें बाबूजीकी ओरसे कहीं कोई न्यूनता नहीं थी। बाबूजीकी सच्ची मान्यता थी कि इन महान संतोंकी 'आध्यात्मिक जूठन' का ही 'कल्याण' पत्रिकाके द्वारा जन-जनमें वितरण होता है और इन साधु-महात्माओंके शुभाशीर्वादसे ही 'कल्याण' और 'गीताप्रेस' अध्यात्म और धर्मके क्षेत्रमें

कुछ कार्य कर पा रहा है।

पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजके साथ जो परिकर थे, उनसे बाबूजीने महाराजजीकी भिक्षाके सम्बन्धमें पुछवाया तो उन्होंने बताया— महाराजजी पूजा-ध्यानादिसे निवृत्त होनेके बाद सात द्वारपर भिक्षा माँगते हैं। भिक्षामें जो मिल जाता है, वही उनका आहार होता है।

भिक्षा लेनेके लिये एक घर बाबूजीका अपना था ही, इसके अतिरिक्त छः वैष्णव गृहस्थोंको बाबूजीने सूचित करवा दिया कि आज पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज आपके घरपर भिक्षा लेने आयेंगे। बाबूजीने अपने घरके चौकेमें भी भिक्षा सम्बन्धी आवश्यक निर्देश दे दिया।

अब मैं बाबूजीके घरकी बात बता रहा हूँ। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजकी सँभालका दायित्व बाबूजीने मुझे सौंप रखा था। हम लोगोंमें सेवाका उत्साह कम नहीं था, पर एक परिस्थितिने मेरे मनको अत्यधिक अस्त-व्यस्त कर दिया। मेरा ऐसा अनुमान था कि पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज मध्याह्नके समय भिक्षा माँगने आयेंगे और इसी अनुमानके आधारपर चौकेमें रसोई बन रही थी। रसोईके बन जानेपर सेव्य श्रीठाकुर विग्रहोंको भोग पधराया जाता, फिर पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजको भिक्षा दी जाती और इसके बाद घरके लोग प्रसाद पाते। मेरे अनुमानने मुझे धोखा दे दिया। पूर्वाह्नकालमें ही पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज भिक्षा माँगनेके लिये अपने विश्रामकक्षसे चल पड़े। मैं सर्वथा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया कि क्या करूँ ? रसोई अभी तैयार नहीं है और द्वारसे पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज खाली हाथ जायें, यह तो सर्वथा अनुचित होगा। उस समय मेरे मनपर जो बीत रही थी, वह तो बस मैं ही जानता हूँ। कोई भी समाधान उभर कर मेरे सामने नहीं आ रहा था। कुछ मिनटोंमें ही इस उलझनने मेरे मनमें विकट रूप धारण कर लिया। जब कोई उपाय नहीं सूझा तो मैं दौड़कर बाबूजीके पास गया और परिस्थितिकी उलझन उनके सामने रख दी। बाबूजीने कहा— चौकेमें क्या-क्या बन कर तैयार है ?

मैंने कहा— दाल-भात और एक साग। अन्य साग तथा रोटी बननेवाली हैं।

बाबूजी तुरंत अपने आसनपरसे उठे और ऊपरसे नीचे आये। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज द्वारपर पहुँचें, इसके पहले ही बाबूजी द्वारपर पहुँच गये। साथमें मैं था ही। ज्यों ही पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज द्वारपर आये, बाबूजीने उनको सभक्ति प्रणाम किया और मुझसे कहा— जाओ ! चौकेमेंसे श्रीस्वामीजी महाराजके लिये भात-दाल-साग ले आवो और साथमें कुछ फल भी ले आना।

बाबूजीकी आज्ञानुसार भिक्षा हेतु प्रदेय वस्तु लानेके लिये मैं चौकेकी ओर चल दिया, परन्तु मन-ही-मन मेरी उलझन और बढ़ गयी कि ठाकुरजीको भोग लगा नहीं और चौकेकी रसोईका प्रयोग आरम्भ हो गया। मनमें उथल-पुथल होते हुए भी मैं कुछ बोला नहीं। बाबूजीकी आज्ञाके पालनके रूपमें भात-दाल-साग-फल मैं ले आया और बाबूजीने उन वस्तुओंको भिक्षा-पात्रमें दे दिया।

पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजने भिक्षा पाकर प्रसन्न वाणीमें आशीर्वाद दिया। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज जब दूसरे वैष्णव गृहस्थके द्वारपर चले गये, तब मैंने बाबूजीसे कहा— अभी ठाकुरजीको तो भोग लगा ही नहीं था।

बाबूजीने कहा– मेरा अनुमान ऐसा ही था कि ठाकुरजीको भोग नहीं लगा होगा, पर पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजको भिक्षा न दी जाये, यह भला कैसे हो सकता है ? पहली बात तो यह है कि कोई भी अतिथि भगवानका स्वरूप ही होता है, पर आज तो अतिथियोंमें भी परमश्रेष्ठ अतिथि थे स्वयं पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज, जो अपने महान धर्म-संरक्षक पूज्य श्रीआदिशंकराचार्यजीके प्रतीक एवं प्रतिनिधि स्थानीय हैं। यह हमारे लिये कितने बड़े सौभाग्यकी बात है कि ऐसे महान संन्यासी अपने द्वारपर भिक्षा हेतु पधारें। अब रही ठाकुरजीके भोगकी बात। अपने घरमें पूजाकी जो मर्यादा है, उसका भी पालन अवश्य होना चाहिये। बनी हुई रसोईमेंसे भिक्षा दी जा चुकी है, अतः उसमेंसे भोग लगाया नहीं जा सकता। अतः अब पुनः नये सिरेसे रसोई बनेगी। जब रसोई बन जायेगी, तब उससे ठाकुरजीको भोग लगेगा और उसके बाद घरके लोग भोजन करेंगे।

बाबूजीने बिगड़ी बात सँभाल ली। सारी बात बन गयी। सारी समस्या हल हो गयी। बाबूजीका वह प्रत्युत्पन्नमतित्व बार-बार याद आता है, जिसने विकट परिस्थितिको एकदम सरल कर दिया और जिससे सारी उलझन दूर हो गयी।

[३] दक्षिणी विद्वानोंसे बातचीत

दक्षिण भारतके विद्वानोंकी एक विचार-गोष्ठी हरिद्वारमें आयोजित थी। विचार-गोष्ठीमें भाग लेनेके लिये अनेक दक्षिणी विद्वानोंका आगमन हुआ। यात्राके क्रममें उन विद्वानोंके समुदायको अपने साथ लेकर श्री ए.वी. राजगोपालन् गीतावाटिका आये। श्रीराजगोपालन् दक्षिणके प्रसिद्ध भाषाविद् हैं तथा आगराके केन्द्रीय हिन्दी संस्थानमें प्राध्यापक हैं। उन्हें पूज्य बाबाके दर्शन करवाये गये तथा प्रसाद भी दिया गया। उन्हीं विद्वानोंमेंसे कुछ पीछे रह गये थे। जब दो विद्वानोंने आकर पूज्य बाबाके दर्शनके लिये उत्सुकता व्यक्त की तब पूज्य बाबूजीने कहा– स्वामीजीको बार-बार बाहर लानेमें सुविधा नहीं है। वे प्रायः शरीर-धरातलपर नहीं रहते। उनकी वृत्ति अधिकतर अन्तर्मुखी रहती है।

फिर विद्वानोंने पूज्य बाबाके पूर्व-जीवन, उनकी दिनचर्या, उनकी आध्यात्मिक स्थिति आदिके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न किये और पूज्य बाबूजीने उनका उत्तर बड़ी विनम्रताके साथ दिया। बादमें पूज्य बाबूजीसे उन्होंने पूछा– आप कौन हैं ? यहाँ क्या करते हैं ? पोद्दारजी कहाँ है ? हमें उनके भी दर्शन करने हैं। इसीलिये हम लोगोंका यहाँ आना हुआ है।

पूज्य बाबूजीने कहा– मैं यहीं रहता हुआ 'कल्याण'में काम करता हूँ।

इसपर विद्वानोंने आपसमें कहा– 'कल्याण' आफिसमें कुछ काम करते होंगे।

पूज्य बाबूजी चुप रहे। विद्वानोंको सत्यसे अवगत करानेके लिये मैंने कहा– 'कल्याण'के सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार आप ही हैं।

इतना सुनते ही वे विद्वान लोग बड़े संकुचित हो गये। उन्होंने हाथ जोड़कर पूज्य बाबूजीको प्रणाम किया और बोले– पहले आपके दर्शन कभी नहीं हुए थे, इससे हमलोग पहचान नहीं सके।

पूज्य बाबूजीने भी उनको प्रणाम किया एवं उनको सम्मान दिया। पीछे विद्वानोमेंसे एकने कहा– मैंने आपको दो पत्र दिये थे 'नारायणीयम्' के सम्बन्धमें। आप उसपर 'कल्याण'का

विशेषांक निकालनेकी कृपा करें।

पूज्य बाबूजीने कहा– मैं इसपर अवश्य विचार करूँगा।

इसके बाद वन्दन करके वे विद्वान गीतावाटिकासे चले गये।

[४] साधु-व्यवहार

संतका व्यवहार लोकातीत होता है। उसकी अपनी कोई माँग नहीं होती और वह दूसरोंकी माँगको पूरा करनेके लिये सदा तत्पर रहता है। पूज्य बाबूजी गृहस्थके रूपमें रहते हुए ऐसे ही एक सच्चे संत थे। उनके जीवनकी अनेक घटनाएँ हैं, जहाँ उन्होंने दूसरोंकी उचित-अनुचित सभी प्रकारकी माँगोंका आदर किया है।

अप्रैल, सन् १९६८ की बात है। पूज्य बाबूजी अपने परिवार सहित सत्संगके लिये गीताभवन (स्वर्गाश्रम) जा रहे थे। मैं भी पूज्य बाबूजीके साथ था। लखनऊ स्टेशनपर उनके लिये देहरादून एक्सप्रेसमें हरिद्वारतकके लिये प्रथम श्रेणीकी चार बर्थोंवाली एक केबिन आरक्षित करवायी गयी थी। जब गाड़ी स्टेशनपर पहुँची और मैं डिब्बेमें घुसा, तब मैंने देखा कि एक शिक्षित भद्र पुरुष सपरिवार पूज्य बाबूजीके लिये आरक्षित केबिनमें बैठे हैं। मैंने उन महाशयको केबिन खाली करनेके लिये कहा। पढ़े-लिखे होनेपर भी उन्होंने केबिन खाली करना अस्वीकार कर दिया। उसका हेतु पूछनेपर उन्होंने बताया– मेरे नामसे 'सी' केबिन आरक्षित है और यह 'सी' केबिन है, अतएव मैं यह खाली नहीं करूँगा।

मैंने उनसे प्रार्थना की– लखनऊसे दो डिब्बे हरिद्वारके लिये लगते हैं। आपका 'सी' केबिन दूसरे डिब्बेमें है, इसमें नहीं।

मेरे निवेदनपर वे कुछ भी ध्यान देनेके लिये तैयार नहीं हुए। मैं रेलवे अधिकारियोंको बुलाने जा रहा था कि पूज्य बाबूजी डिब्बेमें प्रविष्ट हुए। जब उन्हें पता चला कि केबिनके लिये विवाद हो रहा है, तब वे पूरी परिस्थिति समझे बिना ही मेरे ऊपर बिगड़ खड़े हुए और कहने लगे– यात्रामें दूसरोंकी सुख-सुविधापर ध्यान नहीं देते और मेरे लिये सुविधा करना चाहते हो! दूसरोंको असुविधा होनेसे मुझे जो कष्ट हृदयमें होगा, उसकी तुम लोगोंको कल्पना नहीं है। जब एक केबिनमें एक महाशय सपरिवार बैठे हैं, तब तुमलोगोंको उसमें क्यों प्रवेश करना चाहिये?

मैंने स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा– हम लोगोंके नामसे यह केबिन आरक्षित है। इन महाशयके लिये इसी प्रकारकी दूसरी केबिन दूसरे डिब्बेमें है। हम इनसे यही प्रार्थना कर रहे हैं कि आप भूलसे दूसरे डिब्बेके 'सी' केबिनमें आ गये हैं। लाइये, आपका सामान अपने कुलियों द्वारा उस डिब्बेके 'सी' केबिनमें भेज दें। मैं इनके साथ तनिक भी अभद्र व्यवहार या ज्यादती नहीं कर रहा हूँ।

पूज्य बाबूजी पूरी स्थितिको समझ गये, किन्तु उनका संत हृदय इस बातको स्वीकार नहीं कर सका कि जबतक वे सज्जन अपनी भूल समझकर स्वयं ही जानेके लिये तैयार न हों, तबतक हमलोग उस केबिनमें घुसें और उन्हें वहाँसे हटनेकी प्रार्थना करें। पूज्य बाबूजी स्वयं केबिनके बाहर गैलरीमें खड़े हो गये। संयोगसे कानपुरकी एक बहिन भी उसी गाड़ीसे हरिद्वार जा रही थी। उनके नामसे 'बी' केबिन आरक्षित था। जब उसने देखा कि पूज्य बाबूजी, पूज्य बाबा, पूज्या माँजी आदि गैलरीमें खड़े हैं, तब उसने प्रार्थना की– आपलोग मेरी केबिनमें

आकर बैठ जायँ।

पूज्य बाबूजीने पहले तो इसे स्वीकार नहीं किया, पर जब सबने आग्रह किया, तब वे उस बहिनकी केबिनमें पूज्य बाबा, पूज्या माँजी आदिके साथ जाकर बैठ गये, परंतु पूज्य बाबूजीका सब सामान गैलरीमें पड़ा रहा। मुझे इस बातसे बड़ा कष्ट हो रहा था कि मेरा बहुत समय इस विवादमें चला गया। परिणाम यह हुआ कि हमारे परिवारकी एक बहिन, साथका एक नौकर तथा बहुत-सा सामान प्लेटफार्मपर रह गया और सीटी देकर गाड़ी चल पड़ी। परिवारकी बहिनके प्लेटफार्मपर रह जानेकी बात जब पूज्य बाबूजीको बतलायी गयी, तब उन्हें भी बड़ा कष्ट हुआ, किन्तु वे इस बातसे निश्चिन्त थे कि लखनऊसे अनेकों श्रद्धालुजन, जो उन्हें विदा करनेके लिये आये थे, वे उस बहिनको सँभाल लेंगे तथा उसे सुरक्षित रूपसे किसी दूसरी गाड़ीसे हरिद्वार भेज देंगे।

गाड़ी छूटनेपर मैंने पूज्य बाबूजीको 'सी' केबिनवाले महानुभावकी नासमझी तथा हठधर्मीके विषयमें समझानेकी चेष्टा की, पर पूज्य बाबूजी इस बातको स्वीकार ही नहीं कर पाये कि उन महाशयके साथ तनिक भी जबर्दस्ती करनी चाहिये। पूज्य बाबूजी बहुत देरतक मुझे समझाते रहे— *जहाँ विवाद हो, वहाँ अपनी माँगका त्याग कर देना चाहिये। सुख-सुविधाका मनसे सम्बन्ध है। हम लोग जैसे-तैसे बैठकर चले जायेंगे। तुमने उन महाशयसे बार-बार कहा-सुना है, तुम इसके लिये जाकर उनसे माफी माँगो। चलो, मैं उनसे माफी माँगता हूँ।*

इतना कहकर पूज्य बाबूजी उठ खड़े हुए उन महाशयके पास जानेके लिये, पर मैंने अनुनय-विनय करते हुए स्पष्ट किया— उन महाशयके साथ मैंने तनिक भी अभद्र व्यवहार नहीं किया है। वे बड़े मजेमें अपने केबिनको बन्द करके बैठे हुए हैं।

इसी बीच हरदोई स्टेशन आ गया। कंडक्टर महोदयने उन महाशयके टिकटोंकी जाँच की और उन्हें बतलाया— आपका आरक्षण दूसरे डिब्बेमें है, इसमें नहीं।

अब उनको बाध्य होकर दूसरे डिब्बेमें जाना पड़ा। पूज्य बाबूजीने मुझसे कहा— उनका सब सामान कुलियोंद्वारा उस डिब्बेमें भिजवा दो और कुलियोंका पैसा अपने पाससे दे दो तथा उनसे क्षमा माँग लो कि आपको डिब्बा-परिवर्तन करनेका कष्ट उठाना पड़ रहा है।

मैंने वही किया। इतना ही नहीं, जब वे सज्जन डिब्बेसे उतरने लगे, तब स्वयं पूज्य बाबूजीने उनसे कहा— आपको असुविधा हुई, क्षमा कीजियेगा।

भूल करनेवालेसे क्षमा माँगना पूज्य बाबूजीका ही काम था। पूज्य बाबूजीके इस साधु-व्यवहारको देखकर साथवाले मुग्ध हो गये।

[५] श्रीमुरलीधरजी कानोड़िया

कानपुरके श्रीमुरलीधरजी कानोड़िया विदेश-यात्रासे लौटकर गोरखपुर आये पूज्य बाबूजी एवं पूज्य राधा बाबाका दर्शन करनेके लिये। गीतावाटिकामें जिस दिन श्रीमुरलीधरजी पहुँचे, उस दिन पूज्य बाबासे बातचीत करनेका उनको अवसर मिला। बातचीतके बीचमें पूज्य बाबाने बात करते-करते उनसे कहा— *मेरी आवश्यकता आपको पड़ेगी तब, जब आपके जीवनके अन्तिम क्षण पास होंगे। उस समय मेरे सहयोगका स्वरूप क्या होगा, यह तो वह अन्तिम क्षण*

ही आपको समझा पायेगा।

भावी विचित्र होती है। संयोगकी बात, इस बातचीतके अगले दिन ही श्रीमुरलीधरजी गिर पड़े उस विल्व-वृक्षके पास, जहाँ प्रति सोमवारको भगवान शिवका सविधि देवार्चन हुआ करता है। उनके सर्वांगको लकवा मार गया था। श्रीमुरलीधरजीको उठाकर लाया गया नयी कोठीमें, जो गीतावाटिकाके सामने स्थित है। नयी कोठीके हॉलवाले बड़े कमरेमें उनको रखा गया। उनकी चिकित्साकी भरपूर व्यवस्था की गयी, इसके बाद भी उनकी स्थिति प्रतिक्षण बिगड़ती ही चली गयी। शारीरिक कष्ट तो अपनी सीमापर था ही, इसके अतिरिक्त चिन्ताकी अधिकतासे उनका मन अत्यधिक चञ्चल हो रहा था। न जाने कितने विषयोंमें, स्थानोंमें, व्यक्तियोंमें, वस्तुओंमें, कृत्योंमें, समस्याओंमें, मुकदमोंमें उनका मन बँटा और बिखरा हुआ था और इसके फलस्वरूप मन अत्यधिक अशान्त था। सर्वांगको लकवा होनेसे वे कुछ बोल तो पाते नहीं थे, उनके बेचैन और विकल मनको देख रहे थे और समझ रहे थे पूज्य बाबूजी, जिन्होंने अपनी 'भीतरी आँखों' से उनकी दर्दभरी, दुःखभरी दशाको जान लिया था।

उन दिनों पूज्य बाबाके पास एक अमेरिकन महिला रहती थीं। उन्होंने संन्यास ले लिया था और उनका नाम था स्वामी सत्यप्रेमानन्दाजी। उन्होंने देखा कि जिस कमरेमें श्रीमुरलीधरजीको रखा गया था, उस कमरेके आकाशमें आसुरी शक्तियाँ (Evil Spirits)खड़ी थीं और उस अवसरकी प्रतीक्षा कर रही थी जब कि संत्रस्त करके तथा नोच-नोच करके उनको भीषण यातना पहुँचायी जाय। भयानक आकृतियों वाली अनेक आसुरी शक्तियोंको देखकर स्वामी सत्यप्रेमानन्दाजी भी काँप उठी। जब उन्होंने इन सबका विवरण पूज्य बाबाको सुनाया तो पूज्य बाबाको थोड़ा विस्मय हुआ कि क्या स्वामी सत्यप्रेमानन्दाजीका भी उस दैवी राज्यमें इतना प्रवेश है, जो वे मानवातीत स्तरकी चीजें कुछ हदतक देख ले सकती हैं। पूज्य बाबाने उनसे कहा— *जीवनमें किये गये अशुभ कर्म अन्तमें बड़ा कष्ट पहुँचाते हैं। भीषण कष्टके रूपमें मिलने वाला कुपरिणाम मानवके ध्यानमें यदि रहे तो वह अशुभ कर्ममें प्रवृत्त ही क्यों हो? प्रभुकी माया बड़ी प्रबल है। धन-पद-यौवन-प्रतिष्ठा आदिका मद मानवको अन्धा बना देता है और उसके कुपरिणामकी ओर उसकी दृष्टि जाती ही नहीं। आकाशमें स्थित जिन आसुरी शक्तियोंको आप देख रही हैं, वह पूर्णतः सत्य है। इस सत्यको आपने कह दिया और मैंने देखकर भी कहा नहीं था। इस जीवनमें जो कुछ अशुभ कर्म हुआ है, उसीका यह अनचाहा, पर अनिवार्य भीषण फल है। यहाँ आकाशमें आसुरी शक्तियाँ उपस्थित अवश्य हैं, पर उसीके साथ एक तथ्य यह भी है कि श्रीपोद्दार महाराजकी यहाँ उपस्थितिके कारण वे आसुरी शक्तियाँ कुछ भी कर सकनेमें स्वयंको असमर्थ अनुभव कर रही हैं। इस समय ये श्रीपोद्दार महाराजके अतिथि हैं, उनके आश्रित हैं, अतः उनके आध्यात्मिक तेजके कारण वे आसुरी शक्तियाँ आगे बढ़नेका साहस नहीं कर पा रही हैं।*

तीसरे दिन श्रीमुरलीधरजीकी स्थिति बहुत गम्भीर हो गयी। वे अर्ध-चेतनावस्थामें खाटपर पड़े हुए थे। उस समय पूज्य बाबूजी और पूज्य बाबा वहीं उपस्थित थे। पूज्य बाबाने पूज्य बाबूजीसे कहा— मैं शौच-स्नानसे निवृत्त होनेके लिये बगीचे जा रहा हूँ।

पूज्य बाबूजीने कहा— ये मरणासन्न स्थितिमें हैं और आप अब जानेकी बात कह रहे हैं। इस

समय आपकी उपस्थिति और सहयोगकी आवश्यकता है। आपके शौच-स्नानादिकी व्यवस्था मैं यहीं कोठीमें करवा देता हूँ।

पूज्य बाबा नयी कोठीमें ठहर गये। तुरन्त एक शौचालय भली प्रकार साफ किया गया। स्नानके लिये वहीं कूप जल आया। शौच-स्नानसे निवृत्त होकर पूज्य बाबा श्रीमुरलीधरजीके पास आये। पूज्य बाबूजी तो वहीं बैठे हुए थे ही। आकर पूज्य बाबाने श्रीमुरलीधरजीकी कलाईकी नाड़ी देखी। नाड़ीकी गतिमें बड़ी गड़बड़ी थी। उन्होंने जान लिया कि अब मृत्यु नितान्त निकट है। पूज्य बाबा श्रीमुरलीधरजीकी नाड़ीपर अपनी अँगुलियाँ रखे रहे और मानसिक स्तरपर प्रबल संकल्पके द्वारा अपनी 'प्राण शक्ति'का उनकी 'प्राण शक्ति'से सम्बन्ध स्थापित किया। सम्बन्ध स्थापित होते ही बेहोश श्रीमुरलीधरजीने अपने नेत्र खोले और चारों ओर देखने लगे। ज्यों ही उन्होंने पूज्य बाबा एवं पूज्य बाबूजीकी ओर देखा, उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। उनके निधन होनेके बाद सभी उपस्थित लोगोंसे पूज्य बाबूजीने कहा— *श्रीमुरलीधरजीका मन अत्यधिक बिखरा हुआ था। जागतिक समस्याओंमें फँसा हुआ मन चिन्ताग्निके तापसे बड़ा संतप्त था। उनकी व्यथाको बहुत बढ़ा दिया वर्तमान लकवा रोगने। दो दिन तक उनका मन बड़ा चञ्चल रहा। उनके प्रस्थानका समय समीप जानकर मैंने अपनी संकल्पशक्तिसे उनके मनको एकाग्र किया। यह सन्तोषकी बात है कि मनकी शान्तिपूर्ण स्थितिमें उनका निधन हुआ।*

पूज्य बाबूजीके इन उद्गारोंको सुनकर सभी उपस्थित लोग श्रीमुरलीधरजीके भाग्यकी सराहना कर रहे थे। निधनके समय जिनका हाथ संतके हाथमें है और जिनके मंगलके लिये दो-दो संतोंकी संकल्पशक्ति सक्रिय है, उनके आत्यन्तिक हितके सम्बन्धमें संदेहके लिये स्थान ही नहीं रहा।

[६] पापसे कैसे बचें?

प्रसिद्ध रामभक्त एवं मानस मर्मज्ञ श्रीकपीन्द्रजीके साथ पूज्य बाबूजीका दीर्घकालीन आत्मीयता पूर्ण सम्बन्ध था। दोनों महापुरुषोंका जब मिलन होता था, तब एक दूसरेका एक दूसरेको नमन करना, आदर देना तथा अत्यन्त स्नेहसे गले लगाना देखते ही बनता था। जब श्रीनन्दाजी रेलवे मंत्री थे, तब उन्होंने रेलवेमें हो रही भीषण चोरीको रोकनेके लिये एक कमेटी बनायी और श्रीकपीन्द्रजीको उन्होंने इस कमेटीका उप-प्रधान बनाया।

सन् १९७० के नवम्बर मासके द्वितीय सप्ताहकी बात है। श्रीकपीन्द्रजी महाराज इस अभियानके सिलसिलेमें वाराणसी आये थे। पूज्य बाबूजी उन दिनों ज्यादा बीमार थे, अतएव वे पूज्य बाबूजीसे मिलनेके उद्देश्यसे गोरखपुर भी पधारे। श्रीकपीन्द्रजीने सामान आदि स्टेशनपर रखा और पूज्य बाबूजीसे मिलने अचानक गीतावाटिका आ पहुँचे। पूज्य बाबूजीने चारपाईसे उतरकर बड़े ही आदर एवं स्नेहसे उनका स्वागत किया और नीचे फर्शपर बिछे हुए कम्बलपर ही उनके साथ बैठ गये। कुशल मंगल आदि पूछ लेनेपर श्रीकपीन्द्रजीने बतलाया— आज ही एक डीजल इंजनका उद्घाटन करने मुगलसराय जा रहा हूँ। वहाँके मालगोदाममें भीषण रूपसे चोरी होती है। उसका भी निरीक्षण करना है। वहाँ चोरीके प्रति लोगोंको सतर्क-सावधान करनेके लिये एक मीटिंगमें भाषण भी देना होगा। भाईजी ! अब मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि यह

चोरी कैसे रुके ? इसके लिये मीटिंगमें क्या उपाय बतलाया जाय ?

पूज्य बाबूजीने कहा— *जब मनुष्यको एकान्तमें पापसे घृणा होती है, तब वह पापसे बच सकता है। अर्जुनके पास रात्रिके एकान्तमें उर्वशी पहुँचती है और प्रणयकी भिक्षा माँगती है, पर उस अवस्थामें भी अर्जुनका मन विचलित नहीं होता, अपितु वे उर्वशीको माँ कहकर उसका आदर करते हैं। उर्वशी स्पष्ट शब्दोंमें प्रणयकी भीख माँगती है, पर अर्जुन सर्वथा अविचलित रहते हैं अपने धर्मपर। उर्वशीको इसमें अपना अपमान अनुभव होता है। वह क्रुद्ध होकर अर्जुनको शाप देती है, पर इसपर भी अर्जुन अडिग रहते हैं। इसी प्रकार जब एकान्तमें मनुष्यको पापसे घृणा होगी, उससे वह बचना चाहेगा, तभी चोरी रुक सकेगी। कानूनके भयसे चोरी नहीं रुक सकती। कानूनसे बचनेके नये-नये तरीके निकाल लिये जाते हैं और मनुष्य खूब चोरी करता है। आज यही हो रहा है, इसीसे सब ओर चोरीका बोलबाला है।*

श्रीकपीन्द्रजी पूज्य बाबूजीकी यह बात बड़े मनोयोगसे सुन रहे थे। उन्हें लग रहा था कि पूज्य बाबूजी अपने जीवन भरका अनुभव इन शब्दोंमें उनके सम्मुख रख रहे हैं। उन्होंने कहा— *भाईजी ! आपने पापके मूलको पहचाना है। मूलको सुधारनेसे ही पाप रुक सकता है, अन्यथा पापको रोकनेकी बातें होती रहेंगी और पाप भी बराबर होते रहेंगे।*

[७] श्रीगुरुजी एवं श्रीबाबूजी

मेरा अनुमान है कि परम पूज्य श्रीगुरुजी (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके द्वितीय सर-संघचालक पूज्य श्रीमाधवराव सदाशिवजी गोलवलकर) का शुभागमन वर्ष या दो वर्षकी अवधिमें एक बार गोरखपुर अवश्य ही होता रहा है। जब-जब श्रीगुरुजीका गोरखपुर शुभागमन हुआ है, तब-तब उनकी भेंट पूज्य श्रीबाबूजी ('कल्याण' मासिक पत्रिकाके सम्पादक पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) से होती ही थी। कभी पूज्य बाबूजी श्रीगुरुजीके दर्शन हेतु आदरणीय श्रीबालाबाबूके घर जाते थे और कभी श्रीगुरुजी पूज्य बाबूजीसे मिलनेके लिये गीतावाटिका पधारते थे। गीतावाटिकामें पूज्य बाबूजीसे श्रीगुरुजीकी बात प्रायः एकान्तमें ही होती थी। कमरेके अन्दर ये महज्जन रहते थे और मैं कमरेके बाहर खड़ा रहता था। खड़े रहनेका उद्देश्य यह था कि उस पारस्परिक वार्तालापमें किसी प्रकारकी कोई बाधा उपस्थित न हो। बातचीतका यह क्रम कभी-कभी तो बहुत देरतक भी चला करता था।

श्रीगुरुजीसे बातचीत हो चुकने के बाद जब हमलोग पूज्य बाबूजीके पास बैठते थे तो वे श्रीगुरुजीकी सराहना करते हुए थकते नहीं थे। उनकी आन्तरिक मान्यता थी कि श्रीगुरुजी एक महान आध्यात्मिक विभूति हैं एवं उनके संतत्वसे हिन्दू समाज गौरवान्वित हुआ है। पूज्य बाबूजीके कथनानुसार श्रीगुरुजी मुख्यतः अध्यात्म-चर्चा ही किया करते थे। पूज्य बाबूजीके मुख मण्डलकी असीम प्रसन्नता ही संकेत करती थी कि वह चर्चा अवश्य ही गहरे स्तरकी रही होगी। ईश्वरकी सत्ता और भक्तिकी महत्ता, भारतीय धर्माचार्योंके जीवनकी उच्चता, उनके धर्म-कार्योंकी श्रेष्ठता, सभी उपासना-प्रणालियोंकी भिन्नतामें परिव्याप्त एकात्मता, धर्म-ग्रन्थोंके प्रकाशन एवं प्रचारकी आवश्यकता, मन्दिरोंके नव-निर्माण एवं जीर्णोद्धारकी उपयोगिता, गोवंशकी सुरक्षाकी अनिवार्यता आदि-आदि विषयोंपर तो विस्तारसे बात होती ही थी, कभी-कभी चिन्ता भी व्यक्त हो उठती थी समाजकी वर्तमान परिस्थितिको

देखकर। विभिन्न मतोंका अनुसरण करने वाले सतों-महन्तोंमें हानिकारक वृथा गर्वबोध, विद्यालयोंमें धर्म-शिक्षाकी उपेक्षा, लोगोंके मध्य और विशेषतः नेतृत्व वर्गके मध्य आध्यात्मिक-भौगोलिक-ऐतिहासिक-सामाजिक-सांस्कृतिक एकत्वकी विस्मृति, धर्म-निरपेक्षताकी भ्रान्त धारणा एवं सदोष व्याख्या, प्रशासनकी धर्मके प्रति अवहेलनापूर्ण नीतियाँ, सर्व-धर्म-समादरके नामपर राजकीय आत्म-विघातक निर्णय, शान्ति-सहिष्णुता- समन्वयके सिद्धान्तपर ऐतिहासिक घटनाओंका विकृत प्रस्तुतीकरण, प्रचलित पत्र-पत्रिका-पुस्तकोंद्वारा जन-मानसपर क्षुद्र संस्कार आदि ये चिन्तापूर्ण तथ्य भी उनके विचार-विनिमयके कभी-कभी विषय बन जाया करते थे।

श्रीगुरुजीके लेख प्रायः 'कल्याण' पत्रिकामें प्रकाशित होते रहे हैं। जब-जब किसी विशिष्ट विषयपर 'कल्याण'का विशेषांक जनवरीमें प्रकाशित होता था, पूज्य बाबूजी श्रीगुरुजीसे लेख भेजनेके लिये अनुरोध किया करते थे और श्रीगुरुजीने उस अनुरोधको अपनी अस्वस्थता एवं व्यस्तताके बाद भी सदैव पूर्ण आदर प्रदान किया। इन दोनों विभूतियोंका आत्मीयता-भाव इतना घनिष्ठ था कि पूज्य बाबूजीद्वारा निवेदन किये जाने मात्रसे ही श्रीगुरुजीने गोरक्षा हेतु प्रकल्पित महाभियानकी सर्वोच्च्य नियन्त्रणकारिणी समितिकी सदस्यता स्वीकार कर ली और उन्होंने इस गोरक्षा आन्दोलनमें सोत्साह सक्रिय भाग लिया। गोरक्षा आन्दोलनका रूप जैसा विशाल और व्यापक था, उसका अधिकांश श्रेय श्रीगुरुजीको और उनके स्वयंसेवकोंको है। श्रीगुरुजीके सुझावपर पूज्य बाबूजीने गीताप्रेससे कई ऐसी छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित की थीं, जो हिन्दू धर्म एवं समाजके लिये बड़ी उपयोगी थीं।

पूज्य बाबूजीके महाप्रस्थानके उपरान्त जब श्रीगुरुजी ४ जनवरी १९७२ को गोरखपुर आये तो उन्होंने कहा था— *'कल्याण' एवं गीताप्रेसके माध्यमसे श्रीपोद्दारजीने हिन्दू धर्म एवं हिन्दू समाजकी जो सेवा की है, वह अद्भुत है। 'कल्याण' एवं गीताप्रेस श्रीपोद्दारजीके कीर्तिस्तम्भ हैं। इस कार्यमें किसी प्रकारकी शिथिलता नहीं आनी चाहिये। 'कल्याण' एवं गीताप्रेसकी उन्नतिमें समाजका हित संनिहित है एवं श्रीपोद्दारजीके यशका उत्कर्ष है। यह प्रतिष्ठान निर्बल न होने पाये, ऐसी सावधानी रखनी चाहिये।*

मैं तो ऐसा मानता हूँ कि यदि श्रीगुरुजी कर्म-योगके पथका अनुसरण कर रहे थे तो पूज्य बाबूजी भक्ति-योगके पथका। पथकी भिन्नता होते हुए भी दोनोंके उद्देश्यमें एकता थी। दोनों ही अपनी-अपनी रीतिसे हिन्दू धर्म एवं मानव समाजके हितके लिये कार्य कर रहे थे। उद्देश्यकी एकताके कारण ही इन दोनों विभूतियोंके पारस्परिक सम्बन्ध अति प्रगाढ़ थे।

[८] वे गुप्त अनुष्ठान

इस बातको प्रायः लोग जान गये हैं कि पूज्य बाबूजी (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के द्वारा गुप्त सहायता बहुत अधिक रूपमें दी जाया करती थी। दी जाने वाली सहायता इतनी अधिक गुप्त हुआ करती थी कि डा. श्रीभुवनेश्वर नाथजी 'माधव'के कथनानुसार बायें हाथ तकको पता नहीं रहता था कि दाहिना हाथ किस-किसको क्या-क्या दे रहा है। इस गुप्त सहायतासे न जाने कितने अगणित लोगोंको अपने-अपने दुःख-दर्दसे विमुक्ति मिली है। गुप्त रूपसे सहायता देनेकी जो प्रवृत्ति पूज्य बाबूजीकी थी, उसकी जानकारी अब लोगोंको कुछ-कुछ

होने लग गयी है। जिनको सहायता मिली, उनका कृतज्ञ हृदय कबतक छिपाये रखता? भावभरे हृदयने रहस्यको व्यक्त करना आरम्भ कर दिया।

गुप्त सहायताकी गोपनीयता, अब एक गोपनीय तथ्य नहीं रह गया है, परंतु गुप्त सहायतासे भी बढ़कर कुछ ऐसे भी गोपनीय कार्य हैं, जिनकी भनक शायद ही किसीको हो। इन गोपनीय कार्योंका रहस्योद्घाटन कभी सम्भव है ही नहीं। उनकी ओर केवल कुछ संकेत मात्र किया जा सकता है।

इन गोपनीय कार्योंके स्वरूपको समझनेके लिये एक उदाहरण लें। एक तीर्थ-स्थानका कोई अति विख्यात सन्त अथवा महन्त है। समाजके लोग उन्हें बहुत सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं और अनेक लोग उनमें अत्यधिक श्रद्धा रखते हैं। ऐसे श्रद्धेय महज्जनसे यदि कोई च्युति हो जाये, तब तो लोगोंकी धर्मपरसे आस्था ही डिग जायेगी। फिर कौन भगवानकी भक्ति करेगा, कौन देवी-देवताओंको मानेगा, कौन तीर्थो-मन्दिरोंमें जायेगा, कौन संतोंको सम्मान देगा, कौन साधुओंकी सेवा करेगा?

यह च्युति कई प्रकारकी और कई स्तरकी स्थूल और सूक्ष्म रूपसे हो सकती है। यदि कभी पूज्य बाबूजीके ध्यानमें यह बात आ जाती थी कि किसी महान श्रद्धेयके जीवनमें किसी च्युतिकी आशंका है तो पूज्य बाबूजी तुरन्त गुप्त अनुष्ठान बैठा दिया करते थे, जिससे उनके जीवनमें पथ-च्युतिका प्रसंग घटित ही नहीं हो। इतना ही क्यों, स्वयं पूज्य बाबूजी उनके मंगल भविष्यके लिये भगवानसे चुपचाप प्रार्थना किया करते थे। जिनके हितके लिये इन गुप्त अनुष्ठानों और मूक प्रार्थनाओंका क्रम चलता था, उन महज्जनोंको भी इन सबकी जानकारी नहीं हुआ करती थी। इस प्रकारकी न जाने कितनी गुप्त अर्चनाएँ पूज्य बाबूजीके द्वारा सम्पन्न हुई हैं और इन अत्यन्त गुप्त ईश्वराराधनका सुन्दर लाभ उन-उन महज्जनोंको प्राप्त भी होता था।

जिन-जिन महज्जनोंके लिये यह सब कार्य गोपनीय रूपसे हुआ, उनमेंसे कुछका तो पूज्य बाबूजीके साथ बड़ा निकट सम्पर्क होता था और किन्हीं-किन्हींसे साधारण परिचय मात्र। जिन महज्जनोंसे बड़ी घनिष्ठता होती थी, उनमेंसे कोई-कोई कभी-कभी एकान्तमें पूज्य बाबूजीको प्यारमें भरकर बताया भी करते थे कि किस प्रकार च्युतिसे उनका बचाव हो गया। उसे सुनकर पूज्य बाबूजी एक मधुर मुस्कान बिखेर दिया करते थे और उन महज्जनोंके भगवद्विश्वासको परिपुष्ट करनेके लिये पूज्य बाबूजी यही कहा करते थे— आपपर भगवानकी बड़ी कृपा है, जिसने आपके जीवनको पंकिल होनेसे बचा लिया।

पूज्य बाबूजीने कभी भी, अपवादस्वरूप भी यह तथ्य प्रकट होने नहीं दिया कि उनकी सुरक्षाके लिये कोई आराधना मेरे द्वारा सम्पन्न हुई है। इस प्रकारके गुप्त अनुष्ठान करवानेकी प्रवृत्ति जिनके जीवनमें सर्वदा रही और ऐसे गुप्त अनुष्ठानोंके सम्पन्न हो जानेके बाद उनकी अभिव्यक्ति जिनके द्वारा कभी नहीं हुई, उन लोकोत्तर-चरित्र-मूर्ति पूज्य बाबूजीके व्यक्तित्वकी महान अद्भुतताके बारेमें मैं जब-जब सोचता हूँ, तब-तब मैं हर बार यही पाता हूँ कि मेरे महाश्चर्यके पंख थकित हो जाते हैं और उस महाकाशका अनन्त विस्तार मेरे लिये अन-मापा, अन-समझा, अन-जाना ही रह जाता है।

[९] सेवाका आदर्श

देशके प्रायः सभी भागोंसे पूज्य बाबूजीके पास प्रतिदिन अनेकों पत्र ऐसे व्यक्तियोंके आते थे, जो अपने या अपने परिवारकी चिकित्साके लिये, परीक्षाकी फीस देने या पुस्तकें खरीदनेके लिये, बच्चोंके अन्न-वस्त्रकी व्यवस्था करनेके लिये, कन्याके विवाहके लिये, अपनी गायोंके लिये अन्न-घासकी व्यवस्था करने आदि कार्योंके लिये उनसे आर्थिक सहयोगकी प्रार्थना करते थे। उन पत्रोंको पूज्य बाबूजी स्वयं पढ़ते और यथासमय सहायता भिजवानेका प्रयत्न करते थे, किसीको मनीआर्डर द्वारा, किसीको बीमाद्वारा। प्रतिदिन अनेकों व्यक्ति उनके यहाँ पधारकर अपनी माँग रखते थे और उनमेंसे एक भी खाली हाथ नहीं लौटता था। पूज्य बाबूजी सभीकी कुछ-न-कुछ सेवा करके ही विदा करते थे।

यह उदारतापूर्ण सेवावृत्ति पूज्य बाबूजीमें जीवनके आरम्भसे ही थी। जब वे व्यवसाय करते थे, तब भी उनका स्वभाव इसी प्रकार उदार एवं सेवामय था। 'कल्याण' एवं गीताप्रेसकी सेवाओंमें लगनेके पश्चात् तो उनके शरीरका एक-एक कण और जीवनका एक-एक श्वास विश्वरूप प्रभुकी सेवामें नियोजित रहा। 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके प्रकाशनोंद्वारा वे ज्ञानका तो मुक्तहस्तसे वितरण करते ही थे, साथ ही वे भौतिक पदार्थों-साधनोंद्वारा 'आर्त-नारायण' की सेवा करनेमें निरन्तर संलग्न रहते थे। अन्तिम बीमारीमें भी जबतक उनमें कुछ शक्ति रही, वे अपने नाम आये अभावग्रस्त व्यक्तियोंके पत्र स्वयं पढ़ते-सुनते रहे और अपने स्वजनोंके द्वारा उन्हें सहायता भिजवाते रहे। यह क्रम १३ मार्च १९७१ तक चलता रहा। लगता है, उस दिन पूज्य बाबूजीको यह अनुभव हो गया था कि अब उनका शरीर भगवानके विधानानुसार रहनेका नहीं है और अब उनमें बोलने, ठीकसे संकेत करनेकी भी क्षमता अवशेष नहीं रह गयी थी। अतएव उस रात्रिमें उन्होंने अपने सेवाके हिसाबकी कापियाँ नष्ट करवा दी एवं जो धन-राशि अवशेष थी, उसकी वितरण सूची लिखवा दी। इसके पश्चात् उन्होंने बड़े विनम्र शब्दोंमें अपने परिवार एवं स्वजनोंको सेवा-भावनाओंको अक्षुण्ण रूपमें अपनाये रखनेके लिये प्रेरित करते हुए अपने सेवा-आदर्शका स्वरूप संक्षेपमें बताया—

गोरखपुर आने के पश्चात् (सन् १९२७ से) अर्थकी दृष्टिसे मैं निःस्व रहा हूँ। न मेरे पास अपना एक पैसा है, न कहीं कुछ जमा है, न मैंने कुछ कमाया है। गीताप्रेस, 'कल्याण' या अन्य किसी भी संस्थासे मेरा आर्थिक सम्बन्ध नहीं रहा है। न मैंने भेंट-पूजा-उपहारके रूपमें किसीसे भी एक पैसा कभी लिया है। अवश्य ही मेरे द्वारा विभिन्न संस्थाओंकी, भूकम्प-बाढ़-अकाल-अग्निदाह आदि दैवीप्रकोपोंसे पीड़ित प्राणियोंकी एवं विधवा बहिनोंकी सहायतामें प्रचुर अर्थ व्यय हुआ है (कई करोड़ रुपये अबतक व्यय हो चुके होंगे) पर वस्तुतः उसमें मेरा कुछ भी नहीं है। यह सब हुआ है उन लोगोंके भाग्यसे और दाताओंके भगवत्प्रेरित या स्वेच्छाप्रेरित दानसे। इसके लिये भी किसीपर दबाव डालनेकी बात ही नहीं। मैंने न तो किसीसे माँगा हैं, न अपील की है, वरं परिस्थितिवश कभी-कभी दानकी रकम पूरी-की-पूरी या अधूरी वापिस कर दी है। जब 'भारतीय चतुर्धाम-वेद-भवन-न्यास' का निर्माण हुआ और उसके लिये दानहेतु अपील प्रकाशित हुई, तब उसमें सब ट्रस्टियोंके साथ मेरा नाम था। मैंने अपना नाम भी निकलवा दिया, तब उन पत्रोंको भिजवाया। मैंने कभी अर्थके लिये की जानेवाली अपीलमें

अपना नाम नहीं दिया है। इस प्रकारकी सहायताके लिये जो पैसे आते थे, उनका मैंने एक-एक पैसेका हिसाब रखा है किसकी सेवामें वे पैसे लगे, वह भी बराबर लिखता रहा हूँ। तीन वर्षतक उस हिसाबको रखता था। तीन वर्षके पश्चात् उस हिसाबको नष्ट कर डालता था। कहाँसे पैसा आया, किस-किसको दिया गया, इसको मैंने यथासम्भव किसीपर प्रकट नहीं होने दिया। मनीआर्डर-बीमा जिन स्वजनोंके मार्फत करवाता था, उन्हें भी यथासम्भव नाम ज्ञात नहीं होने देता था। कारण, मैंने जिसको जो कुछ दिया है, वह भगवद्भावसे दिया है। वह मेरी अर्चाका एक स्वरूप रहा है। जिस कार्यके लिये जितने पैसे प्राप्त होते थे, उस कार्यमें उतने पैसे अवश्य लगा देता था। चेष्टा तो यह रखता था कि उसमें कुछ अपने पाससे भी सम्मिलित कर दूँ। मेरे पासका अर्थ है— मेरे ऐसे साथी, ऐसे स्वजन, जिनका मुझसे कोई अलगाव न रहा हो।

[१०] समझानेकी स्नेहसनी रीति

प्रिय चन्द्रकान्त पूज्य बाबूजीका दौहित्र है। उसने नयी मोटरकार खरीदी। उसकी चाह थी कि उस कारमें सबसे पहले नानाजी बैठें। प्रिय चन्द्रकान्तने अपने नानाजीसे अनुरोध किया— मैंने नयी कार ली है। आपको ही मैं सबसे पहले बैठाना चाहता हूँ, जिससे आपके आशीर्वादसे शुभ-ही-शुभ हो।

पूज्य बाबूजीने उससे कहा— मैं अब वृद्ध हो चला हूँ और जैसे मैं धीमे-धीमे चलता हूँ, वैसे ही मेरा आशीर्वाद भी अब धीमे-धीमे चलेगा। यदि तुम्हारे कारकी चाल मेरे आशीर्वाद की चालके अनुसार रहेगी, तब तो मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा और यदि तुमने जल्दबाजी में कारकी रफ्तार तेज कर दी और आशीर्वादको पीछे छोड़ दिया तो वह आशीर्वाद भला क्या कर पायेगा?

कितने विनोदके स्वरमें प्यार भरी रीतिसे पूज्य बाबूजीने अपने दौहित्र चन्द्रकान्तको समझा दिया कि कारको तेज रफ्तारसे चलानेमें खतरा ही है।

[११] अन्न-संकटका निवारण

भगवन्नाम-वितरक श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जन्मभूमि होनेके कारण नवद्वीपका विशेष महत्त्व है। नवद्वीपके भजनाश्रममें अनके महिलाएँ भगवन्नामका कीर्तन करती हैं। भगवन्नाम-परायणा इन बंगीय माताओंको एक बार खाद्य-संकटका सामना करना पड़ गया। इनका मुख्य भोजन चावल है और नवद्वीपमें चावलका अभाव हो गया। अन्न-संकटका समाचार मिलते ही पूज्य बाबूजीने अपने एक सम्माननीय स्वजनको पत्र लिखा—

यह पत्र एक विशेष कामसे लिख रहा हूँ। नवद्वीप भजनाश्रममें माताओंको चावल दिया जाता है, पर यहाँ चावल मिल नहीं रहा है। इससे बड़ी कठिनाई हो रही है। बर्दवानमें गवरमेंटके गोदाममें बहुत चावल है। यदि कलकत्तेके उच्च-अधिकारी अनुमति दें तो वहाँसे चावल मिल सकता है। इस सम्बन्धमें कलकत्ताके डाइरेक्टर आफ फूडको पत्र भजनाश्रम (नवद्वीप) की ओरसे दिया गया है, जिसकी नकल इसके साथ भेजी जा रही है। यदि हो सके तो ये चावल दिलवाने और मासिक मिल जानेकी व्यवस्था करवानेकी कृपा करें।

पूज्य बाबूजीके प्रयत्नसे नवद्वीपके भजनाश्रमका यह अन्न-संकट शीघ्र ही दूर हो गया।

[१२] उनका कार्यरत जीवन

पूज्य बाबूजीका दैनिक जीवन बड़ा ही व्यस्त था। प्रायः प्रातः चार बजेसे रात्रिके बारह बजेतक वे कार्य करते रहते थे। 'कल्याण'के विशेषांकके दिनोंमें तो बहुधा उन्हें रात्रिके डेढ़-डेढ़, दो-दो बजेतक कार्य करते देखा गया है। वे अपने कागज-पत्र अपने तकियेके नीचे तथा आस-पास रखे रहते थे और जब सोना हुआ, तब वहीं सो जाते थे। भोजनके समय भोजन आनेमें कुछ विलम्ब हुआ तो पुनः काम करने लग जाते थे। भोजन करते समय एक हाथसे डाक उलटते रहते थे। भोजनके उपरान्त विश्राम करते समय लेटे-लेटे या करवट लिये काम करते रहते थे। बीमारीके दिनोंमें पेटपर मिट्टीकी पट्टी रखते थे। उस अवस्थामें भी वे प्रूफ देखने तथा पत्र लिखनेका कार्य किया करते थे। यात्रामें ट्रेनके रवाना होते ही प्रूफ-पत्र निकाल कर बैठ जाते थे। प्लेनसे यात्रा करते समय पत्र लिखनेमें व्यस्त रहते थे। स्वजनोंके यहाँ उत्सव या विवाह-शादीमें जाते समय प्रूफ अपने साथ ले जाते थे और जब भी थोड़ा अवकाश मिला, एक ओर बैठकर काम करने लग जाते।

सायंकाल लगभग साढ़े छः बजे डाक एवं प्रूफ आया करते थे। डाकके आते ही उनका कार्यालय चालू हो जाता। जितना प्रूफ आता, वह प्रातःकाल तैयार होकर प्रेस चला जाता, चाहे उसके लिये उनको रात्रिमें अधिक जगना पड़े। लेखोंमें जो भी श्लोक या उद्धरण होते, उनको वे स्वयं मूलग्रन्थोंसे मिलाते और जिन श्लोकोंकी पंक्तियाँ अधूरी रहतीं, उन्हें पूरी करते। ग्रन्थका नाम, अध्याय और श्लोक संख्या बैठाते, जिससे पाठक कुछ देखना चाहें तो उस संदर्भसे आसानीसे देख सकें। प्रायः लेखक स्मृतिके आधारपर चौपाइयाँ-श्लोक आदि लिख देते, जो मूलसे कुछ-न-कुछ भिन्न होते। उन्हें वे स्वयं ठीक करते।

मिलने आनेवाले व्यक्तियोंका हाथ जोड़कर मधुर मुस्कानके साथ स्वागत करते। आनेवाला व्यक्ति यदि सुपरिचित होता तो उसे कह देते कि तुम अपनी बात कहते चलो और स्वयं प्रूफ देखने एवं पत्र लिखनेमें लग जाते। पहले लगता कि उनका मन अपने कार्यमें व्यस्त है, कहने वाला अपनी बात कहता जा रहा है, पर जब उसकी बातका सही उत्तर, वह भी विचारकर निश्चित किया हुआ दिया जाता, तब आश्चर्य होता कि किस प्रकार विचारने तथा सुननेकी दोनों क्रियाएँ उनके लिये एक साथ सम्भव थीं। अपने किसी भी सहयोगीके किये हुए कामको बिना सरसरी नजरसे देखे वे नहीं भेजते थे। अपने दायित्वका पूरा निर्वाह करते थे। 'कल्याण'के मूल लेख देखते, गैली प्रूफ देखते तथा पेज-प्रूफ देखते, इस प्रकार तीन बार पूरी सामग्री उनकी नजरसे गुजरती थी।

समयका वे अमूल्य निधिकी भाँति उपयोग करते थे। किसीको जो समय दे देते थे, उसका निर्वाह बड़ी तत्परतासे करते थे। कई बार देखा गया कि सभाओंमें वे समयसे पहुँच जाते और वहाँ कोई भी नहीं मिलता। सभी लोग आधा घंटा, एक घंटा बाद आते। साथी लोग कहते कि हम लोगोंको भी देरसे चलना चाहिये, पर वे स्वीकार नहीं करते। उनका उत्तर यही रहता— जो समय निर्धारित हुआ है, उसपर पहुँच जाना चाहिये और लोग आयें, चाहे न आयें।

गाड़ीपर समयसे कुछ पूर्व पहुँचनेकी चेष्टा रखते थे तथा दूसरोंको भी यही शिक्षा देते थे कि समयसे पहुँचकर गाड़ीपर सवार होना चाहिये। यह नहीं कि इंजन सीटी दे रहा है और आप

सवार हो रहे हैं।

जहाँतक होता, अपने व्यक्तिगत पत्रोंका उत्तर वे स्वयं देते और वह भी अपने हाथसे लिखकर। सहायताके पत्र तथा दुःखी व्यक्तियोंके पत्रोंका उत्तर तो वे किसी दूसरेसे लिखवाते ही नहीं थे। ऐसे पत्र वे स्वयं चिपकाते भी थे। वैसे भी पत्रोंके चिपकानेमें वे बहुत सावधान थे। गोंद-पानी इस प्रकार लगाना, जिससे पत्रपर कहीं धब्बा या दाग न लग जाय, इसका वे विशेष ध्यान रखते थे। जब कोई पासमें बैठा स्वजन कहता कि लाइये पत्र मैं चिपका दूँ, तब वे उसे एक पत्र चिपकाकर समझाते कि इस प्रकार सफाईसे पत्र चिपकाइये। इतना ही नहीं, इसके साथ वे श्रीमालवीयजी महाराजका एक संस्मरण सुना देते कि किस प्रकार महामनाजी पत्रोंको चिपकानेमें सावधानी बरतते थे। महामना अपने इस कार्यके लिये श्रीशिवप्रसादजी गुप्तके अतिरिक्त अन्य किसीपर विश्वास नहीं करते थे।

आनेवाले पार्सलोंको खोलनेमें वे बड़ी सावधानी बरतते। पार्सलपर बँधी हुई रस्सीकी गाँठको खोलना और उसे समेटकर रखना, इनका सहज स्वभाव था। पार्सलपर लगा हुआ कपड़ा भी वे बड़े जतनसे सहेजकर रखते थे और उसे अपनी कलमको पोंछने आदिके काममें लेते थे। इसी प्रकार पुरानी आलपिन-क्लिपोंको भी बहुत सँभालकर रखते थे। कागजके छोटे-छोटे सादे टुकड़ोंको भी सँभालकर रखते थे। डाकमें आनेवाले पुराने लिफाफोंको सँभालकर एक बड़े लिफाफेमें रख लेते थे और प्रेस सामग्री भेजते समय उनका उपयोग करते थे। साथी लोग उन्हें उन कामोंके लिये नये लिफाफे देते, पर वे स्वीकार नहीं करते।

इस प्रकार पूज्य बाबूजी अपने अत्यन्त व्यस्त जीवनमें भी छोटी-छोटी बातोंपर ध्यान देनेसे नहीं चूकते थे। ■

श्रीरामगोपालजी पालड़ीवाल

[१] पत्नीकी रोग विमुक्ति

सन् १९६७ अथवा ६८ के जाड़ेके दिन थे, पर यह याद नहीं कि कौन-सा-उत्सव गीतावाटिकामें मनाया जा रहा था। शायद वसंत पंचमीकी बात हो सकती है। उत्सव हेतु कुछ लोग बाहरसे भी आये हुए थे। मैं कोठीके बाहर बेंचपर बैठा हुआ था। बिहार प्रदेशके खगड़ियासे एक पत्र मेरे पास आया। पत्रमें लिखा था कि मेरी पत्नीको टिटनस नामक रोग हो गया है, अतः मुझे तुरन्त खगड़िया पहुँच जाना चाहिये। आयुर्वेदमें टिटनसको धनुष-टंकार कहते हैं और इसे बड़ा घातक रोग माना गया है। पास ही कलकत्तेके मेरे मित्र श्रीदाऊलालजी कोठारी बैठे हुए थे। मुझे पता नहीं था कि वे मेरे पत्रको पढ़ रहे हैं। मेरे पढ़नेके साथ-साथ उन्होंने भी पत्र पढ़ लिया।

खगड़िया जानेका मेरा कोई कार्यक्रम नहीं था। पत्रको पढ़कर मेरा मन उदास हो गया। यह समाचार ही ऐसा था कि खगड़िया जानेका मेरा कार्यक्रम अचानक बन गया। ट्रेन रात्रिको लगभग नौ बजे जाती थी। मैं आठ बजे पूज्य श्रीभाईजी (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)को प्रणाम करनेके लिये ऊपर उनके कमरेमें गया। श्रीभाईजी रजाई ओढ़े हुए बिस्तरपर लेटे हुए थे। मुझको देखकर उन्होंने पूछा— कैसे आये?

मैंने कहा— खगड़िया जा रहा हूँ। प्रणाम करने आया हूँ।

श्रीभाईजीने पुनः पूछा— अचानक कार्यक्रम कैसे बन गया ?

मैं कुछ बोला नहीं। मैं ऐसा समझता हूँ कि मेरे मौनको देखकर श्रीभाईजीने मन-ही-मन समाधान कर लिया होगा कि कोई आवश्यक कार्य सामने आ गया है। उस समय संयोगसे श्रीदाऊलालजी कोठारी वहीं थे। श्रीभाईजी द्वारा जिज्ञासा किये जानेपर मैं तो कुछ बोला नहीं, पर श्रीकोठारीजी बोल पड़े— बाबूजी ! भाभीकी तबीयत बहुत ज्यादा खराब हो गयी है, वे टिटनससे ग्रस्त हैं, इसलिये गोपाल भइया खगड़िया जा रहे हैं।

इतना सुनते ही श्रीभाईजी खाटपर उठकर बैठ गये और मुझसे पूछा— उसे टिटनस हो गया है ?

मैंने बताया— पत्रमें तो यही लिखा है कि उसे टिटनस हो गया है। वे लोग उसे लेकर चिकित्साके लिये पटना जा रहे हैं।

मेरी बात सुनकर श्रीभाईजीने आँखें मूँद लीं और दो-तीन मिनट तक मौन रहे। इसके बाद उन्होंने अपने हाथसे पैरोंपरसे रजाई हटा लीं। दोनों पैर जुड़े हुए थे। रजाई हटाते-हटाते उन्होंने मुझसे कहा— ले, प्रणाम कर और घबड़ाना नहीं। भगवान सब मंगल करेंगे। वहाँ जाकर सब समाचार विस्तारसे देना।

खगड़िया पहुँचनेपर मालूम हुआ कि मेरी धर्मपत्नीकी स्थिति काफी गम्भीर थी। पटनामें चिकित्सा करानेके लिये घरके लोग उसे ले गये। कारमें उसकी हालत बिगड़ती जा रही थी। पटना पहुँचनेमें अभी समय लगेगा और इस अवधिमें स्थिति और भी भयानक हो सकती है, अतः खगड़िया और पटनाके बीचमें मुकामा नामका जो एक स्थान है, वहीं कार रोक करके उसे मिशनरी अस्पतालमें भरती करा दिया गया। उसके टिटनस रोगको देखकर डाक्टरोंने बताया— स्थिति चिन्ताजनक है और यदि स्थिति सँभल भी गयी तो पूर्ण स्वस्थ होनेमें समय लग सकता है।

जो भी हो, मिशनरी अस्पतालमें उसकी चिकित्सा आरम्भ हो गई। इतनी सब बातें मुझे खगड़िया पहुँचनेपर ज्ञात हुई। मैं खगड़ियासे मुकामा गया। वस्तुतः उसकी स्थिति गम्भीर थी। उसका मुँह खुल नहीं पाता था। ठोस खाद्य-वस्तुकी बात अलग रही, पेय पदार्थ भी कठिनाईसे गलेमें उतर पाता था। चिकित्सा ठीक प्रकारसे चल रही थी।

मैं किसी कार्यसे मुकामासे खगड़िया आया। खगड़िया आनेपर मुझे गोरखपुरसे आया हुआ एक पत्र मिला। उस पत्रमें श्रीभाईजीका संदेश था— तुम्हारी पत्नीके स्वास्थ्य-लाभके लिये यहाँ महामृत्युञ्जयका जप आरम्भ करा दिया गया है। यदि वहाँ कोई सात्त्विक अच्छा ब्राह्मण मिल जाये तो वहाँ भी जप आरम्भ करवा देना। अच्छा ब्राह्मण न मिले तो कोई बात नहीं। यहाँ तो जप आरम्भ करवा ही दिया गया है।

पत्रमें निर्देशके अनुसार मैंने खगड़ियामें जप आरम्भ करवा दिया। फिर मैं खगड़ियासे मुकामा आ गया। वहाँ अस्पतालमें जानेपर डाक्टरने मुझसे कहा— आपकी पत्नी एकदम ठीक हो गई है। इसे घर ले जाइये।

मैंने डाक्टरसे कहा— आप कैसी अटपटी बात कह रहे हैं ? इसे अस्पतालमें भर्ती हुए कुल

सात दिन हुए हैं। जब इसको आपने भर्ती किया था, तब रोगके लक्षणको देखकर आपने कहा था कि इसके ठीक होनेमें कई सप्ताह लग जायेंगे और अब आप एक सप्ताहके अन्दर ही रोगीको स्वस्थ बता रहे हैं।

डाक्टरने कहा– जिस समय इस रोगीको भर्ती किया था, उस समय इसे टिटनसके रोगीके रूपमें ही भर्ती किया गया था क्यों कि इसी रोगके स्पष्ट लक्षण दिखायी दे रहे थे, पर अब इस रोगका कोई लक्षण या चिह्न दिखायी नहीं दे रहा है।

मैंने डाक्टरसे कहा– आप तो रोगीको घर वापस भेज रहे हैं, पर कहीं ऐसा न हो कि घरपर पुनः रोगका दौरा पड़ जाय, मुझे परेशान होना पड़े और फिर मुझे भागकर यहाँ आना पड़े।

डाक्टरने कहा– अब रोगीमें रोगके लक्षण हैं ही नहीं, तब हम उसे अस्पतालमें कैसे रख सकते हैं ?

मैंने बहुत अनुरोध किया, इसके बाद भी उन्होंने अस्पतालमें मेरी पत्नीको नहीं रखा। अस्पतालसे बाहर आ जानेके बाद मैंने अपने संतोषके लिये मुकामाकी एक धर्मशालामें एक सप्ताहके लिये अपनी पत्नीको रखा। धर्मशालामें रहनेका प्रयोजन यही था कि डाक्टरकी बातसे मनमें सन्तोष नहीं हो रहा था। यद्यपि देखनेमें हम लोगोंको भी रोगके कोई लक्षण दिखलायी नहीं पड़ रहे थे और केवल दुर्बलता मात्र थी, इसके बाद भी एक सावधानीके रूपमें यह उचित समझा गया कि कुछ दिन मोकामामें ठहरना चाहिये। रोगका पुनः आक्रमण नहीं हुआ। लोग ऐसा कहते हैं कि टिटनसका रोगी कभी भी पूर्ण स्वस्थ नहीं होता। रोग चला जाता है, पर उसका असर रहता है। शरीरका कोई-न-कोई अंग बेकार हो जाता है, पर ऐसी विकलांगता भी मेरी पत्नीकी शरीरपर नहीं थी। भविष्यमें भी फिर कभी इस रोगका आक्रमण नहीं हुआ।

श्रीभाईजीने मेरी पत्नीके स्वास्थ्य-लाभके लिये महामृत्युञ्जयका जप करवाया था, उनकी प्रेरणाके अनुसार थोड़ा जप मैंने भी करवाया था। मेरी पत्नीकी रोग-मुक्तिमें जपका भी प्रभाव एक कारण तो है ही, पर इसीके साथ इससे भी महत्त्वपूर्ण कारण है श्रीभाईजीका आशीर्वाद। गोरखपुरसे चलते समय उन्होंने जो आश्वासन दिया था, आशीर्वाद दिया था, मुझसे पुनः प्रणाम करवाया था और स्वयं-प्रेरणासे मेरी पत्नीके लिये अनुष्ठान बैठाया था, इसीका परिणाम था कि वह इतना शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ कर सकी।

[२] भयंकर संकटके वे क्षण

प्रसंग सम्भवतः सन् १९६७ अथवा ६८ का है। सावनके बरसाती दिन थे। गंगाजीमें तथा बड़ी गण्डकमें बहुत बाढ़ आयी हुई थी। बाढ़ क्या थी, प्रलयका दृश्य था। बिहार प्रदेशके खगड़ियाके आस-पासका क्षेत्र बाढ़से ग्रस्त था। मुझे एक तार मिला कि बाढ़की स्थितिका विवरण मेरे पास भेजो। यह तो स्पष्ट था कि तार गोरखपुरसे आया है, पर भेजने वालेका नाम मेरे लिये सर्वथा अपरिचित था। मेरे छोटे भाई गोरखपुरमें रहते हैं। मैंने यही अनुमान लगाया कि मेरे भाइयोंने किसीको तार देनेके लिये कह दिया होगा। उत्तर स्वरूप मैंने पत्र अपने भाईके पास गोरखपुर लिख दिया कि बाढ़के कारण आस-पासके क्षेत्रमें बहुत परेशानी है। किन्तु रेडियो और समाचार-पत्रोंमें जितना खतरा खगड़िया शहरके लिये बताया जा रहा है, वैसा है नहीं।

मेरा पत्र गोरखपुर पहुँचा भी नहीं होगा कि दो दिन बाद पूज्य श्रीभाईजी (पूज्य

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का पत्र मुझे मिला। पत्रमें उन्होंने लिखा था— मेरा तार तुम्हें मिला होगा कि बाढ़का विवरण भेजो। मुंगेरसे श्रीखेमकाजीका पत्र मेरे पास आया है कि बाढ़के कारण यहाँ तबाही बहुत ज्यादा है। उन लोगोंने मुंगेर-क्षेत्रमें सहायता-कार्य आरम्भ कर दिया है। खेमकाजीके सुझावके अनुसार खगड़िया-क्षेत्रमें भी सहायता-कार्यकी बहुत आवश्यकता है। अब मुझे यह बतलाओ कि वहाँकी स्थिति क्या है और सहायता-कार्य कैसे किया जा सकता है।

श्रीभाईजीके पत्रके आनेसे ज्ञात हुआ कि तार उनके द्वारा भेजा गया था और तारघर द्वारा भेजनेवालेका नाम लिखनेमें कुछ गलती हो गयी थी। जो भी हो, यह सहायता-कार्य मुझे एक झंझटके समान लग रहा था। सर्वप्रथम बात यह थी कि इस प्रकारके कार्योंमें मेरा कोई अनुभव नहीं था। इसके अतिरिक्त ऐसे सेवा-कार्य करनेके लिये मेरे मनमें उत्साह नहीं था। मैं यह भी जान रहा था कि समाचारपत्रोंद्वारा स्थितिका चित्रण बढ़ा-चढ़ाकर किया गया है और सरकारी स्तरपर थोड़ा-बहुत सहायता कार्य हो ही रहा है। इन सब बातोंके कारण सहायता-कार्यमें मेरी कोई रुचि नहीं थी, अतः कार्यके उत्तरदायित्वसे बचनेके लिये एक साधारण-सा पत्र पूज्य श्रीभाईजीको मैंने गोरखपुर भेज दिया।

मैंने पत्र पोस्ट किया ही था कि इसके दूसरे या तीसरे दिन मुझे एक पत्र श्रीभाईजीसे मिला, जिसमें लिखा था कि तुम्हारे पास पाँच हजार रुपया भेजा जा रहा है। बाढ़से पीड़ित लोगोंकी सहायता और सेवाका कार्य आरम्भ कर दो। आवश्यकता पड़नेपर और भी रुपया भेजा जा सकता है।

यह पत्र मेरे लिये एक आदेशके समान ही था। जिस सेवाकार्यको मैं झंझट मान रहा था और जिससे बचनेके लिये मैंने प्रयास भी किया, उसीका दायित्व मेरे सिरपर आ गया, न चाहते हुए भी आ गया। अब यह कार्य करना ही था। मैंने अपने पाँच-छः स्वजनोंसे इस सम्बन्धमें बात की। सबने उत्साहपूर्वक सहयोगका आश्वासन दिया। अन्नके वितरणद्वारा अन्य सेवादल बाढ़-पीड़ित लोगोंकी सेवा करते थे, अतः हमलोगोंने आवश्यकतानुसार कुछ अन्न देनेका निश्चय तो किया, पर हमारे सेवादलने मुख्यतः ध्यान केन्द्रित किया वस्त्र-वितरणकी ओर।

पहले तो हम लोग तीन-चार मीलकी परिधिके भीतर पड़नेवाले गावोंमें जाते थे और जैसा बन सकता था, लोगोंको अन्न-वस्त्र देते थे। पीड़ित-लोगोंको जो राहत मिलती थी, उसे देखकर मनमें एक विचित्र प्रकारके सात्त्विक संतोष और आनन्दका अनुभव होता था। इस प्रकारके अनुभवसे सेवाकार्यमें मन लगने लगा। पहले यह कार्य मुझे भारस्वरूप लगता था, पर अब मेरी मनःस्थिति बदल गयी थी। अब सेवाकार्य करनेमें मनका उत्साह बढ़ता ही जा रहा था। उत्साह-उत्साहमें हमलोग कीचड़-पानीमें मीलों-मीलोंतक पैदल चलते रहते थे। घरसे सबेरे निकलते थे और वापस सूर्यास्तके बाद आते थे। हमलोग जब बहुत दूरतक जाने लगे तो एक सज्जनसे जीप माँग ली। उसमें अन्न-वस्त्र भर लेते थे और सुदूर क्षेत्रोंमें जा करके वितरण करते थे। इस प्रकार सेवाकार्य करते हुए लगभग चार-पाँच सप्ताह निकल गये।

गोरखपुरका श्रीराधाष्टमी महोत्सव समीप था। पूज्य बाबाने मुझे नियम दिला रखा था कि राधाष्टमीके अवसरपर गोरखपुर अवश्य आ जाओ। मैंने अपने सहयोगी मित्रोंसे कहा— श्रीराधाष्टमीके अवसरपर मेरा गोरखपुर जाना नियमतः आवश्यक है। सन् १९५४ या ५५ से

मेरा नियम चला आ रहा है। मैं चार-पाँच दिनमें वापस आ जाऊँगा। इन दिवसोंमें आप लोग सेवाकार्यको करते रहें।

मेरे मित्रोंने गोरखपुर जानेके लिये प्रसन्न मनसे मुझे अनुमति दे दी। मैंने ट्रेनसे गोरखपुर जानेका कार्यक्रम बना लिया। मैं गोरखपुर जानेकी दृष्टिसे तैयारी कर ही रहा था कि गोरखपुरसे पूज्य श्रीभाईजीका लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला। उसमें उन्होंने लिखा था— *अब श्रीराधाष्टमी समीप है। श्रीराधाष्टमीपर आनेका तुम्हारा नियम है। तुम आनेके लिये तैयारी कर रहे होगे, पर यदि तुम मेरी बात मानो तो यहाँ न आकर वहीं रहते हुए पीड़ितोंकी सेवाका कार्य करते रहो। तुम लोगोंका कार्य बहुत ही सुन्दर हो रहा है। तुम विश्वास करो, श्रीराधाष्टमी महोत्सवमें आनेसे जो लाभ तुम्हें होता, वह तुम्हें वहीं मिल जायेगा।*

इस पत्रके पानेके बाद गोरखपुर जानेका विचार मैंने छोड़ दिया और सेवाकार्यमें पूर्ववत् संलग्न हो गया। श्रीराधाष्टमीके दिन मैं बहुत दूर अपने साथियोंके साथ गया हुआ था। मध्याह्नतक कार्य करनेके बाद हम सभी लोग एक मैंदानमें बैठकर भोजन कर रहे थे। ज्यों ही मध्याह्नके समय श्रीराधाजन्मका समय हुआ, मुझे एक विशेष प्रकारकी आध्यात्मिक सुखानुभूति हुई, जो कभी गोरखपुरमें भी नहीं हुई थी और जो मेरे लिये सर्वथा नवीन वस्तु थी। ऐसी दिव्यानुभूति वस्तुतः मुझे कभी नहीं हुई। तत्क्षण मुझे पूज्य श्रीभाईजीके पत्रकी पंक्तियाँ याद आने लगीं।

यह तो एक आध्यात्मिक अनुभव था, पर प्रत्यक्ष स्तरपर कई ऐसी घटनाएँ घटित हुईं, जिसमें भगवदीय कृपाके दर्शनका सुअवसर और सौभाग्य मिला। इसी दिन अथवा दूसरे या तीसरे दिन मैं और मेरे साथी जीपमें सामान लादकर जा रहे थे। मेरा ही एक साथी जीप चला रहा था और उसके बगलमें मैं बैठा हुआ था। हमारी जीप बाँधपर चल रही थी और बाँधकी चौड़ाई उतनी ही थी, जितनी जीपकी चौड़ाई। दायें-बायें दोनों ओर गहरी खाई थी। मेरा मित्र बहुत सावधानीपूर्वक जीप चला रहा था। अचानक एक बड़ा सीधा ढाल आया। तनिक-सी चूक होनेपर जीप खाईमें जा सकती थी। मेरे मित्रने मुझसे कहा— ढाल बहुत खड़ा है। सड़क रपटीली है। सड़कके दायें बायें वाले छोर मुझे दीख नहीं रहे हैं। आप उतरकर ढालके अंतिम नीचले छोरपर खड़े हो जाइये और निर्देश देते रहिये। उस निर्देशके अनुसार मैं जीप चलाऊँगा, जिससे हम लोग ढाल सकुशल पार कर लें।

मैं जीपसे उतरा और ढालके उतारवाले छोरपर खड़े होकर निर्देश देने लगा। जीप धीरे-धीरे चलने लगी। कुछ फीट ही चली होगी कि विकट परिस्थिति सामने आ गयी। मैं नहीं कह सकता कि निर्देश देनेमें मेरे द्वारा भूल हुई अथवा निर्देशको समझनेमें उसके द्वारा भूल हुई। परिस्थिति यह थी कि जीप भटक कर गड्ढेकी ओर चली गयी। जीपका एक अगला पहिया जमीनपर नहीं, हवामें था और जीप ढलानपर तीन पहियोंके सहारे धीरे-धीरे लुढक रही थी। यह देखकर ज्यों ही मैंने घबड़ाकर ठहरनेका निर्देश दिया, मेरे मित्रने जोरसे ब्रेक लगाया। ब्रेकके लगते ही जीप तो रुक गयी, पर स्थिति अत्यन्त विकट थी। अब न तो ब्रेक छोड़कर वह मित्र जीपके बाहर आ सकता था, न मालसे भरी हुई जीपको पीछे चढ़ावकी ओर वापस लिया जा सकता था और न जीपको आगे बढ़ाया जा सकता था। कालके पंजेमें पड़ा हुआ मेरा मित्र मुझपर बुरी तरह झुँझला

रहा था। ऐसा भयानक दृश्य देखकर मेरा रोम-रोम काँप उठा। दोनों ओर खाई थी और मित्रकी जान और जीप, दोनोंही भयंकर खतरेमें थे। कोई उपाय सूझ ही नहीं रहा था। आस-पास गाँव भी नहीं थे, जहाँसे सहायताकी अपेक्षा करता। मेरे आँखोंके सामने घोर अँधेरा छा गया। इस अति विकट परिस्थितिमें मैंने श्रीभाईजीको और भगवानको याद किया। एक-एक क्षण बड़ा भारी लग रहा था, बड़ा कठिन बीत रहा था। दस-बारह क्षणोंके बाद ही मुझे चार लट्ठधारी व्यक्ति आते हुए दिखायी दिये। उनको देखकर मैं और घबड़ा गया कि ये लट्ठधर लूटेंगे और मारेंगे भी। जब वे पास आ गये तो उन्होंने मुझसे पूछा— बाबू! आप परेशान-से कैसे खड़े हैं?

जीपकी ओर अँगुली करते हुए परिस्थितिकी विकटता उनको बता दी। उन्होंने कहा— बाबू! घबड़ाइये नहीं। अभी सब ठीक हो जाता है।

मैंने आश्चर्य भरे स्वरमें उनसे कहा— अरे! तुम लोग कैसी बात करते हो? एक तो जीपमें माल भरा हुआ है, दूसरे ढलानपर है और तीसरे गड्ढेमें लटकी हुई है।

उन्होंने कहा— आप देखते जाइये।

और मैं क्या बताऊँ? मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही। उन चारों व्यक्तियोंने मालसे भरी जीपको ढकेल करके रास्तेपर ऐसे ही पहुँचा दिया, जैसे कोई बच्चा अपने खिलौनेको यहाँसे वहाँ कर देता है। बाँधकी ढालपर जो सड़क थी, उस पर जीप अब सुरक्षित खड़ी थी।

हमने उनके प्रति बड़ी कृतज्ञता व्यक्त की। उनके सहयोगसे इस भीषण संकटसे हम लोगोंको मुक्ति मिल गयी। एक-दो ऐसे ही भीषण संकट और भी आये थे। उनका स्वरूप दूसरा था, परंतु स्थितिकी गम्भीरता और भयंकरता इसी प्रकारकी थी। जब-जब परिस्थितिकी भीषणता आयी, हमने श्रीभाईजीको और भगवानको याद किया। जब-जब श्रीभाईजीको और भगवानको याद किया, वे सारे संकट दूर होते गये।

बाढ़के कम होनेपर सहायता-कार्य भी बन्द कर दिया गया। मैं खगड़ियासे गोरखपुर आया। मेरे मनमें बड़ा चाव था कि पूज्य श्रीभाईजीको बताऊँगा कि कैसे सहायता-कार्य किया गया और भीषण संकटोंसे हमें कैसे त्राण मिला। मैंने गीतावाटिकामें श्रीभाईजीके पास बैठकर पहले तो सेवाकार्यका संक्षिप्त विवरण सुनाया और फिर उन संकटोंका वर्णन करने लग गया। वर्णन थोड़ा-सा ही कर पाया था कि श्रीभाईजीने मुझसे कहा— भइया! सब मेरे निगहमें है।

श्रीभाईजीके इतना कहते ही मैंने सुनाना बंद कर दिया, पर साथ ही मैं बड़ा विस्मित भी हो रहा था कि गोरखपुर मैं बैठे हुए ही श्रीभाईजीके द्वारा उन सारी परिस्थितियोंका नियंत्रण हो रहा था, जिसके फलस्वरूप हमलोगोंपर आये हुए सम्पूर्ण संकटोंका निवारण हो गया। एक बात और मेरे सामने आयी। मैं ऐसा सुना करता था कि यदि श्रीभाईजी किसीको कोई कार्य सौंपते थे तो उसे कार्य करनेकी शक्ति देते थे तथा उसकी सँभाल भी करते थे। इस प्रसंगसे मेरी यह धारणा और भी सुपुष्ट हो गयी। मैं स्वभावसे थोड़ा आलसी हूँ और मुझ जैसा आलसी व्यक्ति प्रतिदिन सुबहसे शामतक लगभग दो मास निरन्तर कार्य कर सके, यह सम्भव ही नहीं। इसके अतिरिक्त अपने धन्धेमें लगे हुए व्यापारिक वर्गको कहाँ फुरसत रहती है, पर आश्चर्य यह है कि अति व्यस्त व्यापारिक बन्धुओंने ही समय निकालकर सेवा-कार्यमें उत्साह पूर्वक सहयोग दिया। सेवा-कार्यको करनेके लिये व्यक्ति आगे-से-आगे मिलते गये। मैं तो यही मानता हूँ कि यह सारा

सम्भव हो सका इसीलिये कि श्रीभाईजीके द्वारा शक्तिका दान और पद-पदपर सँभाल हो रही थी। ■

श्रीभीमसेनजी चोपड़ा

[१] कार्यकर्ताके प्रति आदर

मध्यप्रदेशके वनवासी क्षेत्रोंमें ईसाई मिशनरियोंने विद्यालयों, अस्पतालों, गिरिजाघरोंके रूप में अपना एक जाल-सा फैला रखा है और अबोध हिन्दुओंकी सरलता और विवशताका लाभ उठाकर एक बहुत बड़ी हिन्दू जनसंख्याका धर्मपरिवर्तन करा लेनेमें उन्होंने सफलता प्राप्त कर ली है। इस अनुचित लाभ उठा लिये जानेकी प्रक्रियाकी रोक-थामके लिये, अपितु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह कि अपने सरल वनवासी हिन्दुओंके हृदयोंमें धर्म-भावको जगानेके लिये तथा निज-धर्म-निष्ठ बनानेके लिये जशपुरनगरमें 'कल्याण आश्रम'की स्थापना हुई और तब मैं उस नव-गठित संस्थाके मन्त्रीके रूपमें कार्य करता था। कल्याण आश्रमको जशपुरके राजासाहबने अपना पुराना महल दे दिया और उस महलमें कल्याण आश्रम अपना विद्यालय चलाता था। सन् १९६० के आस-पास महलकी छत ढह पड़ी। अब विद्यालयके लिये नवीन भवनका निर्माण अनिवार्य हो गया। भवन-निर्माणके लिये धनकी आवश्यकता थी, अतः धन-संग्रहके लिये मैं कलकत्ता चला गया।

मुझे मेरे प्रयासमें सफलता नहीं मिल पा रही थी। उचित परिचयके अभावमें मैं पद-पदपर कठिनाईका अनुभव कर रहा था। मेरे सुननेमें आया कि श्रीभाईजी गोरखपुरसे कलकत्ता आये हुए हैं, पर समस्या यह थी कि मुझ नवीन व्यक्तिकी बातको क्या वे सुनेंगे? श्रीओंकारमलजी सर्राफ श्रीभाईजीके घनिष्ठ मित्र हैं और उनके माध्यमसे मैं श्रीभाईजीतक पहुँच सका। मैंने श्रीभाईजीको मध्यप्रदेशके वनवासी हिन्दुओंकी पूरी परिस्थितियोंसे तथा कल्याण आश्रमके कार्यसे अवगत कराया। जितने धैर्यसे उन्होंने सारी बातें सुनी, उससे मेरा साहस बढ़ा। मैंने अनुरोध किया– यदि आप कलकत्तेके कुछ धनपतियोंके नाम पत्र लिखकर दे सकें तो भवन-निर्माणका कार्य पूरा हो सकेगा।

किसीको भी आर्थिक सहयोगके लिये पत्र लिखनेमें श्रीभाईजीको सदैव झिझक होती रही है, पर मेरे कार्यकी गरिमा और आवश्यकताको समझकर उन्होंने मुझको चार बहुत बड़े-बड़े धनपतियोंके नाम बतलाये और फिर मुझसे कहा– इस-इस भावके पत्र उनके नाम लिखकर तथा टाइप कराकर ले आइये, मैं हस्ताक्षर कर दूँगा।

चारों पत्रोंको तैयार करके मैं श्रीभाईजीके पास ले गया। उन्हें देखकर, वे चारों पत्र श्रीभाईजीने अपने पास रख लिये और मुझसे कहा– पत्रोंको रहने दें। आप मेरे नामको लेकर ही उन लोगोंसे बात कर लीजियेगा।

मैं समझ नहीं पा रहा था कि पत्रमें कहाँ क्या गलती हो गयी, जिससे उन्होंने पत्र अपने पास

रख लिये। इतना अनुमान तो मुझे हो गया कि पत्रोंमें कोई ऐसी चूक अवश्य हुई है, जिसे श्रीभाईजी संकोचके कारण बता नहीं पा रहे हैं और उनके पास इतना समय भी नहीं है कि पत्र स्वयं तैयार करके दे दें, तभी तो उन्होंने नाम लेकर बात करनेके लिये कह दिया। यह बिगड़ी बात अब कैसे बने ? मैं मन-ही-मन भगवानसे प्रार्थना करने लगा।

श्रीरामनिवासजी ढंढारियाका श्रीभाईजीसे संकोच खुला हुआ है। उन्होंने कौतूहलवशात् पूछ लिया— क्या बात हो गयी ? आपने पत्र देनेको कहा था, फिर अब उनको परिचय-पत्र क्यों नहीं दे रहे हैं ?

श्रीभाईजीने कहा— अरे भइया ! सारा पत्र तो ठीक ही लिखा गया है, पर पत्रके आरम्भमें उनके नामके पहले 'परमादरणीय' शब्दका प्रयोग किया गया है। लिखा जाना चाहिये था 'प्रिय श्री'। वे लोग आयुमें मुझसे छोटे हैं, इसके अलावा उनके साथ सम्बन्ध भी ऐसा मधुर है कि परमादरणीय शब्दको पढ़ते ही उनके मनको कष्ट होगा। इसी कारण मैंने पत्र नहीं दिया। नये सिरेसे पत्र लिखनेके लिये मेरे पास समय नहीं, इसीलिये नाम लेकर बात करनेके लिये कह दिया।

भगवत्प्रेरणासे श्रीढंढारियाजीने मेरी तरफदारी की और कहा— यदि आपके दो लाइन लिख देनेसे उनका काम बनता हो तो आप क्यों नहीं लिख देते ?

श्रीभाईजीने कहा— अभी तो बड़ा व्यस्त हूँ। तनिक भी फुरसत नहीं।

कुछ रुककर श्रीभाईजीने उसी समय मुझसे कहा— अच्छा, आप कल सबेरे आठ बजे आकर चारों पत्र ले जाइयेगा।

इतना सुनकर मेरी भावनाओंको बड़ा सहारा मिला। श्रीभाईजी पानीहाटीमें ठहरे थे और मैं बहुत सबेरे पानीहाटीके लिये चल दिया, जिससे समयसे पहले पहुँच जाऊँ। जल्दी चल देनेके बाद भी ट्राम-बसकी कठिनाईके कारण मैं समयपर नहीं पहुँच पाया। श्रीभाईजीको लोहाघाटपर निर्मित संकीर्तन भवनके उद्घाटनके लिये जाना था और वे जा चुके थे। वहाँ पहुँचकर आवासकी एक बहिनसे मैंने पूछा— क्या श्रीभाईजी मुझको देनेके लिये कोई पत्र बतला गये हैं ?

नकारात्मक उत्तर मिलनेपर मैं निराश होकर लौटने वाला ही था, तभी आवासकी छतपरसे एक बहिन तीव्र गतिसे उतरती हुई नीचे आयी और उसने मुझे रुकनेके लिये संकेत किया। उसने पास आकर बतलाया— अभी-अभी लोहाघाटसे श्रीभाईजीका टेलीफोन आया है और कहा कि यदि श्रीचोपड़ाजी वहाँ आवें तो मेरी डेस्कमें रखे हुए अमुक-अमुक नामके चारों पत्र उनको दे देना, जिससे उनको दुबारा न आना पड़े और उनका समय नष्ट न हो।

बहिनके मुखसे श्रीभाईजीके संदेशको सुनकर मैं सिहर उठा और मन-ही-मन सोचने लगा कि एक अत्यन्त साधारण सामाजिक कार्यकर्ताके कार्यके लिये और उसके समयके लिये उनके मनमें कितना अधिक आदर और महत्त्व है और उसकी परेशानीके प्रति वे कितने अधिक संवेदनशील हैं। मेरी इन भावनाओंके आवर्त उस समय और अधिक गहरे हो उठे, जब यह मालूम हुआ कि इस संदेशको देनेके लिये वे जब मंचपरसे उठकर फोनपर आये थे, तब वे कलकत्तेके अत्यन्त गणमान्य करोड़पतियोंसे घिरे हुए थे।

[२] सामाजिक कार्यको सम्मान

श्रीभाईजीने कलकत्तेके चार बड़े-बड़े धनपतियोंके नाम पत्र लिखकर दिये, इससे मुझे अपने प्रयासमें पर्याप्त सफलता मिली। इन पत्रोंसे कार्यकी सिद्धि केवल इसी समय एक बार नहीं हुई, अपितु भविष्यमें भी समय-समयपर आर्थिक सहयोग मिल सके, इसका पथ प्रशस्त हो गया।

पहले मैंने जो चारों पत्र लिखे थे, उनमें मैंने इन बड़े-बड़े धनपतियोंके नामके पहले 'परमादरणीय' शब्दका प्रयोग किया था और ऐसा किया था यही सोचकर कि ये लोग कलकत्तेके महान विख्यात व्यक्ति हैं। इसी 'परमादरणीय' शब्दको देखकर श्रीभाईजीके मनमें उन चारों पत्रोंपर हस्ताक्षर करनेकी अनिच्छा हो उठी थी। अब यह बात दूसरी है कि भगवत्कृपासे वह बिगड़ी बात बन गयी और श्रीभाईजीने नये सिरेसे चारों पत्र लिखकर तथा टाइप कराकर मुझे दिये। श्रीभाईजीने उन पत्रोंमें धनपतियोंके नामके पूर्व 'प्रिय श्री' लिखा था।

इसके तीन-चार दिन बादकी बात है। श्रीभाईजीने चलती ट्रेनमेंसे मेरे लिये एक पत्र लिखा। उस पत्रमें उन्होंने मेरे नामके पहले 'परमादरणीय' शब्दका प्रयोग किया था। इसे पढ़ते ही मेरी आँखें भर आयीं। वे भरी आँखें छलक पड़ी और अश्रुबिन्दु ढुलकने लगे। श्रीभाईजीने उन धनपतियोंके लिये परमादरणीय शब्दका प्रयोग तो किया नहीं, पर मेरे लिये किया और 'परमादरणीय' शब्दका प्रयोग करके उन्होंने मेरा नहीं, मेरे द्वारा हो रहे कार्यका सम्मान किया। श्रीभाईजीके व्यक्तित्वकी इस महानताके प्रति मैं नत-मस्तक था। उनके व्यक्तित्वकी यह भाव-गरिमा सदैव वन्दनीय रही है और सदैव वन्दनीय रहेगी। एक बात और, उन्होंने अपनी ओरसे ११०० रुपयोंका सहयोग देनेके लिये कहा था और उन्होंने भेजा २१०० रुपया। वस्तुतः वे अनोखी भाव-गरिमा और उदारताके महान पुञ्ज थे। ■

डा. श्रीमहेन्द्रनारायणजी शर्मा

आचार निष्ठा

श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) २२ मार्चके प्रातःकाल अपना पार्थिव कलेवर त्यागकर भगवानकी नित्यलीलामें लीन हो गये। वे भगवानमें ही जीये, भगवानमें ही रहे और अन्तमें भगवानमें ही लीन हो गये। उन्होंने अपने जीवन, व्यवहार, कार्य, वाणी, लेखन, इतना ही नहीं, अपने श्वास-श्वाससे भगवद्भावका प्रचार-प्रसार किया। उनका जीवन आस्तिकताकी साकार प्रतिमा था।

भक्त अखिल विश्व-ब्रह्माण्डके रूपमें अपने प्रभुको ही अभिव्यक्त हुआ अनुभव करता है, अतः सभी भूत-प्राणियोंके प्रति उसका आत्मभाव रहता है और इससे उसमें अहिंसाकी नित्य प्रतिष्ठा रहती है। श्रीभाईजीके जीवनमें भी हम इसका आदर्श रूप प्राप्त करते हैं। उन्होंने जीवनभर अपने कण-कणसे अहिंसा, प्रेम एवं पवित्रताका दान किया है। वे आदर्श गृहस्थ-संत थे, अतएव शरीरकी अस्वस्थतामें वे उपचार करवाते थे, पर इस बातका वे बराबर ध्यान रखते थे कि जो औषधि वे ले रहे हैं, उसमें किसी भी रूपमें कोई जान्तव पदार्थ अथवा अन्य कोई अशुद्ध वस्तु न हो। आजकल पशु-पक्षियोंकी हत्याकर अथवा बिना हत्या किये उसके रक्त, मांस एवं

विभिन्न अंगोंके रसोंसे अनेक प्रकारकी औषधियोंका निर्माण होता है, जो किसी-किसी भीषण रोगोंमें लाभप्रद सिद्ध हुई है, परंतु श्रीभाईजी इस प्रकारकी औषधियोंसे सदा सावधान रहे। वे औषधिमें सम्मिलित किये गये पदार्थोंके विषयमें पूरी जानकारी करनेके पश्चात् ही उसका सेवन करते थे। किसी औषधिमें यदि तनिक भी कोई जान्तव पदार्थ सम्मिलित पाया जाता था तो वे उसे नहीं लेते थे, फिर चाहे वह कितनी ही लाभप्रद क्यों न हो।

उन्हें मधुमेह (डायबिटीज) की बीमारी थी। इसके लिये वे अपने भोजनपर बराबर नियन्त्रण रखते थे तथा आवश्यक होनेपर कुछ दवा भी ले लिया करते थे। मित्रोंने तथा डाक्टरोंने 'इन्सुलिन' का इन्जेक्सन लेनेके लिये अनेक बार कहा, पर वे जानते थे कि 'इन्सुलिन' पशुओंके किसी अंग विशेषके रससे बनता है, अतएव उन्होंने इसका सेवन कभी नहीं किया।

अहिंसाका उपदेश तो सभी करते हैं, पर समयपर उसका पालन विरला ही कर पाता है। परम श्रद्धेय श्रीभाईजीकी यह आचार-निष्ठा जगत्‌को सदा पवित्र करती रहेगी। ■

डा. श्रीलालदेवजी सिंह

चरण-वन्दन

गुरुजनोंके चरण-वन्दनका श्रीभाईजीके जीवनमें बहुत ऊँचा स्थान था। वे अपनेसे बड़ोंको पैर छूकर प्रणाम किया करते थे, साधु-संतों एवं पण्डितोंको भी वे चरण-स्पर्श करके प्रणाम करते थे। अपने घरमें रसोई बनाने वाले ब्राह्मणोंको भी पैर छूकर प्रणाम करते हुए उन्हें देखा गया है। पिता-पितामहके श्राद्धमें ब्राह्मण-भोजन हो जानेपर वे दक्षिणा देते समय पण्डितोंको चरण छूकर प्रणाम करते थे। अपने साथ कार्य करने वाले तथा अपनेसे बहुत छोटी आयु वाले पण्डितोंको जब श्रीभाईजी प्रणाम करते थे, तब युवा पण्डित संकोचके मारे गड़ जाते थे, पर श्रीभाईजी अपने आदर्शका निर्वाह अवश्य करते थे। प्रायः अपना प्रवचन आरम्भ करनेके पूर्व उपस्थित श्रोताओंको प्रणाम करते हुए वे कहा करते थे– *विश्व ब्रह्माण्डके रूपमें अभिव्यक्त भगवानके नाते आप सबके श्रीचरणोंमें समक्ति नमस्कार।*

श्रीभाईजी अपनी लाचारीकी अवस्थामें भी यथासम्भव अपने इस स्वभावका निर्वाह करते रहे। अन्तिम बीमारीके दिनोंमें गोरखपुर स्थित पूर्वोत्तर रेलवेके केन्द्रीय अस्पतालके सर्जरी विभागके डी. एम. ओ. श्रीशर्माजी विशुद्ध प्यारके नाते श्रीभाईजीको देखने आये थे। एक दिन श्रीभाईजीका दर्शन करने और उन्हें प्रणाम करनेके लिये उनकी वयोवृद्ध माताजी उनके साथ आयीं। डाक्टर साहबने कमरेमें प्रवेश करते ही हाथ जोड़कर श्रीभाईजीको प्रणाम किया। श्रीभाईजीने उनके प्रणामका उत्तर प्रणाम कह कर दिया। जब डाक्टर साहबकी वृद्धा माताजी श्रीभाईजीको प्रणाम करने लगी, तब श्रीभाईजी बड़ी ही विनम्रतासे बोले– माताजी! आप तो मेरी माँ हैं। मैं आपको प्रणाम करूँगा और आपका आशीर्वाद लूँगा।

माताजी श्रीभाईजीकी इस विनय भरी भावनासे मुग्ध हो गयीं और वे प्रणाम न करके आगे बढ़ गयीं श्रीभाईजीको आशीर्वाद देनेके लिये। श्रीभाईजीने चारपाईसे झुककर माताजीका चरण-स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया। माताजी वृद्ध हैं, पर वे आयुमें श्रीभाईजीसे छोटी हैं तथा वे

श्रीभाईजीके प्रति श्रद्धा रखती हैं और उसी भावसे वे श्रीभाईजीको प्रणाम करने पधारी थीं, पर स्वजनकी माँ अपनी माँ है और माँ सदा प्रणम्य है, इस आदर्शका निर्वाह श्रीभाईजी कैसे न करते! डाक्टर साहब तथा उपस्थित सभी व्यक्ति श्रीभाईजीके इस व्यवहारसे मुग्ध हो गये कि इतने बड़े होकर भी ये माताजीका चरणस्पर्श कर उन्हें प्रणाम करते हैं और वह भी अपनी लाचारीकी अवस्थामें। लेटे-लेटे हाथ जोड़कर प्रणाम कर लेना ही पर्याप्त था, पर श्रीभाईजीने चारपाईसे झुककर प्रणाम करनेमें ही संतोषका अनुभव किया। उनके इस प्रकार विवशताकी स्थितिमें चारपाईसे झुककर प्रणाम करनेसे डाक्टर साहबका तथा अन्य व्यक्तियोंका हृदय भर आया। ■

श्रीरघुवरदयालजी गर्ग

होलीपर नगर-कीर्तन

गोरखपुरमें होलिका-दहनके अगले दिन नगर कीर्तनका आयोजन और प्रचलन श्रीभाईजीके सुधारवादी एवं समन्वयवादी दृष्टिकोणका एक बेजोड़ उदाहरण है। इसमें कोई संदेह नहीं कि होली हिन्दुओंका बहुत पुराना और बड़ा पवित्र त्योहार है। ऐसा कहा जाता है कि इसी दिन भक्तराज प्रह्लादकी अग्नि परीक्षा हुई थी। दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी बहिन होलिकाको अग्निमें न जलनेका वरदान मिला हुआ था। भाईके आदेशपर भतीजेको जला देनेके लिये वह होलिका अपनी गोदमें प्रह्लादको लेकर बैठ गयी। चारों ओरसे आग लगा दिये जानेपर दैत्यराजकी बहिन होलिका तो जल गयी और भक्तराज प्रह्लाद बच गये। यह आसुरी शक्तिपर प्रभु-भक्तिकी विजयका परिचायक है। उसीकी यादमें प्रतिवर्ष फाल्गुनी पूर्णिमाको होली जलायी जाती है और अगले दिन हर्षोल्लास मनाया जाता है, पर आज इस हर्षोल्लासने बड़ा विकृत रूप धारण कर लिया है।

गन्दे गीत गाये जाते हैं। लाज-शरम एक किनारे रख दी जाती है। निर्लज्जताका राज्य हो जाता है। अश्लीलता निरंकुश हो उठती है। शराब-भाँगका खुला प्रयोग होता है। भाभी-साली आदिसे अमर्यादित फाग खेला जाता है। कपड़ों-दीवारोंपर अभद्र शब्द लिखे जाते हैं। ऐसी बहुत-सी बातें होती हैं, जिसकी ओर संकेत करनेमें भी संकोच हो रहा है।

होली जैसे परम पवित्र त्योहारका ऐसा विकृत रूप कैसे हो गया, इसे बता सकना बड़ा कठिन है। कारण जो भी हो, इस विकृत रूपको देखकर श्रीभाईजीका हृदय बड़ा व्यथित हुआ। वे होलीका त्योहार मनानेकी पद्धतिमें परिष्कार और सुधार चाहते थे। सुधारके लिये श्रीभाईजीने होलिका-दहनके अगले दिन नगर-कीर्तन निकालनेका निश्चय किया। इसी दिन तो अभद्रताका नग्न नृत्य विशेष रूपसे समाजमें दिखलायी देता है और उसीको भद्र-स्वरूप प्रदान करना था।

व्रजके परमाराध्य श्रीराधाकृष्णके लीलाराज्यमें होलीके फाल्गुनी रंगोल्लासका विशेष महत्त्व है। श्रीभाईजीके आराध्य भी भगवान श्रीराधाकृष्ण हैं, अतः नगर-कीर्तनमें गुलालका खुलकर प्रयोग करनेकी छूट रहती है। कीचड़-मिट्टी-अलकतराके प्रयोगकी कल्पना ही नहीं। गुलाल

लगाने-लगवानेके माध्यमसे अपने रंगोल्लास और प्रीतिकी अभिव्यक्ति होनी ही चाहिये और होती है।

इस नगर कीर्तनमें साथ-साथ चलने वाले यात्रा-विमानके सिंहासनपर श्रीनृसिंह भगवानका चित्रात्मक श्रीविग्रह विराजित रहता है। यह भक्त-हृदय प्रह्लादकी भक्ति-भावनाकी स्मृति दिलाता है। होलिका-दहनके अगले दिन नगर-कीर्तनमें भगवान श्रीनृसिंहका विग्रह विराजित करना श्रीभाईजीके दूरगामी सूझका परिचायक है।

फाल्गुनी पूर्णिमाको ही प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुका आविर्भाव हुआ था। श्रीचैतन्य महाप्रभुके जीवनमें भगवन्नामका सर्वाधिक महत्त्व है। नगर-कीर्तनमें तुमुलस्वरसे श्रीभगवन्नामका संकीर्तन होता है। सभी उच्च स्वरसे हरिनामका गायन करते हैं। यह श्रीचैतन्य महाप्रभुके जन्मोत्सवका रसोल्लास ही है।

होलिका-दहनके अगले दिन नगर-कीर्तन निकालकर, जहाँ एक ओर समाजके अवाञ्छनीय रूपको सँवारने-सुधारनेका प्रयत्न किया गया, वहीं दूसरी ओर तीन भव्य भावधाराओंके समन्वयका भी सफल प्रयास रहा। ये तीन धाराएँ हैं भक्तराज प्रह्लादकी निमर्लोत्तम भक्ति-भावना, व्रजभूमिका फाल्गुनी गुलाली रंगोल्लास और प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुका पावन हरिनाम संकीर्तन।

श्रीभाईजीके व्यक्तित्वकी एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने इस सारे समायोजनका नेतृत्व अन्योंको दे दिया। श्रीभाईजीको नामसे नहीं, कामसे मतलब था। नवायोजित कार्यक्रमको मूर्तरूप देनेके लिये अपनी ओरसे पूर्ण सहयोग दिया और नगर-कीर्तनके उस नव-प्रचलित कार्यक्रमको सफल बनाया, पर श्रेय और नेतृत्व दिया गोरखनाथपीठके महन्त पूज्य श्रीदिग्विजयनाथजी महाराजको। इसके साथ-साथ सहयोग ले लिया राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके कार्यकर्ताओंका। यह नगर-कीर्तन अब भी निकलता है। यद्यपि आजकल वैसा भव्य रूप नहीं रहा, पर यह नगर-कीर्तन याद दिला देता है श्रीभाईजीके सुधारवादी और समन्वयवादी दृष्टिकोणकी।

केवल गोरखपुरमें ही क्यों, ऐसा सर्वत्र होना चाहिये। अतः श्रीभाईजीने होलिकोत्सवपर एक विशेष लेख लिखा, जो कल्याणमें प्रकाशित हुआ। उस लेखके अंतमें श्रीभाईजीने सभीसे अष्ट बातोंके लिये अनुरोध किया। वे आठों बातें इस प्रकार हैं—

१- *फागुन सुदी ११ को या और किसी दिन भगवानकी सवारी निकालनी चाहिये, जिनमें सुन्दर-सुन्दर भजन और नाम-कीर्तन हो।*

२- *सत्संगका खूब प्रचार किया जाय। स्थान-स्थानमें इसका आयोजन हो। सत्संगमें ब्रह्मचर्य, अक्रोध, क्षमा, प्रमादके त्याग, नाम-माहात्म्य और भक्तिकी विशेष चर्चा हो।*

३- *भक्ति और भक्तिकी महिमाके तथा सदाचारके गीत गायें जायँ।*

४- *फागुन सुदी १५ को हवन किया जाय।*

५- *श्रीमद्‌भागवत और श्रीविष्णुपुराण आदिसे प्रह्लादकी कथा सुनी और सुनायी जाय।*

६- *साधक एकान्तमें भजन-ध्यान करें।*

७- *श्रीश्रीचैतन्यदेवकी जन्मतिथिका उत्सव मनाया जाय। महाप्रभुका जन्म होलीके दिन*

ही हुआ था। इसी उपलक्ष्यमें मुहल्ले-मुहल्लेमें घूमकर नामकीर्तन किया जाय। घर-घरमें हरिनाम सुनाया जाय।

८- धुरेण्डीके दिन ताल, मृदंग और झाँझ आदिके साथ बड़े जोरसे नगर-कीर्तन निकाला जाय, जिसमें सब जाति और सभी वर्णोंके लोग बड़े प्रेमसे शामिल हों। ■

श्रीमदनमोहनजी गोस्वामी

[१] मेरी क्षुद्रता और उनका प्यार

श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की अति विस्तृत और विशाल छत्र-छायाके नीचे असंख्य परिवारोंका 'भरण-पोषण' होता रहा है और ऐसे परिवारोंमें एक परिवार हमारा भी था। हमारे परिवारके संरक्षक-अभिभावक श्रीभाईजी ही थे। हमलोगोंका जीवन उन्हींके आश्रयमें पल रहा था, फल रहा था। हमलोगोंकी आस्था तो ऐसी है कि नित्यलीलामें लीन हो जानेके बाद भी वे हमारे योग-क्षेमका वहन आज भी कर रहे हैं। वे हमारे मध्य बड़े थे, अतः हमलोग घरके छोटे-बड़े विवादोंको लेकर उनके सामने चले जाया करते थे। एक बारकी बात है। मैं उनके पास गया और अपने परिवारके एक बड़े व्यक्तिकी शिकायत करते हुए उनसे कहने लगा— ये अपने दायित्वको पूरी तरह नहीं निभा रहे हैं।

मेरी बात सुनकर श्रीभाईजी गम्भीर हो गये और प्यार पूर्वक मुझसे कहने लगे— *तुम तो अपना दायित्व पूरी तरह निभा रहे हो न ? ऐसी स्थितिमें अब तुम्हें अन्य व्यक्तिकी स्मृति और चिन्ता ही क्यों कर हो ? यदि चिन्ता होती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि तुम अपना दायित्व पूरा-पूरा नहीं निभा रहे हो। तभी तो अपनेसे बड़ोंकी कमीकी ओर तुम्हारा ध्यान गया। यदि सच्चाईके साथ तुम अपने कर्तव्य-पालनमें लगे रहोगे तो तुम्हारा प्रभाव अन्य छोटे-बड़े सभीपर पड़ेगा। यदि तुम इन छोटी-छोटी बातोंको लेकर उलझते रहोगे तो तुम उन लोगोंके मार्गमें भी बाधा उपस्थित करोगे जो अपना दायित्व सच्चाईसे निभा रहे हैं।*

श्रीभाईजीने इतने प्यार पूर्वक समझाया कि मनका सारा क्षोभ तत्काल दूर हो गया और मुझे अपनी क्षुद्रता दिखलायी देने लग गयी। मेरी आँखोंमें सलज्जताके भाव तैरने लगे। मैं प्रणाम करके श्रीभाईजीके पाससे चला आया।

यह सच ही कहा गया है कि आदमीका स्वभाव जल्दी नहीं बदलता। अपने स्वभावसे लाचार होकर एक बार फिर मैं शिकायत करने पहुँच गया। इस बार शिकायत अपने परिवारके व्यक्तिकी नहीं, अपितु 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागके एक सम्माननीय सदस्यकी। मैं उनकी शिकायत श्रीभाईजीके सामने करने लगा। जब मैं उनके कार्योंपर टिप्पणी करने लगा तो श्रीभाईजीने फिर उसी प्यारसे और फिर उसी रीतिसे मुझे समझाने लगे— मदन, तुमको अपना ध्यान अपने कामपर रखना चाहिये। तुम्हारे जिम्मे जो काम है, उसको पूरा करो। वह व्यक्ति जो *काम करता है, वह मेरा काम है, यहाँ तक कि उसका वह निजी काम भी मेरा ही काम है। तुम्हारा सच्चा हित इसीमें है कि तुम अपनी दृष्टिको निर्दोष बनावो। दृष्टिकी क्षुद्रताको दूर करो। किसी अन्यपर दोष-दृष्टि रखो ही क्यों ? दृष्टिकी निर्मलता जीवनको कितना अधिक*

सुखमय बना देती है, इसका अनुभव करके देख लो।

अब तो मैं बहुत ही लज्जित हुआ। मुझे अपनी क्षुद्रता दिखलायी देने लग गयी। मैं प्रणाम करके चुपचाप चला आया। उन्होंने न तो मुझ निन्दककी उपेक्षा की, न मुझे फटकार सुनायी और न मेरी क्षुद्रताके कारण अनादर किया, अपितु सदा ही प्यारकी वर्षा करते हुए मुझे समझानेका प्रयास किया। उनकी सिखावन रह-रह करके याद आती है।

[२] वह महान संतत्व

मैंने शार्ट-हैंन्ड और टाइपका थोड़ा-थोड़ा अभ्यास कर लिया था। मैं 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें तो कार्य करता ही था, पर मेरी यह भी बड़ी चाह थी कि श्रीभाईजी मुझसे भी पत्र लिखवाया करें। मेरा उत्साह देखकर श्रीभाईजीने मुझको अवसर दिया और पत्रका डिक्टेशन देनेके लिये बुला लिया।

श्रीभाईजी धीरे-धीरे बोल रहे थे और मैं शार्ट-हैंडमें पत्र लिख रहा था। उन्होंने एक-दो ही पत्र लिखवाये थे कि उनके सामने कोई अन्य काम आ गया और मुझको टाइप करके ले आनेके लिये कह दिया। मैं उनके पाससे चला आया और कुछ देर बाद पत्र टाइप करनेके लिये बैठा तो मैं अपना लिखा हुआ ही नहीं पढ़ पा रहा था। श्रीभाईजी इतना धीरे-धीरे बोलकर डिक्टेशन दे रहे थे कि कोई शीघ्र लिखनेवाला उसे हिन्दी भाषामें लिख ले सकता था, पर मैंने तो शार्ट-हैंडमें लिखा था और मेरी लिखावटके कई अंश मेरे लिये ही अपठनीय बन रहे थे। लिखावटको जितना पढ़ सका, उतने बोधपूर्ण अंशके आधारपर और कुछ स्मृतिके सहारे पत्रको टाइप करके मैं श्रीभाईजीके पास ले गया। मैं पत्र ले जा रहा था, पर मैं मन-ही-मन यह अच्छी तरह समझ रहा था कि मेरी अयोग्यताके कारण पत्र सही रूपमें नहीं तैयार किया गया है।

मैंने पत्र श्रीभाईजीके सामने रख दिया और श्रीभाईजीने उन पत्रोंको अपने हाथमें ले लिया। श्रीभाईजी पढ़ रहे थे उन पत्रोंको और मैं पढ़ रहा था श्रीभाईजीके मुखकी रेखाओंको। पत्रोंमें तथ्योंका प्रस्तुतीकरण ठीक से हुआ ही नहीं था, इसे जानकर भी उनके श्रीमुखपर असन्तोषकी एक भी रेखा नहीं थी, झुँझलाहटकी हलकी छाया भी नहीं थी। पत्र पढ़कर प्यार भरे स्वरमें उन्होंने मुझसे कहा— मुझे एक कामकी जल्दी थी और ऐसा लगता है कि उस जल्दीके कारण मैं तुमको डिक्टेशन जल्दी-जल्दी दे गया। इसी कारण तुम सही नहीं लिख पाये। मैं तुमको फिर बुलाऊँगा और तब धीरे-धीरे डिक्टेशन दूँगा।

यह सुनते ही मैं तो अवाक् रह गया। आदिसे अन्ततक मेरी गलती और उस सारी गलतीको श्रीभाईजीने अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने मेरी तनिक भी आलोचना नहीं की। मेरी अयोग्यतापर टीका-टिप्पणी करनेके स्थानपर स्वयंको ही दोषी ठहरा दिया। वस्तुतः मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही और मेरी भावनाएँ बार-बार कहने लगीं— ऐसा महान संतत्व! ■

वैद्य श्रीजानकीलालजी त्रिपाठी

पुष्पमालाका अर्पण

उदयपुरमें श्रीवसन्तीलालजी महात्मासे मेरा घनिष्ट परिचय था। वे अच्छे योगी थे। उनके पास मेरा उठना-बैठना हुआ करता था। सन् १९५६ की बात है। गीताप्रेसकी तीर्थयात्रा ट्रेन उदयपुर आयी थी। मैं उनके पास गया तो उन्होंने बड़े उल्लास पूर्वक कहा— *रातसे ही उदयपुर और आसपासका सम्पूर्ण वायुमण्डल सतोगुणसे परिपूर्ण हो गया है। यह निश्चय ही श्रीभाईजीके असाधारण आध्यात्मिक प्रभावका सूचक है। गीताप्रेसकी तीर्थयात्रा ट्रेन आयी है। उसमें श्रीभाईजी आये हैं। उनकी उपस्थितिसे वायुमण्डलमें परिव्याप्त सतोगुणके परमाणुओंका संस्पर्श मुझे प्राप्त हो रहा है।*

वे सम्माननीय योगी थे, अतः मुझे उनके उद्‌गारोंको सुनकर बड़ी प्रसन्नता इसलिये भी हुई थी कि श्रीभाईजीके पावन दर्शनकी चिर अभिलाषाकी पूर्तिका क्षण अब निकट था। श्रीभाईजीकी बड़ी प्रशंसा मैंने अपने पूज्य गुरुदेव श्रीदुर्गाशंकरजी नागरसे सुन रखी थी, जो उज्जैनके एक महान संत थे।

बहुत सबेरे मैं पुष्पमाला लेकर श्रीभाईजीके दर्शनार्थ उदयपुर स्टेशन गया। वहाँ मैंने खद्दरकी धोती पहने हुए एक व्यक्तिसे पूछा— श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार कहाँ बैठे हैं ?

जिनसे मैंने पूछा था, वे ही श्रीभाईजी थे, पर न मैं उनको पहचानता था और न उन्होंने यह कहा ही कि मैं ही हूँ। स्वयंको बतलानेके स्थानपर वे चुपचाप मुझे अपने साथ भगवा वस्त्र पहने हुए एक संन्यासीके पास ले गये और उनको माला पहना देनेका संकेत किया। मैं सरल स्वभावका ब्राह्मण बिना तर्क-वितर्क किये उन संन्यासीको माला पहनाकर घर चला आया। जब मुझे ज्ञात हुआ कि चुपचाप साथ ले जानेवाले ही श्रीभाईजी थे तो मुझे उनके 'आपु अमानी' भावपर बड़ा विस्मय हुआ। मैं तो श्रीभाईजीके इस दैन्य भावपर बलिहार था। अब तो यह भी जानकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि परिचयके अभावमें जिन संन्यासीको मैंने माला पहनायी, वे ही पूज्य श्रीराधा बाबा थे, जिनके चरणाश्रयमें मैं जीवनके शेष दिन व्यतीत कर रहा हूँ। इस घटनासे एक अर्थ यह भी तो ध्वनित हो रहा है कि भविष्यमें जिनका चरणाश्रय मिलना था, उनके प्रति पुष्पार्पणके माध्यमसे समर्पणका शुभारम्भ श्रीभाईजीने पहले ही करवा दिया था, भले ही सारा अनजानेमें हुआ था। यह अनजानापन हमारे-आपके लिये है, श्रीभाईजीके लिये नहीं।

■

श्रीजगदीशप्रसादजी शर्मा

उनका अन्तिम प्रवचन

श्रीभाईजीने आजीवन श्रीहरिभक्तिका प्रचार और श्रीहरिनामका वितरण किया और भगवानकी भक्ति-भावनाके प्रचार-प्रसारमें जो-जो संस्था अथवा व्यक्ति संलग्न थे, उनको समय-समयपर उन्होंने पूर्ण सहयोग दिया। सहयोग दिये जानेके अनेक प्रसंगोंमेंसे एक उत्कृष्ट उदाहरण है 'हरेकृष्ण आन्दोलन' के प्रवर्तक पूज्य स्वामी प्रभुपाद श्री ए. सी. भक्तिवेदान्तजी महाराजका। विगत पच्चीस वर्षोंकी अवधिके भीतर विश्वके अनेक देशोंमें *'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'* संकीर्तनकी जो तुमुल ध्वनि सुनायी दे रही है, इसका प्रधान श्रेय है स्वामी श्रीप्रभुपादजीको। इस महान कार्यकी प्रेरणा तो उन्हें अपने श्रीगुरुदेव महाराजसे मिली थी, पर इस महान कार्यमें समकालीन संतोंका समर्थन और सहयोग कम महत्त्वपूर्ण नहीं है और समर्थन एवं सहयोग प्रदान करने वालोंकी शृंखलामें श्रीभाईजीका नाम उल्लेखनीय है।

श्रीभाईजीसे स्वामी श्रीप्रभुपादजीकी भेंट सर्वप्रथम १९६२ के अगस्त मासमें गोरखपुरमें ही हुई थी। स्वामी श्रीप्रभुपादजी श्रीमद्भागवतकी स्वलिखित टीका छपवाना चाहते थे। इस टीकाके प्रकाशनके सहारे वे विश्वके कोने-कोनेमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी भविष्यवाणीके अनुसार श्रीकृष्ण-भक्तिके प्रचारका स्वप्न देख रहे थे। लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा था कि पृथ्वीपर जितने नगर-ग्राम हैं, सर्वत्र श्रीकृष्ण-नामका प्रचार होगा। अपनी टीकाके मुद्रणमें श्रीभाईजीसे आर्थिक सहयोग प्राप्त करनेकी भावना लेकर वे गीतावाटिका आये थे। यह सहयोग श्रीभाईजीसे उन्हें मिला। श्रीभाईजीने डालमिया चैरिटेबुल ट्रस्टसे उनको एक बहुत बड़ी धनराशि दिलवायी, जो टीकाके मुद्रण-कार्यमें स्वामी श्रीप्रभुपादजीके लिये बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई।

इसी प्रथम भेंटमें पारस्परिक बातचीतके मध्य स्वामी श्रीप्रभुपादजीने विश्वमें श्रीकृष्ण-भक्ति एवं भगवन्नामका प्रचार करनेकी दृष्टिसे श्रीभाईजीके सामने विदेश-यात्राकी भी अभिलाषा व्यक्त की। श्रीभाईजीने उनके उद्देश्य एवं उत्साहको अपना पूर्ण समर्थन प्रदान किया और समर्थनके साथ-साथ परामर्शके रूपमें कुछ सुझाव भी दिये, जिससे उक्त कार्यमें आशातीत सफलता प्राप्त हुई। श्रीभाईजीने उनके मिशनके प्रति जो सद्भावना व्यक्त की तथा उन्हें जो मंगल प्रोत्साहन दिया, वह उनकी भावी सफलताका एक महत्त्वपूर्ण सोपान था। महान कार्यके लिये सिद्ध संतकी सद्भावना मार्गकी बाधाओंको दूर करके सफलताको समीप ला देती है। मैं तो यही मानता हूँ कि स्वामी श्रीप्रभुपादजीकी भावी सफलतामें श्रीभाईजीकी सद्भावना भी एक प्रमुख हेतु रही है।

विदेशमें भगवान श्रीकृष्णकी भक्ति-भावना और नाम-संकीर्तनके प्रसारमें जो सफलता स्वामी श्रीप्रभुपादजीको मिली, उसका विवरण समय-समयपर श्रीभाईजीको देश-विदेशकी पत्र-पत्रिकाओंसे तथा स्वामी श्रीप्रभुपादजीके व्यक्तिगत पत्रोंसे मिलता रहता था। स्वामी

श्रीप्रभुपादजीको अपने मिशनमें भारतसे अधिकाधिक सहयोग मिले, इसके लिये श्रीभाईजीने कल्याण पत्रिकाके सन् १९७० के अप्रैल मासके अंकमें उस सफलताका विवरण चित्र सहित प्रकाशित किया था। 'कल्याण' पत्रिकाकी एक प्रधान नीति है कि जीवित व्यक्तिके वृत्तको नहीं छापा जाय, पर इस नीतिकी उपेक्षा करके श्रीभाईजीने कल्याणमें छः पृष्ठोंका स्थान दिया स्वामी श्रीप्रभुपादजीकी सफलताको प्रकाशित करनेके लिये। कल्याण पत्रिकाके माध्यमसे स्वामी श्रीप्रभुपादजीके कार्यको विज्ञापित और प्रचारित करना, यह बहुत बड़ा प्रमाण है उनके मिशनके प्रति श्रीभाईजीके आन्तरिक समर्थन एवं प्रत्यक्ष सहयोगका।

श्रीभाईजीने 'हरे कृष्ण आन्दोलन' की सफलताको केवल कल्याण पत्रिकामें प्रकाशित करके विराम नहीं ले लिया, अपितु इस सराहनीय सफलताके विवरणको जन-जनतक पहुँचानेके लिये वे एक पुस्तकके प्रकाशनका निर्णय ले चुके थे। पुस्तककी पाण्डुलिपि तैयार करनेका कार्य उन्होंने सौंप दिया भाई श्रीभीमसेनजी चोपड़ा एवं श्रीराधेश्यामजी बंकाको। इन दोनों बन्धुओंने लगभग डेढ़ सौ पृष्ठों वाली पुस्तककी प्रेस-कॉपी तैयार करके श्रीभाईजीके सामने रख दी थी। बस, खेद यही है कि श्रीभाईजीके नित्यलीलामें लीन हो जानेके कारण वह पुस्तक मुद्रित होकर समाजके सामने आ नहीं पायी।

स्वामी श्रीप्रभुपादजीको सहयोग प्रदान करनेकी दृष्टिसे अबतक जो कार्य श्रीभाईजी द्वारा हुआ, उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था गोरखपुरमें उन्हें ठहरनेके लिये स्थान देना तथा उनका अभिनन्दन करना। विश्व-भ्रमणके उपरान्त भारत वापस आनेपर जब स्वामी श्रीप्रभुपादजी देशके विभिन्न प्रदेशोंमें परिभ्रमण कर रहे थे, तब वे सन् १९७१ के फरवरी मासमें गोरखपुर भी पधारे थे। उनके पधारनेपर श्रीभाईजीने अपना श्रीकृष्ण निकेतन नामक बगीचा उन्हें ठहरनेके लिये दिया था, जो गीतावाटिकाके समान विशाल तथा हरा-भरा था और गीतावाटिकासे थोड़ी ही दूरपर स्थित था। श्रीकृष्ण निकेतनकी लहलहाती हरियालीके मध्य दो मंजिलवाली एक विशाल कोठी बहुत दिनोंतक स्वामी श्रीप्रभुपादजीके भक्तोंका आवास बनी रही तथा श्रीकृष्ण निकेतनमें रहते हुए वे लोग श्रीहरिनामका संकीर्तन एवं वितरण करते रहे।

श्रीकृष्ण निकेतनमें एक दिन स्वामी श्रीप्रभुपादजीने अपने परम पूज्य श्रीगुरुदेव महाराजका जन्म-दिवस सोत्साह मनाया। इस दिन देवाराधन एवं नाम-संकीर्तनके उपरान्त बहुत व्यक्तियोंको पुष्कल प्रसाद दिया गया। उस दिन अपने भक्तों एवं आगन्तुक नागरिकोंके समक्ष स्वामी श्रीप्रभुपादजीने गुरुभक्तिपर प्रवचन दिया। इस प्रवचनमें उन्होंने यह भी कहा— *जिन श्रीभाईजीसे श्रीमद्भागवतकी टीकाके प्रकाशनमें सहयोग मिला, जिन्होंने विश्वके कोने-कोनेमें हरिनाम प्रचारकी भावनाका समर्थन किया और विदेश-यात्राके लिये प्रेरणा दी, जिन्होंने अपनी विख्यात धार्मिक कल्याण पत्रिकामें हमारे प्रचारकार्यको प्रकाशित करके जन-जनके मनमें हमारे लिये स्थान बनाया और जिन्होंने गोरखपुरमें हमारे आवास एवं कार्यके लिये अपना यह श्रीकृष्ण निकेतन दिया, आज हम उन्हीं महानात्मा श्रीभाईजीके अतिथि बने हुए हैं। श्रीभाईजीने हमारा जैसा आतिथ्य किया और उनसे जैसा समर्थन, जैसी प्रेरणा, जैसा सहयोग, जैसा सद्भाव मिला, उसकी सराहनाके लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं।*

अपनी अत्यधिक रुग्णताके कारण श्रीभाईजी स्वामी श्रीप्रभुपादजीसे मिलनेके लिये नहीं

जा पाये, हाँ, एक दिन श्रीकृष्ण निकेतनसे स्वामी श्रीप्रभुपादजी ही गीतावाटिका आये श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये। आज लगभग नौ वर्ष बाद वे मिलनेके लिये आ रहे थे। आते समय वे सब बातें एक-एक करके उन्हें याद आ रही थीं कि किस प्रकार श्रीभाईजीने उनके मिशनके प्रति समर्थन एवं सहयोग प्रदान किया था। श्रीभाईजीने अपने कमरेमें स्वामी श्रीप्रभुपादजीका हार्दिक स्वागत किया तथा उनके द्वारा हो रहे महान कार्यकी सराहना की।

स्वामी श्रीप्रभुपादजीकी श्रीमद्भागवतकी टीकाके अतिरिक्त अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। वे पुस्तकें उन्होंने श्रीभाईजीको भेंट की तथा विदेशोंमें उनके निर्देशनमें चल रहे श्रीकृष्णभक्तिके प्रचार-प्रसार-कार्यकी तथा भगवन्नाम एवं भारतीय संस्कृतिके प्रति विदेशोंमें बढ़ती हुई आत्मीयता एवं अभिरुचिकी सम्यक् जानकारी दी।

इसके बाद गीतावाटिकाके श्रीराधाष्टमी पंडालमें स्वामी श्रीप्रभुपादजीके प्रवचनका आयोजन था। इस आयोजनमें रुग्ण होते हुए भी श्रीभाईजी कमरेसे नीचे उतरकर पंडालमें आये। यह सम्भवतः १९७१ ई. की २० या २१ या २२ फरवरीका दिवस था। यह श्रीभाईजीके जीवनका अन्तिम अवसर था, जब वे नीचे उतरकर पंडालमें पधारे हों। पंडालमें पहले श्रीहरिनाम संकीर्तन बड़े उत्साहके साथ उपस्थित भक्तोंने किया। फिर श्रोताओंके समक्ष प्रवचन देते हुए स्वामी श्रीप्रभुपादजीने कहा—

मानव जातिमें वही मानव श्रेष्ठ है, जो श्रीकृष्ण भक्त है। भगवान श्रीकृष्णकी भक्ति सर्व सुख प्रदान करती है। ऐसी श्रीकृष्ण-भक्तिको श्रीचैतन्य महाप्रभुने हरिनाम-संकीर्तनका अति सरल उपाय बतलाकर मानव मात्रके लिये सर्व सुलभ बना दिया है। कलियुगमें श्रीकृष्ण-नाम-संकीर्तनसे बढ़कर अन्य कोई सरल उपाय है ही नहीं और देश-विदेशमें हरिनाम-प्रचार करनेका कुछ प्रयास मेरे द्वारा हो रहा है। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपासे मुझे बड़ी सफलता मिली है और विदेशमें, मुख्यतः अमेरिकामें हरिनाम-संकीर्तनका खूब प्रचार हुआ है। भारतके पास श्रीकृष्ण-भक्ति एवं श्रीहरिनामकी ऐसी अतुल सम्पत्ति है, जिसे वह विश्व-शान्तिके अचूक उपायके रूपमें सारे विश्वको दे सकता है। मेरे पास श्रीभाईजी बैठे हुए हैं। श्रीभाईजी सच्चे वैष्णव हैं, वे परम श्रीकृष्णभक्त हैं। मेरे हरिनाम-वितरणमें उनसे समय-समयपर सहयोग मिला है और सदा मिलता रहे, यही उनसे अनुरोध है।

मंचपर स्वामी श्रीप्रभुपादजीके समीप ही श्रीभाईजी बैठे हुए थे। स्वामी श्रीप्रभुपादजीके प्रवचनके उपरान्त श्रीभाईजीने उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए समक्ष स्थित श्रोताओंसे कहा—

मेरी अस्वस्थताको देखकर घरवालोंने मुझे नीचे पंडालमें जानेसे मना किया, परंतु पूज्य श्रीमहाराजजीके सांनिध्यसे मैं वंचित रहना नहीं चाहता था, अतः मैं नीचे आया और मैं बहुत दिनों बाद नीचे उतरा हूँ। आज मैं कई माह बाद मंचपर बैठकर बोल रहा हूँ। मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है महाराजजीके कार्यको देखकर। नाम-प्रचारके द्वारा श्रीकृष्ण-भक्तिका वितरण देखकर मुझे बड़ा सुख मिल रहा है। यह दिव्य सेवा है। आज विश्व अशान्तिके दावानलमें दग्ध हो रहा है। उस ज्वालासे मुक्त होकर अखण्ड शान्ति पानेका एक मात्र साधन है श्रीकृष्ण-भक्ति, श्रीहरिनाम-संकीर्तन एवं संयमित जीवन। मानव जीवनको वही श्रीकृष्ण-भक्ति परम शान्ति एवं

अखण्ड आनन्दसे परिपूर्ण कर देती है, जो हरिनाम-संकीर्तन एवं संयमित जीवनसे सम्पुटित होती है। श्रीहरिनाम-संकीर्तनके प्रचारके साथ-साथ जीवनको संयमित बनाने वाले जिस आचार-संहिताके प्रति महाराजजीका आग्रह है, उस नियमावलीको देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इससे श्रीकृष्ण-भक्ति जीवनमें सुदृढ़ हो जाती है। महाराजजीके द्वारा भगवान श्रीकृष्ण एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु भगवद्भक्ति एवं हरिनामके प्रचारका जो कार्य करवा रहे हैं, यह प्रशंसनीय है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा था कि विश्वके नगर-नगर, ग्राम-ग्राममें श्रीकृष्णनामका प्रचार होगा। भगवानने कलियुगके जीवोंपर कृपा करके स्वामी श्रीभक्तिवेदान्तजी महाराजके द्वारा अमेरिका, यूरोप तथा जापान आदि देशोंके नगरोंकी गली-गलीमें भगवन्नाम-कीर्तनका प्रसार करवाके सम्भवतः उसीका सूत्रपात किया हो। विश्वके लोगोंको महाराजजीके कार्यसे बड़ा आश्वासन मिला है। मेरी आन्तरिक सद्भावना है कि श्रद्धेय महाराजजी जगतके लोगोंके जीवनको सदाचार सम्पन्न बनाकर नाम-प्रचारके द्वारा उनका कल्याण करनेमें सफल हों। यह महान कार्य भी भगवान श्रीकृष्णका ही है, हम तो केवल उसमें निमित्त मात्र बन जायँ। भगवत्कृपासे यह बहुत ही कल्याणकारी कार्य हो रहा है। महाराजजीने सहयोग देनेकी बात कही। कुछ समय पूर्व कल्याणमें महाराजजीके महान कार्यसे सम्बन्धित कुछ बातें प्रकाशित हुई थीं। अब एक परिचय पुस्तक छपवानेका विचार है, जिससे महाराजजीके कार्यकी महानताका परिचय लोगोंको मिल सके। हमारी वाटिकामें भी अष्ट प्रहरिया अखण्ड हरिनाम संकीर्तन विगत अढ़ाई सालसे चल रहा है। इसमें अधिकांश लोग नवद्वीपके ही हैं। इस समय मुझे बोलनेमें थकावटका अनुभव हो रहा है, अतः अन्तमें महाराजजीसे इसी शुभाशीर्वादके लिये प्रार्थना है कि जीवनके अन्तिम दिवसोंमें मति सदैव श्रीकृष्ण-चरणोंमें लगी रहे।

स्वामी श्रीप्रभुपादजीके सम्मानमें दिया गया यह अभिनन्दन भाषण ही श्रीभाईजीके जीवनका अन्तिम प्रवचन था, जिसके शब्द-शब्दमें प्रतिपादित है श्रीकृष्ण-भक्ति, श्रीकृष्ण-स्मृति, हरिनाम-संकीर्तन एवं सदाचारी जीवन। उनके जीवनकी जो परम दिव्य भाव निधि थी, उसका प्रतिपादन उन्होंने अपने अन्तिम प्रवचनमें भी किया। ■

श्रीगुलाबचन्दजी बोथरा

[१] प्रथम दर्शनमें अनुभव

सन् १९५२ के मई-जूनका महीना रहा होगा। बी-कॉमकी परीक्षा देकर मैं देशनोक (बीकानेर, राजस्थान) से रायपुर (मध्य प्रदेश) आ गया था। अनेक बार ग्रीष्मावकाशमें मैं रायपुर अपने ननिहाल आ जाया करता था। उस समय मेरी युवावस्था थी। आयु लगभग इक्कीस वर्षकी रही होगी। उन दिनों मेरे मनमें पता नहीं क्यों, किसी अज्ञात आकर्षणसे या पूर्व जन्मके संस्कारोंवशात् अपने तत्कालीन विषयाक्रान्त जीवनसे एक प्रकारकी वितृष्णा-सी हो गयी। मनमें प्राणोंको मथनेवाला विचारोंका एक तुमुल संघर्ष चलता रहता, अतः शान्ति पानेके लिये मैंने सद्ग्रन्थोंका अध्ययन करना शुरू किया। मैंने स्वामी रामतीर्थ, श्रीशिवानन्दजी

सरस्वती आदिकी पुस्तकें पढ़ी। 'कल्याण' नामक मासिक पत्रिकासे परिचय भी उन्हीं दिनों हुआ। स्वामी श्रीशिवानन्दजीकी पुस्तकोंके पढ़नेसे मन उनसे मिलनेके लिये और शान्तिका उपाय पूछनेके लिये लालायित रहने लगा।

मेरे नानाजीकी दुकानके एक कोनेमें एक स्वर्णकार सज्जन काम करते थे। खाली समयमें मैं कभी-कभी उनके पास बैठ जाता था। एक दिन अपनी मनोव्यथा उन्हें सुनाकर मैंने कहा— मेरा विचार डिवाइन लाइफ सोसाइटीके संस्थापक पूज्य स्वामी श्रीशिवानन्दजीके पास जानेका है।

मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा— स्वामीजी तो विदेश गये हुए हैं। आप गीताप्रेस, गोरखपुर चले जाइये। संभव है, आपका मनोरथ वहाँ पूरा हो जाय।

उनका सुझाव मुझे जँच गया। इसके पूर्व न तो मैंने कभी पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का नाम सुना था और न ही पूज्य श्रीसेठजी (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) का ही। कभी-कभार 'कल्याण' पत्रिकाको देखा-पढ़ा था। किन्तु गीताप्रेस या उससे सम्बन्धित किसी व्यक्ति-विशेषके प्रति कोई विशेष आस्था या आकर्षण नहीं था। जो भी हो, उन सज्जनकी बात दैवी प्रेरणासे ऐसी गले उतरी कि मैंने गोरखपुर जानेका निश्चय कर लिया। गर्मीकी छुट्टियाँ समाप्त हो जानेके बाद मुझे रायपुरसे वापस देशनोक जाना था। मैंने घरवालोंसे कहा कि मैं गोरखपुर होते हुए जाऊँगा। उसपर नानाजी, माताजी, मामाजी आदिको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन लोगोंने बहुत विरोध किया, पर मेरे हठको देखकर अन्तमें उन्होंने सपत्नी गोरखपुर जानेकी स्वीकृति दे दी।

गोरखपुर पहुँचकर पहले मैं गीताप्रेस गया। वहाँ पता चला कि गीताप्रेसके संचालक पूज्य श्रीसेठजी यहाँ नहीं हैं और पूज्य बाबूजी यहाँसे करीब अढ़ाई मील दूर गीतावाटिकामें रहते हैं। उन्होंने ताँगेवालेको समझा दिया। ताँगा गीतावाटिकाकी तरफ बढ़ने लगा। सावनका महीना था, कुछ-कुछ बादल भी छाये हुए थे। मार्गमें अँधेरा था। जैसे ही धर्मशाला-स्थित रेलवे पुलके नीचेसे ताँगा आगे बढ़ा, वहाँ दूर-दूरतक एकाध चिरागकी रोशनीके अलावा घना अँधेरा था। मन सहज ही आसपासके जंगल एवं सन्नाटेको देखकर सशंकित हो उठा। उन दिनों गीतावाटिकाके समीपवर्ती सभी क्षेत्रोंमें आम एवं अमरूदके बड़े-बड़े बाग थे। मेरी धर्मपत्नीके शरीरपर स्वर्णाभूषण थे। स्थान नवीन होनेसे मन ज्यादा भयाक्रान्त हो गया। किसी भी आसन्न विपत्तिका सामना करनेके लिये मैं सजग होकर ताँगेपर बैठ गया। धीरे-धीरे उस सघन अटवीको पार करके ताँगा जब गीतावाटिकाके द्वारपर पहुँचा, तब मन शान्त हुआ।

मैं गीतावाटिका पहुँचा था सन् १९५२ ई. के जुलाई मासमें शनिवारके दिन। यहाँ मुझे एक कमरेमें ठहराया गया और मेरी धर्मपत्नीको पूज्य बाबूजीकी सुपुत्री आदरणीया सावित्रीबाई तथा पूज्या माँके पास ठहरा दिया गया। मेरे रहने-खाने-पीने-सोनेकी जरूरतसे अधिक व्यवस्था की गयी और इस सेवा-सँभालका मेरे मनपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा कि एक सर्वथा नवीन आगन्तुक व्यक्तिका कितना अधिक स्वागत-सत्कार किया जा सकता है। पूज्य बाबूजीका संकेत ही इस सारे स्वागत-सत्कारका प्रेरक था। इस सत्कारका संस्कार मेरे लिये अमिट हो गया।

मुझे बताया गया कि पूज्य बाबूजीसे मेरी भेंट अगले दिन रविवारको सबेरे हो पायेगी। मैं

जल्दीसे नहा-धोकर तैयार हो गया और बुलाहटकी प्रतीक्षा करने लगा। व्यस्तताके कारण पूज्य बाबूजी समय शामको ही निकाल पाये और तभी मुझे बुलाया गया। मेरे जाते ही पूज्य बाबूजीने कहा— दरवाजेकी सिटकनी लगा दो।

उनकी आज्ञा मिलते ही मैंने सिटकनी बन्द कर दी। अब कमरेमें केवल वे और मैं, बस, दो ही व्यक्ति थे। ज्यों ही मैं उनके सामने बैठा, ऐसा लगा कि चिरकालतक पृथक् रहनेके बाद सहसा किसी प्रियजनसे मिलन हो गया हो या बहुत तृषित रहनेके बाद किसी प्यासेको शीतल जल प्राप्त हो गया हो, इसी प्रकारकी अशेष तृप्ति एवं अखण्ड आनन्दका बोध उस समय हुआ।

इस प्रथम दर्शनमें ही मन मुग्ध हो गया। पूज्य बाबूजीकी उस अमृतमयी दृष्टि एवं स्नेहमयी भावभंगिमाकी मधुरताने मनको ऐसा मोह लिया कि शब्दोंमें उस समयकी मनस्थितिका चित्रण सम्भव नहीं है। ऐसा लगा कि इस दिव्यमूर्तिका अंग-प्रत्यंग अन्तर्बाह्य ऐसे अमृत तत्त्वसे गठित है, जो इस मर्त्य भूमिपर प्राकृतके सदृश दृग्गोचर होनेपर भी सर्वथा अलौकिक है। मेरे मनमें सहसा एक भावात्मक उफान आया। मैं अपनी हीनता-दीनता-अल्पज्ञता-असमर्थता-कलुषतासे भरी सम्पूर्ण जीवन गाथा सारांशमें उन्हें कह गया। कहते-कहते मैं फूट-फूट करके रो पड़ा। आज मुझे भी इस रोदनपर आश्चर्य हो रहा है। मुझे स्मरण नहीं आता कि कभी किसीके सामने इस प्रकार विकल होकर मैं रोया होऊँ, पर उस दिन, उस क्षण न जाने कैसा भावात्मक आवेग आया कि मैं बरबस रो पड़ा। खूब रोया और देरतक रोता रहा। मुझे सान्त्वना और शान्ति देनेके लिये पूज्य बाबूजी बराबर मुझे सहलाते रहे। उस अमृतमय स्पर्शमें सीमातीत वात्सल्य था, कल्पनातीत आत्मीयता थी, अनुमानातीत आश्वासन था। उन्होंने बड़ी ही प्यार भरी वाणीमें कहा— *तुम सर्वथा निष्पाप हो, सर्वथा निर्मल हो, तुम विश्वास करो, मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरे हो। तुम पूर्णतः चिन्तारहित हो जाओ।*

बातचीतके प्रसंगमें रुद्राक्षकी मालाकी बात चली। उन्होंने तुरन्त अपने गलेमें पहनी हुई रुद्राक्षकी माला उतारकर मुझे दे दी और रह-रह करके वे मुझे प्यारभरा आश्वासन देते रहे। इस तरह लगभग दो-अढ़ाई घंटे ऐसे व्यतीत हो गये कि कुछ पतातक नहीं चला। जब मैं उठा, तब उनके प्यारसे संसिक्त मेरा रोम-रोम किसी अननुभूत आनन्दसे परिप्लुत था। स्वयंको मैं अत्यन्त हल्का अनुभव कर रहा था मानो मेरे मनपर किसी प्रकारका भी कोई बोझ अब नहीं रहा। मैं अनुभव कर रहा था कि संत-चरणका प्रथम दर्शन एवं संत-वाणीका प्रथम आश्वासन जीवनको किस भाँति और कितना अधिक प्रसन्नता एवं प्रफुल्लतासे परिपूर्ण कर देता है। जैन-मतावलम्बी होनेके कारण मैं जानता ही नहीं था कि भगवत्प्राप्ति भी कोई प्राप्तव्य स्थिति होती है। गोरखपुर आनेके पूर्वतक न मैं पूज्य बाबूजीको जानता था और न मैं भगवत्साक्षात्कारी संतके महत्त्वको समझता था, पर एक सिद्ध संतका प्रभाव क्या होता है, उसका प्रत्यक्ष अनुभव गोरखपुरकी इस यात्रामें मिला। मैं अगले दिन सोमवारको पूज्य बाबूजीसे विदाई लेकर अपनी धर्मपत्नीके सहित देशनोक चला आया।

मेरे मनमें अब उनके प्रति एक तीव्र आकर्षण उत्पन्न हो गया। उनकी स्मृतिसे अब मेरे मनमें मधुरिमा और पवित्रताकी ऐसी लहर उठती रहती, जो अनिर्वचनीय थी।

[२] व्यावहारिक कुशलता

पूज्य बाबूजीके आदेशानुसार गोरखपुरसे मैं देशनोक वापस आ गया, पर घरपर मेरा मन नहीं लग रहा था। लगता था जैसे दीवारें काट खायेंगी। बार-बार पूज्य बाबूजीके पास जाने-रहने, उठने-बैठनेकी बलवती इच्छा मनमें होती। मैंने अपनी मनोव्यथा माँसे कही। उसने मेरे पूज्य पिताजीसे कहा। उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। कोई चारा न देखकर मैं बिना बताये देशनोकसे पैदल ही चल पड़ा, पर अगले स्टेशन पलानामें मेरे चाचाजी मुझे खोजते हुए आये और मुझे वापस लौटा ले गये। मैं लौटा लाया गया, पर मेरा मन तो गोरखपुर जानेके लिये व्यग्र था। एक दिन अवसर देखकर मैंने घरमें बिस्तरपर एक पत्र लिखकर रख दिया और अँधेरे-अँधेरे ही देशनोकसे पैदल लगभग बीस मीलका रेतीला रास्ता तय करके मैं बीकानेर आया। वहाँ अपने एक परिचित सज्जनसे रुपया उधार लेकर मैं गोरखपुर आ पहुँचा। गोरखपुरमें गीतावाटिकाके प्रवेशद्वारपर ही पूज्य बाबूजी मिल गये। मैं उनके चरणोंपर गिर पड़ा। मुझे उठाकर उन्होंने पहला प्रश्न यही किया— क्या घरसे बिना पूछे आये हो ?

मैं क्या उत्तर देता, चुपचाप आँखें नीची किये खड़ा रहा। मेरी चुप्पीने स्वयं ही उत्तर दे दिया कि मैं बिना बताये आया हूँ। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि कैसे उनको यह सब ज्ञात हो गया। स्नानोपरान्त जब उनसे मिला, तब उन्होंने पूछा— यात्रा-व्ययके लिये किससे कितने रुपये लिये ?

मैंने सब बता दिया। उन्होंने तुरन्त उन सज्जनको वह राशि मेरे द्वारा मनीआर्डरसे भिजवा दी। इसके साथ ही उन्होंने मेरे घरपर तत्काल तार एवं पत्रद्वारा सूचना भिजवा दी कि गुलाबचन्द सकुशल गोरखपुर पहुँच गया है। पूज्य बाबूजीकी व्यावहारिक क्षेत्रमें भी ऐसी कुशलता और सावधानी देखकर मन बड़ा प्रभावित हुआ।

कुछ दिनोंके बाद पूज्य बाबूजीने मुझे समझा-बुझाकर वापस देशनोक भेज दिया। वे बात-बातमें प्रायः मुझे यही समझाया करते थे कि माता-पिताकी सेवा ही परम धर्म है, उससे सभी प्रकारकी अभीष्ट-सिद्धि हो जाती है।

पूज्य बाबूजीकी आज्ञाको मैंने शिरोधार्य कर लिया और उनके वियोग जन्य दुखकी बोझिलताको मनपर लिये-लिये मैं देशनोक वापस आ गया। यहाँ किसी भी कार्यमें न मन लगता और न प्रवृत्ति ही होती। लाचार होकर मैं फिर अपनी मानसिक स्थितिका चित्रण एक पत्रमें लिखकर और उसे बिस्तरपर छोड़ उसी प्रकार पुनः बीस मील पैदल चलकर बीकानेर आया। वहाँ फिर किसीसे रुपये लेकर टिकिट कटवाकर गोरखपुर आ गया। पुनः पूज्य बाबूजीने मुझे उसी पूर्ववत् प्यारसे अपने पास रखा। उन्होंने एक क्षण भी मेरी भावुकताको तिरस्कार भरी दृष्टिसे नहीं देखा। थोड़े दिनों बाद पूज्य बाबूजीने पुनः मुझे समझा-बुझाकर घर भेज दिया। मैंने अनुमान लगाया कि जबतक मैं इस प्रकार भाग-भागकर जाऊँगा, तबतक पूज्य बाबूजी मुझे अपने पास नहीं रखेंगे।

जब तीसरी बार घरसे चलने लगा तो घरवालोंसे आज्ञा लेकर चला और गोरखपुर पहुँचा तो पूज्य बाबूजीने अपने पास रखा। गीतावाटिकामें रहते समय साधनाके नामपर जप-पाठ-स्वाध्याय तो थोड़ा बहुत चलता ही था, एक दिन पूज्य बाबूजीने पूछा— कोई

काम करोगे ?

मैंने कहा— आप जो कहेंगे, वही मुझे करना है।

उन दिनों बाढ़ पीड़ित क्षेत्रोंमें गीताप्रेसकी ओरसे सेवा-कार्य चल रहा था। पूज्य बाबूजीने सेवा-दलके कार्य-कर्ताओंके साथ मुझे भेज दिया। सेवा-कार्य एक-डेढ़ माहतक चला। सेवा-कार्य बन्द होनेके बाद पूज्य बाबूजीने मुझे गीताप्रेसमें कार्य करनेके लिये भेजा, पर भेजनेकी पद्धति भी पूज्य बाबूजीकी अपनी ही थी। गीताप्रेसके प्रधान प्रबन्धक श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठियाको बुलाकर पूज्य बाबूजीने कहा— यह कार्य तभीतक करेगा, जबतक इसका मन होगा। जब यह गीतावाटिका आने लगे तो इसे रोका न जाय।

मुझे आश्चर्य होता था कि क्या पूज्य बाबूजी अपने पासमें रहनेवालोंकी और अपने मातहत कार्य करनेवालोंकी भावनाओंका इतना अधिक ध्यान रखते हैं। ऐसा तो कभी भी मेरे देखने-सुननेमें नहीं आया। मैं गीताप्रेसमें अब दत्तचित्त होकर कार्य करने लगा, पर वहाँ सर्वथा मेरी रुचिको महत्त्व प्रदान किया गया।

इस बीचमें और भी कई प्रकारके सोपान आये और कई परिवर्तन हुए, पर अन्तमें सन् १९५६ ई. में पूज्य बाबूजीने अपने सम्पादकीय विभागमें मुझे ले लिया और मैं गीतावाटिकामें ही स्थायी रूपसे काम करने लगा। इस अवधिमें मुझे सतत देखनेको मिला कि एक भगवत्साक्षात्कारी परम सिद्ध संत होते हुए भी पूज्य बाबूजी व्यावहारिकतामें कितने कुशल हैं, जागतिकतामें कितने सावधान हैं और पारस्परिकतामें कितने हितैषी हैं।

पूज्य बाबूजीकी व्यावहारिक कुशलताका एक और उदाहरण है। प्रारम्भमें जब-जब मुझे उन्होंने देशनोक भेजा तो मैं वहाँ उनसे पत्र-व्यवहार करता था। मेरे मनमें यह सन्देह बना रहता था कि मुझे घरके पतेसे पत्र मिलेंगे या नहीं, अतः मैंने अपने एक मित्रका पता पूज्य बाबूजीको लिख दिया। अब वे उसी मित्रके पतेसे पत्र देने लगे। लिफाफेके ऊपर केवल मित्रका ही नाम-पता रहता था। उस लिफाफेके अन्दर मेरे नामका एक बन्द लिफाफा रहता था। साथ-साथ समानान्तर एक खुला पोस्टकार्ड या लिफाफा अलगसे मेरे घरके पतेसे मुझे देते थे। उन सभी पत्रोंमें मेरे लिये अतिशय प्यारसे भरी सीख रहती थी। लिफाफाके सहित वे सभी पत्र जीवनकी निधिकी भाँति आज भी मेरे पास सहेजकर रखे हुए हैं। ऐसे वात्सल्य एवं प्यारसे भरे अनेक अवसर जीवनमें आये, जो आज भी मेरे हृदयपटलपर अंकित हैं।

[३] घावकी मरहम-पट्टी

मुझे गोरखपुर आये डेढ़-दो साल ही हुआ होगा। उसी बीच मेरी धर्मपत्नी मेरे साथ देशनोकसे आयी थी। उस समय पृथक् रहनेकी व्यवस्था नहीं थी, अतः पूज्य बाबूजीने मेरी धर्मपत्नीके रहनेकी व्यवस्था पूजनीया माँजीके पास ही कर दी थी।

एक बार मेरी धर्मपत्नीकी कोहनीके पास एक बड़ा-सा फोड़ा हो गया और घाव पक गया। मेरी धर्मपत्नीको पूज्य बाबूजीने अपनी सगी बेटी-सा वात्सल्य दिया। ज्यों ही पूज्य बाबूजीको इसकी जानकारी मिली, उन्होंने उसे बुलाकर घावको देखा और स्वयं अपने हाथसे उसके घावको धोकर दवा लगायी और पट्टी बाँध दी। यह क्रम कई दिनोंतक चला। पूज्य बाबूजी अपने पास गर्म पानी, रूई, दवा, पट्टी आदि मँगवा लेते और कोठीके हॉलमें मरहम-पट्टी करते।

चार-पाँच दिनोंके बादकी बात है। पूज्य बाबूजी उस दिन अत्यधिक व्यस्त थे, अतः उन्होंने मुझे कहा— गुलाब ! आज तुम घाव धोकर पट्टी बाँध दो। यहाँ गर्म पानी आदि सब रखा हुआ है। इस समय मुझे थोड़ी जल्दी है।

इतना कहकर पूज्य बाबूजी हॉलके बगलवाले कमरेमें संध्या-वन्दन करनेके लिये आसनपर बैठ गये। उस कमरेके बीचो-बीच एक दरवाजा था, जो हॉलमें खुलता था। वहाँसे वे बीच-बीचमें संध्या करते-करते नजर डाल लिया करते थे। मैं घाव धो रहा था। उसके आसपासकी चमड़ी मुरझा-सी गयी थी, अतः मैंने उसे खींचकर हटाना शुरु किया। दर्दके कारण मेरी धर्मपत्नीके मुखसे कराहनेकी आवाज निकली। उसे सुनते ही तुरन्त पूज्य बाबूजी संध्या-वन्दन अधूरा छोड़कर आसनसे उठे और मुझे डाँटने लगे— कहीं ऐसे घाव धोया जाता है ? दर्दके मारे यह कराह उठी और इसके आँसू निकल आये। हटो, अब मैं ही इसकी पट्टी बाँधूँगा।

मैं पीछे हट गया। पूज्य बाबूजीने फिर स्वयं सारा कार्य किया और प्रतिदिन करते रहे, जबतक कि वह घाव ठीक नहीं हो गया। चाहे जितनी व्यस्तता हो, घावकी मरहम-पट्टीके लिये पूज्य बाबूजी समय निकाल ही लेते थे। यह कार्य डाक्टरकी बात क्या, किसी भी नर्स या कम्पाउण्डरके द्वारा करवाया जा सकता था, पर उनको तो एक जीवात्माका कल्याण करना था और उसके अन्तःकरणमें 'जीवनकी सुवास' भरनी थी। वस्तुतः वे तो चिकित्साके बहानेसे जन्म-जन्मके घावोंकी मरहम-पट्टी कर रहे थे।

[४] स्नेहमय व्यवहार

मेरी प्रथम पुत्री चम्पा लगभग छः माहकी रही होगी, उन दिनों वह अपने ननिहाल डूँगरगढ़ गयी हुई थी। डूँगरगढ़ राजस्थानमें रतनगढ़के पास ही एक छोटा-सा नगर है। पूज्य बाबूजी रतनगढ़ गये हुए थे। पूज्य बाबूजीको सत्संगके लिये स्थान-स्थानपर जाना पड़ता था। एक बार डूँगरगढ़-निवासियोंने पूज्य बाबूजीको सत्संगके लिये बुलाया और पूज्य बाबूजी वहाँ गये। पूज्या माँजी भी साथमें गयी थीं।

सत्संगमें चम्पाकी माँ एवं उसकी बड़ी बहन मनोहरी बाई भी पूज्य बाबूजीका आना सुनकर गयी। संत्सगके बाद पूज्य बाबूजीने डूँगरगढ़ निवासी श्रीवृद्धिचन्दजी मूँधड़ासे पूछा— गुलाबचन्दका ससुराल कहाँ है।

उन्होंने हाथसे संकेत करते हुए बताया— बस, पास ही वह सामनेकी तरफ है।

उसके बाद वे तुरन्त ही मेरे ससुरालके घरकी तरफ चल पड़े। घरमें सीढ़ियोंसे ऊपर चढ़कर गये। उनके इस अप्रत्याशित आगमनसे सभी परिवारवाले आश्चर्य एवं आनन्दसे अभिभूत हो गये। पूज्य बाबूजीके इस उन्मुक्त एवं सरल स्वभावकी सभीके हृदयपर अमिट छाप पड़ गयी। मैं उस समय वहाँ नहीं था, मेरे श्वसुरजी एवं साले आदि भी कोई नहीं थे। घरमें वृद्धा सास, मेरी पत्नी एवं उसकी बहन थी। मेरी सालीने यह सोचकर कि पूज्य बाबूजी आचार-विचारवाले हैं, उसने बड़े ही संकोचसे पूज्य बाबूजीसे प्रार्थना की— आप हम ओसवालोंके घर और तो कुछ नहीं लेंगे, पर मेवा तो स्वीकार कर ही सकते हैं ?

पूज्य बाबूजीकी प्रसन्न अनुमति पाकर उसने मेवा एवं कुएँका ताजा जल मँगवाकर सामने रख दिया। प्रेममूर्ति बाबूजीने बड़े चावसे उसे खा लिया। फिर उन्होंने पुत्री चम्पाको गोदमें लेकर

उसे प्यार किया और उसके हाथमें आशीर्वादस्वरूप कुछ रुपये दिये। उनके उस आत्मीयतापूर्ण स्नेहमय व्यवहारसे सभीका हृदय अतिशय आनन्दसे भर गया। फिर मेरी सासने राजस्थानकी पुरानी परम्पराके अनुसार सम्मान-दानके प्रतीकस्वरूप दूध एवं चीनी पूज्या माँजीके पास भिजवायी। उसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस तरह अपने हृदयके अपरिसीम स्नेहका दान करके पूज्य बाबूजी विदा हुए। सभीके मन-मस्तिष्क उनके उदात्त-उन्मुक्त स्वभावकी अमृतमयी स्मृतिसे सरावोर थे।

[५] विक्षिप्तताकी दवा

बात उस समयकी है, जब मेरी धर्मपत्नीकी गोदमें डेढ़ वर्षीया बालिका चम्पा थी। चम्पाकी माँको हिस्टीरिया हो गया। यह रोग बढ़ता गया और उसकी विक्षिप्तता बढ़ती गयी। हमलोग गीतावाटिकाके बाहर एकदम सटे हुए एक मकानमें रहते थे। बीमारीके कारण अनेक बार वह भोजन नहीं करती थी, इससे रोग बढ़ जाता था। उस समय वह दवा आदि भी नहीं लेती थी। रातभर उसे नींद नहीं आती थी। एक बार तो दो दिन बीत गये, न उसने स्नान किया और न भोजन ही किया और न वस्त्र ही बदले। रात्रिमें दवा देनेपर उसे फेंक देती थी। उसकी विक्षिप्तता अधिक बढ़ गयी और मुझसे कहती कि कोई दरवाजा खटखटा रहा है, बुला रहा है और स्वयं उठकर दरवाजा खोलनेके लिये जाना चाहती। बहुत हठ करनेपर मैं दरवाजा खोल भी देता और फिर 'कोई नहीं है' यह कहकर मैं द्वार बन्द कर लेता। मैं किसीसे संकोचवश कुछ नहीं कहता था, पर रातमें जागनेसे मेरी परेशानी भी बहुत बढ़ गयी। इस भीषण रुग्णतामें एक विचित्र बात देखनेको मिली। मैं अपनी धर्मपत्नीसे पूछ बैठा– इस संसारमें तुमको सबसे अधिक प्रिय कौन लगता है ?

मेरी पत्नीने उसी विक्षिप्तावस्थामें सहज ही कहा– बाबूजी मुझे सबसे प्रिय लगते हैं।

एक जैन महिलाके हृदयपर साकारोपासक पूज्य बाबूजीके वात्सल्यका ऐसा 'साम्राज्य' ! मेरे विस्मयकी सीमा नहीं थी। अस्तु, यह बात तो बीचमें ही मैं इसलिये कह गया कि यह तथ्य मुझे कभी भूलता नहीं।

इस प्रकार जब मेरी पत्नीको बिना खाये, बिना नहाये, बिना सोये और बच्चीको बिना दूध पिलाये तीसरा दिन बीतने लगा तो मैं घबरा उठा। मैं पूज्य बाबूजीके पास गया और अपना कष्ट सुनाया। संयोगसे उस दिन छोटी श्रीराधाष्टमी थी, कार्तिक कृष्णा अष्टमीवाली। मेरी सारी बातें एवं परेशानी सुनकर उन्होंने कहा– आरतीके बाद तुम चम्पाकी माँको मेरा नाम लेकर बुला लाना।

मैं घर गया और उससे कहा– तुमको बगीचेमें बाबूजीने बुलाया है।

पूज्य बाबूजीका नाम सुनते ही वह यन्त्रवत जिस हालतमें थी, उसी हालतमें चल पड़ी। उसने तीन दिनसे न स्नान किया था और न कपड़े बदले थे, पर पूज्य बाबूजीके नामपर मैले वस्त्र, बिखरे बाल, अनसँवरा मुख इसी रूपमें वह चल दी भीड़की बिना परवाह किये। उसे भीड़से क्या मतलब, वह तो पूज्य बाबूजीके बुलानेपर बाबूजीके पास आयी थी। मैंने बाबूजीसे उसके आ जानेकी सूचना दी।

पूज्य बाबूजी उस समय आँगनमें स्थित पूजागृहमें थे। उन्होंने उसको सामनेवाले कमरेमें

बैठानेके लिये कहा। मैंने उसे उस कमरेमें लाकर बैठा दिया। वह चुपचाप बैठ गयी। अनिद्रा, अनाहार, विक्षिप्तावस्थाके कारण घरपर जिस 'उपद्रव' का सामना मुझे करना पड़ता था, उस प्रकारकी कोई परेशानी मुझे यहाँ नहीं झेलनी पड़ी। वह सामान्यकी भाँति बैठी रही। थोड़ी ही देरमें पूजा-आरती सम्पन्न करके पूज्य बाबूजी कमरेमें आ गये। कमरेमें आते ही पूज्य बाबूजीने पूछा— कुछ खाओगी ?

उसने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया। तब पूज्य बाबूजीने मुझे प्रसादकी एक परई लानेको कहा और मैं भागकर ले आया। अब पूज्य बाबूजी स्वयं अपने हाथसे उसे कौर खिलाने लगे। परईमें प्रसादकी एक पूड़ी, कढ़ी, भात, साग आदि था। आज तीसरे दिन उसके मुखमें अन्नका कण जा रहा था। उसको परईका सारा प्रसाद खिला चुकनेके बाद, पूज्य बाबूजीने पूछा— और खाओगी।

उसने सिर हिलाकर अनुमोदन किया। मैं भागकर दूसरी परई ले आया। इस परईका आधा अंश ही वह खा पायी। उसके बाद पूज्य बाबूजीने उससे कहा— अब घर जाओ, आराम करो और रातमें कुछ भोजन कर लेना।

वह घर आयी। कुछ देर पश्चात् उसने स्नानादि करके भोजन बनाया। मुझे खिलाया एवं स्वयं भी खाया। सब कुछ स्वाभाविक हो रहा था। रातमें दवा लेनेको जब कहा तो उसने इन्कार कर दिया। तब मैं पुनः पूज्य बाबूजीके पास गया और दवा न लेनेकी बात बतायी। तब पूज्य बाबूजीने कहा— मेरा नाम लेकर कहना कि बाबूजीने दवा लेनेको कहा है।

उसको ऐसा कहनेपर पूज्य बाबूजीने जो बायोकेमिक दवा बतायी, उसे वह बराबर लेती रही और वह विक्षिप्तता सदाके लिये दूर हो गयी। यह विक्षिप्तावस्था तब हुई थी, जब चम्पा मात्र डेढ़ वर्षकी थी। अब तो बेटी चम्पाका विवाह भी हो गया है और उसके बच्चे भी हो गये हैं, पर शिशु चम्पाकी माँको जो विक्षिप्तता तब हुई थी, वह फिर कभी नहीं हुई। पूज्य बाबूजीने जो दवा बतायी, वह तो एक बहाना मात्र था, पर वस्तुतः उनके छलछलाते वात्सल्यसे भरा अहैतुक अनुग्रह ही उसकी रोग निवृत्तिमें मुख्य हेतु था।

[६] मेरी पत्नीको स्नेहाशीर्वाद

सन् १९६२ में मैं अस्वस्थ हो गया और वृन्दावनमें रहकर अपनी चिकित्सा करवा रहा था। उस समय मेरी धर्मपत्नी गोरखपुरमें अकेली ही रह रही थी। तब उसके पास मेरी सबसे छोटी पुत्री मदालसा थी। मेरी बीमारीका समाचार जानकर मेरी धर्मपत्नीको बुलानेके लिये घरवालोंका तथा ससुरालवालोंका पत्र पूज्य बाबूजीके पास आया। एक तरफ मेरे घरवालोंने देशनोक भेजनेके लिये लिखा था तो दूसरी तरफ मेरे ससुरालवालोंने माथाभाँगा (कूचविहार) भेजनेके लिये। पूज्य बाबूजीने मेरी धर्मपत्नीके पास अपना व्यक्ति भेजकर पुछवाया कि तुम्हारा कहाँ जानेका मन हैं ? इसी पूछताछमें सारा दिन निकल गया, पर समाधान नहीं हुआ। शामके समय पूज्य बाबूजीने मेरी धर्मपत्नीको बुलवाया और उससे कहा— जैसा तुम चाहोगी, उसी अनुसार व्यवस्था कर दी जायेगी। तुम्हारा कहाँ जानेका मन है ?

मेरी धर्मपत्नीने कहा— बाबूजी, आप जहाँ कहेंगे, वहीं चली जाऊँगी। मुझे तो कुछ भी

समझमें नहीं आ रहा है।

इसपर पूज्य बाबूजीने कहा— ठीक है। तुम मेरे साथ ही चलो। मैं रतनगढ़ जा ही रहा हूँ। वहींसे तुम देशनोक चली जाना। मैं भिजवा दूँगा।

देशनोक रतनगढ़के पास ही है। इस निश्चयके होते ही दोनों स्थानोंपर यथा-योग्य समाचार दे दिये गये। कुछ दिनों बाद ही देशनोक जानेके लिये वह पूज्य बाबूजीके साथ गोरखपुरसे रवाना हो गयी। उसके साथमें दो वर्षीया पुत्री मदालसा भी थी। बादमें मिलनेपर उसने दिल्ली स्टेशनका जो प्रसंग सुनाया, वह बड़ा ही हृदयस्पर्शी है। गोरखपुरसे रवाना होकर सभी लोग दिल्ली आये। वहाँ पूज्य बाबूजीके साथ दो दिन दिल्लीमें ठहरना पड़ा। फिर रतनगढ़ जाना था। सभीलोग बीकानेर मेलमें बैठनेके लिये दिल्ली स्टेशनपर आये। पूज्य बाबूजी जहाँ भी जाते, वहाँ आगे-से-आगे उनकी एवं उनके साथ जानेवालोंकी व्यवस्था रहती, अतः मेरी धर्मपत्नीको जिस डिब्बेमें बैठाया गया था, उसमें वह और उसके साथ श्रीलीलाबाई, श्रीभगतजी आदि कई लोग थे। सबका रिजर्वेशन था।

पूज्य बाबूजी स्टेशनपर आये तो उनके सम्मानमें तथा उन्हें विदाई देने हेतु सैकड़ों लोग स्टेशनपर आये थे। प्लेटफार्मपर बड़ी भीड़ थी। गाड़ी छूटनेमें अब विलम्ब नहीं था, उसी समय पूज्य बाबूजीने उपस्थित प्रबन्धकर्तासे पूछा— चम्पाकी माँ कहाँ बैठी है?

भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा— उसे पासवाले डिब्बेमें अच्छी तरहसे बैठा दिया गया है।

इसपर पूज्य बाबूजीने कहा— जरा मैं देख लूँ।

यह कहकर बिना उत्तरकी प्रतीक्षा किये वे चुपचाप शीघ्रतासे जिस डिब्बेमें वह बैठी थी, उसमें चढ़ गये। वे चाहते तो खिड़कीके बाहरसे भी उसका कुशल-क्षेम पूछ सकते थे, पर उनका प्रयोजन तो कुछ दूसरा ही था। जब वे डिब्बेमें चढ़ने लगे तो भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा— बाबूजी! डिब्बेमें बहुत भीड़ है, समय हो चुका है, गाड़ी छूट जायेगी।

पूज्य बाबूजीने उनसे कहा— मुझे उसे देख लेने दो। वह बड़े संकोची स्वभावकी है। पता नहीं वह ठीकसे बैठी भी है या नहीं, उसके साथमें छोटी बच्ची भी है।

भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीने तथा अन्योंने उन्हें रोकनेकी बड़ी चेष्टा की और गाड़ीके छूट जानेकी बात कही, पर पूज्य बाबूजी सबकी बात अनसुनी करके मेरी धर्मपत्नीकी ओर बढ़े और कहा— इससे मुझे कुछ बात करनी है।

यह सुनकर मेरी धर्मपत्नीके पास बैठे हुए लोग थोड़ा दूर सरक गये। पूज्य बाबूजी उसके पास आये और सिरपर हाथ रखकर एक लिफाफा देते हुए धीरेसे कहा— देख, इसे रख ले। मैं तेरे लिये ही आया हूँ।

पूज्य बाबूजीका ऐसा अद्भुत स्नेह देखकर मेरी धर्मपत्नी तो एकदम गल गयी, वह पानी-पानी हो उठी। उन्होंने ऐसे ढंगसे लिफाफा दिया कि कोई जान न सका। उस लिफाफेमें स्नेहाशीर्वादके प्रतीक स्वरूप कुछ रुपये थे। ऐसा अप्रतिम स्नेह था उनका!

उसके बाद वे उस डिब्बेसे उतरकर अपने डिब्बेमें चले गये। रतनगढ़ पहुँचकर उन्होंने मेरे घरसे आये हुए आदमीके साथ मेरी धर्मपत्नीको देशनोक भिजवा दिया। ■

सौ. श्रीझमकूदेवी बोथरा

प्यार ही प्यार दिया

मथुरामें पूज्य बाबूजीके द्वारा श्रीभागवत भवनका शिलान्यास शायद १९६५ के फरवरी मासमें हुआ था। उस समय मैं देशनोकमें थी। अचानक मथुरासे मेरे श्वसुरजीके पास पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का बहुत ही अनुरोध भरा तार आया। उस तारमें निवेदन किया गया था– बीकानेरसे गोस्वामी परिवार मथुरा आनेवाला है। आप चम्पाकी माँको गोस्वामी-परिवारके साथ मथुरा भेज दीजिये। श्रीगुलाबचन्द बोथरा हमलोगोंके साथ है।

मेरे श्वसुरजीका मन कम ही था, पर फिर घरमें माताजीसे विचार-विमर्श करके उन्होंने मुझे बीकानेर गोस्वामी-परिवारके पास पहुँचा दिया। उनके साथ मथुरा पहुँचनेपर जब मैंने पूज्य बाबूजीको प्रणाम किया, तब उन्होंने बड़े ही प्यारसे मेरा कुशल-क्षेम पूछा। उस यात्रामें उनकी अहैतुकी कृपासे उनके कर-कमलोंसे सम्पन्न हुए भागवतभवन-शिलान्यासको देखनेका दुर्लभ सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ। उसी यात्रामें वृन्दावनके विभिन्न देव-मन्दिरों, गोवर्धन-परिक्रमा, राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, कुसुमसरोवर आदिके दर्शनका एवं उनमें स्नानका सौभाग्य मिला। बरसानेमें पूज्य बाबाजीकी अद्‌भुत भावमयी स्थिति एवं श्रीराधाजीके मन्दिरके दर्शन एवं वहाँ प्रसाद-ग्रहणका अनुपम सुख एवं सौभाग्य मिला, जो मेरे लिये नितान्त असम्भव था। यदि वे मुझे न बुलाते तो यह सब सौभाग्य मुझे कदापि प्राप्त न होता।

इसी यात्राके दौरान उनके वात्सल्यपूर्ण स्नेहकी एक अमिट स्मृति मेरे मनपर और है। न मैं पढ़ी-लिखी हूँ और न ही मुझमें कोई गुण है और अपने अतिशय संकोची स्वभावके कारण न मैंने पूज्य बाबूजीसे कभी अधिक बात ही की, पर फिर भी पता नहीं क्यों, मुझे उन्होंने सतत प्यार-ही-प्यार दिया। पद-पदपर पूछ-पूछकर मेरी सँभाल करते। बड़े-बड़े लोगोंको अनदेखा करके जब वे मेरा नाम लेकर साधारण-सी व्यावहारिक बात सबके सामने पूछते तो एक ओर तो मैं उनके प्यारसे सराबोर हो जाती दूसरी और ओर लाजसे गड़-भी जाती।

पढ़ाई पूरी करनेके बाद ही श्रीबोथराजी (मेरे जीवन सर्वस्व) गोरखपुर पूज्य बाबूजीके पास चले आये। कमाईकी कोई चेष्टा न करनेसे उनका हाथ सदा ही तंग रहा, अतः अपने किसी मित्रसे परामर्श करके उन्होंने मेरा कुछ गहना बेचकर दो हजार रुपया इकट्ठा किया और उसे व्याजपर अपने उन्हीं मित्रके पास रख दिया। उन दिनों दो हजारकी रकम भी अधिक होती थी। किसी प्रकार पूज्य बाबूजीको इस बातकी खबर लग गयी। उन्होंने श्रीबोथराजीको और मुझे वहीं मथुरा धर्मशालामें, जहाँ वे ठहरे थे, बुलाया और पुनः सारी बातकी जानकारी प्राप्त की। सारी बात सुनकर उन्होंने श्रीबोथराजीसे कहा– देखो, अब वह रुपया मेरा है और मैं रखूँगा।

श्रीबोथराजी और मैं, दोनों ही पूज्य बाबूजीकी इतनी आत्मीयताभरी वाणी सुनकर आप्यायित हो गये। हम दोनों ही सोचने लगे– अहो! इतने बड़े सिद्ध संतके श्रीमुखसे अत्यधिक अपनेपनकी इतनी प्यार भरी वाणी बड़े भाग्यसे निकलती है और सुननेको मिलती है।

मन-ही-मन हमलोग अपने भाग्यकी सराहना करते हुए अपने मथुरा-स्थित निवासपर आ गये।

मथुरामें पूज्य बाबूजीने मेरी भोजनादिकी सँभालका दायित्व श्रीभगवानदासजी सिंहानियाको विशेष रूपसे दिया था। भगवानदासजी जैसे देवपुरुषके संरक्षणमें मुझे तो क्या, किसीको भी किसी प्रकारकी भोजनादिकी असुविधा नहीं हुई। इस प्रकारके सभी समारोहोंमें श्रीभगवानदासजी ही सबके खानपानकी सारी व्यवस्था देखते थे। उनके मृदुल स्वभावसे सब सदा प्रसन्न रहते। बड़े मनुहारसे वे सबको भोजन कराते, सुख-सुविधाका ध्यान रखते। उनके मनुहारमें पूज्य बाबूजीके प्यारकी झलक मिलती थी, अनुभूति होती थी। ■

आ. श्रीअगमदुलारीजी श्रीवास्तव

ममतामूर्ति मेरे बाबूजी

परम पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का मेरे ऊपर अपार वात्सल्य था। वे मुझे सदा 'अगमा बेटी' ही कहते। जब-जब मैं अपने पीहर लखनऊसे गोरखपुर आती, वे बाई (सौ. श्रीसावित्रीबाई फोगला) को मेरे पास भेजते। अनगिनत यादें बाबूजीकी मनमें भरी पड़ी हैं, कहाँ तक लिखूँ?

सन् १९५६ के अन्तमें बाबूजी सपरिवार रतनगढ़ चले गये थे। राजस्थानमें रतनगढ़ ही बाबूजीकी पूर्वज-भूमि है। सन् १९५७ में श्रीराधाष्टमीका महोत्सव रतनगढ़में ही मनाया गया था। महोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये बाबूजीने मुझे गोरखपुरसे रतनगढ़ बुला लिया। मेरे साथ मेरी दो लड़कियाँ इन्दू और कृष्णा भी गयी थीं। लगभग एक मास मैं वहाँ रही। उस समय जिस असीम स्नेहसे बाबूजीने मुझे आप्यायित-आप्लावित कर दिया, उसका वर्णन सम्भव है ही नहीं। सदा मेरे सोने-रहने-खाने-पीनेका बहुत ध्यान रखते और मेरी छोटी लड़कियोंका बड़ा लाड-दुलार करते। उनके प्यारसे मेरा रोम-रोम संसिक्त था।

उत्सवके बाद मुझे वहाँसे वापस गोरखपुर आना था। जब वहाँसे चलनेका दिन आया तो मेरे मनमें यह इच्छा जाग उठी कि उत्सवकी झाँकीमें जिन साड़ियोंका उपयोग किया गया था, उसमेंसे एक साड़ी प्रसादीके रूपमें यदि मुझे मिल जाती तो कितना अच्छा होता। मेरे मनमें प्रसादी साड़ीकी इच्छा चाहे जितनी बलवती हो, पर मैं संकोचके मारे कुछ कह नहीं पा रही थी। स्टेशनपर जानेके लिये हमारा समान बँध गया। रास्तेमें भोजनके लिये पूड़ी-साग बनकर तैयार हो गया। मैं मन-ही-मन प्रसादी साड़ीके लिये अधीर हुई जा रही थी, पर संकोचके भारसे दबी भी जा रही थी। अब चलना है, अतः पूजाघरमें जाकर मैंने श्रीठाकुरजीको प्रणाम किया। इसके बाद पूज्य बाबाको मैं प्रणाम कर आयी। माँजी (सौ. श्रीसावित्री बाई फोगलाकी माताजी) मेरी विदाईके समय टीका करनेके लिये थालीमें रोली-अक्षत निकालने लगी। मुझे यह भी आभास हो गया कि विदाईमें माँ मुझको साड़ी भी देगी, पर मेरे प्राण तो उत्सवकी झाँकी वाली साड़ीयोंमें अटके थे। मनमें प्रसादी साड़ीका चिन्तन गहराईसे हो रहा था, पर मैं नहीं समझ पा रही थी कि क्या करूँ और उसमेंसे कोई साड़ी कैसे माँगू। उसी समय बाबूजी घरके भीतर आये और जल्दी

मचाते हुए बोले— अरे, तुम क्या कर रही हो ? देर करनेसे ट्रेन छूट जायेगी।

माँजी रोली-अक्षत वाली थाली लेकर टीका करनेके लिये आगे आयीं। उनके पीछे-पीछे बाई भी थी। प्रसादी साड़ीके लिये मन तो विह्वल हो ही रहा था, अब बाबूजीसे बिछुड़कर जानेकी भावनाने मनको और अधिक कातर लना दिया। मैं कातर होकर बाबूजीकी ओर देखने लगी। मेरी वाणी अवरुद्ध हो गयी। तभी अचानक माँजीसे बाबूजी बोले— अरे ! राधाष्टमीमें उतनी साड़ियाँ लगायी गयी थीं झाँकी सजानेके लिये, उन्हींमेंसे एक साड़ी लाकर इसे दो न !

मैं नहीं जानती, मैं न तब भी जान सकी थी और न अबतक जान पायी हूँ कि बाबूजीकी मेरे मनकी बात कैसे ज्ञात हो गयी। बाबूजीके इन प्यार भरे शब्दोंको सुनकर मेरी भावनाओंमें उफान आ गया। भावोंको संयमित कर सकना कठिन हो गया। बाबूजीके स्नेह-सने निर्देशके बाद ज्यों ही बाई उनमेंसे एक साड़ी ले आयी और ज्यों ही उस साड़ीको मेरे आँचलमें माँजीने डाला, मैं बेकाबू हो उठी और मेरे नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। अपनी संतानके मनकी बातोंको जान लेनेवाले ममतापूर्ति मेरे बाबूजी मुझसे बोले— अरी पगली ! रोती क्यों है ? प्रसन्नता पूर्वक जाना चाहिये।

आँसू पोछते-पोछते मैं माँजीको, बाबूजीको, सबको प्रणाम करके अपनी लड़कियोंके साथ स्टेशन चली आयी।

उनके ममत्वका एक प्रसंग तो कभी भूलता ही नहीं। पहले गीतावाटिकामें बाबूजीका सत्संग प्रातःकाल रोज एक घंटा हुआ करता था और होता था कोठीके बाहरी बरामदेमें। उस समय गीतावाटिकामें केवल एक ही विशाल कोठी थी, जिसमें बाबूजी रहा करते थे। आजकल गीतावाटिकामें प्रवेश करनेके लिये अति विशाल दो मुख्य द्वार हैं, पर पहले एक छोटा-सा प्रवेश द्वारा था, जो ठीक बीचमें था। उस छोटे प्रवेश-द्वारके फाटकमें घुसते ही सामने वाली कोठी दिखलायी देती थी और कोठीके व्यक्तिको प्रवेश करता हुआ व्यक्ति दिखलायी दे जाता था। उस कोठीके बाहरी बरामदेमें बाबूजी फाटककी ओर मुँह करके बैठते थे और अपना प्रवचन दिया करते थे। सत्संगी भाई लोग प्रवचन सुननेके लिये समयसे आकर अपने-अपने स्थानपर बैठ जाया करते थे। आगे चलकर प्रवचनका कार्यक्रम श्रीराधाष्टमी-पंडालमें होने लग गया, पर मैं उस समयकी बात कह रही हूँ, जब प्रवचन बरामदेमें हुआ करता था। गीतावाटिकाके बगलमें ही एक किरायेके मकानमें मैं सपरिवार रहा करती थी और प्रवचन सुननेके लिये जाया करती थी। घरमें चाहे जितना काम हो, उन सबको छोड़कर मैं प्रतिदिन जाती थी और बाबूजीके भी ध्यानमें यह बात भली प्रकारसे थी कि मेरी 'अगमा बेटी' सत्संगमें बिना नागा आया करती है।

सन् १९४८ या ४९ के आस-पासकी बात होगी। श्रीगोस्वामी चाचाजी (पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) के घरके आँगनमें रोज रात्रिके समय रासलीला हुआ करती थी। सभी लोग रासलीला देखनेके लिये जाया करते थे। उन दिनों मेरे पाँवके तलवेमें एक फोड़ा निकल आया। फोड़ेका कष्ट सहकर भी मैं प्रतिदिन सत्संगमें जाती रही, पर बादमें पीड़ा बहुत बढ़ गयी। पीड़ा इतनी अधिक बढ़ गयी कि धरतीपर पाँव रखनेमें टीस होती थी। एक दिन फोड़ने इतना विकट रूप ले लिया कि किसी तरह मैं शौचालय और स्नानघरतक जा पायी। मेरी बेटी कृष्णाने मेरे बैठनेके लिये चटाई विछायी और चटाई पर बैठी-बैठी मैं सोचने लगी कि

सत्संगमें कैसे जाऊँ। मेरी गम्भीर हालत देखकर कृष्णाके पिताजी (मेरे जीवनसर्वस्व श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव) ने कहा— सत्संगके लिये रिक्शेपर बैठकर चली जाओ।

भले उन्होंने ऐसा कहा, पर मुझे बहुत संकोचका अनुभव हुआ यह सोचकर कि जब रिक्शा फाटकमें प्रवेश करेगा तो बाबूजी देख लेंगे कि यह रिक्शेपर आ रही है और फिर वे सोचने लगेंगे कि आज यह रिक्शेपर क्यों आ रही है। यह सब सोचकर मैं सत्संगमें नहीं गयी। सारे दिन मन उदास रहा। फोड़के कष्टसे मैं इतनी अधिक परेशान थी कि अगले दिन भी सत्संगमें जाना नहीं हो पाया। अपने घरमें बड़ा दुख मानती हुई मैं चटाईपर बैठी हुई थी। उधर सत्संगके पूर्ण होनेपर बाबूजीने कृष्णाके पिताजीको बुलाकर पूछा— दो दिनसे अगमा सत्संगमें नहीं आ रही है। वह तो कभी भी नागा नहीं करती थी, क्या बात है ?

कृष्णाके पिताजीने फोड़के कष्टवाली बात बाबूजीको बता दी। ज्यों ही बाबूजीने सुना, वे सारे काम छोड़कर मुझे देखनेके लिये तुरन्त चल पड़े। उनके साथ-साथ श्रीगोस्वामी चाचाजी भी थे और पीछे-पीछे चल रहे थे कृष्णाके पिताजी। घर आकर बाबूजी मेरे पास बिछी हुई एक दूसरी चटाईपर ही बैठ गये। मैंने हड़बड़ाकर कहा— अरे बाबूजी! इस चौकीपर बैठिये। यहाँ क्यों बैठ गये ?

उन्होंने मेरी बातको अनसुनी करके कहा— पहले मुझे अपना फोड़ा दिखा तू।

इतना कहते-कहते उन्होंने मेरा पाँव झटसे पकड़ लिया। मैं घबड़ा उठी कि क्या यह उचित है कि मेरे पूज्य ही मेरे पैरोंको पकड़े ? मैं रूँआसी होकर कहने लगी— यह क्या कर रहे हैं आप ? बाबूजी मेरे पाँवको हाथ न लगाइये। यह ठीक नहीं।

वे किसी तरह भी नहीं माने। मेरा अनुरोध व्यर्थ गया। एक हाथसे मेरा पाँव पकड़ा ओर दूसरे हाथसे तलवा दबा-दबाकर देखने लगे। देखते-देखते बाबूजीने कृष्णाके पिताजीसे पूछा— यह फोड़ा इतना अधिक पक गया है कि इसमें चीरा बहुत पहले लग जाना चाहिये था। अबतक क्यों नहीं लगवाया ?

कृष्णाके पिताजीने कहा— समय ही नहीं मिलता कि डाक्टरके यहाँ जा सकूँ।

बस, फिर क्या था ? इतना सुनते ही बाबूजी उनपर उबल पड़े और बिगड़ते हुए क्षुब्ध वाणीमें बोले— क्या करते हो दिनभर कि समय नहीं मिलता ?

कृष्णाके पिताजीने कहा— आजकल 'कल्याण कल्पतरु' के विशेषांकका काम हो रहा है, जो कम नहीं है। दिन भर विशेषांकका प्रूफ देखता हूँ और रातको रासलीला देखता हूँ। फिर जो समय बचता है, उसमें आवश्यक दैनिक कार्य करता हूँ या नींद पूरी करता हूँ।

बाबूजीका क्षोभ बढ़ता ही जा रहा था। यह उत्तर सुनकर बाबूजीने श्रीगोस्वामी चाचाजीसे रोष भरे स्वरमें कहा— विशेषांकका काम तो करना ही है, उसमें बाधा डालना ठीक नहीं, पर आप इसे अपने घरमें रासलीला देखनेके लिये घुसने ही मत दीजियेगा, जबतक यह अगमाको डाक्टरके यहाँ रोज नहीं ले जाये।

इसके बाद कृष्णाके पिताजीकी ओर उन्मुख होकर उसी तेजीके साथ बोले— अभी ही मैं ड्राइवरसे कहकर गाड़ी भेज दे रहा हूँ और इसे ले जाकर डाक्टरको दिखा लाओ।

उनसे कहनेके बाद फिर बड़े स्नेहसे मेरे सिरपर अपना प्यार भरा शीतल हाथ रखकर

उन्होंने कहा— तू चिन्ता मत करना भला। जल्दी ठीक हो जायेगी। भोजनके लिये मैं सावित्रिकी माँसे कह दूँगा, वह भिजवा देगी।

श्रीगोस्वामी चाचाजीसे और कृष्णाके पिताजीसे बाबूजीने जो कहा, उसे सुनकर मेरी हालत विचित्र हो गयी। एक ओर उठनेवाले विचारोंकी आँधीने और दूसरी ओर उमड़ने वाले भावोंकी बाढ़ने मुझे बुरी तरह झकझोर दिया। कृष्णाके पिताजीको रासलीला अत्यन्त प्रिय है और अब वे रासलीला देखने नहीं जायेंगे तो उनके मनपर क्या बितेगी। बाबूजीका वज्र-सदृश-कठोर आदेश तो उनको अस्त-व्यस्त कर देगा। कृष्णाके पिताजीके बारेमें सोच-सोचकर मन बड़ा विकल हो रहा था, पर उससे भी अधिक विह्वल हो रहा था बाबूजीके अनोखे-अद्भुत प्यारको देखकर। क्या बाबूजीका प्यार ऐसा असीम है, इतना अनुमानातीत है, जो उन्होंने मुझ साधारण-सी स्त्रीकी चिकित्सा और सँभालके लिये वैसी कठोर आज्ञा देनेमें कोई संकोच नहीं किया? मूढ़मति और मूक अधर मैं आँखें खोले-खोले बाबूजीको देखती रह गयी और मेरे देखते-देखते श्रीगोस्वामी चाचाजीको पारिवारिकतापूर्ण आदेश, उनको आत्मीयतापूर्ण आज्ञा और मुझको ममतापूर्ण आश्वासन देकर वे मेरे घरसे गीतावाटिका चले गये। उनके साथ-साथ चले गये श्रीगोस्वामी चाचाजी और कृष्णाके पिताजी भी।

सब चले गये और मैं अकेली चटाईपर बैठी रही अपने भीतरी झंझावातमें फँसी हुई। मैं विजड़ित-सी चटाईपर चुपचाप बैठी हुई थी। कुछ ही मिनटके बाद कृष्णाके पिताजी लौटकर मेरे पास आये। मैंने देखा कि वे बड़े भाव विभोर हो रहे हैं। मेरे द्वारा जिज्ञासा किये जानेके बाद भी वे कुछ बोल नहीं पाये। उनका कण्ठ अवरुद्ध था। थोड़ी देर बाद जब वे कुछ प्रकृतिस्थ हुए तो बोले— जब बाबूजी आगे बढ़ गये तो श्रीगोस्वामी चाचाजीने मेरे कंधेपर हाथ रखा और बड़े मीठे स्वरमें कहा कि ऐसी अच्छी रासलीला देखनेका अवसर हाथसे खो देना ठीक नहीं है। श्रीभाईजीके आदेशानुसार कृष्णाकी माँकी चिकित्सा और सँभालमें अब तुमको पूरा समय देना ही है, पर जहाँ तक विशेषांकके प्रूफको देखने की बात है, तुम्हारा वह काम मैं कर लिया करूँगा। मैं वे प्रूफ रातको थोड़ा जगकर देख लिया करूँगा, जिससे तुम रासलीलाके सुखसे वंचित न रह सको।

उनसे ये सब बातें सुनकर उनसे ज्यादा विभोर तो मैं हो उठी। बाबूजीकी तरह श्रीगोस्वामी चाचाजीके ऊपर भी 'कल्याण कल्पतरु' के सम्पादनका भार कम नहीं था, बल्कि विशेषांककी तैयारीके समय यह सम्पादनकार्य-भार बहुत ज्यादा बढ़ जाया करता था। उनपर कार्य-भार चाहे जितना हो, वे रासलीलाके इतने अधिक अनुरागी थे कि वे रासके स्वरूपोंको रोज कंधेपर बैठाकर अपने घरपर भोजन करानेके लिये लाते थे और भोजनोपरान्त वैसे ही कंधेपर बैठाकर वापस पहुँचाते थे। इस घनी व्यस्तताके बीच कृष्णाके पिताजीके कार्यका दायित्व स्वीकार करके उन्होंने अपना कार्यभार बहुत ज्यादा बढ़ा लिया। उन दिनों श्रीगोस्वामी चाचाजीके घरपर बिजली नहीं थी। रासलीला हो जानेके बाद मिट्टीके तेलकी लालटेन जलाकर रातको वे उन प्रूफोंको देखा करते थे, जो कृष्णाके पिताजीके जिम्मेका काम था। उनके इस नवीन कार्य-भारको देख-देखकर हमलोगोंका मन बड़ा विकल होता था। जिस नवीन दायित्वके स्वीकारको हमलोग उनके लिये कार्यका भार मान रहे थे, वह वस्तुतः था उनके अगाध प्यारका ज्वार, अमाप्य ममताका उभार। ममता मूर्ति मेरे बाबूजीके प्रति सर्वभावेन-सर्वप्रकारेण समर्पित श्रीगोस्वामी

चाचाजीकी ममताकी साकार प्रतिमा ही बन गये थे। बाबूजीके ममतोद्‌भुत आदेशके उपरान्त कृष्णाके पिताजीने मेरी चिकित्साकी ओर पूरा ध्यान दिया ही, पर श्रीगोस्वामी चाचाजीके ममतोद्‌भु सहयोगके फलस्वरूप वे रासलीलाके दर्शनका भी सुख ले सके। ■

सौ. श्रीसावित्रीबाई फोगला

[१] सुख-दानकी भावना

जब पूज्य बाबाका काष्ठ-मौन व्रत था, तब उनकी कुटियाके बाड़ेके भीतर केवल हम तीन व्यक्ति ही जा सकते थे, पूज्य बाबूजी, माँ और मैं। बाबाको भिक्षा करवाना है अथवा उनको जल पिलाना है, यह कार्य भी हम तीनोंमें से किसी एक द्वारा होता था। बाबा भिक्षा प्रायः सूर्यास्तके बाद किया करते थे, अतः रातके कुछ बीत जानेपर प्यास लगना स्वाभाविक है। भगतजी माँको बुलाने आया करते थे और माँ श्रीभगतजीके साथ कुटियापर जाया करती थी बाबाको जल पिलानेके लिये। यदि माँ अपनी अस्वस्थताके कारण नहीं जा पाती थी तो मैं जाया करती थी। कभी-कभी तो भगतजी आधी रातके समय बुलानेके लिये आया करते थे और चाहे वर्षा ऋतुमें घोर पानी बरस रहा हो अथवा शीत ऋतुमें घना जाड़ा लग रहा हो, हम दोनोंमें से कोई जल पिलानेके लिये जाता ही था। अपनी अस्वस्थताके बाद भी हमलोग जाया करते थे, जिससे कि पूज्य बाबूजीको जानेका कष्ट न उठाना पड़े। बाबूजीका एक-एक क्षण बड़ा ही मूल्यवान होता था, अतः हम दोनोंका ध्यान सदा यही रहता था कि अत्यधिक व्यस्त बाबूजी कम-से-कम इस कार्यसे तो मुक्त ही रहें।

हमलोग बाबूजीका ध्यान रखें, इससे अधिक वे हमारा ध्यान रखते थे। यदि बाबूजीको कभी पता चल जाता कि मैं और माँ कुछ अस्वस्थ हैं तो वे तुरंत भगतजीके साथ भिक्षा करानेके लिये अथवा पानी पिलानेके लिये कुटियाकी ओर चल देते थे। उनको उठनेमें देर नहीं लगती थी। वे चाहे आवश्यक कार्यमें व्यस्त हों अथवा स्वयं ही शरीरसे अस्वस्थ हों, अपनी धोती सँभालते हुए वे भगतजीके साथ चल ही पड़ते थे। यह केवल एक या दो बारकी बात नहीं, अपितु ऐसा प्रायः होता रहता था। सचमुच उन्होंने जितना स्नेह माँको दिया और जितना वात्सल्य मुझको दिया उसकी कोई सीमा नहीं। मुझे अथवा माँको सुख देनेकी भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने जो-जो और जितना-जितना किया, वस्तुतः उसका अनुमान भी कल्पनासे परे है।

[२] सँभालकी तत्परता

बात उस समयकी है, जब मेरी आयु लगभग दस वर्षकी रही होगी। तब गीतावाटिकामें बिजली नहीं थी। वाटिकाके भीतर न इतने मकान थे और वाटिकाके बाहर न कोई बस्ती थी। था चारों ओर जंगल-ही-जंगल। घरमें नौकर-चाकर भी नहीं थे। सारा काम, अपने हाथसे करना होता था। जिसे आजकल पावन कक्ष कहते हैं, यह कमरा भी तब नहीं बना था। इसका निर्माण तो बहुत वर्षोंके बाद हुआ। तब बाबूजी उस कमरेमें रहते थे, जो भिक्षाघरके ऊपर है। उसी कमरेमें रहते हुए वे 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादनका कार्य किया करते थे।

एक रात बहुत जोरसे वर्षा आयी। पानी मूसलाधार बरस रहा था। बरामदा तो पानीसे भर ही

गया, बरसातका पानी कमरेमें भी आने लग गया। ऐसा लगता है कि छतपरके कूड़े-कचरेसे नालीका मुँह बन्द हो गया और निकास बन्द हो जानेसे बढ़ता हुआ पानी कमरेमें फैलने लगा। कमरेमें बाबूजीकी बहुत-सी फाइलें नीचे भूमिपर पड़ी हुई थीं। और भी कई कागज थे। मैं, माँ और बाबूजी, हम तीनों ही कागजों-फाइलोंको उठा-उठाकर ऊँचे रखने लग गये। जमीनपर बिछे हुए गद्देको जल्दी-जल्दी समेटकर ऊपर रखा गया। बढ़ते हुए पानीसे बचावके लिये हम तीनों लोग तत्परता पूर्वक उठा-उठाकरके सामान ऊपर रख रहे थे, तभी बाबूजीने कहा– सावित्री ! तुम चीजोंको, कागजोंको सँभालकर रखना। मैं अभी आता हूँ।

मैंने पूछा– इस तेज बरसातमें आप कहाँ जा रहे हैं ?

बाबूजीने कोई कारण तो बतलाया नहीं, केवल 'अभी आता हूँ', 'अभी आता हूँ', यह कहते-कहते लालटेन उठायी और चल दिये।

बादमें तो सब पता चल ही गया। बाबूजी जा रहे थे बगीचेके पिछले भागमें इमलीके विशाल वृक्षोंकी ओर, जहाँ बाबा फूसकी कुटियामें रहते थे। उन दिनों बगीचेके पिछले भागमें बड़ी ऊँची-ऊँची घास थी, इतनी ऊँची कि उसमें कोई आदमी छिप जाय। घासके उस जंगलमें मोटे-मोटे लम्बे-लम्बे साँप भी बहुत थे, कभी पगडंडीपर पड़े हुए, कभी वृक्षोंसे लटकते हुए। ऐसा होकर भी बाबूजी लालटेन लेकर बाबाके पास गये। वहाँ जाकर देखा कि बाबा अपनी कुटियामें भीग रहे हैं। इसी परिस्थितिका अनुमान करके ही तो बाबूजी लालटेन लेकर कमरेसे तुरंत चल पड़े थे। अपने अनुमानको प्रत्यक्ष देखकर बाबूजीका हृदय स्नेहार्द्र हो उठा कि बाबा कितना कष्ट पा रहे हैं। पूज्य बाबूजीने तत्काल बाबाका हाथ पकड़ा और उनको उठाकर अपने साथ ले आये। ऐसी थी पूज्य बाबूजीके मनमें ममत्वकी भावना और ऐसी थी उनके मनमें सँभालकी तत्परता। ■

सौ. श्रीराधादेवी भालोटिया

गुणदर्शन एवं प्रशंसन

पूज्य नानाजीकी सहज चेष्टा है, उनका सहज स्वभाव है सबमें गुणदर्शन करनेका। गीताभवन (स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश) में प्रति पक्ष सफाई सत्संगी भाई-बहिन स्वयं हाथसे करते हैं। नानाजी भी उस दिन हाथमें झाडू लिये दिखाई पड़ रहे हैं। परस्परमें बात होने लगी– अरे, बाबूजी सफाई कर रहे हैं। चलो, सब चलें।

सब दत्तचित्तसे जुट जाते हैं। जोरोंसे गन्दगीका बहिष्कार हो रहा है। सब जगह स्वच्छ हो गयी है। नानाजी स्नानादिसे निवृत्त हो गये हैं। अब चल रहा है उनका प्रशंसाका कार्यक्रम। आज तो अमुक व्यक्तिने बड़ी मेहनतसे सफाई की, अमुकने गन्दा नाला साफ कर दिया, अमुक तो शौचालयतक धो आया।

प्रशंसा मीठी लगती है, सब बाहर खड़े सुन रहे हैं, प्रसन्न हो रहे हैं और मन-ही-मन निश्चय-सा कर रहे हैं कि अगली बार और जोरसे सफाई करूँगा। जीवनमें कर्मठता आये, यही नानाजीको अभीष्ट है। उनकी प्रशंसासे स्वयमेव यह हो रहा है। यह है नानाजीकी अनुपम शैली

गुण बढ़ानेकी।

* * * * *

नानाजीका घर सबका घर है। विश्वके कोने-कोनेसे विदेशी, देशी, अँग्रेज, नीग्रो, काले, गोरे, सब उनके घरमें आते हैं, सब समुचित आदर पाते हैं। वे कैसे किसीका अपमान कर सकते हैं? चौका उठ गया है। अचानक बीस आदमी आ गये हैं। उन्होंने प्रातःकालसे कुछ खाया नहीं है, अतः सायं भोजन तैयार होनेतक प्रतीक्षा नहीं कर सकते हैं। इसी समय संध्या चार बजे उनके लिये पूड़ी-सागकी आवश्यकता है। रसोईघरका महाराज अभी दस मिनट पहले चौकेसे निकल कर गया है। तुरन्त कैसे बुलायें उसको ?

अब अन्नपूर्णा स्वरूपा नानीजी स्वयं आटा लेकर बैठती हैं– लाओ, मिलकर बना लें। आनेवाले अतिथिका सत्कार तो होना ही चाहिये।

नानीको लगे देखकर घरकी अन्य स्त्रियाँ भी जुट गयीं। भोजन तैयार है। प्रातःकालसे भूखे अतिथियोंने छककर खाया। मन-ही-मन शुभकामना की– ऐसे सद्गृहस्थकी गृहस्थी सदा फले-फूले।

नानाजीको पता लगा कि आज सबने इस प्रकारसे अतिथिसेवा की। वे प्रसन्न हो गये। अघा नहीं रहे हैं प्रशंसा करते-करते। उल्लसित वाणीमें वे कह रहे हैं– देखो! कितना काम किया इन लोगोंने! इस गर्मीमें कितना परिश्रम किया इन्होंने! इन्हींके परिश्रमके परिणाम स्वरूप ही तो विश्वरूप प्रभुकी यह अर्चना सुरुचि पूर्ण सम्पन्न हो सकी।

काम करनेवाले गद्गद हो उठते हैं– इतना सम्मान! अन्य तो कोई भी दे नहीं सकता।

* * * * *

नानाजी स्वयं अच्छे-से-अच्छे डाक्टर, वैद्यराज या होमियोपैथसे कम नहीं हैं। उनकी छोटी-मोटी डिस्पेंसरी और रसायनशाला उनके साथ ही चलती है। वे सबको दवा देते हैं, ठीक करते हैं, पर यदि अन्य कोई जरा-सी भी सेवा किसीकी कर देता है तो अर्थ-व्यय सारा स्वयं वहन करनेके उपरान्त भी तनिक-सा सहयोग करनेवालेको सच्चे सेवकका खिताब दे डालते हैं– बेचारा कितनी सेवा करता है? जरा-सा भी आलस्य नहीं। एक बार, दो बार, पाँच बार, जितनी बार आवश्यकता होती है, डाक्टरको बुला देता है। दवा ला देता है, बड़ा ऋणी हूँ इसका।

नानाजीके मुखके उद्गार उल्लास-विभोर बना देते हैं सेवा करनेवालेको। कहीं कोई कृत्रिमता हो इस कथनमें, सो भी नहीं। स्वभावसे ही गुण दीखते हैं नानाजीको और प्रशंसा कर देते हैं वे।

* * * * *

वस्तुओंको सुव्यवस्थित रखना नानाजीका स्वभाव है। दैनिक उपयोगकी प्रत्येक वस्तु वे बड़ी सँभाल कर रखते हैं। दूसरा कोई भी इस पद्धतिको अपनाता है तो वे बड़ी प्रशंसा करते हैं उसकी। अँधेरा हो रहा है, बत्ती फ्यूज हो गयी है। किसीको कोई दवाकी आवश्यकता है और

अँधेरेमें उठा कर ले आता है। उसकी कुशलता नानाजी सबको बताते और प्रसन्न होते थकते नहीं।

* * * * *

राधाष्टमीका उत्सव है। यह राधा-परिवारकी भावनाको लेकर, नानाजी और बाबाजीकी चलायी हुई परम्परानुसार एक पारिवारिक उत्सवके रूपमें मनाया जाता है। इसमें सम्मिलित होनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका यह अपना उत्सव है। उसकी अपनी उपासनाका अंग है, फिर उसमें जो जितना अधिक सहयोग करे, उसका अपना कर्तव्य है, अपनी निधि है। पर नहीं, नानाजीकी पैनी दृष्टि गुण देखनेमें चूक नहीं सकती। जो कुछ भी नहीं कर रहे हैं, उनके प्रति असन्तोष व्यक्त करनेकी तो कहीं स्फुरणा ही नहीं– वे बिचारे साधन करते हैं। उन्हें समय ही नहीं कि अन्य कुछ सहयोग दे सकें। जो कार्यकर्ता हैं, उन्होंने रात दिन सेवा-कार्यको सँभाला। उन्हें मैं क्या कहूँ? सब अपने हैं, उसी स्नेहसे काम करते हैं।

* * * * *

उत्सवमें आनेवाले ठहरनेवाले व्यक्तियोंको कुछ असुविधा तो स्थानाभावके कारण होती ही है और कष्टका वरण करनेमें मानवको कष्ट होता ही है। व्यवस्था करनेवाले कुछ तो परिस्थितिवशात् और कुछ अपने अहंकारवशात् उद्विग्न हो जाते है और क्रोध आ जाता है, पर नानाजीकी गुण-ग्राहकता वहाँ भी गुणदर्शन कर रही है– अपने घरोंमें तो बिचारे सभी अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार बड़े आरामसे रहते हैं, फिर यहाँ कष्ट सह करके पैसा खर्च करके वे आते हैं, उत्सवमें भाग लेते हैं। बड़ी ही कृपा है उनकी तो हम सबपर।

आनेवाला अपना कष्ट भूल जाता है, मनका क्षोभ भी स्वतः दूर हो जाता है नानाजीकी इस स्नेहभरी सराहनासे।

* * * * *

दूर-दूरसे लोग आ रहे हैं नानाजीसे मिलने, पर नानाजी अपने भावराज्यमें लीन हैं। आनेवाला आता है, बैठ कर लौट जाता है। कमरेके किवाड़ खुले, नानाजीको पता लगा, उन्हें बड़ा विचार हो रहा है। प्रभु प्रेरित वे फिर आ पहुँचे। अब तो नानाजीका मन-भाया हो गया। झुककर अभिवादन करते हैं, क्षमा माँगते हैं– बड़ा कष्ट हुआ महाराज आपको! मैं तो ऐसा ही हूँ। दिमाग खराब हो जाता है मेरा तो। आप इतनी दूरसे आये, इतनी प्रतीक्षा करनी पड़ी आपको। क्षमा करें।

* * * * *

'भाईजी! आपके पास जो रात दिन रहते हैं, उनका जीवन धन्य है। हम जैसोंको तो सालोंमें कभी एक बार दर्शन हो पाते हैं'– सरल श्रद्धालु महिलाके मुखके ये उद्‌गार सुन रहे हैं नानाजी, पर उसका समर्थन नहीं है। हाथ जोड़कर वे कह उठते हैं– नहीं, नहीं, मेरे क्या दर्शन हैं? मैं किस लायक हूँ? यह तो आप लोगोंकी कृपा है, स्नेह है, जो मुझ सरीखेको भी अपना रखा है।

इतना आदर देते हैं। *'तृणादपि सुनीचेन'* का उदाहरण तो है ही, इसके अतिरिक्त है बड़े

दुर्लभ सद्गुणका परिचायक, दूसरेमें भलाई देखना, गुण देखना।

* * * * *

शत्रु और मित्र तो जगतमें होते ही हैं। अजातशत्रु मर्यादा पुरुषोत्तम राम और सर्वसुहृद लीला पुरुषोत्तम कृष्णके भी निन्दक और विरोधी उत्पन्न हो ही गये थे। हमारे नानाजी सरीखे आदर्श पुरुषमें भी दोष देखनेवाले अहंकारी उनकी निन्दा करते हैं। इससे नानाजीपर सहज ही श्रद्धा रखनेवालोंको कष्ट होता है। मन-ही-मन एक विद्रोह-सा उत्पन्न हो जाता है उन निन्दकोंके प्रति। पर नानाजीपर असर नहीं। वे श्रद्धालु-जनोंसे कहते हैं– थे लोग बावला हो। मूर्ख हो। मेरी तो बड़ी श्रद्धा है और बाँको बड़ो स्नेह है मेर ऊपर तो।

श्रद्धालुओंके अन्तरका विरोध वहीं घुटकर रह जाता है। तनिक-सा प्रश्रय नहीं मिल पाता उसे नानाजी द्वारा।

* * * * *

अपने पिता अथवा अग्रजको विवाहिता हिन्दू रमणी प्रणाम न कर सकती हो, चरण स्पर्श न कर सकती हो, कहीं हिन्दू शास्त्रमें ऐसा उल्लेख नहीं है। फिर नानाजी जैसा सच्चा पिता, सच्चा भाई दूसरा होगा ही कौन ? फिर भी नानाजी इसे प्रश्रय नहीं देते, इसके विरोधक ही हैं। एक बार कलकत्तेमें माता-बहिनोंने अत्यन्त श्रद्धा और अन्तरका पवित्रतम स्नेह लेकर नानाजीके चरणोंका स्पर्श कर लिया। छिद्रान्वेषी तो ढूढते ही रहते हैं कहीं छिद्र मिले। एक सज्जन, सुहृद, परामर्शदाताने नानाजीको सलाह दी– आप इस प्रकार प्रणाम करवाते हैं, उचित नहीं।

बड़े स्नेहसे बड़ा आदर देकर नानाजीने अपना दोष स्वीकार किया– क्या बताऊँ ? उचित तो नहीं, पर मुझे भी आत्म-पूजा, आत्म-सम्मानकी बड़ी भूख है, सचमुच ही यह मेरा पतन है। सलाहकार प्रसन्न हैं कि नानाजीने उसकी बातको समझ तो लिया। माने-न-माने, अपना दोष तो स्वीकार किया ही। कम-से-कम ध्यानमें तो आया। और नानाजी तो गुणदर्शनमें बेजोड़ हैं ही। बार-बार हर मिलनेवालेके सामने चर्चा करते हैं– उन्होंने कितनी सुन्दर बात कही ? कितनी अच्छी सलाह दी मुझे ?

'चरण स्पर्श सर्वथा न करें, अन्यथा उपवास करूँगा मैं'– नानाजीकी गम्भीर घोषणासे आत्यन्तिक कष्ट हुआ सबको। सबके मनमें एक दर्द है– क्या हम इतने अभागे हैं, जो अपने बाबूजीके, अपने भाईजीके चरण नहीं छू सकते ?

पर उसकी परवाह नहीं। नानाजी तो उस अज्ञानान्धकारमें समाविष्ट रहनेवाले सुहृदके परामर्शका आदर करेंगे। वे बार-बार कहते हैं– *'निंदक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय'।*

* * * * *

नौकर काम कर रहा है। एकके बाद दूसरा, दूसरेके बाद तीसरा आदेश मिलता जा रहा है उसे। हम उसे पैसा देते हैं और काम करना ही पड़ेगा उसे, इसी अहंकारका पोषण हो रहा है उसे आज्ञा देकर। नानाजी देख रहे हैं– बेचारा हमारे जैसा आदमी है। कितना कठोर परिश्रम कर

रहा है वह ? कहीं जरा भी आलस्य नहीं, रोष नहीं।

हम लोग अपना अधिकार समझकर उसे उसका कर्तव्य सिखानेका प्रयत्न कर रहे हैं, पर वह असमर्थ है और नानाजीका स्नेहभरा दृष्टिपात उसे कर्तव्य पथपर डटे रहनेका पाठ पढ़ा देता है। उनका उसमें गुणदर्शन ऐसे सद्‌गुणोंको मूर्त कर देता है, जिन्हें बेचारा वह स्वयं नहीं जानता। पर वह भी अपने दयालु मालिकके प्रति कृतज्ञ अवश्य है।

* * * * *

मेहतरानी सफाई कर रही है। लोग अपने मनमें एक हेय उपेक्षाका भाव ही रख पाते हैं उसके प्रति। लेकिन नानाजीका निर्माण इन अहंता-ममताके तत्त्वोंसे नहीं, श्रीकृष्ण-तत्त्वसे हुआ है।

मेहतरानी माँ है, जगज्जननी है। माँ केवल अपने बच्चेका मल साफ करती है और यह प्राणिमात्रका मल धोती है। शिशुके तनिक बड़े हो जानेपर माँको आपत्ति हो सकती है, पर उसे कभी कोई अनिच्छा नहीं। अब किसके मातृत्वका धरातल ऊँचा है ? माँ मात्रका अथवा इस विशाल हृदया जगज्जननीका ?

तार्किक बुद्धि भी इसका उत्तर नही दे पाती है, विरोध नहीं कर पाती।

* * * * *

भावराज्यकी दृष्टिसे नानाजी सर्वोपरि हैं। उनसा साधक, उनसा सिद्ध, उनसा संत, उनसा *'मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः'* दूसरा नहीं। पर उनमें आडम्बर अथवा कृत्रिमताकी गन्ध भी नहीं। हृदय-धनको गोपनीय रखना ही अभिप्रेत है उनको। अब, जब अपना वश नहीं रहा, बात बेकाबू हो गयी, तब उसका नया रास्ता निकाल लिया गुप्तताके प्रेमी नानाजीने। हर आनेवाला घरका-बाहरका जानता है नानाजी भाव-समाधिमें हैं, पर उसका नया नामकरण किया है, मान-सम्मानको परम त्याज्य समझनेवाले नानाजीने 'माथा खराब होना'। अर्थात् होश-हवाश ठीक नहीं रहे। दिमाग असंतुलित हो गया है। पहले ठीक था, अब जो हो रहा है, वह ठीक नहीं, जब कि यथार्थ यही है।

* * * * *

यों तो उनके लिये जगतमें रचे-पचे रहना अथवा भाव समाधिमें रहना, है समान ही वस्तु। श्रीराधा-माधव और नानाजी, ये दो वस्तु नहीं। जहाँ नानाजी हैं, वहाँ राधा-माधव बाध्य हैं रहनेको और जहाँ यह युगल है, नानाजीकी उपस्थिति वहीं हैं, इसमें संशयको स्थान नहीं। ऐसे नानाजी अपने मुखसे दूसरोंके बारेमें कहते हैं— भैया ! अमुक व्यक्ति बड़ी साधना करता है। नामजप करता है। निरन्तर भगवच्चिन्तनका प्रयास करता है। उसे अनुभव भी होते हैं। अपनेसे तो वही अच्छा है।

प्रभु बाध्य हो जाते हैं इस सराहनासे। वह अधिकारी था या अनधिकारी, अब यह प्रश्न नहीं रहा। भगवान भक्तके वशमें हैं। लीलाविहारी नटवर हों या चतुर्भुज नारायण, उन्हें उसे अपनाना

ही पड़ेगा। यह है नानाजीके गुणदर्शनका निरुपम परिणाम। अब इसे क्या उपमा दी जा सकती है? ■

सौ. श्रीपुष्पादेवी भरतिया

विलक्षण था उनका प्यार

नानाजीकी छत्रछायामें हम बच्चे बढ़ते रहे। उनका सहज स्नेह हमें अबाध रूपसे मिलता रहा। हमलोगोंकी स्वच्छन्द क्रीड़ाके उपयुक्त सभी वस्तुएँ प्रस्तुत रहतीं। जब भी कुछ माँग होती, हमारे नानाजी अविलम्ब उसे पूरा कर देते। जीवनमें कभी भी, किसी भी प्रकारके अभावका अनुभव नहीं किया मैंने उनके जीवनकालमें। बचपनके सलोने दिन कब, कैसे बीत गये, हम जान भी नहीं पाये।

मैं करीब नौ वर्षकी थी, तब नानाजी सारे परिवारके साथ रतनगढ़ गये थे। वहाँ बैठकमें वे सम्पादनका कार्य किया करते थे। सर्दीके दिनोंमें वे कम्बल या मोटी चादर ओढ़कर बैठा करते थे। नानाजीके सामीप्य और स्पर्शसे मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुआ करती थी। उतनी देरके लिये मैं अपनेको बहुत ही गौरवशालिनी अनुभव करती। बस, इसीलिये मैं ठिठुरती ठंडमें बिना कुछ गर्म कपड़े पहने चली जाती बैठकमें। नानाजीका ध्यान सहज ही आकृष्ट होता मेरी तरफ और वे अपनी दुलारंभरी भाषामें कहते— सी लाग जासी छोरी! तूँ सूटर भी कोनी पैर राखी। आ मेरी कम्बल म बड़ जा (ठण्ड लग जायेगी लड़की! तूने स्वेटर नहीं पहन रखा है। आ, मेरी कम्बल में घुस जा)।

वे कम्बलसे दोनों हाथ निकालकर मुझे अपनी ओढ़ी कम्बलसे आवृत कर लेते। मुझे अभिवाञ्छितकी प्राप्ति हो जाती और मैं खिल उठती। छोटे-बड़े मेरे भाई-बहिन ललचायी नजरोंसे देखते रह जाते और मैं नानाजीके स्नेहपर अपना एकाधिपत्य जमा, चैनकी नींद सो जाती।

यों तो नानाजी हम सभी बच्चोंको बहुत अधिक प्यार करते थे, परंतु उनका स्नेह मेरे प्रति अपेक्षाकृत अधिक रहता। वे कहा भी करते थे— मुझे तुम चारों बच्चे बहुत ही प्रिय हो, परंतु तुम्हारे प्रति मेरा बहुत मोह है।

नानाजीकी अयाचित अनुकम्पा मुझपर विशेष रूपसे रहती और मैं अनायास अतिशय सुगमतासे प्राप्त उनके अपरिसीम प्यारसे ओत-प्रोत अपने सौभाग्यपर स्वतः ही मोहित रहती। समय बीतता गया और समयके साथ-साथ मैं भी बढ़ती गयी। अब नानाजीको मेरी शादी करनी थी और आखिर वह दिन आ ही गया, जो हर लड़कीके जीवनमें एक दिन आता ही है। शादी हो गयी मेरी। मुझे बिदा करना था। हृदयमें उल्लास और आँखोंमें आँसू लिये नानाजी मेरे पास आये। मैं स्थिर पलकोंसे देख रही थी अपने नानाजीके स्नेहपूरित छलछलाये नेत्रयुगलको।

अब मेरा धैर्य भी बाँध तोड़ चुका था। मैं नानाजीके गलेमें हाथ डालकर फफक-फफककर रोने लगी। नानाजी बहुत कुछ कहना-समझाना चाहते थे मुझे, पर उमड़े हुए स्नेहको भेदकर वाणी कण्ठसे बाहर आ जो नहीं पाती थी। कबतक मैं रोती रही, मुझे भान नहीं। हाँ, किसीने जबर्दस्ती मुझे नानाजीसे अलग किया। नानाजीने बहुत कठिनाईसे अपनेको सँभाला तथा अश्रुपूरित कण्ठसे मेरे कर्तव्योंका बोध कराते हुए मुझे जल्दी ही बुलानेकी सान्त्वना दी और मुझे बिदा कर दिया गया।

मेरी शादी चार मार्चको थी और मेरी एम.ए. की फाइनल परीक्षा मार्चके अन्तिम सप्ताहमें। मैं १३-१४ मार्चतक वापस आयी। पढ़ाई कुछ भी नहीं हुई थी। सालभरका और फिर एम.ए.का कोर्स पन्द्रह दिनमें तैयार करना असम्भव था। मैं नानाजीके पास गयी। मैंने कहा—नानाजी! मेरी तैयारी बिल्कुल नहीं हुई है। मैं परीक्षा नहीं दूँगी। हाँ, अगर आप चाहते हैं कि मैं परीक्षा दूँ तो आप अपने मुँहसे कह दीजिये, मेरी सेकेंड डिविजन आ जायेगी।

नानाजी पहले तो आनाकानी करते रहे, पर मेरे बालहठके सामने उन्हें झुकना ही पड़ा। आखिर उन्होंने कह ही दिया— परीक्षा तो दो, सेकेंड डिविजन आ जायेगी।

जो सत्यसंकल्प है, उनके दिव्य मानसतलमें किसी भी संकल्पका उन्मेष होते ही वह तत्क्षण संघटित हो जाता है। उन्होंने जब अपनी वाणीसे कह दिया, तब मेरे लिये संशयका स्थान ही कहाँ रह गया था! मैंने पन्द्रह दिन पढ़कर परीक्षा दी और गुड सेकेंड क्लासके मार्क्स थे मेरे। नानाजी सर्वसमर्थ थे, सब कुछ करनेकी-देनेकी सामर्थ्य थी उनमें। यह नितान्त सत्य है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे जीवनमें कई बार हुआ है। अनुभव प्रचारकी वस्तु नहीं, अतः उनको गोपनीय रखना ही उचित है।

जितने दिन मैं ससुराल रही, नानाजीका पत्र प्रायः प्रत्येक दिन ही मिलता। किसी दिन नहीं पहुँचता तो दूसरे दिन दो पत्र साथ-साथ मिलते। पत्र देखते ही मैं आनन्द-विभोर हो उठती। गोल-गोल, मोतीकी लड़ी-सी सुन्दर-सुघड़, स्नेहपूरित अक्षरावलीको देखते ही मैं खुशीसे मत्त हो उठती। लिफाफेके ऊपर भी 'बेटी' लिखे बिना नानाजीका मन नहीं मानता। सदा 'बेटी पुष्पा भरतिया' करके ही वे पता लिखते अपने हाथोंसे। आज भी मेरे जीवनकी अमूल्य निधिके रूपमें उनके हाथोंसे मुझे लिखे गये अनेकों पत्र हैं। जब भी उन्हें पढ़ती हूँ, लगता है नानाजी मेरे सामने बैठे हैं और बड़े ही प्यारसे, लाड़भरी मनुहारसे मुझे नानाविधि शुभ प्रेरणा दे रहे हैं।

किसी भी कारणवश मुझे पत्र देनेमें यदि एक दिनका भी विलम्ब हो जाता तो नानाजी चिन्तित हो उठते। मेरे पत्रके किसी भी शब्दसे 'नैराश्य' या 'उदासी' का क्षीण-सा भी आभास उन्हें मिलता तो वे आकुल हो उठते। प्रातः नानाजीके भोजन करनेका समय होता, प्रायः उसी समय डाक आया करती थी। कार्यभारकी अधिकताके कारण नानाजी भोजन करते समय भी आयी हुई डाक एवं पत्रोंको देखा करते थे। नानी भोजन कराने आती थी। अगर मेरा पत्र होता तो नानाजी नानीको पढ़कर सुना देते थे। पत्र पढ़ते-पढ़ते उनकी विचित्र-सी दशा हो जाती, आँखोंसे झर-झर आँसू गिरने लगते, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता उनका। नानीका भी असीम स्नेह

है मेरे प्रति, उसका भी कलेजा भर आता। स्थितिके गाम्भीर्यको कम करनेके हेतु नानी व्यंग्यका पुट देती-सी कहती— पैली थे रो ल्यो, फेर बाँचिओ (पहले आप रो लें, फिर पढ़ियेगा)। बेरो कोनी जी, कित्तो मोह है थारो उँ छोरी मँ (पता नहीं कितना मोह है आपका उस लड़कीमें)।

व्यंग्ययुक्त प्रेमिल वाणी सुनकर नानाजी अनायास ही हँस पड़ते और फिर बातोंका प्रवाह बदल जाता। मैं जब गोरखपुर आती, तब नानी या स्वयं नानाजीके द्वारा मुझे इन सब बातोंकी सूचना मिलती। जब मैं यहाँ रहती, नानाजी चाहते कि मैं उनके पास जाऊँ, बैठूँ, पर इन दिनोंमें प्रायः नानाजी बाह्यज्ञान भूलकर भावराज्यमें खोये रहते थे, प्रायः नानाजी कमरा बन्द रखने लगे थे। इस कारण कई बार कई-कई दिनोंतक यहाँ रहते हुए भी मुझे उनके पास बैठनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हो पाता था। कई दिनों बाद देखनेपर नानाजी उलाहना देते, न आनेका कारण पूछते। मैं कहती— मैं तो आयी थी, पर आपका दरवाजा बन्द था, नानाजी!

वे कहते— दरवाजा बन्द था, पर तुम्हारे लिये थोड़े बन्द था तुम खटखटा लेती, खुलवा लेती।

कई बार उन्हें मेरी आवाजसे या आहटसे यह पता चल जाता कि मैं ऊपर आयी हूँ तो कितने भी आवश्यक कार्यमें व्यस्त क्यों न हों, उठकर तुरन्त दरवाजा खोल मुझे अन्दर बुला लेते एवं अपने सहज स्नेहसे मेरे अणु-अणुको सिक्त कर देते।

सुखके दिनोंकी रफ्तार इतनी तेज होती है कि कब आये, कब चले गये, पता भी नहीं चला। नानाजीकी दृष्टिमें अब पट-परिवर्तन करने का समय आ चुका था। नानाजी सर्वज्ञ थे। वे जानते थे, जाना है, पर जानेसे पहले किसी-न-किसी रूपमें मेरे मलिन शरीरद्वारा उनकी सेवा हो जाये, यह उनकी हार्दिक अभिलाषा हो गयी थी। इसके अन्तरालमें भी असीम, अगाध स्नेहका समुद्र लहरा रहा था उनका मेरे प्रति। उनकी सेवाका उपकरण बन मैं कृतार्थ हो जाऊँ, यह स्नेह-भावना, मंगल-भावना निहित थी उनकी इस अभिलाषामें।

नानाजीके शरीरमें भीषण दाह था। हाथोंपर और सिरपर ठंडे हाथोंका स्पर्श अच्छा लगता था उन्हें। सभी चाहते कि उनकी सेवाका सौभाग्य उन्हें भी प्राप्त हो। एक सज्जन बर्फसे स्पृष्ट हाथ लगा रहे थे, मैं पासमें खड़ी थी। नानाजीकी मुख-मुद्रासे मुझे यह आभास हुआ कि उन्हें इस रीतिसे हाथ लगाना विशेष रुचिकर नहीं लग रहा है। मैंने उनको दूसरी रीतिसे हाथ रखनेको कहा। बस, अब तो नानाजीको बोलनेका अवसर मिल गया। स्नेहभरी खीझसे बोले— खड़ी-खड़ी अकल बताव ह, यो तो कोनी की आप ही कर देव (खड़ी-खड़ी सिखा रही है, यह तो नहीं कि खुद ही कर दे)।

इस उक्तिका लक्ष्य क्या है, यह समझते उन सज्जनको देर नहीं लगी। वे हट गये। मैं उनकी जगह बैठकर उनके सुधापूरित आदेशका पालन करने लगी। आखिरी दिनोंमें नानाजीको प्यास लगती, पर उनके गलेसे पानी नहीं उतरता था। उनको ड्रापरसे बूँद-बूँद करके पानी दिया जाता था। कई लोगोंने चेष्टा की पानी पिलानेकी, पर नानाजी सदैव मुझे ही पिलानेको कहते। कारण विशेषसे यदि मुझे बाहर आ जाना पड़ता तो मुझे खोजकर बुलवाया जाता। ऐसा विलक्षण था उनका प्यार मेरे प्रति।

नानाजीने स्वयं मुझे अपने पत्रमें लिखा था— *तुम जहाँ भी रहो, मेरा स्नेह तुम्हारी सम्पत्ति*

है, मेरा शरीर रहे या न रहे, तुम जहाँ भी रहोगी, तुम्हे वह अबाध रूपसे मिलता रहेगा। ■

श्रीदिलीपकुमारजी भरतिया

जीवनदानी नानाजी

मैंने अपनी कालेजकी शिक्षा १९६६ जूनमें समाप्त की। बम्बई विश्वविद्यालयसे एम.कॉम.की डिग्री प्राप्त करनेके पश्चात् परिवारवालोंकी यह स्वाभाविक रुचि रही कि मेरा विवाह हो जाय। भाग्यसे मेरा विवाह श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी दौहित्री पुष्पादेवीके सांथ सम्पन्न हुआ और मुझे विलक्षण नानाजी प्राप्त हुए।

विवाहके एक साल बादसे अर्थात् १९६८ से मेरा स्वास्थ्य खराब रहने लगा। दिन-पर-दिन शरीर अस्वस्थ रहने लगा और पेटकी तकलीफ बढ़ने लगी। एक वर्ष तक गिरिडीह एवं कलकत्तामें तरह-तरहके इलाज हुए, पर तनिक भी लाभ नहीं हुआ। १९६९ के जनवरी मासमें पूज्य नानाजीने मेरे परिवारवालोंसे विनम्र आग्रह करके मुझे गोरखपुर इलाज करवानेके लिये बुलाया। मैं यहाँ पाँच या छः तारीख तक पहुँचा, उन दिनों वे कहा करते थे— मेरे हृदयमें कोई भी संकल्प-विकल्प नहीं उठता, परंतु मैं आपको नीरोग देखना चाहता हूँ।

उनको भावी घटनाओंका पूर्ण ज्ञान था। वे जानते थे कि मेरा आगेका समय खराब है और शायद पूरे पेटका ऑपरेशन करना होगा, पर वे अपने भविष्यके ज्ञानको प्रकट करना नहीं चाहते थे। डाक्टरोंकी सलाहके अनुसार पूज्य नानाजीको केवल 'अपेण्डिक्स' के ऑपरेशनकी बात जँची। २५ जनवरीको ऑपरेशन हुआ। ऑपरेशन थियेटरमें मुझे ले जाते वक्त उन्होंने सर्जन महोदयसे कहा— आप केवल अपेण्डिक्सका ऑपरेशन कीजियेगा, पूरा पेट मत खोलियेगा।

भावी सत्यके अन्तरालमें वे जानते थे कि पूरा पेट खोला जायेगा। सर्जन महोदयने उस समय उन्हें कहा— पेट खोलना कोई बच्चोंका खेल नहीं है। अगर अपेण्डिक्स देखनेसे रोगका निदान ठीक नहीं हो सका तो पूरा पेट खोलकर इनकी बीमारीका पता लगाऊँगा।

अस्तु, पूरे पेटका बड़ा ऑपरेशन हुआ। पेटमें 'अल्सर' मिला। पेटकी आतोंका काफी हिस्सा निकाल दिया गया। ऑपरेशन सफल हुआ, पर असह्य पीड़ा थी। सारा शरीर जल रहा था। इस असह्य वेदनामें भी जब-जब पूज्य नानाजी पास आकर बैठ जाते, शान्तिका अनुभव होता। उनके आते ही मनको बड़ा बल मिलता। वे आश्वासन देते— आप ठीक हो जायेंगे, भगवानको नित्य-निरन्तर याद रखिये।

चार दिनतक असह्य पीड़ा और वेदना रही, पाँचवें दिनसे कुछ राहत मिलने लगी। मेरी हालतमें कुछ सुधार और लाभ हुआ कि अचानक पेटमें पुनः भीषण पीड़ा आरम्भ हो गयी। सब डाक्टर महानुभाव घबरा गये। स्थिति चिन्तनीय होने लगी। पूज्य नानाजी सब कुछ व्यवस्था करते हुए भी अविचल थे। मुझे अच्छी प्रकारसे स्मरण है जब मैंने पूज्य नानाजीको प्रथम

ऑपरेशनके बाद कहा कि मुझे बड़ा कष्ट है, तब उन्होंने बड़ी ही गम्भीर मुद्रामें उत्तर दिया था कि कष्ट तो और भी आगे है। अर्थात् दूसरे ऑपरेशनकी जानकारी उन्हें थी। पेटमें असह्य दर्द तो था ही, उल्टियाँ होने लगीं। नानाजी बार-बार कमरेमें आते, सिरपर और मुखपर हाथ फेरते और भगवन्नाम— *'ॐ अच्युताय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ गोविन्दाय नमः'* का उच्चारण करते। उस समय मुझे जिस आन्तरिक सुखकी अनुभूति होती, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता।

प्रथम ऑपरेशनके पश्चात् सर्जन महोदय बाहर चले गये थे। उन्हें बुलाया गया। वे आये। स्थिति देखकर वे घबरा गये, परंतु नानाजीने उन्हें हिम्मत और बल दिया। पुनः ऑपरेशन होना तय हुआ। जब मुझे दूसरा ऑपरेशन करानेके लिये ऑपरेशन थियेटरमें ले जाया जा रहा था, मेरा हृदय भावी शारीरिक पीड़ा और मानसिक कष्टसे विदीर्ण होता चला जा रहा था, आँखोंसे आँसू झर रहे थे। पूज्य नानाजी बगलमें आकर बड़े ही स्नेह और प्यार भरे शब्दोंमें बोले— आप रोते क्यों हैं, हमलोग आपके साथ जो हैं।

उस समय मनको बड़ा संतोष हुआ, परंतु जीवन-मृत्युके बीचमें मैं झूल रहा था। ऑपरेशन थियेटरमें बेहोशीका इंजेक्शन देनेके वक्ततक अखण्ड रूपसे पूज्य नानाजीकी स्मृति बनी रही।

ऑपरेशन हुआ और सफल हो गया, परंतु उस प्रक्रियामें होनेवाली पीड़ाका लेखनीद्वारा चित्रण नहीं हो सकता। पूज्य नानाजी आकर आश्वासन देते— यह आँधी आयी है, यह भी निकल जायेगी।

वे हॉस्पिटल प्रतिदिन सुबह नौ बजेसे दस बजेके बीच आते। मैं मन-ही-मन उनके आनेकी प्रतीक्षा करता, क्यों कि उनके आते ही हृदय शान्त और शीतल हो जाता। एक बार जब मैं बुरी तरह रोकर उन्हें शारीरिक कष्टकी स्थिति बताने लगा, तब वे बोले— *आप धीरज रखें, अधिक न बोलें। बोलनेसे कष्ट होगा। मुझे सारी स्थितिका ज्ञान है। मैं आपके दोनों ऑपरेशनोंके समय ऑपरेशन थियेटरके अन्दर था। मैंने सब कुछ देखा है। मैं आप सबको देख रहा था, पर मुझे कोई नहीं देख पा रहा था। मैं ऑपरेशन थियेटरके बाहर लोगोंके समक्ष भी था और थियेटरके अन्दर भी। मैं आपसे जो कुछ कह रहा हूँ, बिल्कुल सत्य-सत्य कह रहा हूँ। मुझे झूठ बोलकर आपसे क्या लेना है।*

उस समय मैं और नानाजी दो ही व्यक्ति थे और लोग कमरेके बाहर चले गये थे। दूसरे ऑपरेशनके दो-तीन दिन बाद स्थिति फिर खराब होने लगी। मुझे उस स्थितिका ठीक अनुभव नहीं हुआ। बादमें घरवालोंने मुझे बताया कि मेरा चेहरा विकृत हो गया था। डाक्टर स्वयं घबरा रहे थे। तब सबके प्रबल आग्रहसे पूज्य नानाजीने रात्रिके समय कमरेको बन्द करके कुछ किया और मेरी स्थितिमें सुधार होने लगा।

उस समय मैं गोरखपुर १० अप्रैल १९६९ तक रहा। वे नित्य प्रतिदिन कम-से-कम एक समय मुझे देखनेके लिये नीचे कमरेमें आया करते थे। मैं उनसे आग्रह करता— आप नीचे क्यों आते हैं, मैं आपसे मिलने ऊपर आ जाया करूँगा।

वे बड़ी ही मधुर वाणीमें कहते— मुझे नीचे आकर मिलनेमें सुख मिलता है। मैं जो कुछ भी

आपके लिये कर रहा हूँ, अपने सुखके लिये कर रहा हूँ, मुझे इसमें सुख मिलता है।

दूसरे ऑपरेशनके पाँच महीने बादतक स्वास्थ्य ठीक चलता रहा, परंतु फिर शारीरिक स्थिति गिरने लगी। पूज्य नानाजीको आगे आनेवाली घटनाओंकी जानकारी थी ही। मुझे एक-दो पत्रोंमें उन्होंने संकेत-सा भी किया– *भारी-से-भारी कष्टमें भी मन विचलित न होने पाये, आप हिमालयकी तरह दृढ़ रहें और मन अखण्डरूपसे भगवानकी स्मृति करता रहे।*

सन् १९६९ के श्रीराधाष्टमी महोत्सवपर मैं गोरखपुर आया। उत्सवके चौथे दिन रात्रिमें दस बजे अचानक पेटमें भयंकर पीड़ा शुरू हो गयी। बस, यही कह सकता हूँ कि शरीरसे प्राण नहीं गये, बाकी कुछ नहीं रहा। प्राण रह-रहकर निकलना चाह रहे थे, परंतु पूज्य नानाजीकी अनन्त असीम कृपासे जीवन-दान जो मिलना था।

मुझे ऑपरेशनके लिये दिल्ली ले जानेका निश्चय हुआ। दिल्ली ले जानेके दो दिन पूर्व पूज्य नानाजी अस्वस्थ अवस्थामें भी अकेले कमरेमें आये। उनके अतिरिक्त उस समय कमरेमें और कोई नहीं था। वे करीब बीस मिनटतक बैठे रहे और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, वे अपनी अमृतमयी दृष्टिसे मुझे जीवन-दान देनेका एक बार फिरसे संकल्प कर रहे हैं।

जब मुझे दिल्ली ले जानेका समय आया, पूज्य नानाजी मेरे कमरेमें आये। पूज्य नानाजीने आश्वासन भरे शब्दोंमें कहा– आप घबराते क्यों हैं! हम आपके साथ जो हैं।

हमलोग दिल्ली पहुँचे। दिल्लीके डाक्टरोंने स्थितिका अध्ययन करके कहा– ८० प्रतिशत उम्मीद नहीं है कि ये बच जाँय, २० प्रतिशत बचनेकी आशा है।

ऑपरेशन होना अनिवार्य था। तीसरा ऑपरेशन २५ सितम्बर १९६९ को हुआ। ऑपरेशन हुआ और इस सफलताका एकमात्र श्रेय केवल पूज्य नानाजीकी असीम कृपा और स्नेहको था। भीषणसे भी अधिक कष्ट रहा। शारीरिक कष्टके साथ-साथ मानसिक अवस्था भी बहुत खराब हो गयी थी, परंतु पूज्य नानाजीकी कृपासे जीवनका वह तूफान भी निकल गया। पूज्य नानाजीकी निरन्तर स्मृति बनी रहती और सांनिध्यका अनुभव होता रहता।

ठीक होनेपर मैं दिल्लीसे गिरिडीह चला गया। पूज्य नानाजी मुझे बराबर पत्र देते रहे। एक पत्रमें उन्होंने लिखा– *जगत्‌का कोई संयोग और वियोग, उत्पत्ति और विनाश मेरे मनको तत्त्वतः विचलित नहीं कर सकते। आप स्वस्थ हो जायँ, बस, मैं यही चाहता हूँ। मुझे लोक और परलोककी कोई चिन्ता नहीं, पर आपके स्वास्थ्यकी चिन्ता है।*

पत्रोंके द्वारा वे आश्वासन, स्नेह और अशीर्वाद देते रहे। स्वास्थ्यकी ओर दृष्टि रखते हुए इलाजके लिये परिवारवालोंने ६ अप्रैल १९७० को मुझे पुनः पूज्य नानाजीके पास गोरखपुर भेज दिया।

पूज्य नानाजीने मेरे जीवनमें भगवद्रसकी धारा प्रवाहित करनेका पूरा प्रयास किया। वस्तुतः जीवनमें भगवत्प्रीति तो केवल पूज्य नानाजी जैसे महाभागवत संतकी कृपासे ही प्राप्त हो सकती है। उन्होंने इसका मेरे हृदयमें बीजारोपण किया और उसे अंकुरित करनेका सतत प्रयत्न किया। उन्होंने मुझे कई पारमार्थिक अनुभूतियाँ भी करायीं, जिन्हें मैं अपनी अमूल्य निधि के

रूपमें गुप्त ही रखना चाहता हूँ। उन्होंने मुझे जीवन-दान दिया, इसे मैं कभी भूल नहीं पाऊँगा। मेरा शेष जीवन श्रीराधा-माधवके स्मरण-चिन्तनमें बीत जाय– बस, मेरी यही पूज्य नानाजीसे याचना है। ■

श्रीचन्द्रकान्तजी फोगला

[१] संतत्व शृंखला

घटना उस समयकी है, जब मेरी आयु चौदह-पंद्रह वर्षकी रही होगी। मनोरंजन ही ध्येय था जीवनका। किसी तरह इधर-उधर पड़ी एक साधारण बन्दूक (AIR-GUN) हाथ लग गयी और साथमें छर्रोंका डिब्बा भी। अब क्या था, निशानेबाजीका अभ्यास आरम्भ हो गया। निशानाबाजी कभी किसी टूटे हुए बर्तनपर तो कभी किसी दीवालपर। और कभी कुछ सामने न दीखा तो कोमल कुसुम ही निशाना बनते। अभ्याससाध्य इस मनोरंजनमें धीरे-धीरे सफलता भी मिलने लगी। साथके समवयस्क मित्र मेरी सफलताकी प्रशंसा भी करते। अब मेरे प्रशंसक मुझे जड़के स्थानपर चेतनका लक्ष्य करनेके लिये उकसाने लगे। उनकी प्रशंसा अच्छी भी लगती, पर बचपनसे घरके वातावरणका प्रभाव कुछ ऐसा था कि हिम्मत नहीं होती कि किसी जीवपर निशाना साधूँ।

मित्रों द्वारा रोज-रोज उकसाये जानेसे मैंने भी हिम्मत कर ही ली। इधर बन्दूकका घोड़ा दबा और उधर चहचहाती बुलबुल पेड़परसे जमीनपर गिरकर तड़फड़ाने लगी। मैं भी घबड़ा गया। किसी पक्षीको मारनेका पहला ही प्रयास था। बुलबुलको तड़फड़ाता देख दयाका संचार तो हुआ ही, पर भय उससे भी अधिक था। कहीं यह बात ऊपर नानाजी (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के कानोंतक चली गयी तो. . . . ? डरके मारे मेरा रोआँ-रोआँ काँप रहा था, पर मैं करता भी क्या, तीर हाथसे जो निकल चुका था। किसी तरह एक नौकरके हाथ-पाँव जोड़कर उस पक्षीको तो फेंकवाया।

इसके थोड़ी देर बाद संवाद मिला– आपको ऊपर बाबूजी (नानाजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) बुला रहे हैं।

अब तो मेरी जो दशा हुई, वह मैं ही जानता हूँ। पर उपाय तो कुछ था ही नहीं। काँपते-काँपते ऊपर गया। मुझे देखकर नानाजीने कहा– बैठो।

रुद्ध कण्ठसे वे केवल इतना ही कह पाये और उनके नयनके कगारोंसे अश्रुकण लुढ़कने लगे। उनके अश्रुपूरित नयनोंको देखकर स्वाभाविक ही मेरी आँखें भी भर आयीं और भयका स्थान ग्लानिने ले लिया था।

फफकते हुए उन्होंने केवल इतना ही कहा– आगेसे ऐसा कभी मत करना। उनको भी उतना ही कष्ट होता है, जितना अपने लोगोंको।

बाल-सुलभतासे मैंने रोते हुए कहा– आप रोते क्यों है ? मैं अब कभी नहीं मारूगाँ।

उन्होंने बताया– मैं रोना चाहता नहीं, पर क्या करूँ ? जबसे यह बात सुनी है, अपने आप

आँखें भर आती हैं। जाओ, आगेसे ऐसा मत करना।

आज भी जब इस घटनाके विषयमें सोचता हूँ तो ऐसा लगता है यह सब और कुछ नहीं, संत-परम्पराकी कड़ी जोड़नेके लिये इतिहासने स्वयंको दोहराया है।

[२] धूपका ताप और मनका पश्चात्ताप

ज्येष्ठ मासकी भीषण गर्मीके दिन थे और कड़कड़ाती धूपके तापसे परेशान होनेके बाद भी जो तीर्थ-यात्री गंगा-पार जाना चाहते थे, वे गीताभवन (स्वर्गाश्रम) के घाटपर पंक्ति-बद्ध खड़े थे मोटर-बोटमें बैठनेके लिये। श्रीगंगाजीके उस पार ले जानेके लिये मोटर-बोट घाटपर लगी हुई थी। कुछ तीर्थ-यात्री मोटर-बोटमें बैठ भी गये थे। इसी समय पूज्य नानाजी डालमिया कोठीसे आकर मोटर-बोटकी ओर बढ़ने लगे। उनको किसी कार्यसे उस पार जाना था। उनको बढ़ते देखकर पंक्तिमें खड़े एक पंजाबी नवयुवकने टिप्पणी की— क्यों, हमलोगोंको विलम्ब नहीं हो रहा है क्या ? पसीनेसे तर-बतर तो हम सब भी हैं, पर कुछ बोलना व्यर्थ ही है !

इस तरहके विरोधकी मन्द ध्वनि नानाजीके कानोंतक भी जा पहुँची। स्वेद-कणोंसे भरा मस्तक, अत्यधिक श्रमसे श्रान्त शरीर, छड़ीके सहारे उठते हुए उनके चरण क्षणार्धमें वहीं ठहर गये। नानाजी उस पंजाबी नवयुवककी ओर बढ़े और स्नेहसे कुछ बोलना ही चाहते थे कि गीताभवनके उत्साही सत्संगी, जिन्होंने अपनी निस्स्वार्थ सेवाएँ अपने प्रवासके समयमें गीताभवनको अर्पित कर रखी थी, एक साथ ही बोल उठे— आप जानते हैं, ये कौन हैं ?

सत्संगी बन्धुका स्वर तीखा था और प्रश्न भी टेढ़ा। पंजाबी नवयुवकका स्वर भी तीखा हो चला था। उसने तपाकसे कहा— होंगे कोई, हमसे क्या, पर जब सब पंक्ति (लाइन) से जा रहे हैं, तब इन्हें क्रम तोड़कर यह सुविधा क्यों दी जा रही है ?

सत्संगी बन्धु उग्र स्वरमें बोल पड़े— जबान सँभालकर बोलिये, नहीं तो . . . . .

तभी स्नेह मिश्रित स्वरमें नानाजी बोल उठे— नहीं-नहीं, ये ठीक ही तो कह रहे हैं। व्यवस्था तथा क्रमकी दृष्टिसे यही उचित है।

उत्साही सत्संगियोंने परिचय देनेके उद्देश्यसे उस नवयुवकसे कहा— बतलायें इनका परिचय . . . .

गम्भीर स्वरमें नानाजीने सत्संगियोंसे कहा— व्यर्थकी बात मत कीजिये।

पंजाबी नवयुवक भी असमञ्जसमें पड़ गया। उसे भी सोचनेके लिये विवश होना पड़ा कि आखिर बात क्या है ? इसी बीच नानाजी मन्द-स्मितके साथ उस नवयुवकके कंधेपर हाथ रखते हुए बोले— आप जाइये। मैं अब पंक्तिसे आकर ही बोटमें बैठूँगा।

और उसी स्मितके साथ वे पीछे लौट पड़े पंक्तिमें खड़े होनेके लिये।

उसी रात्रिको नानाजी गीताभवनमें प्रवचन दे चुकनेके बाद आसनसे उठ ही रहे थे कि अचानक श्रोताओंके विशाल समुदायमेंसे वह ही नवयुवक सामने आ उपस्थित हुआ। लज्जाके कारण उसका मस्तक झुका हुआ था। पश्चात्तापका परिताप उसके मुखपर छाया हुआ था। वह कहने लगा— क्षमा कर दीजिये मुझे। मैंने आपको पहचाना नहीं था। मेरे कारण दोपहरमें आपको डेढ़ घंटे धूपमें प्रतीक्षा करनी पड़ी।

उस नवयुवकके रुद्ध कण्ठसे क्षमा-याचनाका स्वर फूट पड़ा। पासमें खड़े हुए उस नवयुवकको गलेमें भरते हुए नानाजीने कहा— *नहीं-नहीं, इसमें क्षमाकी क्या बात है ? क्षमा तो उसे किया जाता है, जिसने कोई अपराध किया हो। आप सबने तो मेरी भूलको ही सुधारा है। क्षमा तो मुझे माँगनी चाहिये।*

नवयुवकका हृदय रो उठा। अपने अहंकारके पोषणके लिये कहे गये शब्द कचोट रहे थे और मनपर थी नानाजीकी महान सहनशीलताकी, क्षमाकी, उदारताकी एवं स्नेहकी अमिट छाप।

[३] अभद्रके प्रति भद्र व्यवहार

सन् १९६७ की बात है। एक व्यक्ति अपने को विद्यार्थी घोषित करता हुआ पूज्य नानाजीके पास आया। नानाजी उन दिनों अस्वस्थ थे और ऊपरके कमरेमें रहते थे। नीचे नानाजीके निजी सहायक आदरणीय श्रीकृष्णजी आनेवाले व्यक्तियोंसे मिलकर और उनकी आवश्यकताको जानकर नानाजीको सूचित कर दिया करते थे। नानाजी आगत महानुभावकी आवश्यकता समझकर सहायताकी रकम भाई श्रीकृष्णजीको बता देते थे और वे आगत महानुभावको उतनी रकम देकर उनका स्वागत कर दिया करते थे। आवश्यक होनेपर नानाजी आगत सज्जनको अपने पास बुलाकर भी बात कर लेते थे। उस दिन आगत महानुभावको देखते ही भाई श्रीकृष्णजीने पहचान लिया कि इस व्यक्तिको कई बार नानाजीके यहाँसे सहायता मिल चुकी है और वह वस्तुतः विद्यार्थी नहीं है। भाई श्रीकृष्णजीने उसे समझाया— आप कई बार सहायता पा चुके हैं। बेचारे बहुत लोग अभावग्रस्त है, यहाँसे पानेका अवसर सभीको मिलना चाहिये। बार-बार एक ही व्यक्ति आता रहे, यह बात तो ठीक नहीं। दूसरे, आप विद्यार्थी न होकर अपनेको विद्यार्थी क्यों कहते हैं ? किसीकी सज्जनताका दुरुपयोग तो नहीं करना चाहिये। सच्ची-सच्ची बात कहिये कि मैं अभावग्रस्त हूँ, मुझे कुछ चाहिये।

इतना सुनते ही वे अपनी कलई खुलनेसे उत्तेजित हो गये और अनर्गल शब्द बोलने लगे। भाई श्रीकृष्णजीको यह बुरा लगा और उन्होंने गम्भीर स्वरमें कहा— आप भद्रतापूर्वक व्यवहार करें तो मैं आपकी बात सुननेको तैयार हूँ, परंतु इस प्रकार उत्तेजित होकर अशोभनीय शब्द कहना चाहते हैं तो आपको यहाँ नहीं आना चाहिये था। आपलोग अपना अभाव निवेदन करने आते हैं कि इस प्रकार धोखा देकर क्रोध करनेके लिये ?

इतना सुनते ही आगत सज्जन बहुत क्रोधमें आ गये और भाई श्रीकृष्णजीको गाली देने लगे। हल्ला सुनकर मैं घटना स्थलपर आ गया। उस व्यक्तिको गाली देते देखकर मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने दरवानको आवाज देकर बुलाया और उन सज्जनको समझाकर बगीचेके बाहर कर दिया। इतना ही नहीं, मैं नानाजीके पास गया और उन्हें बतलाया कि किस प्रकार बार-बार सहायता प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपनी कलई खुलनेसे भाई श्रीकृष्णजीको बुरी-बुरी गाली देकर गया है।

नानाजी मेरी बातें सुनते रहे। पीछे वे बोले— *वह अपने घरकी किसी अभावमयी स्थितिसे परेशान होगा, इसीसे विद्यार्थीका स्वाँग बनाकर आया था। मनुष्य जब अभावमें होता है, तब उसका विवेक मारा जाता है। उसने गाली दी, यह उसकी भूल है, पर गाली किस लाचारीकी स्थितिमें दी, यह तो हम नहीं जानते। बेचारेकी परिस्थितिमें हम होते, तब पता चलता कि हम*

क्या करते।

मैं अपनी बातपर अड़ा रहा और नानाजीसे बोला– भाई श्रीकृष्णजीको गाली देना आपको गाली देना है। ऐसे व्यक्तिको तो कभी भी एक पैसा नहीं देना चाहिये।

नानाजीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे चुप हो गये। थोड़ी देर पश्चात् आगत महानुभावका कहींसे टेलीफोन आया। नानाजीने टेलीफोन उठाया। उसने कहा– मैं आपके यहाँ अपनी आवश्यकता निवेदन करने गया था, पर आपके व्यक्तिसे कुछ तकरार हो गयी। उन्होंने मुझे बगीचेसे बाहर जानेका आदेश दिया और मैं बिना दुःख सुनाये चला आया। मेरी माँ बीमार है, मुझे इतने रुपये चाहिये।

नानाजीने टेलीफोनपर सब बातें सुनकर कहा– आज तो नहीं, पीछे मिलियेगा।

नानाजीने टेलीफोन रख दिया, पर उन्हें कहाँ चैन? उन्होंने दस मिनट बाद पुनः टेलीफोन किया। नानाजीने पुनः टेलीफोन उठाया और कहा– मैंने आपसे कह दिया था कि आज नहीं।

इसपर वे टेलीफोनपर ही गिड़गिड़ाने लगे और अपनी आवश्यकताका महत्त्व बताने लगे। नानाजी द्रवित हो गये और बोले– आ जाइये। आपको इतने रुपये मिल जायेंगे। आप उसी व्यक्तिसे मिल लीजियेगा। वह आपको इतने रुपये दे देगा। आपको इस तरह झगड़ा नहीं करना चाहिये। गाली तो कभी देनी ही नहीं चाहिये।

उसने कहा– हाँ, मुझसे भूल हो गयी। मैं क्रोधमें आ गया और मेरे मुँह से अपशब्द निकल गये। मैं उन महानुभावसे माफी माँग लूँगा।

उसे आनेकी बात कहकर नानाजीने भाई श्रीकृष्णजीको बुलाया और कहा– मुझे चन्दूने सब बता दिया है कि एक सज्जन आये थे। उन्होंने तुमसे झगड़ा किया और फिर वे गालीतक देने लग गये। वे झूठ बोलकर अपना अभाव बतला रहे थे। यह मैं जानता हूँ, पर बेचारे हैं तो कष्टमें। उनकी माँ बीमार है। उनका टेलीफोन आया है। मैंने उनको आनेको कह दिया है। तुम उन्हें इतने रुपये दे देना। दुःखी व्यक्तिका विवेक नष्ट हो जाता है।

भाई श्रीकृष्णजी नानाजीके हृदयकी कोमलतासे परिचित थे। उन्होंने कहा– मैं देनेके पक्षमें हूँ। अपने पास हो तो अभावग्रस्तको देना ही चाहिये; पर वे झूठ बोल रहे थे। इसीसे मैंने उन्हें समझाया कि सच्ची बात कहिये। झूठ क्यों बोलते है? आपने उन्हें आने के लिये कहा ही है। उनके आनेपर मैं उन्हें उतने रुपये दे दूँगा।

वे सज्जन आये और भाई श्रीकृष्णजीसे मिले। वे अपनी गलतीके लिये बार-बार क्षमा याचना करने लगे।

भाई श्रीकृष्णजीने कहा– मेरे मनपर इस घटनाका कोई प्रभाव नहीं है, पर आप कहीं भी जायें, कुछ भी कहें, पर झूठका आश्रय नहीं लेना चाहिये। सही-सही रूपमें अपनी आवश्यकताका निवेदन कर देना चाहिये।

वे सज्जन बहुत लज्जित हुए और रुपये पाकर आशीर्वाद देते हुए चले गये। रुपये देकर जब भाई श्रीकृष्णजी नानाजीसे मिले, तब नानाजीने कहा– *मैया! अभावग्रस्तको विवेक नहीं रहता। दूसरे, अभावग्रस्तके व्यवहारकी ओर न देखकर उसके अभावकी ओर देखना चाहिये।*

तीसरे, भूल करनेवालेके प्रति अपना सद्व्यवहार कम नहीं होना चाहिये, बल्कि उसके साथ अधिक सद्व्यवहार करना चाहिये। ऐसे व्यक्तिके प्रति किया गया सद्व्यवहार ही उसके सच्चे सुधारमें हेतु बनता है। शासनद्वारा कभी सच्चा सुधार सम्भव नहीं है। शासनसे अपराध दृढ़मूल हो जाता है। शासन अपराधीका सुधार नहीं करता है, अपितु अपराधीको और अधिक अपराधी बनाता है।

[४] कथनी-करनीमें एकरूपता

माँ भागीरथीके बायें तटपर स्थित गीताभवन (स्वर्गाश्रम) में प्रत्येक वर्ष ग्रीष्मऋतुमें लगभग तीन-साढ़े तीन महीने सत्संगका आयोजन होता है। अब तो गंगाजीपर सरकारने पुल बनवा दिया है, पर पहले गीताभवनमें ठहरनेवाले सत्संगी बन्धुओंको गंगापार ले जानेके लिये मोटरबोटकी व्यवस्था रहती थी और वह व्यवस्था अब भी है। प्रतिदिन दर्शन करनेके लिये सैकड़ों-हजारों तीर्थयात्री स्वर्गाश्रम पधारते हैं। उस मोटरबोट द्वारा दर्शनार्थ आने-जानेवाले यात्रियोंको एवं पर्यटकोंको भी गीताभवनके सत्संगी बन्धुओंके साथ यथासम्भव गंगापार करनेका सुअवसर दिया जाता है, पर जब गंगाजीमें जल बढ़ जाता है, तब बोटद्वारा गंगापार करना निरापद नहीं रहता। उन दिनों अनिवार्य होनेपर ही सीमित संख्यामें यात्रियोंको लेकर बड़ी सावधानीके साथ बोट चलाया जाता है। उस समय दर्शनार्थ आये हुए यात्रियोंको बोटद्वारा गंगापार होनेकी सुविधा बहुत कम उपलब्ध हो पाती है, पर *'रहत न आरत के चित चेतू'* की उक्तिके अनुसार यात्री जबरन बोटपर सवार होनेका प्रयत्न करते हैं। बोटके कर्मचारी स्थितिकी गम्भीरताका ज्ञान रखनेके कारण उन व्यक्तियोंके साथ सहानुभूति रखते हुए भी उनके दुराग्रहको स्वीकार नहीं कर पाते। परिणामतः कभी-कभी कुछ यात्री उग्र हो जाते और बोट-कर्मचारियोंके साथ संघर्ष कर बैठते।

इसी प्रकारकी विकट परिस्थिति कई साल पहले एक दिन गीताभवनके बोट-कर्मचारियोंके समक्ष उपस्थित हो गयी। गीताभवनमें ठहरे हुए सत्संगी-बन्धुओंको पार पहुँचानेके लिये बोट घाटपर लगा हुआ था और उसमें सामान लादा जा रहा था। दर्शनार्थ आनेवाले यात्रियोंको उस बोटद्वारा पार ले जाना सम्भव नहीं था। अधिक व्यक्तियोंके सवार होनेसे बोटके डूब जानेका भय था। बोटके कर्मचारी दर्शनार्थियोंको हाथ जोड़कर बड़ी ही नम्रतापूर्वक अपनी लाचारीका परिचय दे रहे थे और प्रायः यात्री उनकी विवशता समझकर वहाँसे हट जा रहे थे। इसी समय एक संभ्रान्त परिवारके आठ-दस सदस्य उस बोटपर चढ़नेके लिये पहुँचे। उनमें दो-तीन पुरुष थे, दो-तीन बच्चे तथा शेष महिलाएँ। बोटके कर्मचारियोंने उन्हें पूरी स्थितिसे अवगत कराया और समझाया— गीताभवनमें ठहरे हुए कुछ सत्संगी-बन्धुओंको उस पार पहुँचानेके लिये ही बोट लगा हुआ है। उनकी संख्या पर्याप्त है। आजकल श्रीगंगाजी बढ़ी हुई हैं और ऐसी स्थितिमें अधिक यात्रियोंके साथ बोट ले जानेमें खतरा है। उसके उलट जानेका पूरा भय है।

उन नागरिकोंने कर्मचारियोंकी इस अनुनय-विनयका मजाक उड़ाया और जबरदस्ती बोटपर चढ़नेका प्रयत्न किया। जब कर्मचारियोंने उन्हें ऐसा करनेसे रोका, तब उन नागरिकोंने अपशब्द कहे तथा पीटनेकी धमकी दी। बात बढ़ गयी और कर्मचारियोंपर कुछ घुँसे पड़े तथा उनके कपड़े भी फट गये। उन यात्रियोंमें भी जो सबसे बड़े व्यक्ति थे, उनके भी कपड़े फट गये।

स्थितिको बिगड़ते देखकर घाटपर खड़े लोगोंने बीचमें हस्तक्षेप करके दोनों ओरके व्यक्तियोंको पृथक्-पृथक् कर दिया।

बोटके कर्मचारी बेचारे कर्मचारी ही ठहरे, अतएव वे उन यात्रियोंको भला-बुरा कहते हुए अपने काममें लग गये, परंतु उन यात्रियोंने इस घटनाको बड़ा अपमान समझा और वे इसके लिये पुलिसमें रिपोर्ट लिखानेके लिये जाने लगे। संयोगवश वहाँपर खड़े हुए कुछ व्यक्तियोंने उन्हें समझाया— यह बोट गीताभवनका है और गीताभवनके प्रधान श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) आजकल यहीं हैं। आप उन्हींके पास जाइये और उन्हें अपना दुःख सुनाइये।

यात्रीलोग 'कल्याण'के पुराने ग्राहक थे और उनके हृदयमें नानाजीके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। अतएव लोगोंका परामर्श मानकर वे नानाजीके निवास-स्थान डालमिया कोठीपर जा पहुँचे। क्रोधके मारे उनका हृदय जल रहा था और वे बड़े ही कठोर शब्दोंमें प्रतिशोध लेनेके लिये विविध धमकियोंका उल्लेख कर रहे थे।

उस समय नानाजी अपने कमरेमें थे। जब उन्होंने कुछ लोगोंकी क्रोधजनित धमकियाँ तथा अपशब्द सुने, तब वे अपनी सहज प्रसन्न एवं शान्त मुद्रामें कमरेसे बाहर आये। दोनों हाथ जोड़े हुए और सबका अभिवादन करते हुए उन्होंने कहा— आइये, यहाँ विराजिये।

नानाजीके इन प्रेमभरे शब्दोंने तथा उनकी सहज आत्मीयताने जादूका-सा काम किया और वे सभी सज्जन नानाजीके समीप वहीं बरामदेमें बैठ गये। नानाजीने कहा— आपलोग इतने दुःखी क्यों हो रहे हैं, कृपया निवेदन करें।

इतना संकेत पाते ही उन्होंने अपना रोष प्रकट करना प्रारम्भ कर दिया। मनुष्य स्वभावकी यह कमजोरी है कि उसकी दृष्टि अपनी भूलोंकी ओर नहीं जाती, दूसरेमें ही सब दोष दिखलायी पड़ते हैं। यही बात उन लोगोंके साथ थी। उन्होंने खूब अतिरञ्जित करके बोटके कर्मचारियोंका दोष बतलाया तथा वे प्रश्न करने लगे— हमें भी आज घर लौट जाना है। ऐसी स्थितिमें हमें बोटसे पार क्यों नहीं किया गया ?

नानाजीने बड़े ही शान्तभावसे उनकी प्रत्येक बात सुनी और फिर वे बोले — आपलोग जैसा कह रहे हैं, यदि ऐसा ही हुआ है तो सचमुच बहुत ही अशोभन है, परंतु बोटके कर्मचारी पुराने व्यक्ति हैं और प्रतिदिन उनका सैकड़ों व्यक्तियोंसे काम पड़ता है। आजतक ऐसे अभद्र व्यवहारकी शिकायत उनके सम्बन्धमें नहीं आयी है। सम्भव है, आपलोगोंके द्वारा हुई किसी चेष्टाका उन्होंने गलत अर्थ लगा लिया हो। मैं उन लोगोंको बुलाकर पूछूँगा और उनकी भूलके लिये उन्हें सावधान करूँगा। आपलोग उन्हें क्षमा कर दीजिये और शान्त हो जाइये।

नानाजीके ये सद्भावपूर्ण शब्द भी उन लोगोंके क्रोधसे तप्त हृदयको रुचिकर नहीं लगे। वे क्रोध और दुःखके आवेशमें कर्मचारियोंके प्रति प्रतिहिंसाके शब्द बोलने लगे। संतका हृदय नवनीतके सदृश होता है। वे किसीके भी अनिष्टको सहन नहीं कर पाते। नानाजीको लगा होगा कि ये महानुभाव अपने व्यस्त जीवनमेंसे कुछ समय निकालकर माँ गंगाके जलसे पवित्र होने तथा पुण्यभूमि एवं संत-महात्माओंके दर्शन करनेके लिये आये हैं, किन्तु अहंताके वशीभूत होकर ये लोग यहाँसे अपने साथ ले जा रहे हैं— प्रतिहिंसा, द्वेष, घृणा, असद्भाव, अशान्ति,

जो लोक और परलोक दोनोंके लिये विघातक हैं। नानाजीने इनके इन दोषोंके प्रक्षालनका निश्चय किया। उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ लिये और उन यात्रियोंसे बड़े ही मन्द स्वरमें निवेदन किया— *बोटके कर्मचारी हमारे व्यक्ति हैं। कर्मचारीकी चेष्टा मालिककी चेष्टा होती है। हमारे कर्मचारियोंके द्वारा जो कुछ भी अपराध हुआ है, उसे मैं अपने द्वारा हुआ अपराध मानता हूँ और इसके लिये आप सबसे क्षमा चाहता हूँ। आप उन कर्मचारियोंके प्रति प्रतिहिंसाके विचारको सर्वथा त्याग दीजिये। मैं आपके समक्ष नतमस्तक हूँ. . . . . ।*

इतना कहते-कहते नानाजीकी आँखोंमें अश्रुकण छलक आये और उन्होंने अपना मस्तक उन लोगोंके समक्ष जमीनपर टेक दिया। उनके दोनों हाथ उसी प्रकार जुड़े हुए थे। सबके श्रद्धास्पद, वयोवृद्ध-ज्ञानवृद्ध-महापुरुषको इस प्रकार नेत्रोंमें जल भरे, हाथ जोड़े तथा पृथ्वीपर मस्तक टेककर क्षमा-याचना करते हुए देखकर यात्रियोंका हृदय द्रवित हो गया और वे सब-के-सब सुबक-सुबककर रोने लगे। नवयुवकोंने अपने हाथोंसे नानाजीके मस्तकको ऊँचा किया और स्वयं उनके परम-पावन चरणोंमें गिर पड़े। एक अपूर्व सात्त्विक वातावरण उपस्थित हो गया। अन्तरमें परम निर्मलता परिव्याप्त हो गयी। सब मौन थे और सबकी आँखें झर रही थीं। यात्रियोंका रोष, उनका असन्तोष, उनकी घृणा आदि अश्रु-विन्दुओंके साथ बह गये थे। अब उनका हृदय इस वेदनासे परिपूर्ण था कि नानाजी जैसे सच्चे एवं निर्दोष संतको अपने व्यवहारसे हमने क्यों व्यथित किया। वे उनके चरणोंपर सिर रखे हुए यही भीख माँग रहे थे— भाईजी ! हमारे कारण आपका हृदय व्यथित हुआ, इसके लिये हमें क्षमा कीजिये।

नानाजीने अपनी धोतीके छोरसे अपने नेत्र पोंछे और उन नवयुवकोंके सिरपर प्यारसे हाथ फेरते हुए उन्हें ऊपर उठाया। साथ ही उन्होंने अपने परिकर भाई श्रीकृष्णजीको, जो इस मर्मस्पर्शी दृश्यको देखकर द्रवित हो रहे थे, जल लानेका आदेश दिया। जल आनेपर नानाजी ने सब व्यक्तियोंको मुँह धोनेके लिये कहा। जब सब मुँह धोकर तैयार हो गये, तब नानाजीने उनसे प्रार्थना की— भोजन तैयार है। आप सब लोग भोजन करके जाइये।

जिस भाईके कपड़े फट गये थे, नानाजीने उनके लिये नये कपड़े लानेका आदेश भाई श्रीकृष्णजीको दिया, किन्तु उस भाईने हाथ जोड़कर विनय की— भाईजी ! आपकी कृपासे किसी चीजकी कमी नहीं है। कपड़े साथमें हैं, मैं बदल लेता हूँ। हाँ, आपके यहाँका प्रसाद हमलोग अवश्य ग्रहण करेंगे।

सब व्यक्ति प्रसाद ग्रहण करने लगे। पूज्या नानीजी तथा परिवारके अन्य सदस्य बड़ी मनुहारके साथ उन्हें भोजन करा रहे थे। उधर नानाजीने बोटके कर्मचारियोंको बुलवाया और उन्हें बड़े ही प्रेमसे समझाया। उन लोगोंने पूरी परिस्थितिका परिचय देते हुए अपनी भूल स्वीकार की कि उन लोगोंके अभद्र व्यवहार करनेपर भी हमें क्षुभित नहीं होना चाहिये था। अपनी भूलके लिये वे बार-बार क्षमा-याचना करने लगे। नानाजीने उनसे कहा— तुमलोगोंको यात्रियोंसे क्षमा-याचना करनी चाहिये, वे लोग भोजन करके अभी बाहर आ रहे हैं तथा बड़े प्रेम सहित उन्हें बोटद्वारा उस पार पहुँचाकर आना।

इसी बीच यात्री प्रसाद ग्रहण करके बाहर आ गये। बोटके कर्मचारियोंने उनसे हाथ जोड़कर अपनी भूलके लिये क्षमा माँगी। उन यात्रियोंमेंसे पुरुषोंने कहा— आप लोग हमें हमारे अभद्र

व्यवहारके लिये क्षमा कीजिये।

दोनों ओरके हृदय शान्त थे, दोनों ओर अपनी भूलकी स्वीकृति थी और उसके लिये क्षमा-याचना थी। नानाजीने यात्रियोंसे प्रार्थना की— अब आपलोग इन कर्मचारियोंके साथ जाइये। ये आपलोगोंको बोटद्वारा उस पार पहुँचा देंगे।

सबने नानाजीको प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद लेकर बोटके कर्मचारियोंके साथ बिदा हो गये। यात्रियोंके जानेके पश्चात् भाई श्रीकृष्णजीने नानाजीसे कहा— बाबूजी! आपने तो साधुताकी हद ही कर दी। इस प्रकारसे उन नवयुवकोंके सामने नेत्रोंमें जल भरकर तथा हाथ जोड़े हुए पृथ्वीपर मस्तक टेककर क्षमा-याचना करनेकी क्या आवश्यकता थी?

नानाजीने सहज भावसे उत्तर दिया— *तुम्हारा अपने दृष्टिकोणसे कहना ठीक है, किन्तु किसीको हमारे व्यवहार द्वारा उद्वेग प्राप्त हुआ हो तो उसके लिये हमें सच्चे हृदयसे परिताप होना ही चाहिये। ऐसा करना साधुता नहीं है, यह तो अपनी भूलका परिशोधन है। बोटके कर्मचारी हमारे हैं, उनके व्यवहारका दायित्व हमपर है। हम गीताभवनमें प्रवचनकर्ताके स्थानपर बैठकर तथा सम्पादकके रूपमें 'कल्याण'में जो-जो बातें कहते-लिखते हैं, कम-से-कम वे तो हमारे जीवनमें होनी ही चाहिये। यदि वे हमारे जीवनमें और व्यवहारमें न आयें तो हमें न तो प्रवचन ही करना चाहिये, न 'कल्याण'में ही कुछ लिखना चाहिये। कथनी-करनीमें एकरूपता अनिवार्य है। आचरणके बिना उपदेश व्यर्थ है, बकवास है, कुत्तेकी भाँति भौंकना है।*

करनी बिन कथनी कथे, अज्ञानी दिन-रात।
कूकर जिमि भूसत फिरे, सुनी-सुनायी बात॥

भाई श्रीकृष्णजीको अपनी भूल समझमें आ गयी।

[५] जाड़ेकी रातोंमें

पूज्य नानाजी अपने प्रवचनोंमें, लेखोंमें तथा व्यक्तिगत परामर्शमें इस बातको बहुधा कहा करते थे कि *धनकी तीन गतियाँ होती हैं— दान, भोग और नाश, जो सर्वथा अपरिहार्य है, होगा ही, अतः इस विनाशी धनको विश्वरूपमें विराजित अविनाशी प्रभुकी सेवामें लगा देनेमें ही इसकी सार्थकता है। भोग मृगमरीचिकाके सदृश हैं, उन्हें जितना भोगेंगे, तृष्णा उतनी ही बढ़ती रहेगी, अतएव जो कुछ धन हमें प्राप्त है, उनमेंसे आवश्यकताभर अपने ऊपर खर्च करके शेषको अभावग्रस्तोंकी सेवामें लगा ही देना चाहिये।*

जो नानाजीके जीवनसे परिचित हैं, वे जानते हैं कि उनकी कथनी और करनीमें कितना साम्य था। वे उतना ही कहते थे, जिसका पालन वे अपने जीवनमें स्वयं करते थे। उनके पास व्यक्तिगत रूपमें कुछ भी नहीं था, पर उन जैसा दानी मिलना कठिन है। वे दिन-रात खुले हाथों बाँटते ही रहते थे। उनके द्वारसे कभी कोई खाली हाथ नहीं लौटता था। भगवानकी कृपासे नानाजीका भण्डार सदा भरा ही रहता था।

सेवाके नये-नये रूप वे अपनाते रहते थे। सर्दी आरम्भ होते ही उनके यहाँसे ऊनी स्वेटर, चद्दर, कम्बल आदिका वितरण आरम्भ हो जाता था। इतना ही नहीं, पौषकी अँधेरी, ठिठुरती रात्रियोंमें, जब हवा भालेकी नोककी तरह प्रहार करती थी, हड्डीको कँपा देनेवाली उस ठंडमें आर्त-सेवक नानाजी अपने बिछावनसे उठ खड़े होते। जब सारा शहर अन्धकारमें डूबा हुआ

होता, शहरके सभी निवासी अपने-अपने सामर्थ्यके अनुसार पक्के भवन या कुटियामें रजाई या चिथड़ोंकी बनी गुदड़ी लपेटकर निद्रामें निमग्न होते, तब उन पर-दुःखकातर नानाजीको सुन पड़ती उन निराश्रितोंकी आवाज। वृक्षके नीचे पड़े शीतके भीषण प्रहारसे संत्रस्त भाई-बहिनोंकी कराह! नानाजी विस्मृत कर जाते अपने वृद्ध जर्जर शरीरको एवं सम्पूर्ण शारीरिक कष्टोंको और वे निकल पड़ते जीपमें निराश्रितोंके शीत-निवारणकी व्यवस्था करनेके लिये। कुछ विश्वासपात्र साथी भी साथमें हो जाते। कभी-कभी मुझे भी साथ जानेका अवसर मिला है।

जीपके पीछे लगा ट्रेलर ऊनी कम्बलोंसे भरा रहता और नगरके राजपथको रौंदती हुई उनकी जीप आगे बढ़ जाती उस सड़ककी ओर, उस खण्डहरकी ओर, जहाँ शीतसे ठिठुरते हुए-वस्त्र हीन भाई-बहिन सिकुड़े हुए पड़े रहते थे। जीप एक ओर खड़ी कर दी जाती और नानाजी जीपसे उतरकर उस अभागोंके उस कष्टको अपने हाथोंसे आवृत कर देते। ऊनी कम्बलोंसे उन्हें ढँकते और तुरन्त उस स्थानसे हट जाते। साथके हम बालक भी कम्बल ले-लेकर उन ठिठुरते भाई-बहिनोंको ओढ़ा देते।

जब वहाँ लेटे हुए सभी व्यक्तियोंको कम्बलोंसे ढक दिया जाता, तब इस आशंकासे कि कोई व्यक्ति उन्हें इस नवीन आच्छादनोंसे वंचित न कर दे, हमारी टोलीका एक व्यक्ति मन्द स्वरमें पुकारकर उन्हें तनिक-सा सावधान कर देता। इस क्रियासे कोई-कोई व्यक्ति उठकर बैठ भी जाता और अपने ऊपर एक गर्म कम्बल देखकर वह आश्चर्यचकित हो जाता। वह उस कम्बलको देनेवाले दानीके दर्शन करनेके लिये उत्कण्ठाभरी दृष्टि इधर-उधर डालता, परंतु इससे पूर्व ही नानाजीकी जीप वहाँसे चल पड़ती शहरके दूसरे कोनेकी ओर, जहाँ ऐसे ही अन्य भाई-बहिन शीतसे ठिठुरते होते।

इस प्रकार निराश्रित भाई-बहिनोंके शीत-निवारणकी इस गुप्त सेवाका क्रम प्रतिवर्ष ही चलता। जहाँ नानाजी स्वयं न जा पाते, वहाँ वे अपने स्वजनों और विश्वासी सेवकोंके द्वारा वह सेवा सम्पन्न करवाते। ■

श्रीकैलाशचन्द्रजी सेकसरिया

सबके विश्वास-पात्र थे

श्रीभाईजीके सामने किसीको भी अपना हृदय खोलकर रखनेमें संकोच नहीं होता था। बड़े-बड़े महात्मा, धनपति, विद्वान तथा राज्याधिकारी अपनी छिपी-से-छिपी कमजोरी भी उनके सामने रखते थे और उनसे परामर्श लेते थे। एक बार श्रीभाईजी पूज्य श्रीमालवीयजी महाराजके पास, वाराणसीमें उनके निवास स्थानपर बैठे हुए थे। उसी समय देशके एक प्रसिद्ध श्रीमन्त व्यक्ति श्रीमालवीयजी महाराजके दर्शनार्थ आये। कुछ देर बाद जब श्रीभाईजी श्रीमालवीयजीको प्रणाम करके बिदा होने लगे, तब श्रीमन्त महोदयने उनसे कहा— भाईजी! आप रुकियेगा, आपसे कुछ बात करनी है।

श्रीभाईजी बाहर रुक गये। थोड़ी देर बाद वे सज्जन बाहर आये और श्रीभाईजीको बिल्कुल एकान्तमें ले गये। फिर वे दोनों एक पेड़के नीचे बैठ गये। बैठते ही श्रीमन्त महोदयके नेत्रोंसे

अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। श्रीभाईजी इसका कारण नहीं समझ पाये। उन्होंने सोचा कि अभी ये शान्त हो जायेंगे तो बतलायेंगे, पर वे रोते ही रहे। वे लगभग पौन घंटेतक रोते रहे होंगे। उनकी इस दयनीय दशाको देखकर श्रीभाईजी तो अवाक् थे। खूब रो लेनेके पश्चात् जब उनका मन कुछ हल्का हुआ, तब उन्होंने कहा— भाईजी! मैं वर्षोंसे घुट रहा था। कोई ऐसा स्वजन ही नहीं मिला, जिसके सामने दो आँसू भी गिरा सकूँ। आपके स्नेहकी एवं आत्मीयताकी बार-बार स्मृति होती थी, पर आपसे भेंट ही नहीं हो पायी। आज आपके सामने रोकर अपने हृदयका भार हल्का किया है।

पीछे उन श्रीमन्त महोदयने श्रीभाईजीको अपने दुःखके कारण विस्तारपूर्वक बतलाये। उसे सुनकर श्रीभाईजी तो आश्चर्यचकित रह गये कि बाहरसे इतने सम्पन्न और इतने सुखी दिखलायी देने वाले इन महानुभावके हृदयमें दुःखका कितना भीषण ज्वालामुखी पर्वत धधक रहा है। श्रीभाईजीने उन्हें बड़े ही प्यार भरे शब्दोंमें सान्त्वना दी और उनकी समस्याओंका समाधान बतलाया। श्रीभाईजीकी बातोंसे उन्हें बड़ा संतोष हुआ। वे बोले— भाईजी, मैं आपकी बातोंके अनुसार चलनेकी चेष्टा करूँगा। सचमुच आपने मेरे दुःखके हेतुओंका बड़ा ही सरल समाधान बता दिया है।

इस घटनासे सहज पता चल जाता है कि श्रीभाईजी लोगोंके कितने और कैसे विश्वासपात्र थे। ■

आ. श्रीचन्दाबाई ढाँढनिया

[१] प्रथम परिचय, प्रथम दर्शन, प्रथम पत्र

मेरे पिताजी राजस्थानके रामगढ़के निवासी थे। एक बार पूज्य श्रीभाईजी रतनगढ़से रामगढ़ सत्संगके लिये आये। तब मेरी आयु लगभग दस-ग्यारह वर्षकी रही होगी। उनके सत्संगमें मेरा बड़ा भाई गया। जब वह वहाँसे लौटकर आया तो श्रीभाईजीके प्रवचनकी बड़ी सराहना करने लगा। उस सराहनाको सुनकर बहिनके नाते मैंने अपने भाईको बड़ा उलाहना दिया कि तुम मुझे भी अपने साथ क्यों नहीं ले गये। मुझे इस बातका बड़ा खेद था कि एक सुन्दर अवसर मैं चूक गयी। यही श्रीभाईजीका मेरे लिये प्रथम परिचय था और मैं मन-ही-मन सोचने लगी कि क्या कभी मुझे भी श्रीभाईजीके दर्शन हो पायेंगे।

बड़ी होनेपर भागलपुरके रायबहादुर श्रीलोकनाथप्रसादजी ढाँढनियाके परिवारमें उनकी पुत्र-वधूके रूपमें मेरा प्रवेश हुआ। हमलोग अपने पूज्य श्वसुरजीको बाबूजी कहा करते थे और उनसे मुझे अपार वात्सल्य मिला। वे सदा मुझे 'बेटा' कहकर पुकारा करते थे। घरमें अनुशासन और पर्दा बहुत अधिक था, अतः घरसे बाहर निकलनेकी रंचमात्र आशा नहीं थी। हाँ, एक बात अवश्य थी। मेरे बाबूजीकी पूज्य श्रीसेठजी (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) में बड़ी श्रद्धा थी और भजन-परायण जीवनके प्रति महत्त्व-बुद्धि होनेके कारण वे श्रीसेठजी तथा श्रीभाईजीकी पुस्तकें तथा 'कल्याण' पत्रिका पढ़नेकी प्रेरणा सदा दिया करते थे। वे श्रीसेठजीके सत्संगका लाभ उठानेके लिये सदा उत्सुक रहा करते थे और अवसर मिलते ही वे सत्संगके लिये

श्रीसेठजीके पास जाया करते थे। सन् १९२७ ई. में श्रीभाईजीको श्रीसेठजीकी उपस्थितिमें जब जसीडीहमें भगवान श्रीविष्णुके दर्शन हुए थे, उस समय बाबूजी भी वहाँ थे। उस समय श्रीसेठजी और श्रीभाईजी भोजनमें तीन वस्तु ही लिया करते थे, अतः बाबूजी भी तीन ही वस्तु थालीमें परोसवाया करते थे। बाबूजी श्रीसेठजीके सत्संगके लिये स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) भी जाया करते थे और दो बार मुझे भी ले गये थे।

जब बाबूजी तीसरी बार सत्संगके लिये मुझे स्वर्गाश्रम ले गये, उस समयकी बात है। श्रीसेठजीके सत्संगमें दो-तीन सप्ताह रहनेके बाद जब बाबूजीने भागलपुर वापस जानेका कार्यक्रम बना लिया, तभी ज्ञात हुआ कि श्रीभाईजी चार-पाँच दिन बाद सत्संगके लिये स्वर्गाश्रम आने वाले हैं। मेरी बड़ी चाह थी कि हमलोग एक सप्ताह और ठहर जायें, जिससे श्रीभाईजीका दर्शन एवं उनका प्रवचन दोनोंका लाभ मिल सके। बचपनकी उस पुरानी चाहके भी पूर्ण होनेका यह एक अच्छा अवसर था, अतः मैंने बाबूजीसे एक सप्ताह और ठहरनेके लिये कहा। मेरी बात सुनकर उन्होंने उत्तर दिया— नहीं बेटा। यह नहीं होगा। अब भागलपुर जानेका कार्यक्रम बन चुका है। इसको नहीं बदला जा सकता।

इतना कहते-कहते वे तो श्रीसेठजीके पास चले गये, पर इस उत्तरसे मेरे मनमें अपार व्यथा उमड़ आयी और वह व्यथा उमड़-उमड़कर बहने लगी आँसुओंके रूपमें। कमरेके एकान्तमें बैठी हुई रो-रो करके भगवानसे प्रार्थना करती हुई मैं अपने मनकी कसक उन्हें सुनाने लगी। मुझे क्या पता कि इसमें कितना समय बीत गया। थोड़ी देर बाद बाबूजी आये और मुझे सुनाकर कहने लगे— बेटा! ले, तेरे मनकी बात हो गयी। मैं अभी श्रीसेठजीके पास गया था और वे कहने लगे कि चार-पाँच दिनमें हनुमान गोरखपुरसे सत्संगके लिये आने वाला है, अतः लोकनाथजी! आप कुछ दिनके लिये और ठहर जाइये। श्रीसेठजीकी बात टालना मेरे लिये उचित नहीं है, अतः अब श्रीभाईजीके आनेतक अपने लोगोंको ठहरना ही है।

भगवानने मेरी प्रार्थना सुन ली और ठहरनेकी बात सुनकर मुझे जितनी प्रसन्नता हुई, वह बतला सकना सम्भव नहीं। चार-पाँच दिन बाद श्रीभाईजी स्वर्गाश्रम आये और बाबूजीसे मिलने हमारे कमरेपर भी आये। बाबूजीने श्रीभाईजीसे कहा— पहले आप इससे मिल लें। यह तो आपके दर्शनके लिये बहुत ही रो रही थी।

तुरन्त एकान्तमें मुझे श्रीभाईजीसे मिलनेका अवसर मिल गया। महाभागवत श्रीभाईजीसे भला क्या पर्दा? मैंने संकोच रहित होकर श्रीभाईजीके पावन चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। उनका दर्शन प्राप्त करके मेरे आनन्दकी सीमा नहीं थी। श्रीभाईजीने पूछा— बोलो! क्या पूछना चाहती हो?

मैं सरलमति भला क्या जानूँ कि ऐसे महापुरुषोंसे कैसे बात करनी चाहिये? मैं सरल ढंगसे कह बैठी— पूज्य बाबूजी कहते हैं कि आपको जसीडीहमें भगवानके दर्शन हुए थे, सो भगवानके दर्शनकी बात मुझे भी बतलाइये।

श्रीभाईजी भी सहज ढंगसे कहने लगे— *हाँ, वहाँ मुझे श्रीविष्णुभगवानके दर्शन हुए थे और अब भी होते हैं।*

इतना कहते ही उनके नेत्रोंसे ऐसा प्रकाश निकला कि उसका वर्णन हो ही नहीं सकता।

इसके बाद श्रीभाईजी इससे सम्बन्धित कई बातें बड़े स्वाभाविक रीतिसे बतलाते चले गये। उनके श्रीमुखसे इस प्रसंगको सुनकर मुझे तृप्ति ही नहीं होती थी। उनका भगवानपर विश्वास, उनके बोलनेकी मिठास, उनके व्यवहारकी सरलता और उनके स्वभावकी मधुरताको देखकर मन बरबस उनके श्रीचरणोंपर न्योछावर होता चला गया। स्वर्गाश्रमकी इस यात्रामें और भी कई बार श्रीभाईजीसे मिलनेका अवसर मिला और जब-जब अवसर मिला, तब-तब मन अधिकाधिक उनके प्रति झुकता चला गया।

लगभग एक सप्ताह बाद जब हमलोग स्वर्गाश्रमसे भागलपुर जाने लगे तो हमें विदाई देनेके लिये तथा नावपर चढ़ानेके लिये श्रीभाईजी घाटपर आये। नावपर चढ़ते समय मैंने श्रीभाईजीको मन-ही-मन प्रणाम किया। श्रद्धेयको प्रणाम करते समय मन इतना भाव-विभोर हो रहा था कि थोड़ी असावधानी हो गयी और एक बार पैर आगे रखते समय लड़खड़ा गया। पैरमें काफी चोट आयी और पीड़ा आरम्भ हो गयी परंतु अपने माँ-बाबूजीसे बहुत संकोच होनेके कारण मैंने उनसे कुछ कहा नहीं। मैंने मन-ही-मन यह भी मान लिया कि किसीने मेरे लड़खड़ानेको देखा ही नहीं। यदि कोई देख लेता तो वह मुझ कुल-वधूके बारेमें न जाने क्या सोचता। नावसे हमलोग गंगाजीके पार उतरे, पर पैरकी पीड़ा बढ़ती ही जा रही थी। हरिद्वार पहुँचते-पहुँचते पैरमें बहुत सूजन आ गयी। इससे बाबूजीको बड़ी विकलता हुई और उन्होंने हरिद्वारमें ही डाक्टरको बुलवाकर मेरा पैर दिखलाया। भागलपुर आनेके बाद भी एक-डेढ़ मासतक पैरका कष्ट भोगना पड़ा। भागलपुर पहुँचनेपर मुझे श्रीभाईजीका पत्र मिला, जिसमें बड़ी चिन्ता व्यक्त की गयी थी मेरे पैरके लड़खड़ानेके बारेमें। घाटपर मेरे पैरके लड़खड़ानेको उनकी पैनी दृष्टिने देख लिया था। मैं तो यह मान बैठी थी कि किसीने देखा ही नहीं होगा, पर मुझे आश्चर्य हो रहा था श्रीभाईजीकी पैनी दृष्टिपर। क्या उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि उन्होंने एक क्षणमें देख लिया मेरे लड़खड़ाने को? इसीके साथ-साथ मेरे कष्टका अनुमान भी उन्होंने कर लिया! श्रीभाईजीने पत्रमें जितनी चिन्ता, जितनी सहानुभूति और जितनी आत्मीयता लिखी थी, वह मेरे लिये एक अमिट स्मृति है, मनपर एक स्थायी छाप है। समय बीत गया, पर उस समयकी बात यादके रूपमें सदा मनपर छायी रहती है। श्रीभाईजीकी वह आत्मीयता क्या कभी भुलायी जा सकती है?

[२] भात भरनेका निमन्त्रण

सम्भवतः सन् १९६३ ई. की बात है। मेरे मझले पुत्र चि. नरेशके विवाहकी तिथि निश्चित हो गयी। प्रिय नरेश बड़ा संस्कारी बालक है। जब यह दो-तीन वर्षका बालक था, तब यह खेलते-खेलते तिमँजिले मकानकी खिड़कीसे अचानक बाहर नीचेकी ओर गिर पड़ा। जिस मकानमें हमलोग सपरिवार रहते थे, उस मकानके ठीक नीचे बर्छीनुमा रेलिंग लगी थी। नीचे गिरते ही हमलोगोंके होश गुम हो गये कि पता नहीं, उस बालकपर क्या बीती होगी। सीढ़ीसे जल्दी-जल्दी उतरकर उसे सँभाला गया। मामूली क्या, अत्यन्त साधारण खरोंचके अलावा उसे कहीं तनिक भी चोट नहीं आयी थी। उससे हमलोगोंने पूछा— क्या तुमको कहीं चोट लगी है?

प्रिय नरेशने कहा— *माँ! मुझे कहीं भी कुछ भी चोट नहीं लगी और माँ! मुझे लगती कैसे, जब मुझको एक छोटेसे लड़केने अपनी गोदमें रोक लिया। उसके काले-काले घुँघराले बाल बड़े*

चमक रहे थे। आँखोंकी चमक और भी न्यारी थी। पीले-पीले कपड़े पहने हुए वह बड़ा ही प्यारा लग रहा था। उसकी कमरमें धोतीके पास एक वंशी भी चमक रही थी।

प्रिय नरेशके मुखसे तोतली भाषामें यह वर्णन सुनकर हमलोगोंको अपार सुख मिल रहा था और यह देखकर हमलोगोंको अपार आनन्द भी हो रहा था कि भगवान श्रीकृष्णकी इस बालकपर असीम कृपा है, जो उन्होंने स्वयं पधारकर इसके जीवनकी रक्षा की।

इसी संस्कारी पुत्रके बड़े होनेपर जब इसकी विवाह-तिथि निश्चित हो गयी तो बहिनके नाते भात भरनेके लिये पूज्य श्रीभाईजीको न्योता देना ही था। प्रिय नरेशके पिताजी और मैं, हम दोनों वाराणसीसे गोरखपुर गये और श्रीभाईजीको निमन्त्रण दिया। श्रीभाईजीने बड़े प्रसन्न मनसे वह निमन्त्रण स्वीकार किया। इसके बाद हमलोग पूज्य बाबाके पास गये। यह एक प्रकट सत्य है कि पूज्य बाबा श्रीभाईजीके साथ आयेंगे ही, इसके बाद भी प्यारकी प्रबलताने अनुरोध करनेके लिये विवश कर दिया और उन्हें भी विवाहके अवसरपर पधारनेके लिये निमन्त्रण दिया। पूज्य बाबाने भी बड़े प्रसन्न मनसे निमन्त्रण स्वीकार किया। श्रीभाईजी एवं पूज्य बाबाकी प्रसन्न स्वीकृतिसे हमदोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और प्रारम्भमें ही यह प्रसन्न स्वीकृति एक अति श्रेष्ठ शुभ शकुन था। बड़े प्रसन्न मनसे हमदोनों गोरखपुरसे वाराणसी लौट आये।

दिन जाते क्या देर लगती है। विवाहकी तिथि समीप आ गयी और इस मांगलिक अवसरपर उपस्थित होनेके लिये गोरखपुरसे समाचार भी आ गया कि पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य बाबा अमुक दिन प्रातःकाल ट्रेनसे वाराणसी आनेवाले हैं। मेरी बड़ी चाह थी कि उनका स्वागत करनेके लिये मैं स्टेशन जाऊँ, पर जानेके लिये घरवालोंने अनुमति नहीं दी। अनेक वैवाहिक नेगचारोंको सम्पन्न करनेका कार्य-भार अधिक होनेके कारण मुझे स्टेशन जानेसे रोक दिया गया। स्टेशन जानेके लिये मेरे मनमें बड़ी आतुरता थी, पर रोक दिये जानेसे मन आकुलतासे भर उठा। इसके बाद भी मैंने किसी प्रकारसे अपने मनको समझा लिया और मैं स्टेशन नहीं गयी।

पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य बाबा निश्चित तिथिको निश्चित समयपर वाराणसी आये और उन्हें गायघाट स्थित डालमिया कोठीमें ठहरा दिया गया। उनके निवासकी व्यवस्था डालमिया कोठीमें ही की गयी थी। मेरे मनमें आया कि भले, मुझे स्टेशन नहीं जाने दिया गया, पर मैं डालमिया कोठी जाकर पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य बाबाके दर्शन कर आऊँ। ज्यों ही मैंने डालमिया कोठी जानेकी इच्छा व्यक्त की, वहाँ भी मुझे जानेसे रोक दिया गया और रोका गया वैवाहिक कार्योंका विस्तार बताकर। वैवाहिक कार्योंका आधिक्य चाहे जितना हो, पर इस बारका प्रतिबन्ध मुझे बड़ा अप्रिय लगा। इतना अधिक अप्रिय लगा कि मन पूर्णतः खिन्न हो गया और मैं अपने ऐकान्तिक पूजा घरमें बैठकर आराध्यके सामने रोने लगी। आँसुओंका प्रवाह रुक ही नहीं रहा था। यह प्रतिबन्ध भी भला क्या माननीय है, जो संत-दर्शनमें बाधक सिद्ध हो? अबलाका बल अश्रु ही है। मेरा हृदय श्रीभाईजीके दर्शनके लिये छटपटा रहा था और झरझर आँसू गिर रहे थे। मैं अनुमान लगाती हूँ कि वे करुणासागर आराध्य मेरे आँसूओंको देखकर अवश्य पसीज गये होंगे। उसी समय मेरी बहिन श्रीसावित्रीबाई सेकसरिया पूजाघरमें आयी और मुझे रोते देखकर उसने सारी स्थितिका अनुमान लगा लिया। वह तुरन्त डालमिया कोठी गयी और वहाँ उसने श्रीभाईजीसे कहा— आप स्टेशनसे उसके पास नहीं जाकर सीधे डालमिया

कोठी चले आये और वह वहाँ बैठे-बैठे अपने आँसू बहा रही है।

यह सुनते ही श्रीभाईजी डालमिया कोठीसे चल दिये और मेरे घरपर मेरे पास आये। उनको देखकर मैं और भी फफक पड़ी। वे बड़ी देरतक मेरे पास बैठे रहे और मुझे सहलाते रहे। बार-बार मेरी पीठपर हाथ फेरकर वे समझाते रहे और मुझे धीरज देते रहे। सचमुच उनकी वाणी और उनके स्पर्शमें कोई जादू ही रहा होगा। उसीका प्रभाव था कि मनकी सारी खिन्नता न जाने कहाँ चली गयी और मनमें भर गयी असीम मधुरता।

इन पुरानी बातोंकी अब स्मृति आते ही बार-बार यही भाव मनमें आता है कि उन जैसा स्नेह तो वे ही दे सकते थे। जैसा स्नेह उन्होंने दिया, उसके मिठासकी याद आते ही उनके द्वारा रचित पदकी कुछ पंक्तियाँ याद आने लगती हैं।

स्याम - सो साँचो स्नेही कौन ?
को चित देइ सुनै सब मन की, मन की राखै कौन ?
को मो दृगन सलिल-कन देखत ही ह्वै जाय अधीर।
को निज कर सौं पौंछि अश्रु-जल, सुहृद बँधावे धीर।।
कोमल हाथ पीठ पर फेरै, धीरज दै पुचकारै।
मम आसा-लतिका की जड़ में मधुर अमी-रस ढारै।।

उस प्रसंगको बताते-बताते ऐसे भाव उमड़े कि मैं बीचमें ही श्रीभाईजीके स्नेहकी बात कहने लग गयी। मुझको सान्त्वना देनेके बाद श्रीभाईजी परिवारके अन्य लोगोंसे व्यक्तिगत रूपमें मिले और फिर वे डालमिया कोठी चले गये।

अपराह्न कालमें मैं पूज्य श्रीभाईजीको 'भात'का निमन्त्रण देनेके लिये गयी। गोरखपुरमें तो मौखिक रूपसे कहा था, पर अब तो वैवाहिक नेगचारके रूपमें विधिवत निमन्त्रण देना था। पूज्य श्रीभाईजीने निमन्त्रण स्वीकार किया। इसके बाद मैं पूज्य बाबाके पास गयी और उनसे प्रार्थना की— बाबा ! मैं तो आपकी बहिन हूँ और आपके लिये भात भरनेका निमन्त्रण है।

पूज्य बाबाने कहा— हाँ बहिनी ! तू मेरी बहिन है और मेरी ओरसे तुमको भातकी चूनरी ओढ़ायी जायेगी।

इतना कहकर पूज्य बाबाने उसी समय पूज्या माँको और पूज्य श्रीभाईजीको अपने पास बुलवाया। जब वे आ गये तो पूज्य बाबाने कहा— मैया, एक चूनरी तो तू गोरखपुरसे तैयार करके ले आयी हो, जिसे श्रीभाईजी ओढ़ायेंगे, पर इसके अलावा एक और चूनरी अभी बाजारसे मँगवाकर तैयार करवा दे। वह चूनरी मेरी ओरसे मेरे प्रतिनिधि बनकर श्रीभाईजी चन्दा बहिनको ओढ़ायेंगे।

माँसे इतना कहकर फिर पूज्य बाबाने मुझसे कहा— चन्दा बहिनी ! श्रीभाईजीको दो टीका करना, एक उनके लिये और एक मेरे निमित्तसे।

मैंने पूज्य बाबासे कहा— बाबा ! ऐसा ही होगा।

इस समय मेरे आनन्दकी सीमा नहीं थी। पूज्या माँका उत्साह, पूज्य बाबाकी उमंग और पूज्य श्रीभाईजीका उल्लास देखकर मेरी प्रसन्नता पराकाष्ठापर थी। शामको भात भरनेके लिये पूज्य श्रीभाईजी मेरे घर पधारे। मांगलिक गीतोंसे घरका द्वार गुञ्जित हो रहा था। मैंने

श्रीभाईजीको टीका किया और श्रीभाईजीने मुझे चूनरी ओढ़ायी। जब श्रीभाईजीका नेगचार हो गया तो फिर श्रीभाईजीने कहा— बाई ! एक टीका बाबाके निमित्तका करो।

वह तो मुझे करना ही था। टीका करनेके बाद श्रीभाईजीने पूज्य बाबाके प्रतिनिधिके रूपमें चूनरी ओढ़ायी। मैं रह-रह करके अपने सौभाग्यकी सराहना कर रही थी। फिर तो सारे वैवाहिक कार्य एक-एक करके सम्पन्न हुए और लगभग सभी मुख्य कार्योंमें श्रीभाईजी उपस्थित रहे। विवाह जैसे मांगलिक कार्यके अवसरपर परम सिद्ध महान संत पधारें और वह भी एक भाईके रूपमें पधारें, उस कार्यको भली प्रकार सम्पन्न होना ही था। विवाहोत्सवकी व्यस्तता और जिम्मेदारी कम नहीं होती, प्रतिक्षण कोई-न-कोई बात सामने आती ही रहती है, साँस लेनेको फुरसत नहीं मिलती, पर इस सारी घनी व्यस्ततामें एक भाव आदिसे अन्ततक मेरे मनपर छाया ही रहा कि प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवके लीलारसमें नित्य निमग्न रहनेवाले सिद्ध संत श्रीभाईजीका मेरे पुत्रके विवाहमें शुभागमन हुआ और सभी मुख्य मांगलिक अवसरोंपर वे उपस्थित रहे, यह कितना महान सौभाग्य है। उनके प्यारको याद कर-करके मेरा रोम-रोम पुलकित हो रहा था। *'किमि कहि जात मोदु मन जेता'* ।सचमुच मनमें अपार आनन्द उमड़ रहा था श्रीभाईजीके अपार स्नेहको देखकर। उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्वकी अमित महत्ता सर्वजन-वन्दनीय है, परंतु उस महत्ताको भुलाकर, प्रियतामें डूबकर और समस्तरतापर आकर उन्होंने मुझ साधारण-सी बहिनके अनुरोधको आदर दिया और *'भूल उच्चता भगवत्ता सब'* वे मेरे द्वारपर पधारे, इस भावानन्दमें मन सराबोर था और उसकी स्मृति आज भी सराबोर कर देती है।

[३] हृदय-परिवर्तन

सन् १९६९ ई. की बात है। भागलपुरके वैद्यराज पं. श्रीछेदीप्रसादजी शुक्लके ज्येष्ठ पुत्र शिवशंकरके प्राण संकटमें पड़ गये। वैद्यराज तो स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) गये हुए थे। उनकी अनुपस्थितिमें शिवशंकरका अपने पड़ोसी हलवाईसे छोटी-सी बातपर झगड़ा हो गया। हलवाई और वैद्यजीके घरके बीचमें एक सकरी गली है और वह गली भी वैद्यजीके हककी जमीनपर है। हलवाई उस गलीमें अपने मकानका एक दरवाजा खोलना चाहता था। इसपर शिवशंकरने उसे मना किया। बात-बातमें बात बढ़ गयी और बात इतनी अधिक बढ़ गयी कि भीषण रोषमें भरकर हलवाईके पुत्रने भारी ईंटके टुकड़ेसे शिवशंकरपर प्रहार किया। वह ईंट शिवशंकरके सिरपर लगी और खूनका फव्वारा फूट चला।

चारों ओर तहलका मच गया। थानेमें रिपोर्ट लिखा दी गयी। पुलिसने उस हलवाईके पुत्रको गिरफ्तार करके जेलमें डाल दिया। उस हलवाईके अन्य पुत्रोंके नामसे वारंट जारी हो गये। उस हलवाई-पुत्रके क्रोधी स्वभावको देखकर लोग उससे बचते ही रहते थे। जेलसे उसने धमकी देते हुए कहलवाया— जेलसे बाहर आनेके बाद मैं शिवशंकरको देख लूँगा। अब उसके सिरपर उसकी मौत नाच रही है।

ईंटके प्रहारसे शिवशंकरके सिरमें गहरी चोट आयी थी। सिरपर टाँके लगवाये गये। क्रमशः सिरका घाव भरने लगा। सिरका घाव तो भर रहा था, पर मनका घाव दिन-प्रति-दिन गहरा और बढ़ता चला जा रहा था। शिवशंकरके मनमें भीषण प्रतिहिंसा जाग उठी और उसने भी

हलवाई-पुत्रसे निपटनेकी बात मनमें ठान ली।

मैंने इस विषम और विकट परिस्थितिकी बात पत्रमें लिखकर पूज्य श्रीभाईजीके पास स्वर्गाश्रम भेज दी और इस संकटसे उबार लेनेके लिये उनसे प्रार्थना की। श्रीभाईजीने तत्काल वैद्यजीको अपने पास बुलवाया और उनको घरकी सारी संकटपूर्ण परिस्थिति बतलायी। सारी बात सुनकर आस्तिक-मति वैद्यजीने श्रीभाईजीसे कहा— अवश्य ही परिवारवालोंसे श्रीराधारानी श्रीश्यामसुन्दरकी सेवा-पूजामें कोई त्रुटि हुई है और उसी देवापराधका यह कुपरिणाम है।

श्रीभाईजीने वैद्यजीसे कहा— आपको घरपर जाकर परिवारकी सुरक्षाकी व्यवस्था करनी चाहिये।

वैद्यजीने अपनी जनेऊ अपने हाथमें ले ली और हाथ जोड़कर अति दीन वाणीमें बोले— भाईजी! वह सारी सुरक्षा तो आपके हाथमें है। मेरे हाथमें जनेऊ है और मैं शपथ पूर्वक कह रहा हूँ कि मैं तो आपके श्रीचरणोंपर पूर्णतः समर्पित हूँ। घरकी और परिवारकी सारी सँभाल आपके ऊपर है। आप ही हमारे माता-पिता और सखा-संरक्षक हैं। वही होगा, जो आप चाहेंगे, वही रहेगा, जिसे आप रखेंगे और आप वही करेंगे जो सबके लिये मंगलमय होगा। मैं तो पूर्णतः आपपर निर्भर हूँ। आप ही सारी बात सँभालेंगे और इस बालककी सुरक्षा भी आपके ही हाथमें है।

वैद्यजीके दैन्यकी सच्चाईसे श्रीभाईजीका हृदय द्रवित हो उठा। श्रीभाईजीने वैद्यजीको सान्त्वना देते हुए कहा— आप निश्चिन्त रहें। सब ठीक हो जायेगा। आया हुआ यह संकट टल जायेगा। आप तनिक चिन्ता न करें। आप यह बतलाइये कि आपके घरमें कितने द्वार हैं?

वैद्यजीने कहा— दो।

वैद्यजी इतने सरल स्वभावके थे कि वे अपने घरके द्वारकी संख्या भी सही-सही नहीं बतला सके। श्रीभाईजी बार-बार द्वारकी संख्या पूछें और वैद्यजी बार-बार दो बतलायें। तब पूछना बन्द करके श्रीभाईजीने एक ही मन्त्र चार कागजपर लिखकर दिया और कहा— घरके तीन द्वारपर ये मन्त्र-लिखित तीन कागज चिपका दीजियेगा तथा चौथा कागज उस गलीमें चिपका दीजियेगा, जिस ओर वह हलवाई दरवाजा खोलना चाह रहा है।

वे चारों कागज वैद्यजीने श्रीभाईजीसे प्राप्त करके अपने पास सुरक्षित रख लिये। इसके बाद श्रीभाईजीने उनसे कहा— इस मन्त्रकी ताबीज बनवाकर आप धारण कर लीजियेगा।

वैद्यजी इन सब बातोंको बहुत ध्यान पूर्वक सुन रहे थे। इतनी सारी बात कह चुकनेके बाद श्रीभाईजीने उनसे पुनः कहा— आप अपने घरपर श्रीमद्भागवत महापुराणके सात सप्ताह-पाठ सात पण्डितोंसे करवा दें और पाठ करने वाले सातमेंसे एक आप भी रहेंगे। सातों पाठ एक साथ हों और श्रीठाकुरजीके सामने हों।

इतना सुनते ही वैद्यजी चौंक पड़े। वे चौक पड़े व्यय और व्यवस्थाकी बातको सोचकर कि कैसे सब हो पायेगा। उन्होंने बड़ी दीनतापूर्वक कहना आरम्भ किया— भाईजी! सात भागवत-सप्ताह करवानेमें जो व्यय होगा, उसका प्रबन्ध मैं ब्राह्मण भला कैसे कर पाऊँगा? यह तो मेरे लिये बड़ा कठिन है।

श्रीभाईजीने आश्वासन एवं प्रोत्साहन देते हुए कहा– भगवत्कृपासे कोई कार्य कठिन नहीं है। अकारण सुहृद भगवानका सौहार्द सारी कठिनाइयोंको दूर कर दिया करता है। आप घरपर श्रीमद्भागवतका सात सप्ताह-पाठ करवायें। आप विश्वास करें, भगवान इसकी सारी व्यवस्था स्वतः करेंगे।

वैद्यजीने श्रीभाईजीके कथनको आदेशवत् स्वीकार कर लिया। श्रीभाईजीके स्नेहको, उनकी आत्मीयताको देख-देख करके वैद्यजीका हृदय भीतर-ही-भीतर गला और बहा जा रहा था। इसके बाद श्रीभाईजी वैद्यजीको लेकर माँजी (अर्थात् बाई सावित्रीकी माताजी) के पास गये और उसे सारी बात बतलायी। माँजीने वैद्यजीको एक बढ़िया कम्बल भेंट स्वरूप प्रदान किया। इस प्रसादको पाकर वैद्यजी इतने भाव विभोर हो उठे कि कम्बल ओढ़कर वहीं नृत्य करने लग गये। इसके बाद माँजीने २५१ रुपये प्रदान किये। रुपयोंको देखते ही वैद्यजीने श्रीभाईजीसे कहा– भाईजी ! मुझे रुपये नहीं चाहिये। मुझे केवल-केवल आपका चरणाश्रय चाहिये। आपका अनुग्रह ही मेरे जीवनकी वास्तविक निधि है।

श्रीभाईजीने कानसे लगकर धीरेसे कहा– यह इसका आशीर्वाद है। आप इसे स्वीकार कर लें।

अब अस्वीकृतिके लिये स्थान ही कहाँ था ? फिर माँजी और श्रीभाईजीको प्रणाम करके वैद्यजी अपने घर भागलपुर आये। श्रीभाईजीने जैसे-जैसे कहा था, वैसे-वैसे मन्त्रको द्वारपर-दीवालपर चिपकाया और ताबीज बनवाकर गलेमें धारण किया। अब वैद्यजी सोचने लगे कि श्रीमद्भागवत सप्ताहके पाठकी व्यवस्था कैसे हो ? वे इस बारेमें सोच-विचार कर ही रहे थे कि बिना बुलाये छः भागवती पण्डित अपने-आप एक-एक करके आ गये। उनसे बात करते ही भागवत-सप्ताहकी बात तय हो गयी। बड़े उत्साहके वातावरणमें श्रीमद्भागवतका सप्ताह-पाठ घरमें श्रीठाकुरजीके सामने आरम्भ हो गया। पाठानुष्ठानमें छः तो वे भागवती पण्डित और एक स्वयं वैद्यजी थे, इनसे अलग एक और थे जप करने वाले पण्डितजी।

पाठानुष्ठानके जब छः दिन बीत गये तो उस रात्रिमें लगभग दो-अढ़ाई बजेके समयकी बात है। किसीने वैद्यजीके घरका दरवाजा खटखटाया। घरवालोंके मनमें तुरन्त कुशंकाएँ जाग उठीं कि इस रातके समय कौन आ पहुँचा। उपद्रव-शान्तिके लिये तो यह सप्ताह-पाठ हो रहा है और इस असमयमें दरवाजेका खटखटाया जाना क्या किसी भावी अमंगलका संकेत है ? मनमें कुशंकाएँ उठने लगीं कि न जाने कौन व्यक्ति किस उद्देश्यसे आधी रातके बाद आकर दरवाजा खटखटा रहा है। उस व्यक्तिने पुनः दरवाजा खटखटाया। सारे दिन भागवत-पाठमें संलग्न रहनेके कारण थके-माँदे वैद्यजी अपनी कच्ची नींदसे उठे और पूछा– कौन है ?

वह व्यक्ति अपना परिचय न देकर बार-बार दरवाजा खोल देनेके लिये अनुरोध कर रहा था। इससे मनमें अशुभ आशंकाएँ और अधिक उत्पन्न हो रही थीं। अन्य लोग चाहे जो सोचे, वैद्यजीकी सच्ची भावना थी कि–

जाको राखै साइयाँ मार सके ना कोय।
बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय॥

'मंगल भवन अमंगल हारी' भगवानपर अटूट विश्वास रखने वाले वैद्यजीने तुरन्त अपने

घरका दरवाजा खोल दिया। बाहर खड़ा था हवाई अड्डेका कोई अधिकारी और उसने अपना नाम विश्वम्भरप्रसाद शर्मा बतलाया। उसने वैद्यजीसे कहा— मैं भगवान शंकरके आदेशसे आपके पास आया हूँ। आपको मेरी चिकित्सा करनी है।

वैद्यजीने आगन्तुकसे कहा— मैं तो अब चिकित्सा करता नहीं। मैंने चिकित्सा-कार्य छोड़ दिया है।

आगन्तुक श्रीविश्वम्भरप्रसादजी शर्माने पुनः कहा— मैं आपके पास भगवान शंकरके आदेशसे ही आया हूँ और आपको मेरी चिकित्सा करनी चाहिये।

वैद्यजीने कहा— भगवान शंकरने जिस प्रकार आपसे कहा है, वैसे ही वे मुझे भी तो कह सकते हैं।

वैद्यजीकी बातको अनसुनी करते हुए आगन्तुक श्रीशर्माजी कहने लगे— मैं अन्यथा नहीं कहता। मैं सत्य कह रहा हूँ कि भगवान शंकरके आदेशसे ही मैं आपके पास आया हूँ। मेरी चिकित्सा तो बादमें होगी, अभी तो आप मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

इतना कहकर वे जो वस्तुएँ अपने साथ भेंट करनेके लिये लाये थे, उनको भेंट स्वरूप प्रदान करके उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया और फिर वे चले गये। जब उन वस्तुओंको सँभाला गया तो सभी आश्चर्यमें डूब गये। सात पण्डितोंकी दक्षिणाके लिये सम्पूर्ण सामग्री वे रख गये थे। वैद्यजीको तो दक्षिणा लेनी नहीं थी, परंतु छः भागवती पण्डित तथा एक जपकर्ता पण्डित, इन सात पण्डितोंको प्रदान करनेके लिये आवश्यक सामग्री वैद्यजीके सामने थी। आवश्यक धोती-चादर वस्त्रादि तो थे ही, इसके अतिरिक्त सात जगह २५१ रूपये भी थे। सुपारी, जनेऊ, चित्ती कौड़ी, पीले रंगके चावलोंसे भरा भरतपुरी विशाल लोटा आदि-आदि सामग्रीको देखकर सभी कहने लगे— वे विश्वम्भरप्रसाद शर्मा नहीं आये थे, अपितु श्रीशर्माजीके आवरणमें स्वयं भगवान विश्वम्भर ही आये थे, उस भागवत-अनुष्ठानको समुचित पूर्णता प्रदान करनेके लिये। कृतज्ञ-हृदय भाव-विभोर वैद्यजी हाथ जोड़कर भगवानको बार-बार प्रणाम करने लगे। उनके नेत्रोंकी अविरल अश्रुधारा केवल कपोलोंको ही नहीं, उनके वस्त्रोंको भी भिगो रही थी। अब उनकी आँखोंमें नींद कहाँ ? प्रातःकाल होते ही श्रीमद्भागवतके सप्ताहपाठका अन्तिम सातवाँ पाठ भी सानन्द एवं सोत्साह पूर्ण हुआ और फिर बड़े ही उत्साह एवं उल्लासके वातावरणमें सप्त-सप्ताह-पाठकी पूर्णाहुति हुई।

श्रीभाईजीने वैद्यजीसे जो-जो कहा था, वह सब-का-सब वैद्यजीने किया। वैद्यजीके मनमें आस्था पहले भी थी, अब और भी दृढ़ हो गई कि श्रीभाईजीकी कृपासे कोई अमंगल घटित होगा ही नहीं। ऐसी आस्थाके होते हुए भी अभी वातावरणका क्षोभ कहाँ शान्त हुआ था ? अपने शिवशंकरके मनमें ही अभी प्रतिहिंसा एवं प्रतिशोधके भाव कहाँ ठण्डे पड़े ? शिवशंकरको उसकी बड़ी बहिन श्रीरुक्मिणीबाईने समझानेका प्रयत्न किया, पर अपेक्षित फल सामने नहीं आ रहा था।

अब श्रीराधाष्टमी महोत्सव समीप था और इस निमित्तसे गोरखपुर जानेका कार्यक्रम बन रहा था। कई लोग आदरणीया श्रीरुक्मिणीबाईके साथ गोरखपुर जाने वाले थे। बाईने सोचा कि शिवशंकरको भी साथ ले चलकर श्रीभाईजीके समर्थ चरणोंमें डाल देना चाहिये और उनकी

कृपासे अवश्य ही शिवशंकरमें परिवर्तन आयेगा। पहले तो शिवशंकर गोरखपुर चलनेके लिये राजी नहीं हुआ, पर बाई द्वारा समझाये जानेपर वह चलनेके लिये तैयार हो गया।

कई लोग बाईके साथ भागलपुरसे गोरखपुर आये। गोरखपुर आकर बाई अपने दोनों भाई, बड़े शिवशंकर तथा छोटे रविशंकरको साथ लेकर श्रीभाईजीके कमरेमें गयी। श्रीभाईजी पलंगपर बैठे हुए थे। श्रीरुक्मिणीबाईको देखकर श्रीभाईजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। बाईने तथा अन्योंने श्रीभाईजीको प्रणाम किया। जब छोटे श्रीरविशंकरने श्रीभाईजीको प्रणाम किया तो उन्होंने रविशंकरके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखा, पर बड़े शिवशंकरके प्रणाम करनेपर उसके मस्तकपर नहीं रखा। इससे बाईके मनमें संदेह हुआ कि क्या अभी शिवशंकरका जीवन संकट-ग्रस्त है। शिवशंकरके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखनेके लिये बाईने अनुरोध भी किया तो श्रीभाईजीने उसे अनसुना कर दिया। बाई चाहती थी कि श्रीभाईजी अपना वरदहस्त शिवशंकरके मस्तकपर रख दें।

इसी बीच श्रीभाईजीने अपने पैर पलंगसे नीचे लटका दिये। तभी छोटे रविशंकरने पुनः उनके श्रीचरणोंपर माथा टेककर प्रणाम किया और बहुत देरतक प्रणाम करता रहा। रविशंकर तो अभी सात-आठ वर्षका बालक ही था। बहुत देरतक प्रणाम करते रहना रविशंकरकी भावमय स्थितिका परिचायक था। बाईने श्रीभाईजीसे कहा— आप इसके मस्तकपर अपने श्रीचरण रख दें।

श्रीभाईजीने तुरन्त अपने श्रीचरण उसके मस्तकपर रख दिये। रविशंकर आरम्भसे ही बड़े सात्त्विक स्वभावका था। बाईने श्रीभाईजीसे कहा— आप इसे संन्यासी बना दें।

श्रीभाईजीने कहा— संन्यासी नहीं, गृहस्थ-संन्यासी बनायेंगे। ऐसा जीवन हो, जो जगतमें रहकर भी जगतके प्रभावसे जल-कमलवत् दूर रहे।

रविशंकरके प्रति श्रीभाईजीकी यह बात सुनकर सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई, परंतु बाईको इस बातसे बड़ी चिन्ता हो रही थी कि श्रीभाईजी शिवशंकरके प्रति बड़े उदासीन हैं। बाईने श्रीभाईजीसे एक बार और अनुरोध किया कि वे शिवशंकरके मस्तकपर अपना मंगलमय वरदहस्त रख दें। बाईकी बात सुनकर श्रीभाईजीने स्नान करके आनेके लिये कहा।

सभी उसी समय स्नानादिसे निवृत्त होनेके लिये चल दिये। शिवशंकर स्नान करके अपनी बड़ी दीदीके साथ श्रीभाईजीके पास आया। साथमें कुछ और भी आत्मीयजन थे। इस बार विचित्र बात यह हुई कि शिवशंकर श्रीभाईजीके पास बैठते ही रोने लगा। इधर तो वह रोता ही जा रहा था और उधर श्रीभाईजीकी मुखाकृति पहले तो गम्भीर हुई तथा गम्भीर होते-होते उग्र हो उठी। आँखें लाल-लाल हो गयीं। खुली-खुली चौड़ी-चौड़ी लाल-लाल आँखोंसे श्रीभाईजी कभी दायें, कभी बाँये, कभी इधर कभी उधर देखने लगे। जैसे गायें बैठ कर जबड़ा चलाती हुई जुगाली करती हैं, वैसे ही श्रीभाईजी भी करने लगे। श्रीभाईजीका ऐसा उग्र और भयावह रूप बाईने कभी देखा ही नहीं था। बाईको ऐसा लगा मानो श्रीभाईजीमें भगवान श्रीनृसिंहजीका आवेश हो गया हो। श्रीभाईजीके उस रौद्र रूपको देखकर, अन्यकी तो बात ही क्या, स्वयं बाई भी डर गयी। बाई नितान्त किं-कर्तव्य-विमूढ़ हो रही थी कि अब क्या किया जाय और यह नृसिंहावेश कैसे शान्त होगा। इसीमें लगभग आधा-पौन घंटा बीत गया। तभी श्रीभाईजीने जल

पीनेकी इच्छा व्यक्त की। पासमें बैठी हुई श्रीनर्मदीबाई भागकर श्रीरामसनेहीजीको कहनेके लिये गयी, पर वे मिले नहीं। जब श्रीनर्मदीबाई निराश होकर लौट आयीं तो बाईने उन्हींसे जल लानेके लिये कहा। नर्मदीबाई जलका गिलास और गमछा लेकर आयी। गमछेपर गिलास लेकर श्रीभाईजीने जल पीया और फिर गिलास और गमछा वापस कर दिया। इस समय एक और बात घटित हो गयी। ऐसा कभी होता नहीं, पर संयोगवशात् हो गया। श्रीभाईजीके अधरोंसे लार चू पड़ी और समीप बैठे हुए शिवशंकरके मस्तकपर चूती हुई लारकी एक-दो बूँदें गिर पड़ीं। इतना होते ही सारा दृश्य बदलने लगा। श्रीभाईजीका वह आवेश क्रमशः शान्त होने लगा। वह आवेश शीघ्र ही शान्त हो गया और उन्होंने शिवशंकरके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखकर अपना अमोघ मंगलपूर्ण आशीर्वाद दिया— अब निर्भय और निश्चिन्त हो जावो। कोई भी तुमको हानि नहीं पहुँचा पायेगा।

ज्यों ही श्रीभाईजीने शिवशंकरके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखा और मंगल आशीर्वाद दिया, बाईका मन प्रसन्नतासे भर गया। बाई पूर्ण आश्वस्त हो गयी कि शिवशंकर अब खतरेसे बाहर हो गया है। इतना ही नहीं, उसके मनमें उत्पन्न प्रतिहिंसाका भाव भी पूर्णतः दूर हो गया। मनके निश्चिन्त हो जानेसे बाई तथा उनके साथके अन्य लोग श्रीराधाष्टमी महोत्सवका आनन्द भलीभाँति ले सके। श्रीभाईजीने इन सभी लोगोंकी सुविधाका बड़ा ध्यान रखा। समय-समयपर सभीके खाने-पीने और रहनेके बारेमें पूछते रहते थे, जिससे उन सब लोगोंको कोई परेशानी नहीं हो।

अब श्रीराधाष्टमी महोत्सवके बादकी बात है। बाई श्रीभाईजीके पास बैठी हुई थी और शिवशंकरके प्राण-संकट वाली बात चल पड़ी। श्रीभाईजीने पूछा— क्या श्रीवैद्यजीने सात भागवतसप्ताह करवा ली ?

बाईने बताया— बड़ी सुन्दर रीतिसे वह अनुष्ठान पूर्ण हुआ है। इतना ही नहीं, आपने जो-जो करनेके लिये कहा था, वह सब पिताजीने किया है। वे तो आपके शुभाशीर्वादके सहारे परम निश्चिन्त हैं।

श्रीभाईजीने पूछा— तुम क्या चाहती हो ?

बाईने कहा— शिवशंकर और हलवाई-पुत्र, दोनोंके मन बदल जाय।

बाईकी बात सुनकर श्रीभाईजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। बाईके भावोंकी सराहना करते हुए श्रीभाईजी कहने लगे— *तुमने बड़ी सुन्दर बात कही। सच्चा बन्धुत्व और वास्तविक संतत्व इसीमें है। मनमुटाव रहनेसे मनमें अशान्ति बनी रहती है। झगड़ा तो प्रेम-भावके उत्पन्न होनेपर ही समाप्त होता है। तुम्हारी बात सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।*

सराहना करते-करते श्रीभाईजीने आश्चर्य मिश्रित वाणीमें बाईसे पूछा— क्या तुम उस हलवाई-पुत्रसे बात कर सकती हो ?

बाई ने कहा— क्यों नहीं कर सकती ? वह है तो हमारा पड़ोसी ही।

श्रीभाईजीने कहा— परस्परमें शत्रु-भाव उत्पन्न हो जानेपर बात थोड़ी सावधानीसे करनी पड़ती है।

बाईने कहा— वह मुझे शत्रु लगता ही नहीं। सदा ही मैंने उसके यहाँ मिठाइयाँ खायी है और सदा ही उससे बात होती रही है। मैं उससे बात कर सकती हूँ।

श्रीभाईजीने कहा— जब उसको बुलाकर बात करना तो पहले उसको प्रणाम करना, फिर शिवशंकरकी ओरसे क्षमा-याचना करना और इस रार-तकरारमें उसका जो भी खर्च हुआ हो, उससे अधिक उसे दे देना।

श्रीभाईजीकी सिखलायी-पढ़ायी हुई बाई गोरखपुरसे भागलपुर आयी और वैसे ही किया, जैसे श्रीभाईजीने कहा था। बाईने उस हलवाई-पुत्रको बुलाकर आदरपूर्वक बैठाया और उसको प्रणाम किया। जो प्रणाम करने योग्य है, उसी बाईको प्रणाम करते देखकर उस हलवाई-पुत्रका मन द्रवित हो उठा। इसके बाद बाईने उससे प्रेम पूर्वक विनम्र भाषामें कहा— भइया ! मैं तेरी बहिन हूँ। गलती शिवशंकरकी है। मैं शिवशंकरकी गलतीके लिये तुमसे क्षमायाचना करती हूँ। शिवशंकर भी तो तुम्हारा ही भाई है और उसके प्राणोंके रक्षक भी तो तुम्हीं हो।

बाईके इन शब्दोंको सुनकर वह हलवाई-पुत्र इतना अधिक द्रवित हो उठा कि जिसकी कल्पना नहीं। उसने हाथ जोड़कर बड़े भाव भरे शब्दोंमें भागलपुरकी स्थानीय भाषामें बाईसे कहने लगा— यह तुम क्या कर रही हो ? क्या कह रही हो ? अब शिवशंकरके लिये भयकी कोई भी बात नहीं। उस समय मुझे क्रोध आ गया था और क्रोधमें मैंने ईंट चला दी थी, जो उचित नहीं था। शिवशंकर अपना ही है।

इस उत्तरको सुनकर बाईके आनन्द और आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। बाई सोच भी नहीं सकती थी कि बात इतनी जल्दी बन जायेगी। बाई मन-ही-मन श्रीभाईजीको प्रणाम करने लगी, जिनकी कृपासे इस शुभ क्षणका दर्शन हुआ। बाईने पुनः हलवाई-पुत्रसे कहा— इस झगड़े-झंझटमें तुम्हारा बहुत खर्च हो गया होगा, वह सब तुमको ले लेना चाहिये।

अस्वीकृतिके रूपमें अपनी गर्दनको हिलाते हुए उस हलवाई-पुत्रने कहा— मेरे पास जो भी है, वह सब तुम्हारा ही तो है। भला क्या लेना और क्या देना ?

बाईने उससे कहा— मैं जब श्रीराधाष्टमीके अवसरपर गोरखपुर गयी थी तो तुम्हारे बारेमें भी श्रीभाईजीसे बात हुई थी। श्रीभाईजीने कहा था कि यदि कभी कोई व्यक्ति क्रोधके आवेशमें कुछ भूल कर बैठे तो उस भूलके आधारपर मनमें शत्रुता रखना सर्वथा अनुचित है। सद्भावसे ही शान्ति होती है। वे तो तुम्हारे मंगलकी ही कामना कर रहे थे।

बाईके मुखसे इन बातोंको सुनकर वह हलवाई-पुत्र बड़ा प्रसन्न हुआ। थोड़ी देर बाद हलवाई-पुत्र चला गया, पर अपने मानस-परिवर्तनकी स्थायी छाप बाईके मनपर छोड़ गया। उसका यह मानस-परिवर्तन क्षणिक नहीं, स्थायी था। दो पड़ोसी परिवारोंका पारस्परिक वैमनस्य ऐसा समाप्त हो गया, मानो कभी शत्रु-भावका उदय हुआ ही नहीं था। इस आत्मीयताका सबसे बड़ा उदाहरण है विवाहका अवसर। जब-जब श्रीवैद्यजीके पुत्र-पुत्रियोंके विवाहका अवसर आया, तब-तब सभी अवसरोंपर विवाहकी सारी मिठाई उसी पड़ोसी हलवाईने बनायी और मिठाई बनाकर भी उसने पारिश्रमिक स्वरूप पैसा नहीं लिया। श्रीभाईजीकी सर्व-समर्थ कृपा-शक्तिके मंगलमय प्रभावसे दो परिवारोंका शत्रु-भाव किस प्रकारसे

आत्म-भावमें परिणत हो गया, उसका यह एक अद्‌भुत प्रसंग है।

[४] प्रातःकालकी बातचीत

एक बार हम कई बहिनें भागलपुरसे गोरखपुर आयीं। श्रीभाईजीने हम सभीके ठहरनेकी सुन्दर व्यवस्था की। प्रतिदिन ही हमलोगोंको श्रीभाईजीके पास बैठनेका अवसर मिलता। बैठनेपर सभी तरहकी बातचीत होती, कभी साधारण घर-गृहस्थीकी, कभी दैनिक पूजा-पाठकी और कभी दिव्य भावराज्यकी। बात चाहे किसी विषयकी हो, वह सदा परमानन्द ही देती और उससे जीवनमें प्रकाश मिलता। मुझे तो बार-बार सोचकर यह आश्चर्य भी होता कि अपने व्यस्त, केवल व्यस्त ही नहीं, महाव्यस्त दिनचर्यामेंसे हमलोगोंसे बात करनेके लिये वे इतना समय कैसे निकाल लेते थे। उनके निरवधि प्यारने, उनके छलछलाते वात्सल्यने हमलोगोंके संकोचको इतना अधिक दूर कर दिया था कि जब-तब दिनमें हमलोग उनके पास चली जाया करती थीं।

हमारे साथ आदरणीया श्रीरुक्मिणीबाई भी भागलपुरसे आयी हुई थीं। मध्य रात्रिके समय उनके पेटमें दर्द शुरू हो गया। अब आधी रातके समय दवा कहाँसे मिले ? दवा मिल सकती थी श्रीभाईजीके पास, पर वे तो सो रहे होंगे। उनको जगाना उचित नहीं। जो कुछ हो सकता था, वह उपचार किया गया, पर उदर-शूलसे बाई रातभर कष्ट पाती रहीं। प्रातःकाल मैं श्रीभाईजीको प्रणाम करने गयी तो बतलाया– कल बाईकी रात बड़ी मुश्किलसे कटी। उनके पेटमें दर्द हो गया था।

मेरी बात सुनते ही श्रीभाईजीने कहा– मेरे पास क्यों नहीं आ गयी ? मैं उसी समय दवा दे देता। व्यर्थ ही उसको रातभर कष्ट भोगना पड़ा।

मैंने विनम्र स्वरमें कहा– आधी रात हो चुकी थी। क्या उस समय आकर मैं आपको जगाती ? क्या यही उचित था कि मैं आपकी नींदको खराब करूँ ?

श्रीभाईजीने कहा– अरी बाई ! मैं कल रात डेढ़ बजेतक काम करता रहा। 'कल्याण'के लिये प्रूफ देख रहा था और लेख तैयार कर रहा था। प्रायः ही ऐसा होता है। तुम व्यर्थमें ही संकोच करके नहीं आयी। अब बताओ, उसकी तबीयत कैसी है ?

मैंने बाईकी तबीयतका हाल बतलाया और हाल सुनकर उन्होंने उपचारकी व्यवस्था भी की। यह सब तो हुआ ही, पर मेरे आश्चर्यको भी आश्चर्य हो रहा था कार्य करनेकी उनकी अतुल अमित क्षमताको और प्रीति करनेकी उनकी निर्मल अविरल रीतिको देखकर। ■

आ. श्रीनर्मदीबाई खेतान

[१] बात छोटी, पर सीख बड़ी

एक बार हमलोग गीतावाटिकाके कमरेमें श्रीभाईजीके पास बैठे हुए बात कर रहे थे और कमरेके बाहर श्रीभाईजीके दौहित्र प्रिय सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त परस्परमें खेल रहे थे। तब वे दोनों छोटे-छोटे बालक थे। उनके शरीरकी स्थूलताको देखकर कोई भी यह सोच सकता था कि

दो गज-शावक मस्त होकर खेल कर रहे हैं। वे बच्चे ही तो ठहरे, खेलते-खेलते आपसमें कुछ नोक-झोंक हो गयी। वहीं से चन्द्रकान्त अपने बड़े भाई की शिकायत करते हुए जोर-जोरसे श्रीभाईजीसे कहने लगा– नानाजी ! नानाजी ! यह मुझे तंग कर रहा है।

उसकी बात सुनकर कमरेमें से बैठे ही श्रीभाईजीने चन्द्रकान्तसे कहा– *तुम तंग होते ही क्यों हो ? तुम तंग मत होवो।*

श्रीभाईजीने यह छोटी-सी बात तो प्रिय चन्द्रकान्तके प्रति कही, पर छू गयी मेरे हृदयको। इस उत्तरमें कितनी बड़ी सीख भरी हुई थी ? जगत तो व्यक्तिको तंग करना चाहता है, परंतु व्यक्ति उस ओर ध्यान ही क्यों दे ? यदि व्यक्ति जगतकी ओर न देखकर अपने लक्ष्यपर दृष्टि टिकाये रखे तो क्रमशः वही जगत सहयोगी बन जाता है। यह सत्य ही है कि श्रीभाईजीकी बात-बातमें एक शिक्षा रहा करती थी।

[२] मधुर स्वभाव सहज व्यवहार

पूज्य श्रीभाईजीने सन् १९७१ के मार्च मासमें महाप्रस्थान किया। इसके पहले उन्हें भीषण उदर-शूल रहा करता था। विविध प्रकारके उपचार भी हो रहे थे, परंतु उनसे अपेक्षित लाभ नहीं हो पा रहा था।

सन् १९७० के श्रीराधाष्टमी महोत्सवके बादकी बात है। सम्भवतः आश्विन मास था। हम कई बहिनें पूज्य श्रीभाईजीके पास बैठी हुई थीं। यद्यपि श्रीभाईजी कठिन शारीरिक कष्टसे पीड़ित थे, इसके बाद भी वे हमलोगोंसे प्रसन्न चित्तसे सच्चर्चा कर रहे थे।

रातके आठ बजे होंगे, उसी समय एक युवक श्रीभाईजीके कमरेमें आया। मैं उसे नहीं पहचानती थी कि वह कौन था, परंतु जिस निस्संकोच भावसे उसने कमरेमें प्रवेश किया और श्रीभाईजीसे बात की, इससे लगता था कि वह कोई परम आत्मीय जन है। उसकी आयु लगभग १८-१९ वर्षकी थी। उसके हाथमें एक बेल्ट था, जिसे पैंटमें पहनकर कमरपर कस दिया जाता है। उस युवकने वह बेल्ट श्रीभाईजीको देकर कहा– इसे आप पहनकर देख लीजिये कि ठीक है या नहीं। इसे पहननेसे उदर-शूलमें आराम होना चाहिये।

श्रीभाईजीने उस युवकसे कहा– भैया ! यह तो बतलाओ कि इसे कैसे पहना जाता है। मैं तो मूर्ख हूँ। मुझे इसके प्रयोगका पता नहीं।

मूर्ख शब्दको सुनकर वह युवक थोड़ा हँसा और बोला– बाबूजी ! आप भी कैसी अटपटी बात कह रहे हैं ? मूर्ख और आप ? आपकी बात पर भला कौन विश्वास करेगा ?

श्रीभाईजी पलंगपरसे उतर कर खड़े हो गये और उस युवकके कन्धेपर स्नेह पूर्वक हाथ रखकर बड़े सहज ढंगसे कहने लगे– *भैया ! जो जिस बातका जानकार नहीं होता, वह उस विषयमें मूर्ख ही होता है। मैं बेल्ट पहनना नहीं जानता, अतः मूर्ख ही तो हुआ। तुम बतलाओगे तो मैं सीख लूँगा। मनुष्यको तो अपने जीवनके अन्तिम समयतक सीखते रहना चाहिये।*

युवकने बेल्ट बाँधकर दिखा दिया, परंतु श्रीभाईजीके मधुर स्वभावके उस भोलेपनकी, उस सरलताकी, उस सहजताकी, उस अपनेपनकी छवि अभीतक मेरे मनपर छायी हुई है और बिना बात ही, बातकी बातमें उन्होंने यह बतला दिया कि हर व्यक्तिको अपना हृदय सदा खुला

रखना चाहिये किसी भी सुन्दर सीखको ग्रहण करनेके लिये। ■

श्रीरविशंकरजी शुक्ल

क्षुब्ध नागको समझाना

सन् १९६८ ई. की बात है। एक बार हमारे घरमें नाग-उपद्रवका आरम्भ भीषण रूपसे हो गया। इस उपद्रवको नाग-ताण्डव ही कहना चाहिये। नाग माने गेहुवन साँप, जिसे अँगरेजीमें कोबरा कहते हैं। घरमें नागने निकलकर सबसे पहले मुझको ही डसा। घरवालोंने तुरन्त उपचार किया और प्रभु कृपासे मेरे जीवनकी रक्षा हो गयी। इसे एक आकस्मिक घटना मानकर सन्तोष कर लिया गया। इसके तीन दिन बाद ही नागने मेरी भाभीजीको डस लिया। भाभी कुछ दिन पहले ही गौना होकर आयी थीं। हम सभीलोग बहुत अधिक घबड़ा उठे। भागलपुरमें पहुँचे हुए एक फकीर थे, उनके पास भाभीजीको ले जाया गया। उनके द्वारा प्रदत्त अभिमन्त्रित जलके प्रयोगसे भाभीजीके प्राणोंकी रक्षा हो गयी।

इस घटनाके कुछ दिन बाद ही नाग और नागिन हमारे घरमें निकले। वह नाग मेरे बड़े भाईपर झपटा। बड़े भाईने चटसे अपना बचाव किया और फिर रोषमें भरकर बड़ी फुर्तीसे उन्होंने कठोर प्रहार किया। उस प्रहारसे नागिनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। नागिनके मरते ही हमलोगोंने समझ लिया कि नाग-संकटका अर्धभाग सदाके लिये टल गया, परंतु सच तो यह है कि इस प्रहारने महासंकटका बीज बो दिया। अपने नागिनकी मृत्युसे वह नाग बहुत क्षुब्ध हो उठा और यह बात प्रसिद्ध ही है कि नागमें बदला लेनेकी भावना भयंकर रूपसे जाग उठती है। यही बात इस प्रसंगमें भी हुई। नाग तो बदला लेनेके ताकमें था और अवसर देखकर उसने मेरी भाभाजीको पुनः डस लिया। तुरन्त उपचार किया गया और भाभीजी किसी प्रकार बचकर कालके गालसे बाहर निकल आयीं। इस घटनासे हमलोग काफी संत्रस्त थे। मनको सबसे अधिक आतंकित करने वाली बात यह थी कि उस नागने भाभीजीको एक बार और, अर्थात् तीसरी बार डस लिया। प्रभुने कृपा करके भाभीजीको पुनः जीवनका दान दिया, परंतु अब घरके सभी लोगोंको सदा भय लगा रहता था कि न जाने वह नाग कब किसको डस जाय।

इस उपद्रवसे हमलोग इतने अधिक भयभीत हो गये थे कि घरको ही छोड़नेकी बात हमलोग सोचने लगे। लोगोंने बतलाया कि नाग-जाति तो शत्रुका पीछा किया करती है। जिस नये घरमें जाना होगा, वहाँ भी तो वह नाग पहुँच सकता है। इस नाग-संकटकी सूचना पूज्य श्रीभाईजीको पत्र द्वारा स्वर्गाश्रम दी गयी। श्रीभाईजी उस समय स्वर्गाश्रममें विराज रहे थे। श्रीभाईजी वह पत्र लेकर पूज्य श्रीबाबाके पास गये। पूज्य बाबा दो-तीन अन्तरंग जनोंके साथ सच्चर्चा कर रहे थे और मेरे पिताजी भी वहीं बैठे हुए थे। श्रीभाईजीने पूज्य बाबाके सामने ही पिताजीको वह पत्र पढ़कर सुनाया। पत्रको सुनते ही पिताजीने श्रीभाईजीसे कहा— अवश्य ही बच्चोंसे श्रीराधारानी श्रीश्यामसुन्दरकी सेवामें कोई त्रुटि हुई होगी और उसीका यह परिणाम है।

इस उत्तरको सुनकर पूज्य बाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। इस उत्तरमें पिताजीके श्रद्धालु हृदयकी एक झलक थी। पूज्य बाबा हँसते हुए कहने लगे— कालीय-दमन बिहारीलालकी जय।

ये ही आपके यहाँ प्रकट हुए हैं।

पूज्य बाबा इस नाग-लीलाको सुनकर विहस तो रहे ही थे, परंतु इसीके साथ यह भी हुआ कि पिताजीके प्रति पूज्य बाबाका जो प्यार था, उस प्यारमें पूज्य बाबाके नेत्र सजल भी हो उठे। पूज्य बाबाके सामने ही श्रीभाईजीने पिताजीसे कहा— इस उपद्रवकी शान्तिके लिये कुछ उपाय करना चाहिये।

पिताजीने तत्काल हाथमें अपनी जनेऊ ले ली और अपने हाथ जोड़े-जोड़े उन्होंने दीनतापूर्वक श्रीभाईजीसे कहा— सारे उपाय आपके ही हाथमें है। परिवारकी सारी सँभाल आपके ऊपर है। आपकी कृपासे ही बच्चोंकी सुरक्षा होगी। मैं तो आपके चरणाश्रित हूँ।

पिताजीके इस समर्पण-भावपर पूज्य बाबा तो बलिहार हो गये। श्रीभाईजीने पिताजीको थोड़ी देर बाद कमरेमें आनेके लिये कहा। पिताजी श्रीभाईजीके कमरेमें पहुँचे, इसके पहले ही श्रीभाईजीने मेरे बड़े भाईके नाम एक पत्र भागलपुर लिख दिया कि इस संकटसे भयभीत मत होना। तुम्हारे सिरपर भगवानका हाथ है और मंगल ही होगा।

जब पिताजी श्रीभाईजीके कमरेमें गये तो उन्होंने एक मन्त्र लिखकर दिया और कहा— *इसका जप आप करें और घरके सब लोग करें। इसके अतिरिक्त भोजपत्रपर इस मन्त्रको लिखकर घरके द्वारपर चिपका दें और इस मन्त्रकी ताबीज बनाकर आप अपने गलेमें धारण कर लें। मन्त्रके प्रभावसे यह नाग-उपद्रव शान्त हो जायेगा। यह मन्त्र एक कवच है, जिससे सबकी रक्षा होगी।*

स्वर्गाश्रमसे पिताजी भागलपुर आये। जैसे-जैसे करनेके लिये श्रीभाईजीने कहा था, पिताजीने वैसे-वैसे ही किया। उन्होंने अपने गलेमें ताबीज धारण किया, मन्त्रको द्वारपर चिपकाया तथा उसका जप स्वयं करते तथा घरके सभी लोगोंसे करवाते। इतना सब होनेके बाद भी वह उपद्रव शान्त नहीं हुआ और एक दिन पिताजी भी सर्प-दंशके शिकार हो गये। पिताजी घरकी नाली साफ कर रहे थे, तभी उस नागने आकर उनको डस लिया। पता ही नहीं चलता था कि वह नाग कब आ जाता था और डसकर छिप जाता था। घरके लोगोंने उपचार करना चाहा तो उन्होंने सर्वथा मना कर दिया। पिताजीका श्रीभाईजी एवं पूज्य बाबाकी वाणीपर अटूट विश्वास था। हमलोगोंने उन सिद्ध फकीरके पास चलनेको कहा तो उन्होंने पूर्णतः मना कर दिया। उपचारके लिये हमलोगोंने जब-जब अनुरोध किया, तब-तब उन्होंने यही कहा— *बेटा! श्रीभाईजीकी कृपापर विश्वास करो। उन्होंने जो मन्त्र दिया है, वह व्यर्थ नहीं जायेगा। और क्या पूज्य बाबाकी बात भूल गये? पूज्य बाबाने कहा था कि नागके रूपमें कालीय-दमन बिहारीलालजी ही आते हैं! बेटा! यह शरीर तो नश्वर है। वे बिहारीलाल मुझसे यहाँ सेवा करवायेंगे तो यहाँ करेंगे और मुझे वहाँ ले जाना चाहेंगे तो वहाँ चले जायेंगे। अपनेको तो उनकी चाकरी करनी है।*

घरके और बाहरके अनेक लोगोंने उपचार हेतु जितना अनुरोध किया, वह सारा व्यर्थ गया। नागने बायें हाथकी अँगुलीपर अपने दाँत गड़ाये थे और बायाँ हाथ ज्यों-ज्यों अधिकाधिक नीला पड़ता गया, त्यों-त्यों हमलोगोंकी निराशा बढ़ती चली गयी। हमलोग अब पूर्णतः निराश थे और मनमें मान बैठे थे कि पिताजी अब नहीं रहेंगे। हमलोगोंके मन-मस्तिष्कमें चाहे जितना

झंझावात हो, पर पिताजीकी निष्ठा हिमालयवत् सुदृढ़ रही कि श्रीभाईजीकी कृपासे मंगल ही होगा और वस्तुतः चमत्कार घटित हुआ। विलम्ब तो हुआ, परंतु उस निष्ठाके फलस्वरूप पिताजीके जीवनकी रक्षा हो गयी।

पिताजीके जीवनकी रक्षा हो गयी तो उस नागने मेरी छोटी बहिन कल्याणीको डस लिया। कल्याणीको डसने वाले नागपर पिताजीने न तो प्रहार किया और न उसका प्रतिकार किया, अपितु उसकी पूजा की। पिताजीके मनमें भाव यह था कि कालीयदमन बिहारीलाल ही नागके-रूपमें आते हैं। हमलोग उपचारके लिये कल्याणीको उस सिद्ध फकीरके पास ले जाना चाहते थे, पर पिताजीने इसके लिये मना कर दिया। उनकी निष्ठा तो यही थी कि श्रीभाईजी ठीक करेंगे। घरपर ही जो उपचार सम्भव था, वह किया गया और बहिन कल्याणीके प्राणोंकी रक्षा हो गयी। इस नाग-प्रकोपके कारण हमारे परिवारपर हर क्षण मृत्युका भय बना रहता था।

अब श्रीराधाष्टमी महोत्सव समीप था। मेरी बड़ी बहिन परमादरणीया श्रीरुक्मिणी बाई महोत्सवके लिये भागलपुरसे गोरखपुर आयीं और श्रीभाईजीको प्रणाम करनेके लिये उनके कमरेमें गयीं। श्रीभाईजी कमरेके द्वारपर ही खड़े हुए मिल गये। बाईने सभक्ति श्रीभाईजीको प्रणाम किया। श्रीभाईजीने पूछा— माता-पिता प्रसन्न हैं ना ?

बाईने कहा— हाँ, प्रसन्न हैं। आप माँ और बाबूजीका कुशल-समाचार तो पूछते हैं, पर मेरी भाभीकी ओर आपका ध्यान नहीं।

बाईके मनमें भाई-बहिन-पिताजी, परिवारके सभी लोगोंके लिये बड़ा कष्ट था, पर सर्वाधिक कष्ट था भाभीके लिये, जो तीन बार डसी गयीं थी। बाईने श्रीभाईजीको बतलाया— हमारे घरमें जो नाग-प्रकोप है, उसे जानते ही हैं। मेरी भाभी अभी-अभी गौना होकर आयी है और नागने उसे तीन बार डस लिया।

श्रीभाईजी बाईकी बात सुनते रहे और एकटक देखते रहे। ज्यों ही बाईकी बात समाप्त हुई, श्रीभाईजीने अपना दाहिना हाथ वरद मुद्रामें उठाया और सान्त्वना देते हुए बड़े ही सहज ढंगसे कहा— मैं समझा दूँगा उस नागको।

श्रीभाईजीके इस उत्तरसे बाईको बड़ा सन्तोष हुआ। श्रीभाईजीसे आश्वासन मिलनेके बाद हमारे घरका नाग-उपद्रव सदाके लिये पूर्णतः समाप्त हो गया। गोरखपुरमें बैठे-बैठे भागलपुरके उस नागको कब समझाया और कैसे समझाया यह तो वे ही जाने, पर हमारे घरका यह एक प्रत्यक्ष सत्य है कि उस आश्वासनके बाद कोई भी दुर्घटना नहीं हुई और उस भयावने आतंकसे हमारा परिवार पूर्णतः मुक्त हो गया।

मेरे मनमें बार-बार यह भाव उठ रहा है कि द्वापरयुगकी घटनाका पावन दर्शन, नवीन आवरणमें आज यहाँ हो रहा है। महाभागा गोपियोंने कहा था—

विषजलाप्ययाद्‌ व्यालराक्षसाद्वृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः।

कालीय नागके ह्रदके विषैले जलसे और अघासुरके रूपमें अजगर सर्पसे जैसे भगवान श्रीकृष्णने उस समय व्रजवासियोंकी रक्षा की थी, वैसे ही इस समय श्रीकृष्णस्वरूप श्रीभाईजीके द्वारा हमलोगोंकी रक्षाका विधान बन गया।

यह बात नहीं कि फिर हमारे घरमें नाग नहीं निकला हो। घरमें नाग-देवताके दर्शन

कभी-कभी होते ही थे, पर अब दूसरा ही दृश्य देखनेको मिलता था। ज्यों ही नाग-देवता आते, श्रीभाईजी एवं पूज्य बाबाकी भावनाके अनुसार उन कालीय-दमन बाँकेबिहारीका पिताजी पूजन करते। घरमें ठाकुर-सेवा होनेसे पूजाकी विविध वस्तुएँ सदा रहती ही थीं। पिताजी उस नागपर चन्दन-अक्षत चढ़ाते, फूल चढ़ाते और उसे पीनेके लिये दूध देते। वह दूध पीता और ज्यों ही पिताजी उसे साष्टांग प्रणाम करते, वह नाग चला जाता। ऐसा एक बार नहीं, कई बार हुआ। एक बात और, भागलपुरसे थोड़ी ही दूरपर चम्पापुरी नामक स्थानपर नाग-देवताकी स्थली है। यहाँ नाग-देवताकी पूजा होती है। श्रीभाईजीकी आज्ञानुसार प्रत्येक वर्ष नागपंचमीको पिताजी वहाँपर पूजन तो विस्तार पूर्वक करते ही थे, इसके अतिरिक्त वे एक बार और विशेष पूजन किया करते थे। नागमें भगवद्भाव होनेसे पिताजी कभी भी नागको मारने नहीं देते थे। श्रीभाईजी एवं पूज्य बाबाके वचनोंपर अगाध आस्था होनेके कारण पिताजीकी मान्यता यही थी कि ये नागदेवता हमें आशीर्वाद देने तथा हमारा मंगल करनेके लिये आते हैं। ■

एक बहिन

उन जैसा भाई मिला

मैं पूज्य श्रीसेठजी और पूज्य श्रीभाईजीके सत्संगके लिये सपरिवार स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) गयी हुई थी। हमलोग गीताभवनके एक कमरेमें ठहरे हुए थे। मेरे श्वसुरजीकी श्रीसेठजी और श्रीभाईजीपर बहुत अधिक श्रद्धा थी। हमारे वैष्णव परिवारके प्रत्येक सदस्यके हृदयमें इन दोनों महान विभूतियोंके प्रति अपार पूज्य भावना थी। इनके सत्संगका लाभ उठानेके लिये हमलोग गर्मीकि दिनोंमें प्रायः स्वर्गाश्रम आ जाया करते थे।

भगवानने जैसा श्रेष्ठ और सात्त्विक पितृ-कुल और श्वसुर-कुल दिया, वह मेरे लिये परम सौभाग्यकी बात है। दोनों घरोंका धार्मिक वातावरण मेरे लिये वरदान था। जीवनमें किसी प्रकारकी कोई चिन्ता भी नहीं थी। बस, एक अभावकी स्मृति होते ही मन उदास हो जाया करता था। मेरे कोई भाई नहीं था। भाईका अभाव सदा चुभता रहता था।

एक संध्याके समय मैं गीताभवनके सामने श्रीगंगाजीके किनारे घाटपर बैठी हुई थी। वहीं मुझे भागलपुर वाली आदरणीया श्रीरुक्मिणीबाई और श्रीनर्मदीबाई दिखलायी दे गयीं। वे मुझे नहीं जानती थीं, पर मुझे उनका परिचय प्राप्त था, अतः मैं उनके पास जाकर बैठ गयी और बहुत देरतक उनसे भक्ति-भावकी अच्छी-अच्छी बातें होती रहीं। उनके स्नेह और सहृदयताको देखकर मेरा मन बह पड़ा और उनसे भी मैं अपने अभावकी बात कह बैठी— भगवानने मुझे बहुत दिया, पर भाई नहीं दिया और यह अभाव बड़ा कसक उठता है।

आदरणीया बाईने मुझे न कुछ उपदेश दिया, न तनिक सान्त्वना दी और न कोई बात कही। मेरी बात सुनते ही उसने कहा— चलिये मेरे साथ। श्रीभाईजीके पास चलें।

मैं उठकर उनके साथ चल दी। मैं उनके लिये एक अपरिचित महिला थी, परंतु उनकी आत्मीयता और सहृदयताको देखकर मेरा मन मुग्ध हो गया। वे मुझे सीधे डालमिया कोठीमें श्रीभाईजीके पास ले गयीं। श्रीभाईजी अपने कमरेमें बैठें हुए कुछ काम कर रहे थे। शायद

'कल्याण' पत्रिकाके लिये लेख तैयार कर रहे होंगे। हम तीनोंको देखते ही श्रीभाईजी मुस्कुरा उठे। मधुर मुस्कान बिखेरते हुए उन्होंने बड़े स्नेह और सम्मान पूर्वक बैठनेके लिये कहा। हाथके कागजोंको गोदमें रखते हुए उन्होंने कहा– क्यों, कैसे आना हुआ ?

आदरणीया बाईने उनसे कहा– घाटपर ये बहिन अचानक मेरे पास आ गयीं। अच्छी-अच्छी बातें होते-होते यह अपना एक दुखड़ा सुनाने लगीं। इन्हें मैं आपके पास इसलिये ले आयी हूँ कि आप इनका कष्ट सुन लें।

श्रीभाईजीकी आँखें मेरी ओर उठकर पूछने लगी कि क्या कष्ट है। श्रीभाईजीके लिये मैं कोई अपरिचिता नहीं थी। वे मुझे भली प्रकार जानते थे और जानते थे एक सत्संगीके नाते। मैंने श्रद्धापूरित हृदयसे कहना आरम्भ किया– भाईजी ! भगवानकी कृपासे तथा आपलोगोंके आशीर्वादसे घरपर किसी बातकी कमी नहीं है। खाने-पीने, ओढने-पहनने, आने-जानेकी सारी सुविधा होते हुए भी एक चीजका अभाव खटक जाता है कि मेरे कोई भाई नहीं है। भाईके नहीं . . . . . .

मैं अपनी बात पूरी तरह कह भी नहीं पायी थी कि श्रीभाईजी मेरी ओर सरक आये और मेरे सिरपर हाथ रखकर कहने लगे– मैं तुम्हारा भाई हूँ न ? सचमुच मैं तुम्हारा असली भाई हूँ।

मुझे विश्वास नहीं हो रहा था मेरे कानोंपर। क्या श्रीभाईजी जैसे महान संत मुझे भाईके रूपमें मिल सकते हैं, यह तो मेरे अनुमानसे सर्वथा परेकी बात थी। श्रीभाईजीने जिस प्यारसे मेरे सिरपर और पीठपर हाथ सहलाया, उस स्पर्शसे मुझे अत्यधिक रोमांच हो आया। भावोंमें ऐसा उफान आ गया, जो रोके-से भी नहीं रुका। प्यारके आवेगमें मैं रोने लगी। आँखोंमें गंगा-जमुनाकी बाढ़ आ गयी। मैंने श्रीभाईजीकी गोदमें सिर रख दिया और लगभग आधा-पौन घंटा गोदमें पड़ी-पड़ी रोती रही। नेत्र तो बह ही रहे थे, नासिका भी इतनी अधिक बह रही थी कि सीमा नहीं। भावोंकी प्रबलताके कारण मैं ध्यान नहीं दे पायी कि मेरे नेत्र और नासिकाके निर्झरणके फलस्वरूप श्रीभाईजीकी धोती भीग-भीग करके खराब हो रही है। धोती खराब होती रही, इसके बाद भी श्रीभाईजीने अपने गोदमें ही मुझे पड़े रहने दिया। भावोंका तीव्र वेग जब कुछ शान्त हुआ तो मैं धीरेसे उनकी गोदसे उठी। कुछ देर चुप बैठी रही। आज मेरा मन आनन्दसे भरपूर था। आज जो बात श्रीभाईजीके मुखसे निकली और मेरे कानोंने सुनी, उसपर जल्दी मन टिक नहीं रहा था। मैंने श्रीभाईजीसे कहा– आज जो हुआ, वह स्वप्न है या सच है ? क्या आप सचमुच मेरे भाई हैं ? मुझे कैसे विश्वास हो कि आप सचमुच मेरे भाई हैं ?

श्रीभाईजीने कहा– क्या मैं यों ही कह रहा हूँ? मैं सचमुच तेरा भाई हूँ। ला, मेरे हाथमें राखी बाँध।

मैं जो कुछ-कुछ संदेह कर रही थी, उसपर मुझे शर्म लगने लगी। नर्मदीबाई दौड़कर पूज्या माँजीके पाससे रोली, चावल और मोली ले आयीं। मैंने श्रीभाईजीके भालपर रोलीका टीका किया, चावल चिपकाये और उनकी कलाईमें राखी बाँध दी। श्रीभाईजीने मेरे भी टीका किया और राखीका नेग दिया। इतना होनेके बाद श्रीभाईजीने कहा– अब तुमको विश्वास हो गया न ?

श्रीभाईजीकी बात सुनकर मैं मन्द-मन्द हँसने लगी और श्रीभाईजीके पावन चरणोंमें मैंने

अपना मस्तक रख दिया। यह मेरे अनोखे भाग्योदयका दिन था। अब मैं रोज ही श्रीभाईजीको प्रणाम करनेके लिये जाने लगी। प्रणाम तो मैं नित्य ही करती थी, पर अब प्रणाम करनेका सुख नवीन प्रकारका था। अबतक मैं उनको प्रणाम करती थी एक महान संत मानकर और अब प्रणाम करती हूँ अपना निज भाई मानकर। मैं तो आदरणीया रुक्मिणीबाई तथा नर्मदीबाईके प्रति आभारी हूँ, जिनके कारण श्रीभाईजी जैसा महान संत मुझे निज भाईके रूपमें मिला।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा। मेरे घर विवाहका अवसर आया। मेरे पुत्रका विवाह था। मैंने बहिनके नाते श्रीभाईजीको निमन्त्रण भेजा। वे विवाहके अवसरपर आना तो चाहते थे, परंतु परिस्थितियोंने उनको विवश कर दिया। कुछ अस्वस्थता, कुछ व्यस्तता और कुछ अन्य कारणोंसे वे चाह करके भी आ न सके। वे आ तो नहीं सके, पर वे मुझ बहिनको भुला भी नहीं सके। मैं हूँ तो अति साधारण, पर मुझ अति नाचीज बहिनके लिये भी उन महानके हृदयमें प्यार छलछला रहा था। उन्होंने दौहित्र सूर्यकान्तको अपने स्थानपर विवाहमें भेज दिया। प्रिय सूर्यकान्तके आनेसे ही मुझे अतीव प्रसन्नता थी मानो श्रीभाईजी ही आ गये हों।

विवाहके पूर्व जब भात भरनेका नेग आया तो प्रिय सूर्यकान्तने कहा— पूज्य नानाजीने आपके लिये चूनरी भेजी है। वह मैं आपको उनकी ओरसे ओढाऊँगा। वह चूनरी नानाजीने अपने हाथसे आपके लिये दी है और यह पत्र भी दिया है।

जिस समय प्रिय सूर्यकान्तने मुझे चूनरी ओढायी, मैं अपने आपेमें नहीं रह सकी। चूनरीका स्पर्श होते ही मुझे श्रीभाईजीके दिव्य स्पर्शकी अनुभूति हुई और मैं तत्काल भाव-विभोर हो उठी। मेरे सारे शरीरमें रोमांच हो आया। मुझे अपनी सुध-बुध नहीं रही। लोगोंने मुझे बादमें बतलाया कि जो भी मेरे सामने आता, मैं उसीको प्रणाम करने लगती। भरी-भरी आँखोंसे प्रणाम करनेका क्रम दो घंटेसे अधिक समयतक चलता रहा। मेरे पुत्रका 'बैठा-विवाह' हुआ था। कन्याकी माताजी विवाहका नेगचार पूरा करनेके लिये हमारे घरपर आयीं और मुझसे कहने लगीं— सगीजी ! उठिये। अब यह नेगचार करना है न ?

उनके द्वारा ऐसा कहे जानेके बाद भी मैं शून्य नेत्रसे उनकी ओर देखती रही और उनको प्रणाम करने लगी। मेरे मूक अधर, सजल नयन और विह्वल मुखको देखकर लोग आश्चर्य करने लगे कि इसे अचानक क्या हो गया, पर मैं कुछ बतला सकनेकी स्थितिमें थी ही नहीं कि श्रीभाईजीकी चूनरीने मेरी क्या दशा बना दी। बहुत देर बाद जब भाव कुछ शान्त हुए, तब मैं कहीं विवाह-कार्यमें सहयोग दे सकी। मैं वस्तुतः स्वयंको परम सौभाग्यशालिनी मानती हूँ, जो उन्होंने मुझे बहिनके रूपमें अपना लिया। उनसा भाई पाकर मैं धन्य हो गयी। ■

डा. श्रीसुरेशचन्दजी सेठ

आग और गंगाकी धारा

ऋषिकेशसे लगभग दो मीलकी दूरीपर गंगाजीके उसपार स्वर्गाश्रममें गीता-भवन है, जहाँ सत्संगी बन्धुओंके ठहरनेकी सुन्दर व्यवस्था है और जहाँ प्रतिवर्ष गर्मीके दिनोंमें अनेक साधु-महात्माओंका सत्संग और सांनिध्य सुलभ रहता है। गीता-भवनके पास ही परमार्थ-

निकेतन है, जहाँ आवासकी सुविधा और सत्संगकी व्यवस्था गीता-भवन जैसी ही है। एक बार गीता-भवन और परमार्थ-निकेतनमें एक छोटेसे भूमि खण्डके लिये परस्परमें वाद-विवाद हो गया। प्रसंग सम्भवतः सन् १९६२ के आस-पासका होना चाहिये। विवाद मात्र इसी बातको लेकर था कि लोगोंके आने-जानेका मार्ग किधरसे हो। एक पक्ष कहता था कि मार्ग उधरसे हो और दूसरा पक्ष कहता था कि वह मार्ग इधरसे हो। दोनों पक्षोंके ही तर्क प्रबल थे और कोई भी पक्ष अपनी मान्यताको छोड़नेके लिये तैयार नहीं था।

जब परस्परकी बातचीतसे यह विवाद दूर नहीं हो पाया तो लोगोंने न्यायालयकी शरण ली। न्यायालयमें गीता-भवनके पक्षकी जीत हुई। परमार्थ-निकेतनवालोंने उससे बड़े न्यायालयमें अपील की। यहाँ भी गीता-भवनका पलड़ा भारी रहा। परमार्थ-निकेतन हार माननेको तैयार नहीं था, उससे भी ऊँचे न्यायालयमें परमार्थ-निकेतनवाले गये। वहाँ भी गीता-भवनकी जीत हुई। अब इस छोटी-सी बातको लेकर दोनों पक्षवालोंने अपनी प्रतिष्ठाका प्रश्न बना लिया। दोनों संस्थाओंके उद्देश्य समान थे और दोनोंके कर्णधार और कार्यकर्तागण महान थे, पर यहाँ भी वैमनस्यने घर कर लिया। जो सत्संगी लोग गीता-भवन और परमार्थ-निकेतनमें आये हुए थे, केवल उनमें ही नहीं, अपितु आस-पासके सभी आश्रम-बन्धुओंमें यह पारस्परिक वैमनस्य चर्चाका विषय बन गया था। वैमनस्यके इस रूपको देखकर सभी बड़े व्यथित हो रहे थे।

वृन्दावन स्थित मानव-सेवा-संघके संस्थापक पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजका गीता-भवनमें प्रतिवर्ष शुभागमन हुआ करता था और वे लगभग एक-डेढ़ मास रहा करते थे। गीता-भवन पधारनेपर उनका प्रवचन होता ही था। स्वामीजी महाराज सत्यके पक्षपाती एवं बड़े ही स्पष्टवादी थे। एक बार परमार्थ-निकेतनवालोंने स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजको प्रवचन हेतु पधारनेके लिये अनुरोध किया। वहाँ स्वामीजीका प्रवचन पूर्वाह्न कालमें हुआ। परमार्थ-निकेतनके हॉलमें सत्संगी बन्धुओंके समक्ष स्वामीजीने सुन्दर मानवके सुन्दर जीवनकी रूप-रेखाका वर्णन किया और फिर दोनों पक्षोंमें व्याप्त वैमनस्यपर टिप्पणी करते हुए स्वामीजीने कहा— *संसारका साधारण मानव परिवार-पड़ोसके राग-द्वेष, कलह-क्लेशकी आगसे प्रायः संत्रस्त रहता है। वह संतप्त मानव शीतलता पानेके लिये संतों-महात्माओंकी शरणमें जाता है। सांसारिक राग-द्वेषकी आगसे झुलसे हुए वे व्यक्ति जब यहाँ आते हैं और जब वे यह देखते हैं कि ये संत, ये महात्मा, ये संस्थाएँ, ये समितियाँ भी उसी आगकी लपेटमें हैं, तब उनकी कोमल भावनाओंको बड़ी चोट पहुँचती है। शीतलताकी खोजमें निकला हुआ वह साधारण मानव अब किसका आश्रय ले? वह कहाँ जाये? वह किसकी शरण ले? उसे बड़ी निराशा होती है। मुझे संस्थाओंसे तथा संतोंसे यही कहना है कि दूसरेकी आगपर पानी वही डाल सकता है, जिसका जीवन माँ गंगाकी पावन धाराके समान शीतल और निर्मल हो, जहाँ आग है ही नहीं। वहाँ है केवल परम निर्मल जल, परम पावन जल, परम मधुर जल, परम शीतल जल।*

स्वामीजी महाराज प्रवचन देकर अपने कमरेमें चले आये। किसीको ऐसी आशा नहीं थी कि स्वामीजी इतनी खरी बात कह देंगे। लोगोंने स्वामीजीसे एकान्तमें अनुरोध किया— आपको इतने खुले रूपमें नहीं बोलना चाहिये था।

स्वामीजीने कहा— तो क्या मैं उनको प्रसन्न करनेके लिये उनकी मन-भावनी बात बोलता?

मुझे ज्ञात है और यहाँके सत्संगी बन्धु आकर मुझे बतलाते हैं कि यहाँ कितना और कैसा क्षोभ भरा हुआ है।

इसी दिन अपराह्न कालमें गीता-भवनके सत्संग हॉलमें पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजका प्रवचन हुआ और उसी वैमनस्यपर टिप्पणी करते हुए उन्होंने यहाँ भी कहा— *यह गीता-भवन गीताप्रेसका एक अंग है। गीताप्रेस धर्मका प्रचार तो चाहता है, पर वह यह भी चाहता है कि उस प्रचारपर गीताप्रेसका ठप्पा लगा रहे। धर्मका प्रचार ठप्पा-सापेक्ष न कभी था, न है और न होगा। आजके सौ साल पहले गीताप्रेस था नहीं और सौ साल बाद, पता नहीं, गीताप्रेस रहेगा या नहीं। जब गीताप्रेस नहीं था, तब भी धर्मकी स्थिति थी और जब गीताप्रेस नहीं रहेगा, तब भी धर्मकी स्थिति रहेगी। धर्मका स्वरूप सनातन है। माँ गंगाकी तरह धर्मका प्रवाह अखण्ड है और उसकी गति अबाध है। यह हमारे लिये सौभाग्यकी बात होगी, यदि हमारे द्वारा धर्मकी कुछ सेवा बन जाती है और यह सेवा तभी सुन्दर रूपसे सम्पन्न हो पायेगी जब कि हमारे जीवनमें मानवोचित सद्गुणोंकी प्रतिष्ठा रहेगी।*

स्वामीजी महाराजने जो प्रवचन अपराह्नकालमें गीता-भवनमें दिया था, उसने सारे वातावरणको झकझोर दिया। वातावरणमें जो क्षोभ परिव्याप्त था, वही स्वामीजी महाराजके मुखसे मुखरित हो उठा था।

उन दिनों पूज्य श्रीभाईजी भी स्वर्गाश्रमकी डालमिया कोठीमें विराज रहे थे। श्रीभाईजीको भी उस मुकदमेबाजीकी जानकारी थी और वे इसका विरोध करते थे। इस पारस्परिक वैमनस्यको देखकर श्रीभाईजीको बड़ा कष्ट होता था। विशेष कष्ट होता था कार्यकर्ताओंकी पारमार्थिक हानिकी कल्पना करके। बम्बईमें पारसी प्रेतने श्रीभाईजीको बतलाया था कि जो लोग द्वेष लेकर मरते हैं, उसको परलोकमें बड़ी यातना सहनी पड़ती है। क्या यही यातना गीता-भवन और परमार्थ-निकेतनके कार्यकर्ताओंको भी भोगनी पड़ेगी? ये लोग धार्मिक संस्थासे जुड़े थे धर्म-सेवाकी भावनासे और अब उन्हींके द्वारा धर्म-शून्य आचरण हो रहा है, यह कितना बड़ा प्रमाद है! इतना ही नहीं, न्यायालयसे अनुकूल निर्णय प्राप्त करनेके लिये कार्यकर्ता लोग अपने प्रयासमें जब उचित-अनुचितका ध्यान नहीं रखते थे, तब श्रीभाईजी सिहर उठते थे। यह तो धर्म और कर्तव्यके नामपर अधर्माचरण है। उनकी ऐसी सभी चेष्टाओंको सुनकर श्रीभाईजीका मन अत्यधिक खिन्न हो जाया करता था। श्रीभाईजी दबाव देकर सुलहनामा करवा सकते थे, पर यह सुलहनामा ऊपरी होता, मनके भीतर तो वैमनस्य रहता ही। बाहरी आग उतनी घातक नहीं होती, जितनी भीतरी आग हुआ करती है। यह विवाद वस्तुतः तभी शान्त और समाप्त होता, जब सबके हृदयमें परिवर्तन हो। श्रीभाईजीके कहनेसे लोग मान तो जाते, पर वह शान्ति स्थायी नहीं होती। श्रीभाईजी अवसरकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब लोगोंके हृदयकी भावनामें वास्तविक परिवर्तन दृष्टिगत होगा। श्रीभाईजी गीताप्रेसवालोंको समझाते भी थे, पर अपेक्षित लाभ होता नहीं था। श्रीभाईजीके हृदयमें बड़ी व्यथा थी। इस व्यथाके कारण ही संभवतः परिस्थितिमें परिवर्तन आया। संतके हृदयकी व्यथा व्यर्थ भला कैसे होती? भले न्यायालयमें गीताप्रेसकी जीत हो गयी थी, पर जगतके सामने दोनों ही पक्ष उपहासास्पद बने हुए थे। जब किसी प्रकारसे भी वैमनस्यकी आग शान्त नहीं हो पायी, तब गीताप्रेसवालोंने श्रीभाईजीसे कहा— इस मामलेको आप सलटाइये।

श्रीभाईजीने उन अनुरोध करनेवालोंसे कहा— फिर मैं जो भी करूँगा, वह आप सभीको वस्तुतः स्वीकार होगा न? मेरे संकोचके कारण नहीं, अपितु वह हृदयसे सभीको मान्य होना चाहिये।

उन सभी लोगोंने श्रीभाईजीको अपनी प्रसन्न सहमति प्रदान की। अवसर देखकर श्रीभाईजी परमार्थ-निकेतन गये और वहाँके प्रधान पूज्य स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजी महाराजको प्रणाम किया। स्वामीजीने श्रीभाईजीको बड़े सम्मान पूर्वक अपने पास बैठाया और मधुर वाणीमें पूछा— आज कैसे पधारना हुआ?

श्रीभाईजीने कहा— *यह झगड़ा और यह वैमनस्य हम लोगोंको शोभा नहीं देता। हम एक ही हिन्दू धर्मके मानने वाले हैं, भगवान राम और भगवान श्रीकृष्ण ही हमारे उपास्य हैं, रामायण और गीता ही हमारे धर्म-ग्रन्थ हैं, हम दोनोंके कार्योंका उद्देश्य भी एक ही है। फिर हम लोगोंमें यह राग-द्वेष शोभा नहीं देता। आपकी प्रसन्नता ही मेरी प्रसन्नता है। आप जैसा चाहें, वैसा कर लें।*

इतना कहकर श्रीभाईजीने एक पन्ना अपनी जेबसे निकाला और उसे खोलकर उनके सामने रख दिया। उस पन्नेमें नीचे श्रीभाईजीने अपना हस्ताक्षर कर रखा था। हस्ताक्षर युक्त पन्नेको देखकर स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजी महाराजने पूछा— यह क्या?

श्रीभाईजीने कहा— *हस्ताक्षर करके ही इस पन्नेको मैं अपने साथ लाया हूँ। इसमें स्थान खाली है। आप जो चाहें, वह लिख लें। हमें सब स्वीकार है, पर यह पारस्परिक वैमनस्य उचित नहीं। मैं तो बहुत पहले ही यह करना चाहता था, पर अनुकूल अवसर अब मिला।*

अब स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजीके कपोल अश्रुओंसे भीग रहे थे। उन्होंने श्रीभाईजीके हाथको अपने हाथमें ले लिया। स्वामीजी कुछ बोलना चाह रहे थे, पर वे बोल नहीं पा रहे थे। भावके किंचित् शमित होनेपर स्वामीजीने श्रीभाईजीसे कहा— *भाईजी! सचमुच आपकी गरिमाको कोई छू नहीं सकता। आपके समान बस, आप ही हैं।*

वह सारा वैमनस्य एक क्षणमें दूर हो गया। वह सारी आग गंगाकी परम शीतल धारामें सदाके लिये शान्त हो गयी। सारे वातावरणमें मधुरता परिव्याप्त हो गयी और दोनों पक्षोंमें स्नेह उमड़ पड़ा। ■

आ. श्रीकौशल्याबाई बंका

वे सँभालते हैं

पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का जितना और जैसा वात्सल्य मुझे जीवनमें मिला है, उसे याद करके हृदय भर आता है। एक बार मेरी माताजीने मुझसे कहा कि तुम बदरी-केदार-धामकी यात्रा कर आवो। मैंने अपने मनमें निश्चय कर रखा था कि जब कभी पूज्य बाबूजी बदरीनाथ-केदारनाथ जायेंगे, तब मैं उनके साथ जाऊँगी। जब मैंने माँके कहनेपर ध्यान नहीं दिया तो मेरे बड़े भाईने यह बात पूज्य बाबूजीको बतायी। पूज्य बाबूजीने मुझसे कहा— अभी तो सुविधा है, सुन्दर साथ है तथा घरवाले प्रसन्न मनसे कह रहे हैं, अतः तुम

बदरी-केदारके दर्शन कर आवो।

मैंने पूज्य बाबूजीसे कहा— ऐसा सुना है कि पहाड़ी यात्रामें बड़ी अड़चने आया करती हैं। जब कभी आप चलेंगे, तभी आपके साथ जानेका मेरा विचार है।

पूज्य बाबूजीने अँगुलीमें अँगूठी पहन रखी थी। उन्होंने अपनी अँगुलीसे अँगूठी निकाली और मुझे देकर कहा— इस अँगूठीको तुम अपनी अँगुलीमें पहन लो अथवा अपने पल्लेमें बाँध लो। अब तुम्हारे सामने कोई बाधा नहीं आयेगी। सारी यात्रा भली प्रकारसे हो जायेगी। तुम्हारा मेरे साथ जानेका मन है। पता नहीं, मेरा जाना हो पायेगा या नहीं, पर यदि कभी मैं जाऊँ तो तुम भी चलना। उस समय तुम्हारी दुबारा यात्रा हो जायेगी। पर इस समय तो तुम यात्रा कर आवो।

मैं बदरीनाथ-केदारनाथकी तीर्थ-यात्रापर गयी और सचमुच सारी यात्रा बड़ी सुखद और सुन्दर रही।

पूज्य बाबूजीकी आत्मीयताके अब कई प्रसंग याद आ रहे हैं। एक बार एक स्वजनकी बरातमें पूज्य बाबूजी पड़रौना गये थे। पड़रौना गोरखपुरसे लगभग पैंतालीस मीलकी दूरीपर स्थित एक छोटा-सा नगर है। उन्हें भोजन बरातियोंके साथ करना चाहिये था, पर वे भोजन करने मेरे घर पधारे। जिस दिन पूज्य बाबूजीका मेरे घरपर शुभागमन हुआ, यही कहना चाहिये कि उसी दिनसे हम लोगोंके भाग्योदयका आरम्भ हो गया। हमारा परिवार अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंको झेल रहा था। उसी दिनसे वे कठिनाइयाँ धीरे-धीरे दूर होती चली गयीं।

उनके इस वात्सल्यने न जाने कौन-सी दिव्य वस्तु मुझे दे दी। स्वर्गाश्रमकी बात है। मुझे अपने एकादशी व्रतका उद्यापन करना था। उद्यापन-पूजनके आचार्य थे नापासरवाले पूज्य पं. श्रीहरिप्रसादजी पारीक। इस उद्यापनके पूजनका संकल्प स्वयं पूज्य बाबूजीने अर्चकके आसनपर बैठकर लिया। एकादशी व्रतकी भाँति ही मुझे पूर्णिमा व्रतका उद्यापन करना था। पूज्य बाबूजी अस्वस्थ थे तो उन्होंने जीजाजी (सम्मान्य श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला) को भेजा। जीजाजीने ही सारी पूजा करवायी। पूजाकी सम्पन्नताके अवसरपर जब आरती होने वाली थी, तब पूज्य बाबूजी भी आ गये। पूज्य बाबूजीका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, अतः लोगोंने जानेसे रोका। लोगों द्वारा निवारण किये जानेके बाद भी पूज्य बाबूजी आरतीके अवसरपर पहुँच गये।

जबतक पूज्य बाबूजी हमलोगोंकी आँखोंके सामने थे, तबतक तो हर बातकी सँभाल रखते ही थे और अब आँखोंसे ओझल हो जानेके बाद भी उनकी सँभालमें कोई कमी नहीं आयी है। मेरे लिये तो पूज्य बाबूजी आज भी विद्यमान हैं और अब भी मेरे आरम्भ किये हुए कामको पूरा करते हैं। पूज्य बाबूजीके नित्यलीलामें लीन होनेके कुछ साल बादका एक प्रसंग है। मेरे मनमें श्रीमद्भागवतकी सप्ताह-कथा करवानेकी बड़ी इच्छा थी। कथा कहनेके लिये मैंने वृन्दावनके पूज्य श्रीश्रीनाथजी महाराजसे अनुरोध किया। उन्होंने मेरे अनुरोधको स्वीकार कर लिया और यह निश्चित हो गया कि सप्ताह-कथा पड़रौना नगरमें होगी।

सप्ताह-कथाके लिये पूज्य श्रीश्रीनाथजी महाराजने अपनी स्वीकृति दे दी है, यह बात सुनकर मेरे मिलने-जुलनेवालोंने मुझे बहुत ही हतोत्साहित किया कि तुम कैसे भागवतकी सप्ताह-कथाके विशाल कार्यको सँभाल पाओगी, क्यों कि उनकी कथामें तो बहुत बड़े प्रबन्धकी

आवश्यकता रहा करती है। जब कई लोगोंने एक ओरसे बार-बार इसी बातको कहना आरम्भ कर दिया तो मैं सचमुच डर गयी कि यह काम कैसे पूरा होगा। कमरेके एकान्तमें मैंने पूज्य बाबूजीको याद किया और उनसे कातर स्वरमें प्रार्थना करने लगी— अब यह कार्य आपको ही सँभालना है तथा पूरा करना है।

बाबूजीसे प्रार्थना करनेके बाद मुझे एक विचित्र प्रकारके आश्वासन और शक्तिका अनुभव होने लग गया। मेरे मनमें यह बात बैठ गयी कि सारा काम ठीक प्रकारसे हो जायेगा। भागवतकी सप्ताह-कथाके आरम्भ होनेपर मैंने इतना अवश्य किया कि मुख्य श्रोताके रूपमें पूज्य बाबूजीका तथा इसीके साथ पूज्य श्रीसेठजीका चित्रात्मक विग्रह श्रीमद्भागवतपुराण ग्रन्थके समक्ष प्रस्थापित कर दिया।

पड़रौनामें भागवत-सप्ताहकी कथाके आरम्भ होनेवाले दिवसके पूर्व पूज्य बाबूजी रात्रिके समय स्वप्नमें पधारे तथा मेरे सामने आकर कहने लगे— *तुमने श्रीश्रीनाथजी महाराजको अपनी बुआजीके घरपर, श्रीमन्नालालजी खेतानके पास ठहराया है। उनकी सुख-सुविधाके लिये तो यह ठीक ही किया, पर इस बातका ध्यान रखना कि जबतक महाराजजी कथा कहें, तबतक वे वहाँका अन्न ग्रहण न करें। यदि यह हो पाया तो सप्ताह-कथा तुम्हें विशेष रूपसे फल-दायिनी होगी।*

स्वप्नमें इतना कहकर पूज्य बाबूजी अदृश्य हो गये तथा मेरी नींद तुरन्त टूट गयी। मेरे द्वारा यह कितनी बड़ी भूल हो रही थी? इस दृष्टिसे मैंने न कोई सावधानी बरती थी और न मैंने महाराजजीसे कुछ अनुरोध किया था। स्वप्नमें आकर पूज्य बाबूजीने मुझे सचेत किया। पूज्य बाबूजीके वात्सल्यको सोच-सोच करके मैं बड़ी गद्‌गद हो रही थी। सबेरा होते ही जल्दीसे नहा-धोकर मैं बुआजीके यहाँ पूज्य महाराजजीके पास गयी। उन्हें प्रणामकर स्वप्नवाली सारी बात मैंने उनसे बता दी। स्वप्न सुनकर पूज्य महाराजजीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने मुझसे कहा— लाली! अब ऐसा ही होगा। इस दृष्टिसे मैं पूर्ण सावधान रहूँगा।

पूज्य महाराजजीके वचनोंको सुनकर मुझे बड़ा संतोष हुआ। मैं तो इस बातसे फूली-फूली फिरती थी कि पूज्य बाबूजीने मेरी एक बहुत बड़ी भूलको सुधार दिया। यदि पूज्य बाबूजी स्वप्नमें नहीं बताते तो मेरा ध्यान उस ओर जाता ही नहीं। भागवतकी सप्ताह-कथामें विघ्न-बाधाएँ कम नहीं आयीं। आँधी-वर्षाके रूपमें दैवी प्रकोपका भी सामना करना पड़ा, परन्तु पूज्य बाबूजीकी कृपासे सारी बाधाएँ दूर हो गयीं और सप्ताह-कथाका सारा कार्य विधि-पूर्वक सम्पन्न हो गया।

वस्तुतः पूज्य बाबूजीके पावन चरणोंका आश्रय मेरे लिये एक बहुत बड़ा सहारा है, ऐसा सहारा, जो व्यर्थ होता ही नहीं। भगवानकी कृपासे मुझे छोटी आयुमें जो सहारा मिला, उसने न जाने कितने संकटोंसे मुझे उबारा है और सदा मेरी सँभाल करता रहा है। ■

सौ. श्रीविजयलक्ष्मी पोद्दार

अस्पतालके द्वारपर

कन्याका जन्म होता है पितृ-गृहमें और भावी जीवन व्यतीत होता है श्वसुरालमें। श्वसुरालमें आते ही नवीन संसारमें प्रवेश होता है, नवीन व्यक्तियोंसे परिचय होता है, नवीन सम्बन्धकी स्थापना होती है, नवीन सम्पर्कका आरम्भ होता है और नवीन वातावरणमें ढलना पड़ता है। इस नवीनतामें प्रवेश करते ही मुझे ऐसा लगा कि मैं एक भक्त-परिवारमें आयी हूँ। भक्त-परिवार बड़े भाग्यसे मिलता है। मैंने देखा कि मेरी सास और मेरे श्वसुर, दोनों ही श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारमें बड़ी श्रद्धा रखते हैं। मेरा नवीन प्रवेश पोद्दार परिवारमें हुआ था, अतः पहले मैंने यही समझा कि श्रीभाईजीके नामसे विख्यात श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हमारे पोद्दार परिवारके कोई पूज्य व्यक्ति होंगे, पर शीघ्र ही वास्तविक तथ्य सामने आ गया। मैंने पाया कि पारिवारिकताकी भावनासे बहुत ऊपर श्रीभाईजी हमारे घरमें अति श्रद्धेय हैं अपने महान संतत्वके कारण। उस महान संतत्वका अवतरण हमारे पोद्दार कुलमें हुआ, यह हमारे कुलका परम सौभाग्य है। मेरी सासूजी और श्वसुरजी, दोनोंके लिये श्रीभाईजी परम श्रद्धास्पद हैं। उनके शब्दोंका हमारे परिवारके जन-जनमें भगवदीय वाणीके समान समादर है। वे हमारे परिवारके हर दृष्टिसे सर्वस्व हैं। लोक-परलोक-परमार्थकी दृष्टिसे वे हमारे लिये परम सुहृद, परम हितैषी स्वजन हैं। *'हित परलोक लोक पितु-माता'*। आज हमारे परिवारमें गृहस्थ-जीवनके निर्वाहके लिये कामकाजके रूपमें जो व्यापार चल रहा है, वह उनकी कृपाके फलस्वरूप ही है। आगामी प्रसंगने तो मेरे मनपर एक स्थायी छाप लगा दी।

श्रद्धेय श्रीभाईजीने सन् १९७१ में महाप्रयाण किया और इसके कुछ साल बाद मेरे पूज्य श्वसुरजीका भी निधन हो गया। अगली बात सन् १९८५ के फरवरी मासकी है। मेरी सासूजी सत्संगके लिये वृन्दावन गयी हुई थीं। वहीं उनकी तबीयत खराब हो गयी। रुग्णताकी सूचना मिलते ही हमलोग दिल्लीसे वृन्दावन गये और उनको कारमें बैठाकर दिल्ली ले आये। घरके द्वारपर पहुँचनेके बाद जब कारसे उतरनेका अवसर आया, तब मेरी सासूजीको लगा कि दोनों पैर काम नहीं कर रहे हैं। उनको गोदमें उठाकर घरमें लाया गया। धीरे-धीरे स्पष्ट हो गया कि उनके दोनों पैरोंमें लकवाका दौरा पड़ गया है। तुरन्त चिकित्साकी व्यवस्था की गयी। डाक्टरोंने सलाह दी कि तत्काल अस्पतालमें भर्ती करा दिया जाय, जिससे भली प्रकार चिकित्सा हो सके। उनको दिल्लीके विख्यात होली फैमिली हॉस्पिटलमें भर्ती करानेके लिये ले जाया गया। लकवाका प्रभाव पैरोंसे ऊपरकी ओर सारे शरीरपर क्रमशः फैलता जा रहा था और उसके प्रभावमें दोनों पैर तो भली प्रकार आ ही गये थे।

मेरी सासूजी कारमें लेटी हुई थीं और कार होली फैमिली हॉस्पिटलके द्वारपर खड़ी थी। उनको शीघ्र भर्ती करानेके लिये हमलोग भाग-दौड़ कर रहे थे। उसी समय मेरी सासूजीने एक विचित्र बात देखी कि पूज्य श्रीभाईजी धीरे-धीरे मोटरकारकी ओर आ रहे हैं। वे धोती-कुर्ता पहने हुए हैं तथा उनके हाथमें छड़ी है। उन्होंने आकर अपने दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियाँ खड़े

रूपमें सासूजीके कमरके पास जंघेके अन्तिम छोरपर रख दी। इसके बाद वे चले गये।

जहाँ श्रीभाईजीने अपनी अँगुलियाँ रखी थी, उसके ऊपर लकवाका प्रभाव फैल नहीं सका, मानो लकवाके प्रभावके लिये उन्होंने सीमा-रेखा लगा दी। *'बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा'*। यदि मल-मूत्रके द्वार लकवासे प्रभावित हो जाते, तब तो परेशानीकी सीमा नहीं होती। कष्ट अब भी कम नहीं है, पर यदि लकवाके प्रभावका विस्तार ऊपरकी ओर और बढ़ जाता तो उस कष्टकी कल्पना मात्रसे ही मन काँप उठता है। यह जो कष्ट आया, वह कोई प्रारब्ध ही होगा, पर ऊर्ध्वांगके लकवासे ग्रस्त होनेपर जो कष्ट होता, उस भीषण कष्ट-भोगकी अति विषम स्थितिसे श्रीभाईजीने सीमा-रेखा स्थापित करके मेरी सासूजीको बचा लिया। वे तो हमारे परिवारका संरक्षण परोक्ष रूपसे सदैव करते रहते हैं। आज भी उनका वात्सल्य हमारा बहुत बड़ा सहारा है। ■

श्रीमोतीलालजी पारीक

[१] कुष्ट रोगसे मुक्ति

बात सन् १९३३ की है, जब मैं आसामके शिवसागर जिलेमें नाजिरा नामके कस्बेमें रहा करता था। नाम बतलाना उचित नहीं, पर मेरे उन स्वजनको कुष्ट रोग हो गया। कुष्ट रोगका अभी आरम्भ ही था। कुष्ट रोगको अपने शरीरपर देखकर वे बड़े बेचैन हो उठे। अभी तो यह कुष्ट वस्त्रसे ढका हुआ है, पर जब यह फैलकर प्रकट हो जायेगा, तब तो मैं समाजके लिये अस्पृश्य हो जाऊँगा, ऐसा सोचकर उनके मनकी व्यथा बढ़ती चली जा रही थी। वे बार-बार सोच रहे थे— फिर मेरी पत्नी और मेरे बच्चे मुझसे घृणा करने लगेंगे। घरवाले मेरा परित्याग कर देंगे। समाजका एक-एक व्यक्ति मुझसे बचना चाहेगा।

भावी अस्पृश्य एवं परित्यागपूर्ण जीवनकी कल्पना जितनी अधिक होती, उतनी ही उनकी बेचैनी बढ़ती जाती। उन्होंने कातर मनसे प्रार्थना आरम्भ कर दी, जिससे इस रोगसे छुटकारा मिल सके। कातर प्रार्थना कई दिनतक चलती रही।

एक रात पूज्य बाबूजीने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा— *न घबराने की जरूरत है और न निराश होने की। तुम 'हरे राम' महामन्त्रका जप करो। भगवत्कृपासे सारा मंगल होगा।*

उस व्यक्तिकी नाममें निष्ठा तो पहलेसे ही थी। अब यह निष्ठा और बढ़ गयी। वह श्रद्धापूर्वक जप करने लगा और जपके प्रभावसे उसका कुष्ट रोग पन्द्रह दिनके अन्दर सदाके लिये चला गया।

[२] अक्षय कोठार

पूज्य बाबूजीकी लाडली सुपुत्री बाई सावित्रीके विवाहके अवसरकी बात है। बाई सावित्रीका विवाह हुआ था सं. १९९८ वि. (सन् १९४१ ई.) में। बाबूजीका परिचय-क्षेत्र अति विस्तृत है। हर एक व्यक्ति उक्त अवसरपर उपस्थित होना चाहता था। लोग आये भी। रतनगढ़में बाई सावित्रीका विवाह खूब धूमधामसे सम्पन्न हुआ।

विवाहकी मुख्य जीमनवार (सज्जनगोठ) का प्रसंग है। भाँति-भाँतिकी मिठाइयाँ बनी हैं, पकवान बने हैं। पंगत-पर-पंगत लग रही है। लोगोंकी भीड़-की-भीड़ जीम (भोजन कर) रही है। कुछ समय बाद मिठाई-भण्डारके कोठारीको ऐसा लगा कि मिठाई-पकवान आदि समाप्त होने वाले हैं। अभीतक तो केवल ऊपर-ही-ऊपरके लोग जीम गये हैं। बरात तो अभी जीमी ही नहीं है। कोठारीने पक्का पता लगाना चाहा कि लगभग कितने व्यक्ति और जीमनेवाले हैं। संख्या काफी थी। संख्याकी तुलनामें कोठारकी अल्प सामग्री देखकर कोठारीके चेहरेपर चिन्ताकी रेखाएँ उभर आयीं।

कोठारीने जाकर माँसे कहा। माँके मनमें चिन्ताका व्याप्त होना स्वाभाविक था, पर चिन्ताके साथ एक निश्चिन्तता भी थी। माँने यह बात बाबूजीको कहलवायी। बाबूजी यह संवाद सुनकर भण्डारकी ओर आये और कहा— दिखाओ तो सही कि कितनी मिठाई है। सब कहते हैं कि मिठाई कम पड़ गयी है, मिठाई कम पड़ गयी है। जरा मैं भी तो देखूँ।

ऐसा कहकर बाबूजी कोठारके भीतर गये। सारी मिठाइयोंको एक दृष्टिसे देख गये। अपनी 'दृष्टि' से देख जानेके बाद बाबूजीने कहा— लोग व्यर्थ ही शोर कर रहे हैं। सब तो ठीक है। कहाँ मिठाई कम है?

इस प्रकार कहते-कहते बाबूजी कोठारके बाहर चले गये और अन्य काममें लग गये। वे भले ऐसा कह गये हों, पर बाबूजीकी बातपर उस कोठारीको विश्वास नहीं हुआ। मिठाईकी मात्रा और जीमनेवालोंकी संख्या, दोनों बातें उसके आँखोंके सामने थी, पर उसके आश्चर्यकी तब सीमा नहीं रही, जब कि सारी बरातके जीम जानेके बाद भी मिठाई-पकवान आदि बहुत अधिक बच गये। कोठारीके मनमें यही बात जम गयी कि यह बाबूजीके 'आने और देखने' का प्रभाव था।

[३] आदमी नहीं, देवता हैं

अपकार करनेवालेका उपकार करना पूज्य बाबूजीके स्वभावका स्वरूपभूत अंग था। हमको और आपको पर-हितकी बात सोचनी पड़ती है तथा सोचकर भी शायद हम वैसा नहीं कर पायें, परंतु बाबूजी सहज ही हानि पहुँचाने वालेको लाभ पहुँचाते थे। रतनगढ़में बाबूजीकी हवेलीके बगलमें पं. श्रीमोतीरामजी बोगड़की हवेली है। पं. श्रीमोतीरामजीके ज्येष्ठ भाई पं. श्रीराधाकृष्णजी बोगड़ने अपने हवेलीके एक तल्लेपरसे बाबूजीके नोहरेमें मोरी (जंगला) निकाल ली। लोगोंने उनसे कहा— यह आप क्या कर रहे हैं? उधर श्रीपोद्दारजीका नोहरा है। कानूनकी दृष्टिसे आप उनकी तरफ जंगला नहीं निकाल सकते। आप इसे बन्द कर दें।

लोगोंने उनको मना किया, पर वे भला क्यों मानने लगे? इसके बदलेमें वे उलटकर बाबूजीके प्रति अभद्र शब्द कहने लगे। पड़ोसके लोग पहुँचे बाबूजीके पास और उनकी शिकायत करते हुए बाबूजीको वे लोग बतलाने लगे— भाईजी, देखिये। उन पण्डितजी महाराजने आपके नोहरेमें जंगला निकाल लिया है। उन्हें समझाया जाता है तो वे गलत ढंगसे पेश आते हैं।

बाबूजी उनकी बात चुपचाप सुनते रहे। कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। उन्हीं लोगोंमेंसे एकने यह भी कहा— वह ब्राह्मण कुछ अशिष्ट तो है, पर है अभाव-ग्रस्त।

बाबूजीने अभाव-ग्रस्त वाली बात पकड़ ली। शिकायत करने जो लोग आये थे, उनको किसी प्रकार चुप कराकर वापस भेज दिया। बाबूजीने तुरन्त मन-ही-मन निर्णय लिया कि भले उसकी क्रिया ठीक न हो, पर वह है तो अभाव ग्रस्त, अतः उसकी सेवा अपनेको करनी ही चाहिये। बाबूजीने मुझको बुलाया और मेरे हाथमें एक लिफाफा देकर कहा— यह लिफाफा पं. श्रीराधाकृष्णजी बोगड़को दे आइये।

मुझे भी पता नहीं था कि लिफाफेमें क्या है। मेरा अनुमान था कि इस लिफाफेमें कोई पत्र होगा उनको समझाने-बुझानेके लिये। मैंने जाकर वह लिफाफा श्रीबोगड़जीको दे दिया। उन्होंने भी यही अनुमान लगाया कि जंगला निकालनेके बारेमें कोई पत्र श्रीभाईजीने भेजा है और अवश्य ही इस पत्रमें कोई डाँट-डपट अथवा धमकी दी गयी होगी। अपने इस अनुमानके आधारपर श्रीबोगड़जी गरज करके मुझसे कहने लगे— मोती महाराज! ठहरो। इस लिफाफेका जबाब भी हाथ-के-हाथ लेते जावो। जबाब देनेमें देर क्यों?

मुझसे इतना कहकर उन्होंने लिफाफा खोला। उस लिफाफेमें सौ-सौके कई नोट थे और साथमें एक पत्र था। पत्रमें प्रणाम निवेदन करनेके उपरान्त लिखा था— इन्हें आप अपने काममें ले लेंवे और कोई भी काम हो तो सेवा फरमावें।

पत्रको पढ़कर और बाबूजीकी विनम्रता देखकर श्रीबोगड़जी तो पानी-पानी हो गये। मनमें सद्‌भाव उमड़ने लगा। वे मुझसे इतना ही कह पाये— श्रीभाईजी आदमी नहीं, देवता हैं।

[४] दोष मेरा था

श्रीचिरंजीलालजी गोयनकाकी सुपुत्रीका कानपुरमें विवाह था। इस विवाहमें बाबूजी भी गये थे। विवाह बड़ी धूमधामसे सम्पन्न हुआ। चाव और धूमधामके अतिरेकमें वर-पक्षकी ओरसे वेश्या-नृत्यका भी आयोजन था और वह नृत्य हुआ भी।

वेश्या-नृत्यकी बात पूज्य श्रीसेठजी (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के पास पहुँची। पूज्य श्रीसेठजीको बुरा लगा। बुरा लगना स्वाभाविक भी था। अहितकर परम्पराओं तथा कुरीतियोंको कैसे सहन किया जा सकता है? गर्मीके दिनोंमें श्रीचिरंजीलालजी स्वर्गाश्रम गये और पूज्य श्रीसेठजीको प्रणाम किया। वहींपर बाबूजी भी बैठे हुए थे। पारस्परिक कुशल समाचार पूछनेके बाद पूज्य श्रीसेठजीने वेश्या-नृत्यवाली चर्चा छेड़ दी। पूज्य श्रीसेठजीने वेश्या-नृत्यकी निन्दा करते हुए कहा— आपने अपनी पुत्रीके विवाहमें यह नृत्य क्यों होने दिया?

श्रीचिरंजीलालजी चुप-चाप सुन रहे थे। वे कुछ कहें, इसके पहले ही तुरन्त पूज्य श्रीसेठजीसे बाबूजीने कहा— आप इन्हें क्यों कहते हैं? यह तो मेरे प्रति कहना चाहिये। मैं भी तो वहीं पर था। यह दोष तो मेरा ही है, जो वहाँ रहकर भी अपने सामने मर्यादाका अतिक्रमण होने दिया।

पूज्य श्रीसेठजी अब क्या बोलते? श्रीचिरंजीलालजीपर मढ़े जानेवाले दोषको पूज्य बाबूजीने स्वयंपर झेल लिया। उनपर आँच आने ही नहीं दी। निन्दनीय कार्य निन्दनीय ही होता है। ऐसे हेय कार्यके प्रति त्याज्य-भावना मनमें उदित होते ही उस व्यक्तिको और अधिक संकोचमें डालना उचित नहीं। किसीके सामाजिक सम्मानके प्रति बाबूजी बड़े सजग रहा करते थे।

[५] अपनी कोठी देना

दौहित्री राधाके शुभ विवाहका मंगल अवसर है। बचपनसे लेकर अबतक जो नानाजी (अर्थात् बाबूजी) के पास रही और जो नानी-नानाके लाड़-दुलारमें पली, उसी लाड़ली राधाके विवाहकी तैयारियाँ हो रही हैं। आवश्यक वस्तुओंका संग्रह हो रहा है, मंगल संदेश मँगवाये जा रहे हैं, इस प्रकार विविध आवश्यक कार्य सोल्लास किये जा रहे हैं। कन्या-पक्षकी ओरसे आनेवाले अतिथियोंको तथा वर-पक्षकी ओरसे आनेवाले बरातियोंको ठहरानेके लिये विभिन्न स्थानोंपर आवासकी व्यवस्था हो रही है। जनवासेमें बरात ठहरेगी। जनवासा सारी आधुनिक सुविधाओंसे पूर्ण हैं। मंगल परिणय गीतावाटिकाके विशाल पंडालमें होगा। आनेवाले सगे-सम्बन्धी अमुक-अमुक स्थानपर ठहरेंगे। सबकी व्यवस्था सोच ली गयी, पर बाबूजीके अपने समधी, दौहित्री राधाके दादा सम्मान्य श्रीशिवभगवानजी फोगलाके ठहरनेका स्थान अभीतक तय नहीं हो सका। विवाहकी सारी व्यवस्था, सारे आयोजन, सारी सम्पन्नता, सारे उत्तरदायित्वका भार बाबूजीपर है, पर विवाहके सारे नेगचार राधाके दादी-दादाजी ही करेंगे। श्रीशिवभगवानजी फोगला कन्या-पक्षमें सबसे वरिष्ठ व्यक्ति हैं। वे गोरखपुर आ रहे हैं और आ रहे हैं केवल अपनी पौत्री राधाके विवाहके लिये, अतः एक प्रकारसे वे भी अतिथि हैं। जो भी हो, वे बाबूजीके समधी हैं और दौहित्री राधाके दादाजी हैं, अतः उनको ऐसे स्थानपर ठहराना है, जो उनके पदके अनुकूल हो तथा परम सम्मानास्पद हो। अपनी यह समस्या लेकर बाबूजी माँके पास गये। बाबूजीके पास इसका कोई हल नहीं था, पर हल निकालना भी आवश्यक था। बाबूजीने कहा— राधाके दादा श्रीफोगलाजी आ रहे हैं और अभीतक यह तय नहीं हो सका कि उनको कहाँ ठहराया जाय?

माँने सहज भावसे पूछा— क्यों?

बाबूजीने कहा— अपने जो अतिथि आयेंगे, उनको ठहरानेकी व्यवस्था हो गयी। बरातके ठहरनेकी व्यवस्था हो गयी, पर श्रीफोगलाजीके ठहरनेकी व्यवस्था नहीं हो पायी है। वे हमारे लिये परम सम्माननीय हैं। कन्या-पक्षकी ओरसे राधाके विवाहके सभी नेगचार वे ही करेंगे, अतः उनको ऐसे स्थानपर ठहराना चाहिये, जिससे उनको परम महत्त्व मिले।

माँने अति सहज भावसे उत्तर दिया— इसमें उलझनकी क्या बात है? बगीचेकी यह कोठी दे दीजिये उनके ठहरनेके लिये।

बाबूजीने पूछा— फिर हमलोग कहाँपर रहेंगे?

माँने समस्याका हल प्रस्तुत करते हुए कहा— कुएँके पास एक तम्बू तान लेंगे, उसमें रहेंगे और बासेमें भोजन कर लेंगे।

बाबूजीने तुरन्त कहा— तम्बू गाड़नेकी क्या आवश्यकता है? सम्पादकीय विभागका कार्यालय है, उसमें हमलोग रह जायेंगे, इस कोठीमें राधाके दादी-दादाजी ठहर जायेंगे। इस प्रकार बात भी सुन्दर बन जायेगी।

और हुआ भी यही। सौभाग्याकांक्षिणी राधाके दादी-दादाजी ठहरे कोठीमें तथा नानी-नानाजी रहे कार्यालयमें। माँके सुझावने सारी समस्या हल कर दी।

यह प्रसंग बाबूजीके कार्य करनेकी सरस प्रक्रियाका परिचय देता है। कार्य-सम्पादनके लिये

बाबूजी जिस स्नेहसनी शैलीका आश्रय लिया करते थे, उसकी झलक प्राप्त करनेके लिये यह एक उल्लेखनीय उदाहरण है। ऐसा निर्णय बाबूजी स्वयं ही स्वतन्त्र रूपसे ले सकते थे, पर यह निर्णय उन्होंने लिया पारस्परिक परामर्शके उपरान्त। सहयोग-आकर्षण एवं सम्मान-दानका यह एक ऐसा प्रसंग है, जो पारस्परिक व्यवहारको मधुरातिमधुर बना देता है। ■

श्रीओमप्रकाशजी सिंहानिया

स्वप्नमें सदुपदेश

सं. १९९३ की बम्बईकी एक घटना है। श्रीपोद्दारजीके एक मित्र अपनी समस्त सम्पत्ति एक वेश्याके नाम रजिस्ट्री करने जा रहे थे। एक रात उन्हें अचानक स्वप्नमें श्रीपोद्दारजीके दर्शन हुए। उन्हें लगा कि श्रीपोद्दारजी स्पष्ट रूपसे इस कार्यसे उन्हें रोक रहे हैं। निद्रा भंग होनेपर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ, किन्तु श्रीपोद्दारजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने सम्पत्ति वेश्याके नाम नहीं की और फिर श्रीपोद्दारजीको उस सम्बन्धमें एक विस्तृत पत्र लिखकर सारी स्थिति बता दी। ■

श्रीरामगोपालजी थरड

भोजनालयका अनुभव

पूज्य बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के जीवनकालमें ही मैंने आदरणीय भाई श्रीभगवानदासजी सिंहानियाको श्रीराधाष्टमीके भोजनालयकी व्यवस्थामें सहयोग देना आरम्भ कर दिया था। बाबूजीकी कृपासे भोजनालयका कार्य सदैव ठीक प्रकारसे पूरा हो जाया करता था, पर प्रति वर्ष, उन दिनों पूज्य बाबूजीकी कृपाकी एक विचित्र बात अनुभवमें आया करती थी।

श्रीराधाष्टमीका मुख्य उत्सव अष्टमी और नवमीको होता है, किन्तु भारतके विभिन्न प्रदेशोंसे भगवत्प्रेमियोंका आना द्वितीया-तृतीया तिथियोंसे आरम्भ हो जाता था। चतुर्थी तिथिसे लगभग तीन-चार सौ लोगोंके भोजनका प्रबन्ध अलग भोजनालयमें होने लगता था। अष्टमी-नवमीको प्रतिदिन लगभग डेढ़-दो हजार व्यक्ति भोजन करते थे।

आगन्तुक अतिथियोंके भोजनके लिये अलग भोजनालय इसलिये चालू किया जाता था कि सबको सुविधा और सम्मानपूर्वक उत्तम भोजन मिल सके। चतुर्थी तिथिसे लेकर सप्तमी तिथितक अर्थात् इन चार दिनोंमें प्रतिदिन हमें अनुमान हो जाता था कि आज सम्भवतः इतनी संख्यामें व्यक्ति भोजन करेंगे और उनके लिये प्रबन्ध भी उसी प्रकार कर लिया जाता था, किन्तु महोत्सवके मुख्य दिन अष्टमी-नवमीको हम अनुमान भी नहीं लगा सकते थे कि कितने व्यक्ति प्रसादी भोजन पायेंगे। अष्टमी-नवमीके दिन भोजन करनेवालोंपर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता था। हर एकको भोजनकी छूट रहती थी, अतः कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि हजार या डेढ़ हजार या दो हजार या कितने व्यक्ति भोजन करेंगे। हमारे पास जितने बड़े-बड़े पात्र होते थे, उन्हें

भरकर खाद्य सामग्री सिद्ध कर ली जाती थी। प्रातः भोजन बनवानेके कार्यको आरम्भ करते समय और रात्रिमें अधिकांश व्यक्तियोंके भोजन कर चुकनेके समय, इन दोनों समयोंपर हमारे मनमें बड़ी ही धुकधुकी रहती थी कि यदि कहीं भोजन समाप्त हो गया, तब क्या होगा? भोजनालयके द्वारपर आनेवालेको भोजन अवश्य देना है, पर भय लगा रहता था कि कहीं भोजनकी सामग्री समाप्तिपर न आ जाय। भोजन सामग्री यदि समाप्त हो जाय तो फिरसे बनानेके लिये न तो रसोइयोंसे और न सहयोगी कार्यकर्ताओंसे कहनेका साहस होता था, इसीलिये कि सुबहसे राततक कार्य करनेके कारण वे लोग अत्यधिक थके रहते थे। उस विवशताकी स्थितिमें मैं मन-ही-मन पूज्या माँका तथा पूज्य बाबूजीका स्मरण करता तथा उनसे प्रार्थना करता– लाज आपके ही हाथमें है। भोजनालयके उत्तरदायित्वकी सम्पन्नता आपकी शक्ति ही कर सकती है।

फिर लगता यह है कि जैसे जादू हो गया हो। न कोई भूखा लौटता और न सिद्ध भोजन-सामग्री व्यर्थ जाती, मानो जितने लोग भोजन करने वाले थे, उतने लोगोंके लिये ही भोजन बना हो। पूज्या माँ और पूज्य बाबूजीके प्रति मूक निवेदन सारे उत्तरदायित्वको अपने आप सुन्दर रीतिसे सुसम्पन्न कर देता, यह अनुभव एक बार नहीं, लगभग हर राधाष्टमीपर होता था। उन क्षणोंमें मनकी आस्था पूज्य बाबूजीके प्रति कितनी अधिक बढ़ जाती, मैं उसे कैसे व्यक्त करूँ। ऐसे समर्थ श्रीचरणोंके आश्रयको मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। ■